साहित्य
दर्शन
प्रथम भाग
शचीरानी गुर्टू
एम० ए०

प्रकाशक
गौतम बुक डिपो, दिल्ली

सन् १९५० ई०

मूल्य ८)

मुद्रक
नैशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली

'साहित्य-दर्शन' पर एक दृष्टि

डॉक्टर जी० एस० महाजनी एम० ए०, पी-एच० डी०
(कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी)
(वाइस-चांसलर—राजपूताना यूनिवर्सिटी)

'साहित्य-दर्शन' by शचीरानी गुर्टू affords us a peep into the field of literature which covers a wide sector of space and time. It is an ambitious theme and may, with justice, be compared with Prof. Allardyce Nicol's "World Drama" published last year. Every work of wide general scope—whether it be a universal history of events or of literature–must select definite orientation; and it is necessary for the reader to know it for a correct appraisal of that work. Prof. Nicol, for instance, takes us into his confidence by frankly announcing that he felt "most interested in the development of the Western theatre from its earliest known days in Greece to its latest manifestations in the playhouses with which we are currently familiar." For his treatment of the subject, therefore, the focal-point was the theatre of the West and all other issues depended upon this fact. What is the focal-point in 'साहित्य-दर्शन' ?

Barring the opening section devoted to a discussion of the great epic writers of the world (बाल्मीकि, वेदव्यास, होमर, वर्जिल, दांते) and the chapter in which we are treated to a review of some writers of historical novels (*e. g.* Victor Hugo, Alaxander Dumas, Sir Walter Scott, Bankim Chandra, Rahul Sankrityayan, VrindavanLal Varma, Rakhaldas Bandyopadhya, Shri Laxminarsinham, K. M. Munshi and H. N. Apte)—barring these two almost every other chapter examines a pair of literary figures and refers to their main works. The principle of pairing these writers, often widely separated, should indicate the vantage-ground from which the authoress takes the peep. And it is interesting to share her own

thoughts first, as she moves her glasses from pair to pair, in several directions :—

(i) Re तुलसीदास and Milton :
यद्यपि दो महाकवियों की प्रवृत्ति कभी एक-सी नहीं होती...तथापि वस्तु भिन्न होते हुए भी आत्मा एक होती है।..(p. 32)

(ii) टॉलस्टॉय की भांति रवीन्द्रनाथ ने भी 'मेरे बचपन के दिन' नामक पुस्तक में अपनी बाल्यावस्था के मोहक चित्र खींचे हैं। (p. 56)....इन दोनों कलाकारों के जीवन में ऐसा समय भी आया जब दुःख और निराशा ने उन्हें आच्छन्न कर लिया। (p. 61)

(iii) Re Gandhi and Romain Rolland ;
यद्यपि दोनों का कार्यक्षेत्र भिन्न था....तथापि दोनों का उद्देश्य एक था, लक्ष्य एक, विचार-धारा की दिशा और दृष्टिकोण का केन्द्रबिंदु एक। दोनों ने ही मानवता, सत्य, शान्ति, प्रेम और अहिंसा का पुनीत संदेश दिया था (p. 73)

(iv) प्रेमचन्द और गोर्की—दोनों ही कलाकारों की यह विशेषता है कि उन्होंने अपने अपने देश के कथा-साहित्य को परिपुष्ट किया, उसे अग्रगामी बनाया और उसमें जीवन फूंका।....प्रेमचन्द के 'गोदान' और गोर्की के प्रख्यात् उपन्यास 'मां' (Mother) में बहुत कुछ साम्य है (pp. 100–101)

प्रेमचन्द और गोर्की दोनों ही यथार्थवादी कलाकार हैं (p.103)

(v) Re निराला and Browning:
हमें तो पूर्व और पश्चिम के इन महान् कलाकारों के स्वभावों में भी आश्चर्यजनक समानता दृष्टिगत होती है (p.148)

(vi) Re Shelley and पंत :
हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि 'पल्लव' और 'प्रोमिथिअस अन्बाऊंड' में कथा-साम्य न होकर इन कवियों की अंतर्मुखी वृत्तियों का साम्य है (p.169)

(vii) गुप्तजी और Robert Burns के काव्य और उनकी प्रेरक मूल शक्तियों के इतने दिग्दर्शन से यही निष्कर्ष निकलता है कि ये दोनों सच्चे कलाकार हैं और अपने विचारों को, बिना किसी

अतिशयोक्ति के, सरल भाषा में ज्यों का त्यों प्रकट कर देते हैं। (p. 196)

(viii) निःसन्देह रामचन्द्र शुक्ल और Matthew Arnold ने अपने लेखों से यह प्रमाणित कर दिया कि साहित्यकार परिस्थितियों की देन नहीं, वरन् उसका शक्तिशाली व्यक्तित्त्व साहित्य में नवीन चेतना उत्पन्न कर देने वाला और परिस्थितियों को अभीष्ट दिशा में उन्मुख कर देने वाला होता है, यद्यपि इसका ज्ञान उस समय बहुत कम लोगों को हो पाता है। (p.204)

(ix) चेखव और यशपाल की साधना का ध्येय परवश और संत्रस्त मानवता को आंतरिक जागरूकता का प्राणवान संदेश देना है। (p. 255)

(x) Elliot आस्तिक मनस्वी है, 'अज्ञेय' नास्तिक आत्मार्थी, दोनों समाज की वर्त्तमान् श्वासावरोधी विषमताओं से परिचित होकर भी रूढ़िवादी विचारधारा के पोषक हैं। दोनों ही व्यष्टि से समष्टि और पुनः समष्टि से व्यष्टि की ओर उन्मुख हैं। दोनों में आत्मवृत्त कै प्रक्षेपण की वृत्ति है। (p.278)

(xi) जैनेन्द्र और Meredith में जो मनोरागों की क्लांति द्रष्टव्य है वह गंभीर आत्मचिंतन का परिणाम है। विपरीत परिस्थितियों से आहत और अतिशय स्वचिंतन से श्रान्त वांच्छित अभिव्यक्ति के अभाव में उनका तीव्र राग मानसिक विक्षोभ में परिणत हो गया, जिससे कभी कभी व्यंग का भीषण अट्टहास बज उठता है। (p. 294)

(xii) ....उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि विश्व-साहित्य में विभिन्न उपन्यासकारों द्वारा अब तक अनेक ऐतिहासिक प्रयोग हुए हैं, जो युगों की संस्कृति से किसी न किसी रूप में सम्बद्ध होकर उसकी धारा आगे बढ़ाते रहे हैं। ....वस्तुतः इतिहास, संस्कृति और साहित्य का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रहा है। (p.323)

(xiii) "डॉस्टॉवस्की ने जिस प्रकार अर्द्ध-विक्षिप्त, असंतुलित और विकारी मस्तिष्कों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया, ठीक उसी प्रकार शरच्चन्द्र ने भी जागरूक रह कर जीवन की गहराई को आंका और तत्कालीन बंगाल की प्राचीन परिपाटियों के विरुद्ध अपनी क्रियात्मक लेखनी

और निजी अनुभवों के बल पर विशेष टाइप के स्त्री-पुरुषों के अन्तर्भाव, राग-द्वेष के विविध मर्मस्पर्शी पहलू, आन्तरिक वैषम्य, विरोध, छलना, पतन आदि का अंतर्दर्शन कराया। (p. 334)

जिस प्रकार डॉस्टॉवस्की रूस का युग-निर्देशक कलाकार है, उसी प्रकार शरच्चन्द्र भी भारतीय-साहित्य की निर्बंध परम्परा के सजग प्रहरी हैं। दोनों ने ही जीवन-स्वरों के उत्तार-चढ़ाव का अनुभव किया है और वे स्वर उनकी आत्मा में प्रविष्ट होकर युगोच्छ्वास की मूर्त्त–अमूर्त्त जिज्ञासाओं और सूक्ष्म-मर्म-स्पन्दनों के रूप में उनके महान् कृतित्व में मुखर हो उठे हैं।" (p. 340)

(xiv) Re गेटे और प्रसाद—जैसे जल का बुदबुद नीचे से स्वत: ऊपर उठकर आता है, उसी प्रकार इन महाकवियों की अंतश्चेतना भी मन की गहराइयों से उतर कर ऊपर को झलक मारती है और विराट्-चेतना में लीन हो उसी को व्यक्त करती हुई उसी में समाहित हो जाती है–स्थूल-दृष्टि मे दूर–न जाने कहां? (p.128)

(xv) रवीन्द्र, पन्त और कीट्स तीनों ही पार्थिव में अपार्थिव प्रेम की व्यंजना और वाह्य रूप-रंग में सौन्दर्यानुभवी अन्तरात्मा की सूक्ष्म अनुभूति कराना चाहते हैं। (p. 386)

(xvi) असाधारण व्यक्तियों की आन्तर-प्रेरणा मानवात्मा की शाश्वत पुकार है और उनका अमूर्त संसार भावाधिक्य में आत्म-मर्यादा मे अनुप्राणित होकर वाह्य गोचर में बिम्बित हो उठता है। हार्डी और प्रसाद दोनों ही सापेक्षवादी द्वैत चिन्तक हैं और दोनों ने अनुभूति की अखण्ड एकरूपता का अविकारी आत्मा से असीमित सम्बन्ध जोड़ कर निर्पेक्षता में सापेक्ष तत्वों को आरोपित किया है। (p. 389)

The above extracts unmistakably bring out the broad lesson sought to be conveyed. Despite the differences in environment, in manners, in cultures and civilizations, the human mind is cast in the same mould. The very opening sentence of the book is : चिरंतन काल से ही मानव-मन एक है (p. 3). On page 9 again we are told that: मानव-हृदय सभी देशों में एक-सा है। It is clear that the ear of the authoress is tuned to receive

concords, and her vision focussed to pick out semblances.

Any such essay must be of the nature of a glimpse. Another author—or why, even the same writer in a different mood—will conceivably give a variant presentation. There is, for example, no reason why Milton should not be included among the great epic-writers of the world. Sufficient justification could be adduced to couple Gandhi with Tolstoy rather than with Romain Rolland. We know also that critics have been struck by the parallelism of Kalidas's 'Shakuntala' with the heroine in Goethe's '*Werthers Leiden*' (rather than with that of Shakespeare's *Tempest*). But then the fact is that there can be no last word on such a vast subject as world-literature.

In the physical world, we are informed, the 100-inch telescope at Mount Wilson which enables astronomers to have a peep into the depths of the universe (beyond the Milky Way), reveals that—"....the nebulae are found singly, in groups and in clusters, but on the grand scale these local irregularities average out and the observable region is *approximately homogeneous*". (Italics mine) Very similar, and strikingly similar, is the picture of the homogeneity of the human mind through all times and climes, that the authoress presents. She deserves our warm felicitations for having accomplished a great task with credit,—and our sincere gratitude for having incidentally enriched the Hindi literature.

Jaipur
28th Oct. 1950

G. S. Mahajani

भूमिका

डॉक्टर वेस्टन मेकडानियल डी० लिट०

(न्यूयॉर्क)

भूमिका लेखक
डॉक्टर वेस्टन मेकडानियल डी० लिट०
न्यूयॉर्क (अमेरिका)

Preface

With man's dream for one world ever renewing itself, it is indeed a very significant event that a critical study of world literature has just come from the pen of this distinguished authoress Mrs. Shachi Rani Gurtu who has captured in memorable terms the most comprehensive analysis of the dynamic and progressive trends in current literary thought. Although this volume is written by an extremely careful observer, it is highlighted with a warm glow of enthusiasm, the spiritual integrity of a sensitive artist. What she has to say, she states effectively, for hers is the supreme gift to write deftly, with clarity, fidelity, and charm. She speaks with the boldness of one who is acutely aware of a changing world which reflects its triumphs through the creative efforts of its inhabitants. Hers is the sure eye, the appraising eye which evaluates accurately, even prophetically, moving panorama of world expression. Hers is the touch of one whose fingers rest upon the throbbing pulse of a world that is aching to redeem itself. And she has recorded these as attitudes and aspirations of a new Man, with compassion and tenderness.

We welcome such a monumental work. We rejoice that there is at last the possibility for a fair exchange of the dominion cultures, the essential idealism reflected through the various contributions of world authors. Surely such a work, merited by foresight and wisdom, will lead eventually to universal understanding among the peoples of every race, creed, color, and national origin.

Weston McDaniel

April 8, 1950.

122 East 62nd Street,
NEW YORK 21, N.Y., U.S.A.

भूमिका

जहां एक ओर मानव का 'एक विश्व' का स्वप्न नित-नए रूप में व्यक्त हो रहा है, वहां—निःसन्देह, यह एक महत्त्वपूर्ण घटना है कि विश्व साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन प्रख्यात लेखिका श्रीमती शचीरानी गुर्टू की लेखनी से प्रस्तुत किया जा रहा है, जिन्होंने आधुनिक साहित्यिक विचारों की प्राणवान और प्रगतिशील प्रवृत्तियों का विश्लेषण स्मरणीय शब्दों में गुम्फित किया है। यद्यपि यह ग्रन्थ एक बहुत ही सजग प्रेक्षक द्वारा लिखा गया है,—तथापि इसमें उत्साह का ज्वलंत तेज और एक भावुक कलाकार की आध्यात्मिक-दीप्ति अन्तर्निहित है। इनके द्वारा जो कुछ भी प्रतिपादित हुआ है—वह कार्य-साधन की प्रणाली को दृष्टि में रखकर ही किया गया है, क्योंकि स्वच्छता, विश्वसनीय एवं आकर्षक पद्धति के साथ साथ लिखने की महती कला-दक्षता से ये अवगत हैं। इनकी वाणी में वह ओज है, जो अपने देश-वासियों की सृजनात्मक प्रतिभा को प्रतिबिम्बित करने वाली विश्व की परिवर्त्तित परिस्थितियों एवं सफलताओं की तीव्र अनुभूति कराती है। इनमें स्थिर दृष्टि है, सही मूल्यांकन करने वाली दृष्टि, जो भविष्यद्रष्टा-सी विश्व-अभिव्यक्ति के गतिशील दृश्य-चित्रों का यथार्थ अकन करती है। मुक्ति के लिए चिर-पीड़ित संसार की धड़कती हुई नाड़ी पर धरी गई अंगुलियों का-सा इनका स्पर्श है—और नए मानव की विशेष प्रवृत्तियों एवं महत्त्वाकांक्षाओं को इन्होंने करुणा एवं कोमलता से लेखनीबद्ध किया है।

हम ऐसे स्मारक-ग्रन्थ का अभिनन्दन करते हैं। यह हर्ष का विषय है कि विश्व-लेखकों की कतिपय रचनाओं द्वारा बिम्बित मौलिक आदर्श को समाविष्ट करके अन्ततः विभिन्न राज-संस्कृतियों के समुचित विनिमय की संभावना तो पैदा हुई। निश्चय ही, दूरदर्शिता और विवेकपूर्वक लिखी गई यह कृति प्रत्येक जाति, समुदाय वर्ण और स्वदेशाभिमानी जनता को सार्वभौम सद्भावना की ओर अग्रसर करेगी।

१२२ ईस्ट ६२ स्ट्रीट
न्यूयॉर्क २१, एन. वाई., यू. एस. ए.
८ अप्रेल, ५० ई०

ब्रेस्टन मेकडानियल

[अंग्रेजी से अनुवाद]

निवेदन

किन्ही भी दो साहित्यकारों की समीक्षात्मक तुलना दायित्वपूर्ण कार्य होते हुए भी आज के युग की प्रगति को लक्ष्य में रखकर उपादेय हो सकती है। प्रस्तुत पुस्तक में विभिन्न कलाकारों के कृतित्व की नाप-जोख नहीं, वरन् प्रवृत्तियों की तुलना है। मैंने अपनी ओर से निष्पक्ष होकर यथार्थ मूल्यांकन की चेष्टा की है. किन्तु अपने इस प्रयत्न में मैं कितनी सफल हो सकी हूं—इसका निर्णय तो विज्ञ पाठक ही करेंगे।

पुस्तक की कलेवर-वृद्धि के कारण पहले अंग्रेजी-उद्धरण देने का विचार न था, किन्तु बाद में इसकी आवश्यकता समझी गई। आरम्भ के कुछ लेखों में जो अंग्रेजी-उद्धरण छूट गए हैं—उन्हें अगले संस्करण में देने का प्रयत्न किया जाएगा।

विश्व-विख्यात कवि, कलाकार और समीक्षक न्यूयॉर्क-निवासी डॉक्टर मेकडानियल ने 'साहित्य-दर्शन' की भूमिका लिखने की कृपा की, इसके लिए मैं कृतज्ञ हूं।

एक और बात—जिसे लिखने की यहां आवश्यकता तो नहीं, किन्तु जिसके बिना मैं अपने इस साहित्यिक-प्रयास को अधूरा ही मानूंगी। 'साहित्य-दर्शन' का लिखने की प्रेरणा बाहरी नहीं, भीतरी है। इसको समाप्त करने में भगवत्प्रेरणा ही मेरी सम्बल रही है। मेरी अंतरंग अरूप-चिन्तना आज साहित्य-साधना में परिणत होकर प्रकट हो रही है—यह मेरे लिए आत्म-तोष का विषय है।

७/२३, दरियागंज, दिल्ली
शरद् पूर्णिमा, २००७ सम्वत्

शचीरानी गुर्टू

विषय-सूची

विश्व के महाकाव्यकार

(बाल्मीकि, वेद व्यास, होमर, वर्जिल, दान्ते)

महाकवि वाल्मीकि
(पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार ईसवी सन् से लगभग
६०० वर्ष पूर्व)
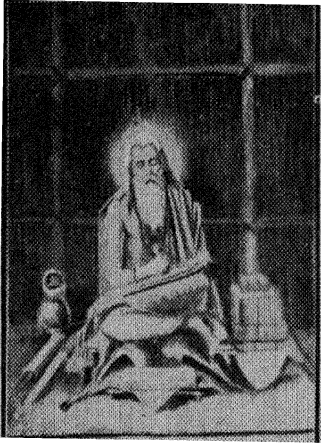
महाकवि कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास
(पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार ईसवी
सन् से लगभग ५०० वर्ष पूर्व)
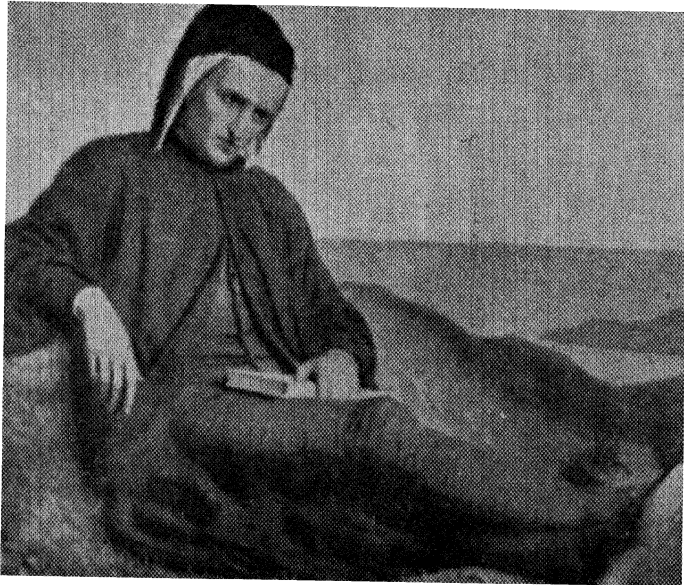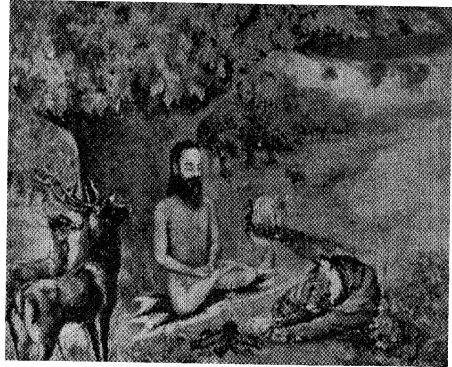
इटली के महाकवि दान्ते
'दी डिवाइन कोमेडी' महाकाव्य के निर्माता
(जन्म—ईसवी सन् १२६५, मृत्यु—ईसवी सन् १३२१)

काव्य में 'शाश्वत सत्य' की छाप उसकी अमरता की सर्वश्रेष्ठ कसौटी है। आज से सहस्त्रों वर्ष पूर्व उत्पन्न साहित्य के आदिगुरु बाल्मीकि, व्यास, होमर, र्बाजल, दांते आदि महाकवियों की विराट् कल्पना अब भी मानव की हृत्तन्त्री के तार क्यों झकृत कर देती है, उत्तर एक है—सत्काव्य की भाषा अनन्त के मूक संदेश की वाहिका है जो सृष्टि के पृष्ठों पर रंगीन पेंसिल से अंकित है। विश्व-कवि टगोर के शब्दों में "हम उनकी ओर से आंखें नहीं मूद सकते, मानो हमें सम्बोधित करते हुए वे हठात् कह उठते हैं "देखो, यह हम हैं" और हमारा मस्तिष्क बिना यह प्रश्न किए हुए कि 'तुम यहां क्यों हो' उनके अस्तित्व के सम्मुख मस्तक झुका देता है।"

चिरंतन काल से ही मानव-हृदय एक-सा चला आया है। सत्काव्य में कवि की बाह्य एवं आन्तरिक अनुभूतियों का प्रकाश और सौंदर्य-शास्त्र की कसौटी पर उसके आकार-प्रकार एवं रूप-राशि का निराकार रूप, इसके अतिरिक्त उसके व्यक्तिगत सम्बन्धों की सकुंचित परिधि से ऊपर उठ कर लोक-सामान्य भाव-भूमि का स्पश, साथ ही दृश्य जगत् के नाना रूपों और व्यापारों के साथ उसके प्रकृत सम्बन्ध का सौन्दर्य-दर्शन और इस सौंदर्य-लोक में मनोविकारों का परिष्कार तथा जगत् के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह - युग युग से मानव को अपनी ओर आकृष्ट करते आये हैं। वह निस्सीम ज्ञान के दिव्य प्रकाश में, कवि-चिंतन के सार्वभौम सत्य में खोया हुआ-सा मनोमुग्ध दृष्टि से निहारता रह जाता है और तभी उसके हृदय के तार सहसा झनझना उठते हैं।

महाकाव्य की व्याख्या

महाकाव्य की परिधि अत्यंत विस्तृत है। उसकी कथा किसी व्यक्ति-विशेष की नहीं, वरन् व्यक्तित्व की होती है। उसमें किसी एक मानव का नहीं, वरन् मान-

वता का इतिहास, मानव जीवन की व्याख्या और मानवीय-मनोवेगों का स्वच्छन्द प्रवाह मिलता है। वह कवि की लोकोत्तर, शक्तिमयी कल्पना-शक्ति का दर्शन कराता, विश्व-भावनाओं को तरंगित करता और उसे दिव्य -रस के प्रवाह में प्रवाहित करता है। महाकाव्य का उद्देश्य है - जीवन की घनीभूत , विशदतम, निगूढ़ अनुभूतियों को अपने महाकलेवर में समेटे रहना और मानवीय-उच्चादर्शों को उद्‌भावित करना। साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के अनुसार जो सर्गों में बंधा हुआ हो - वह महाकाव्य कहाता है। उसमें एक नायक होता है - जो देवता या उत्तम कुल का धीरोदात्त गुणों से युक्त क्षत्रिय हो। एक वंश के कई राजा भी नायक हो सकते हैं। शृंगार, वीर और शांत रस में से कोई एक रस अंगी होता है, अन्य रस गौण होते हैं। नाटक की सभी संधियां रहती हैं। उसकी कथा ऐतिहासिक अथवा लोक-प्रसिद्ध महापुरुष की होती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुर्वर्ग में से उसका एक फल दिखाया जाता है। आरंभ में मंगलाचरण या वर्ण्य-विषय का निर्देश होता है। कहीं कहीं खलों की निंदा और सज्जनों की प्रशंसा होती है। उसमें कमसे कम आठ सर्ग रहने आवश्यक हैं। प्रत्येक सर्ग में एक छंद ही होता है, किन्तु सर्ग का अन्तिम पद्य भिन्न छंद का होता है, यद्यपि कहीं कहीं इसका अपवाद भी दीख पड़ता है। सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना भी होनी चाहिए। उसमें संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिवस, प्रातःकाल, मध्यान्ह, मृगया, पर्वत, ऋतु , बन, समुद्र, संयोग, वियोग, स्वर्ग, नगर, यात्रा, संग्राम, अभ्युदय आदि विषयों का यथासंभव सांगोपांग वर्णन होना चाहिए। उसका नामकरण कवि अथवा चरित्र-नायक के आधार पर होना चाहिए। प्रायः स्वतन्त्र नाम भी देखे जाते हैं।

पश्चिमी काव्य शास्त्र के अनुसार महाकाव्य में कोई सच्ची ऐतिहासिक अथवा लोक प्रसिद्ध वृहद् कथा वर्णित होनी चाहिए - वह कवि की कोरी मनगढंत कल्पना न हो। हां, उसे अपने विचारों और आदर्शों के अनुसार वह कुछ परिवर्तित अवश्य कर सकता है। महाकाव्य का विषय महत्त्व-व्यंजक, उसके पात्र असाधारण और शौर्य-गुण-सम्पन्न तथा नायक कोई महापुरुष होना चाहिए। कवि के लिये आवश्यक है कि वह कथा के मर्म में पैठ कर उसकी इस प्रकार कलात्मक अभिव्यंजना करे कि उसमें एकसूत्रता और शालीनता दृष्टिगत हो। वर्णन-शैली और भाषागत सौन्दर्य भी अपूर्व होना चाहिए। उसमें एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिए। कथाओं, उपकथाओं और रोचक प्रसंगों के अतिरिक्त उसमें देवी-देवताओं और नियति की भी प्रमुखता होती है। महाकाव्य की कथा किसी व्यक्ति-विशेष की न होकर जातीय-भावना को प्रतिबिम्बित करती है।

ग्रीस के महाकवि होमर
'इलियड' और 'ओडेसी' महाकाव्यों
के रचयिता
(ई० सन् से ४५० वर्ष पूर्व)
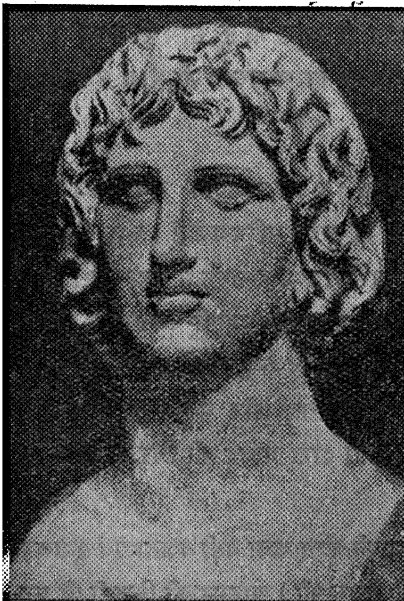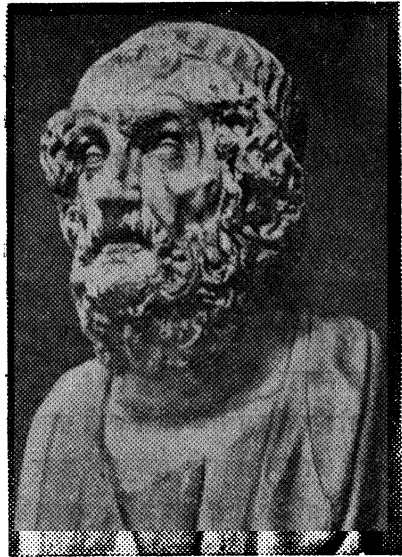
इटली के महाकवि वर्जिल
'इनियड' महाकाव्य के रचयिता
(जन्म—ईसवी सन् से ७० वष पूर्व,
मृत्यु—ईसवी सन् से १९ वर्ष पूर्व)

हमारे यहां 'अभिव्यक्ति-पक्ष' पर जोर दिया गया है - पश्चिम में 'कला-पक्ष' पर, किन्तु दोनों में आधारभूत समानता यह मिलती है कि महाकाव्य में वर्णित विषय का उचित परिपाक, व्यंजना की प्रधानता और छलकता रस प्रवाह होना चाहिए, जिसमें उत्कृष्टव्यंजना, वैलक्षण्य और महाकवित्व नहीं-वह आकार में बड़ा होने पर भी महाकाव्य कहलाने का अधिकारी नहीं है। महाकाव्य में जीवन-समष्टि की अभतपूर्व झांकी; पार्थिव-कर्तव्यों एवं चेष्टाओं का अवसान, सत्य-सौन्दर्य एवं स्वातंत्र्य का अनूठा सम्मिश्रण और बाह्य एवं अन्तर्जगत् को परिप्लावित करने वाली मंगलमयी निर्मल मंदाकिनी निर्झरित होती है, जिसमें अद्‌भुत श्री, अद्‌भुत शान्ति और सम्पूर्णता व्याप्त रहती है। निःसन्देह, ऐसे महाकाव्यों में हीं विश्वात्मा संचरण करती है और उनका प्रभाव उनके अपने समय, देश और जाति तक ही सीमित नहीं होता, वरन् उनके पीछे आने वाले युगों, इतर देशों, जातियों एवं संस्कृतियों पर भी अमिट रूप से अंकित होता चलता है। भारत में बाल्मीकि कृत 'रामायण' और वेद व्यास रचित 'महाभारत' ग्रीस में होमर कृत 'इलियड' और 'ओडेसी' इटली में वर्जिल रचित 'इनियड' और दांते की 'डिवाइन कामेडी' इसी कोटि के महाकाव्य हैं। ये महाकाव्य इतने विशद औरविविधता से पूर्ण हैं कि इनमें लोक ज्ञान का अनंत कोष भरा पड़ा है। ये जितने प्राचीन हैं उतने ही समृद्ध भी हैं, साथ ही इनमें महाकवियों की विलक्षण और ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभा का चमत्कार भी दीख पड़ता है।

महाकाव्यों के वर्ण्य विषय

बाल्मीकिकृत रामायण में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम की कथा विशद रूप से वर्णित है। इसमें इतिहास और कल्पना का सुन्दर सम्मिश्रण है। क्या लोक-पक्ष, क्या अध्यात्म, दोनों ओर इसकी गूढता, गंभीरता और सरसता महान् है। राम की सामान्य जीवन-दशाओं को सामने रख कर उन्होंने अपनी कल्पना के उत्कर्ष द्वारा साधारण जनता के हृदय में उनका आदर्श मानव रूप प्रतिष्ठित किया। काव्य की उदात्त-गंभीरता एवं दार्शनिक-पुष्टता लोकोत्तर और मनुष्य की कल्पना से परे है। कथाओं, उपकथाओं और जीवन-वृत्तों द्वारा मानव की विराट् शक्ति का दिग्दर्शन कराया गया है।

वेदव्यास ने कौरव-पाडवों के महायुद्ध की वृहत् कथा बड़ी दक्षता एवं कुशलता से चूल बिठाकर एक महागाथा के रूप में प्रस्तुत की। आरम्भ की कितनी ही घट-

नाओं का अन्त में जा कर समाहार होता है और स्फुट कथाओं के अत्यन्त विस्तृत और अनूठे वर्णन इस सागर के भीतर लहरें मार रहे हैं। महाभारत में पार्थिव शक्ति की पराकाष्ठा के साथ साथ अलौकिक तत्व का समावेश भी है। कथा सृष्टि जटिल, परम्परा - प्राप्त और मंथर गति से आगे बढ़ती है, इसमें कर्तव्याकर्तव्य और धर्माधर्म का बहुत ही सूक्ष्म विवेचन है और ईश्वर, जीव, सृष्टि, ईश्वर-प्रेम, जगत् की निस्सारता आदि पर प्रकाश डाला गया है।

होमर का जगत् दूसरा है। उसके प्रसिद्ध महाकाव्य 'इलियड' में ग्रीस की पुरातन ऐतिहासिक 'ट्रोजन-वार' नामक युद्ध की कथा है। जिस प्रकार रामायण में सीता-हरण पर राम-रावण में भयंकर युद्ध छिड़ा था, महाभारत में द्रौपदी के अपमान से क्षुब्ध पांडवों ने कौरवों के अस्तित्व तक को मिटा दिया था, उसी प्रकार 'इलियड' में भी सुन्दरी हैलेन पर कई वर्षों तक ट्रोजन-महायुद्ध चलता रहा। शक्ति-शाली ट्राय-नरेश के पुत्र पेरिस ने स्पार्टा के अधिपति मेनीलास की परमसुन्दरी पत्नी हेलेन का जबर्दस्ती अपहरण कर लिया था। इस पर क्रुद्ध हो कर मेनीलास ने ग्रीक राजाओं की सहायता से ट्राय पर आक्रमण कर दिया। भयंकर युद्ध हुआ। इस संग्राम में देवताओं ने भी भाग लिया। अन्त में सत्य की ही विजय हुई और हेलेन फिर अपने महलों में पधारी।

'ओडेसी' में इथेका के राजा यूलीसेस की रोचक यात्रा, मार्ग में अनेक विघ्न और दैवी-दुर्घटनाएं, उनके साहस पूर्ण वीरोचित कार्य, पत्नी-पुत्र से पुर्नमिलन आदि की कथा का सविस्तृत वर्णन किया गया है। यूलीसेस ट्रोजन की लड़ाई में मेनीलास की ओर से शामिल हुआ था। ट्राय के पतनके बाद अन्य ग्रीक योद्धा तो अपने अपने घर वापिस चले आए, किन्तु यूलीसेस एक टापू में कोलिप्सो नामक अप्सरा द्वारा बन्दी बना लिया गया और कई वर्षों तक वहीं फंसा रहा। उसके अन्य साथी भी रास्ते में नष्ट भ्रष्ट हो गए। यूलीसेस की पतिव्रता पत्नी पेनीलोप ने अत्यन्त धैर्य और साहस से इन कठिन वर्षों को पार किया। काव्य के अन्त में पति-पत्नी और पुत्र का सम्मिलन बड़ा ही सुखद और अपूर्व है।

'महाभारत और 'इलियड' दोनों महाकाव्य इतने विशद रूप में आजकल मिलते हैं कि उनका एक ही व्यक्ति रचयिता होगा, इसमें सन्देह है। मूल काव्य से क्षेपकों का निकाल देना भी संभव नहीं। इसी प्रकार बाल्मीकि-कृत रामायण

का प्रचार गा कर हुआ था और 'ओडेसी' को भी 'रेपसोडोई' लोगों ने गाया था अतएव उनमें भी प्रक्षिप्त अंश की संभावना अधिक है।

वस्तुतः महाकाव्य लोकभावना का प्रतिनिधित्व करता है। महाकवि की व्यक्त शक्ति जन-रुचि को कई पीढ़ियों तक प्रभावित करती है, इसलिये उसी की विचार धारा जातीय संस्कारों में रम जाती है और यत्र-तत्र से फूट पड़ती है।

महाकवि वर्जिल ईसा से सत्तर वर्ष पूर्व रोम में एक कृषक परिवार में उत्पन्न हुआ था। प्रकृति की विराट् क्रोड़ में, मातृ-भूमि की गिरि-उपत्यकाओं में, और घाटियों खेतों, मैदानों, और वृक्षों के झुरमुट में, वह प्रकृति शिशु-सा स्वच्छन्द क्रीड़ा करता हुआ बढ़ा। उसके चतुर्दिक् प्रकृति का अनन्त वैभव बिखरा पड़ा था, धरती और आसमान के व्यापक सौन्दर्य का उसने निरीक्षण किया। विराट् सनातन सत्य की छाया में उसकी प्रतिभा उद्भूत हुई। प्राकृतिक चित्रण और कल्पनालोक में मुग्ध उड़ान--यह ही दो प्रवृत्तियां उसके काव्य में परिलक्षित होती हैं।

उसके काव्य का कथानक इटली की प्राचीन ऐतिहासिक गाथा है। 'इनियड' का नायक एनियास है, जो ट्रोजन-महायुद्ध का वीर योद्धा है और ट्राय के पराजय के बाद प्राच्य दिशा की ओर यात्रा करने चल पड़ता है। मार्ग में अफ्रीका के उत्तरी समुद्री तट पर स्थित कार्थेज राज्य में वह उतर जाता है। वहां कार्थेज की साम्राज्ञी डीडो से उसकी भेंट होती है, जिसे कि वह ट्राय के पतन की कहानी सुनाता है। साम्राज्ञी उस पर आसक्त हो जाती है, किन्तु ऐनियास को देववाणी होती है कि कार्थेज में उसका क्षण भर भी रुकना ठीक नहीं है। वह चुपचाप जाने की तैयारी करता है। किन्तु डीडो को पता चल जाता है और वह उसी की तलवार से अपनी आत्महत्या कर लेती है।

उसके बाद ऐनियास इटली के पश्चिमी तट पर उतरता है और देवी सीबिल के साथ नरक की यात्रा करता है, वहीं उसकी डीडो से फिर भेंट होती है, जोकि मृत्यु के बाद और भी भयंकर प्रतिहिंसक हो गई है, और जिसकी आंखों से घृणा की चिनगारियां फूट पड़ रही हैं। नरक की विभीषिकाओं को पार करके वह स्वर्ग में पहुंच जाता है, जहां कि उसकी अपने स्वर्गीय पिता से भेंट होती है। उसका पिता उसको रोमन लोगों की वीरता, ऐश्वर्य और भावी सुखसमृद्धि का विश्वास दिलाता है और उसे वापिस लौट जाने को कहता है। मृतात्माओं के लोक को छोड़ कर

ऐनियास टाइबर के मुहाने पर पहुंच जाता है। वहां शक्तिशाली सम्राट् लेटीनस की सुन्दरी पुत्री से उसका विवाह हो जाता है और वे दोनों सुखपूर्वक रहने लगते हैं।

इस महाकाव्य में प्राचीन देवी-देवताओं, मृतात्मा और रोम के ऐश्वर्य का बहुत ही सुन्दर दर्शन है। प्रत्येक वाक्य में स्वदेश प्रेम भी कूट कूट कर भरा हुआ है। वर्जिल होमर से बहुत अधिक प्रभावित था। उसकी अन्तिम आकांक्षा थी कि वह अपने महाकाव्य पर तीन वर्ष और लगाकर उसे अधिक उपयोगी, स्थायी और महत्वपूर्ण बनादे, किन्तु जब उसकी यह इच्छा पूरी नहीं हो सकी तो उसने मरते हुए अपने अनुयायियों को आदेश दिया कि उसके ग्रंथ की लिखित हस्तलिपि नष्ट कर दी जाय। तत्कालीन सम्राट् आगस्टस ने ऐसा नहीं होने दिया और इस प्रकार यह महाग्रंथ नष्ट होने से बच गया।

मध्ययुग में इटली का सबसे प्रख्यात और प्रतिभा सम्पन्न कवि दांते हुआ, जिसने कि अपनी भाव-प्रवण आत्मा और बौद्धिक चमत्कार से सब को चकित कर दिया। सन् १२६५ में उसका जन्म फ्लारेंस नगर में हुआ। जब वह नौ वर्ष का था तो अकस्मात् उसकी भेंट सुन्दरी बीट्रिस से हुई, जो स्वयं ९ वर्ष की सुकुमारी बालिका थी। दोनों बालक परस्पर मिले, किन्तु बोले नहीं। दांतें ने लिखा है, 'उसी दिन से वह मेरे प्राणों में रम गई।" तभी से वह कवि की प्रेरक शक्ति और जीवन की मशाल बन गई। ९ वर्ष बाद दोनों का पुन: सम्मिलन हुआ। बीट्रिस ने अत्यन्त श्रद्धानत हो कवि की अभ्यर्थना की। किंतु बोले वे तब भी नहीं। जीवन में वे केवल तीन बार मिले और भाग्य की विडम्बना! बीट्रिस कभी यह न जान पाई कि इटली का सबसे लब्ध-प्रतिष्ठ कवि उसके प्रेम का उपासक है तथा उसने उस पर एक महाकाव्य ही रच डाला है।

बीट्रिस का विवाह हुआ और पैंतीस वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद दांते ने लिखा "मेरे जीवन की सारी खुशी चली गई। अब मैं सूना हूं, निराश, निरानन्द, भग्न-हृदय।" और उसके निराश हृदय के समान ही उसके महाकाव्य "डिवाइन कामेडी" की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी अन्धकार की निबिड़ता से आच्छन्न है। कथानक है गूढ़, रहस्यवादी और धुंधला-धुंधला। अपने महाकाव्य का नायक वह स्वयं ही है। नायिका है उसकी प्रेयसी बीट्रिस। कथा तीन खण्डों में विभक्त है, प्रथम खण्ड में दांते अपनी प्रौढ़ावस्था में एक बीहड़ अरण्य

में पथभ्रष्ट हो अपना निर्दिष्ट मार्ग भूल जाता है। राह में भटकते हुए उसे अनेकानेक कष्टों, विपत्तियों, और काम, क्रोध, लोभ, मोहादि हिंसक जन्तुओं का सामना करना पड़ता है। कई बार उसे मृत्यु से भी बढ़ कर भयंकर स्थिति से टक्कर लेनी पड़ती हैं। कोई उसका सहायक नहीं, कोई उसका हितैषी नहीं। सभी की स्वार्थ लोलुपता मानो उसे निगल जाने को प्रस्तुत है। कालान्तर में उसे वर्जिल की आत्मा के दिव्य दर्शन होते हैं और उसके ज्ञानोपदेश से उसे सत्पथ पर चलने की प्रेरणा मिलती है। दूसरे खण्ड में प्रायश्चित आरम्भ हो जाता है, और अनुताप की आंच में पड़ कर वह कंचन हो जाता है। तीसरे खण्ड में उसकी बीट्रिस से भेंट होती है जिसकी कठोर साधना एवं विशुद्ध प्रेम से उसे स्वर्ग के दर्शन होते हैं।

प्रथम खण्ड में सतत संघर्ष और विफलताओं का बोलबाला है, दूसरा खण्ड अनुताप से भरा है, और तीसरे में दिव्य अनन्त शक्ति से साक्षात्कार होता है, जो मंगलमयी और कल्याणकारिणी है।

यह काव्य बड़ी विशद कल्पनाओं, कोमल अभिव्यंजना और मार्मिक उक्तियों से परिपूर्ण है। महाकवि की भावना कोरी भावना नहीं है, प्रत्युत् बाह्य जीवन पर संवेदनात्मक मानसिक प्रतिक्रियाएं हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य सत्प्रेरणा और अपने पुरुषार्थ से समस्त कठिनाइयों का सामना करके निर्विशेष आनन्दधाम तक पहुंच सकता है।

इस काव्य में हृदय-तत्त्व की प्रधानता है। संयोग-वियोग की धुंधली स्मृतियां रह रह कर झलक मारती हैं। अभिव्यंजना की प्रगल्भता और सुकुमार योजना के साथ साथ प्रेम की तन्मयता और विरहव्यथा की अन्तर्दशाओं का भी सूक्ष्म विश्लेषण है, जो कि एक सच्चे प्रेम की उमंग में ही संभव है।

लोकोत्तर प्रतिभा

कहने की आवश्यकता नहीं कि इन पांचों महाकवियों ने कल्पनाकाश से नीचे उतर महाकाव्य की विस्तृत परिधि में भावोल्लास की रस-ग्राहिणी और रस-प्रदायिनी शक्ति-धारा का नवीनोन्मेष किया और मानवी-चेतना एवं मानव-सम्बन्धों और परिस्थितियों को अपनी अनूठी भाव-व्यंजना के साथ ऐसा उभार कर दर्शाया कि जीवन के असंख्य भाव-बिम्ब विश्व की आंखों में तैरने लगे। उनके काव्य में अर्न्तवृतियों का अनुरंजन, कल्पना

की परिष्कृति, और भावना एवं अभिरुचि की पूर्ण समन्विति दृष्टिगत होती है। काव्यों की कथाएं वैयक्तिक साहसिक कृत्यों से भरी पड़ी हैं, जिनमें संग्राम और दैवी-दुर्घटनाओं का बाहुल्य है। मनुष्य देवताओं और नियति के हाथ का खिलौना है—उनकी दुर्दम्य शक्ति उनसे खिलवाड़ करती है। होमर के सभी पात्रों का जीवन प्रारब्ध-सूत्र में बंधा है—वह जैसा चाहता है, उन्हें बनाता और बिगाड़ता है। वर्जिल भी जीवन की परवश-परिस्थिति को सिर झुकाकर स्वीकार करता है, और दांते तो संघर्षों के आघात से इतना आहत है कि उसका समस्त काव्य निराश-वेदना और व्यथित आहों से ओतप्रोत है। 'रामायण' और 'महाभारत' में मानव-जीवन के विभिन्न आदर्शों, भावनाओं, अभावों, पूर्तियों एवं संख्यातीत विविधताओं का चित्रांकण करके जीवन में सत्य की खोज का प्रयास किया गया है। मनुष्य नियति से बंधा हुआ भी कर्म की अवहेलना नहीं कर सकता। उसे कार्य करते हुए निर्भीकतापूर्वक जीवन-पथ पर अग्रसर होना है और कठिनाइयों व परेशानियों में भी अविचलित रह कर सच्चे पुरुषार्थ का पोषण करते रहना है। हमारे यहां जीवन पर्यन्त सचेष्ट एवं गतिशील रहते हुए भी संसार के अनन्त आवर्त्तों के आकर्षण से पृथक् रहने का आदेश दिया गया है। कर्मण्यता के साथ-साथ त्याग एवं धर्मतत्त्व की सूक्ष्म व्याख्या भी मिलती है। जिस प्रकार पाश्चात्य काव्यों में सौंदर्य एवं कला का अभूतपूर्व सामंजस्य है, उसी प्रकार पौरस्त्य काव्यों में कर्म और वैराग्य का। वहां कला की सत्ता पर जोर दिया गया है, यहां जीवन के उदात्त लक्ष्य पर। वहां की प्रवृत्ति बहुरूपी और बहुर्मुखी है, यहां की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी और एकरस। वहां अभिव्यक्ति एवं कल्पना का वैचित्र्य दीख पड़ता है, यहां सूक्ष्म पर्यवेक्षण का वैशिष्य देखने को मिलता है। वहां के काव्यों में भाव-पक्ष की प्रधानता है, यहां के काव्यों में बुद्धि-पक्ष का चित्रण है, किन्तु इन थोड़ी-सी विरोधी बातों के होते हुए भी उनमें मूलतः मानव-मनोवृत्तियों का ही आख्यान है और दर्शन, मनोविज्ञान, तत्त्वज्ञान, सौंदर्य एवं कला का सुन्दर समाहार मिलता है।

चरित्र-चित्रण

भारत के कवियों ने अपनी काव्य कृतियों में धार्मिक भावना को ही अधिक प्राधान्य दिया है। आदर्श और महत् चरित्र ही उनके प्रतिपाद्य विषय रहे। रामायण में राम और सीता की ही प्रधान रूप से कथा है, अन्य पात्र तो कथा को विशद करने के लिए हैं। राम मर्यादा पुरुषोत्तम अत्यन्त बलशाली, तेजस्वी और दैवी गुणों से सम्पन्न हैं। सीता जी आद्या शक्ति श्री स्वरूपा हैं:—

जगाम सीता निलयं महायशाः
स राघवः प्रज्ज्वालितः श्रिया ।

इस के अतिरिक्त लक्ष्मण, भरत, विश्वामित्र,दशरथ, जनक, रावण, मेघनाद आदि सभी पात्र अलौकिक शक्ति सम्पन्न हैं । 'महाभारत' में अर्जुन आदि पांडवों और भगवान् श्री कृष्ण के चरित्रों की अवतारणा भी धार्मिक दृष्टिकोण से ही हुई है तथा साधारण मनुष्य की पहुंच के परे है ।

अनादि मध्यान्तमनन्त वीर्य-
मनन्तवाहुं शशि सूर्य नेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं–
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ।।

किंतु होमर ने अदृष्ट एवं दैवी शक्ति से अलग मानव चरित्र के सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा कमाल कर दिखाया है । एकलीज़, यूलीसेस, हेलेन, पेनीलोप के चरित्र चित्रण अत्युत्कृष्ट और व्यापक अनुभूति से ओत-प्रोत हैं । उनमें गुण दोष दोनों का समन्वय है । एकलीज बहादुर, सत्यवादी, निर्भीक और उदार हृदय होते हुए भी क्रोधी और क्रूर है । यूलीसेस योद्धा, परिश्रमी, कष्ट-सहिष्णु, और पत्नी भक्त होता हुआ भी एक स्त्री के समक्ष कमजोर और बुज़दिल है । हेलेन सौंदर्य की साक्षात् प्रतिमा और पार्थिव गुणों से युक्त है किंतु उसमें सीता का तेज और द्रौपदी की क्रियाशक्ति कहां है । पेनीलोप पतिव्रता, सुन्दरी, सुशीला और व्युत्पन्न मति की है, अपने पुत्र और पति में आसक्त है, किंतु उसमें वह शक्ति और सामर्थ्य कहां, जो दुष्टों को जला कर एक क्षण में भस्म कर दे । होमर जीवन-द्रष्टा है, उसकी कल्पना शक्ति विलक्षण और दृष्टि पैनी है । भिन्न भिन्न चरित्रों की अवतारणा और सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा उसने अपने काव्य में नाटकीय तत्त्वों का समावेश किया है ।

इसके विपरीत वर्जिल का चरित्र-चित्रण साधारण कोटि का है । उसमें यथार्थता और विश्लेषण शक्ति का उतना विकास नहीं हो पाया जो होमर में हमें मिलता है--तो भी डीडो के चरित्र-चित्रण में उसे पर्याप्त सफलता मिली है ।

दांते के चरित्रों में रंजनकारिणी चित्रमयी कल्पना, व्यंजक चित्रों का बड़ा ही अनूठा विन्यास और भावनाओं की अत्यन्त सुकुमार योजना मिलती है । सूक्ष्म मनोविज्ञान और दार्शनिकता की छाया में सौंदर्य और प्रेम वेदना की विलक्षणता

का आभास भी मिलता है। कोई कोई चरित्र तो इतने ऊपर उठ गए हैं कि होमर को भी शिकस्त खानी पड़ती है।

कलात्मक धरातल

उदात्त भावना, विचार गांभीर्य, वर्णन की विशदता और प्रबन्ध-पटुता में पांचों महाकाव्य बेजोड़ हैं। भाषा प्रसंगानुकूल, ओजस्वी और प्रसाद गुण सम्पन्न है, रसों के अनुकूल कोमल कठोर पदों की योजना और अलंकारों का भी समुचित प्रयोग हुआ है। भाषा मानों इन महाकवियों के हृदय के साथ जुड़ कर ऐसी वशवर्तिनी हो गई थी कि वे अपनी अनूठी भाव-व्यंजना के साथ जैसा चाहें इच्छानुसार उसे मोड़ तोड़ सकते थे। होमर की उपमाएं अत्यन्त सरल एवं स्वभाविक हैं, सौंदर्य वृद्धि के लिए उन्हें जबर्दस्ती ठूंस-ठूंस कर नहीं भरा गया है। प्रत्युत किसी वस्तु को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए ही उनका उपयोग हुआ है। उपमानों का चयन भी मानव जीवन की प्रतिदिन की उपयोग में आने वाली चीजों से हुआ है। कवि पोप एक स्थल पर लिखते हैं, "होमर ने कभी परिस्थितियों से खिलवाड़ नहीं किया।" निःसंदेह उसकी उपमाएं रत्नों की भांति जड़ी हुई काव्य के सौंदर्य की अभिवृद्धि करती हैं।

फर्श पर झाड़ू की चोट से उठी हुई गर्द की उपमा होमर ने सूप से फटकते हुए धान की उड़ती हुई चोकर से की है। युद्ध के मैदान में शत्रुओं द्वारा त्रस्त एजाक्स की तुलना खेत में घुसे हुए उस गधे से की है, जो व्यर्थ ही बच्चों द्वारा पीटा और सताया जाता है। इसी प्रकार उड़ती और शोर मचाती चिड़ियों की हवा से हिलते हुए सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट से, भिनभिनाती मक्खियों की एसेम्बली से उठती हुई भीड़ की ध्वनि से, एकलीज़ द्वारा डांटे हुए पेट्रोक्लस की तुलना उस रोती हुई बालिका से की है, जो भाग कर अपनी मां के पैरों से चिपट जाती है और तब तक चुप नहीं होती जब तक कि उसे उठा कर पुचकारा नहीं जाता।

होमर की उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का अनुकरण वर्जिल और मिल्टन ने भी अपने महाकाव्यों में किया। कहते हैं कि होमर अन्धा था। अनन्त काल क्षेत्र में दिव्य-चिरन्तन शक्तियों के प्रति कौन अन्धा नहीं है? जो अर्न्तदृष्टि से प्रभु की विभूतियों का दर्शन करता है और अपनी सूक्ष्म अनुभूति शक्ति से पार्थिव व अपार्थिव वस्तुओं के मर्म में पैठ जाता है, वही वास्तव में सच्चा नेत्रवान है।

वर्जिल और दांते की उपमा-उत्प्रेक्षाओं में वह चमत्कार, वैलक्षण्य और भाव-गांभीर्य नहीं जो होमर में है—वे उसकी जूठी-सी जान पड़ती हैं—ऐसा प्रतीत होता है मानो हम किसी शैल-शृंग पर चढ़कर नीचे उतर रहे हों। होमर का काव्य वह उच्च शिखर है जहां से इन महाकवियों तक आने में निम्नस्तर को स्पर्श करना पड़ता है, किन्तु यह सब होते हुए भी उनकी विशेषता है कि उनकी भाषा और भाव उस काल के पूर्ण अनुगामी हैं। उनकी लेखनी विश्व के अशेष मानवों के सनातन हृदयावेगों, भावनाओं, सुख-दुःखों, और जीवन-तथ्यों को अनायास ही प्रकट कर देने की सामर्थ्य रखती है और पाठक को ऐसा भान होता है, मानो वह अपनी ही अन्तरात्मा का इतिहास और जीवन की कहानी पढ़ रहा हो।

बाल्मीकि प्रकृति के अनन्य उपासक हैं, उन्होंने प्राकृतिक-उपादानों में रमकर सच्ची आत्माभिव्यक्ति की है और प्रकृति के ऐसे ऐसे अदृष्ट स्थलों एवं कमनीय क्रीड़ा-क्षेत्रों में अपनी दृष्टि पहुंचाई है जहां गुप्त से गुप्त रहस्य आनन्दमयी आभा से जगमगा उठे हैं।

ग्रामिश्रितं सर्जकदम्ब पुष्पैर्नवं जलं पर्वत धातुताम्रम् ।
मयूर केकाभिरनु प्रयातं शैलापगाः शीघ्रतरं बहन्ति ।।
रसाकुलं षट्पदसन्निकाशं प्रभुज्यते जम्बुफलं प्रकामम् ।
अनेक वर्णं पवनावधूतं भूमौ पतत्याम्रफलं विपक्वम् ।।
मुक्तासकाशं सलिलं पतद्वै सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम् ।
हृष्टा विवर्णच्छदना विहंगाः सुरेन्द्र दत्तं तृषिताः पिबन्ति ।।

अर्थात्—सर्ज और कदम्ब पुष्पों से अनुरंजित, नव जल से परिपूरित तथा पर्वत-शिलाओं (गेरू) के संयोग से रक्तवर्ण होकर शैल-सरणियां कैसे बेग से बही जा रही हैं, जिनकी ध्वनि का अनुगमन करते हुए मयूर बोल रहे हैं। काले-काले जामुन, जिनका आस्वादन लोग कर रहे हैं, रस से भरे भौरों के सदृश प्रतीत होते हैं। अनेक रंग के पके हुए आम पवन के बेग से पृथ्वी पर गिर रहे हैं। प्यासे पक्षी, जिनके पंख जल से भीग जाने के कारण अस्त-व्यस्त हो गये हैं—इन्द्र का दिया हुआ मोती के समान स्वच्छ जल आनन्द-मग्न हो पी रहे हैं।

समस्त मानव-जीवन के प्रवर्त्तक भाव मानों प्रकृति में ही कवि के लिए संश्लिष्ट हो गये हैं। उनमें चित्रण की ऐसी प्रतिभा थी कि वे पाठकों के सम्मुख

शब्दचित्र द्वारा वस्तु-चित्र की वास्तविकता उपस्थित कर देते थे। चित्ताकर्षक दृश्यों की नैसर्गिक सुषमा में रमने की उनकी कितनी तीव्र प्रवृत्ति थी--यह निम्न-लिखित हेमन्त-वर्णन से ज्ञात होता है।

अवश्याय निपातेन किंचित्प्रक्लिन्न शाद्वला ।
बनानां शोभते भूमिर्निविष्ट तरुणातपा ।।
स्पृशंस्तु विपुलं शीत मुदकं द्विरदः सुखम् ।
अत्यन्त तृषितो वन्यः प्रतिसंहरते करम् ।।
अवश्याय तमोनद्धा नीहार तमसावृताः ।
प्रसुता इव लक्ष्यन्ते विपुष्पा. वनराजयः ।।
वाष्प संछन्न सलिला रुत विज्ञेय सारसाः।
हिमार्द्र बालुकै स्तीरैः सरितां भान्ति साम्प्रतम् ।।
जरा जर्जरितैः पद्मैः शीर्ण केसर कर्णिकैः ।
नालशेषैर्हिम ध्वस्तैर्ण भान्ति कमला कराः ।।

अर्थात्--अरण्य-पथ की हरी-हरी घास, जो पाला पड़ने से आर्द्र और मुरझाई-सी हो गई है, सूर्य की नव-रश्मियों से कैसी चमक रही है। अत्यन्त प्यासा हाथी ठंडे जल के स्पर्श से अपनी ठिठुरी सूंड को सिकोड़ता है। कुहासे की अधिकता के कारण बन पुष्प-विहीन और अन्धकार में सोया हुआ-सा ज्ञात होता है। नदी, जिसका जल कुहरे से आछन्न है और जिसके सारस-पक्षी भी अपनी बोली के कारण ही सुने जाते हैं--पाले से ढके बालू के तटों से ही पहिचान में आती है। हिम-पात से जर्जरित कमल, जिनकी केसर-कर्णिकाएं टूट-फूट कर बिखर गई हैं, पाले से मारे जाने के कारण उनकी केवल डंठल-मात्र ही अवशिष्ट है।

बाल्मीकि की दृष्टि अपनी उपमा-उत्प्रेक्षाओं के चयन के लिए प्रकृति के विस्तृत क्रीड़ागार में अठखेलियां करती है तो संसार से विरक्त वेद व्यास प्रकृति की जड़ वस्तुओं में संवेदनात्मक अनुभूति का आभास पाते हैं। उनकी उपमाएं निरंकुश, प्रचण्ड और महत्व-व्यंजक हैं।

बाल्मीकि, व्यास, होमर और वर्जिल प्राचीन युग के कवि है, दांते मध्ययुग का, किन्तु किसी भी सत्काव्य की मर्यादा उसकी प्राचीनता तक ही सीमित नहीं है और न नवीन होने से उसका महत्व ही घटता है। कभी कभी किस प्रकार देश और काल की सीमा का अतिक्रमण कर सैकड़ों-हजारों मील और जल-थल

को पार करके महाकवियों की कल्पना परस्पर आ टकराती है—यह कौतूहल का विजय है। बाल्मीकि रामायण में सीता जी का सौन्दर्य अचिन्त्य है; महाभारत में द्रौपदी की सुषमा और सौकुमार्य भी अत्यन्त कौशल से वर्णित किया गया है; होमर के काव्य 'इलियड' में हेलेन अत्यधिक सुन्दरी और चिर-यौवना बतलाई गई है—वह जब दीख पड़ती है तो स्वर्ग की अप्सराएं भी लज्जित हो जाती हैं। वर्जिल और दांते ने भी अपनी अपनी नायिकाओं को परम सुन्दरी चित्रित किया है। लगता है मानों पांचों महाकवि दिव्य-सौन्दर्य और प्रेमोन्माद के रस में सरावोर मूक खड़े हैं। निःसन्देह, लंकापुरी में अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हुई विरहिणी, पतिप्राणा सीता के अश्रु; बीहड़, उजाड़ बनों में भटकती और पति का अनुगमन करती हुई साध्वी द्रौपदी की करुण आहें और ट्राय के महलों में तड़पती हुई सुन्दरी हेलेन के आंखों के आंसू और उच्छ्वासों में कोई भी अन्तर नहीं है।

रूसी आलोचक की यह उक्ति कितनी सत्य है:—

"सत्कवि अतीत का गौरव-गायक, वर्त्तमान का चित्रकार और भविष्य का सूक्ष्म द्रष्टा होता है।"

—०—

कालिदास और शेक्सपीयर

कालिदास
(ईसवी सन् के दो शताब्दी पूर्व)

★
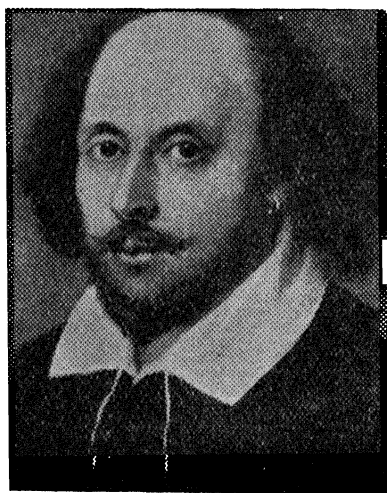
शेक्सपीयर
(जन्म—२३ अप्रेल, १५६४
मृत्यु—२३ अप्रेल, १६१६)

मानव-हृदय सभी देशों में एक-सा है।

अन्दर की वस्तु को बाहर की, भाव की वस्तु को भाषा की, निज की वस्तु को विश्व की और क्षणिक वस्तु को चिरस्थायी बना देने की आकांक्षा मानव-स्वभाव है।

देह और मन के महासन पर सृष्टि के आदिकाल से सुप्रतिष्ठित होकर बैठे हुये अन्तर के अनिर्वचनीय चिन्तन-स्रोत को, मानव के चिर-प्रसुप्त भाव-पटलों को युग-युग और देश-देश में महाकवियों की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा ने नव-नवीन शब्द-देह अर्पित किया है। अनेक युग बीत गये, विश्व के विस्तृत प्रांगण में प्राणि-मात्र के हित-साधन में जो अनन्त भाव-निर्झरिणी प्रवाहित हुई-उसका रस पान कर सभी ने कृतकृत्यता मानी और आज भी प्रेम, आनन्द और ज्ञान के सीमाहीन समुद्र में उनकी अयाह भाव-राशि को हम झांक कर देख लेने का विफल प्रयास किया करते हैं।

कालिदास और शेक्सपीयर विश्व-साहित्याकाश के सूर्य और चन्द्र हैं, जिनकी एकनिष्ठ साधना और लोकोत्तर-प्रतिभा ने उन्हें उस उत्तुंग-शृंग पर प्रतिष्ठित किया है कि जहां से उनकी अमर कृतियों का आलोक युगयुगान्तर तक विश्व-साहित्य को आलोकित करता रहेगा। निःसंदेह, वे सच्चे कवि हैं—समस्त भूमंडल के महाकवि।

यद्यपि इन दोनों के सम्बन्ध में अभी तक अधिक ज्ञात नहीं, तथापि इतना तो निर्विवाद है कि उनका अधिकांश जीवन ग़रीबी, अपमान और संघर्षों में बीता, मानों सांसारिक-थपेड़ों का आघात सहते सहते उनका चित्त जीवन की एकरसता से ऊब गया था और इन विषम परिस्थितियों में भी उन्होंने आनन्द की सृष्टि करने का निश्चय कर लिया था। गेटे के शब्दों में "अतृप्ति ही ज्ञानकी जननी है। नियति मनुष्य को पार्थिव सुख-सम्पद् से संतुष्ट रखना चाहती है, किन्तु जो प्रकृत मनुष्य हैं वे उससे तृप्त न होकर सदा उन्नततर एवं उज्ज्वलतर वस्तु पाने के लिये चेष्टा करते रहते हैं। बहुत कुछ प्राप्त कर लेने पर भी जिस अभाव का अनुभव हम लोगों को पीड़ित करता है उसकी सहायता से ही वे एक दिन सुन्दरतम का साक्षात् प्राप्त

करते हैं।" कहना न होगा कि इन दोनों कला-कोविदों की उदात्त उद्भावनाओं एवं सौन्दर्य-पिपासु दृष्टि ने उनकी अमर कृतियों को जीवन और प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रों से सुसज्जित कर दिया है तथा दिक्दिगन्त तक प्रोद्भासित कर देने वाली उनकी विलक्षण प्रतिभा और विशाल व्यक्तित्व ने समस्त दिशाकाश के अणु-परमाणुओं तक को महान् बना दिया है।

बर्नाडशा ने एक स्थल पर लिखा है "कलात्मक शैली की प्रभविष्णुता सुन्दर अभिव्यक्ति में है।" कालिदास और शेक्सपीयर दोनों की विशेषता है कि उनके नाटक जीवन-चित्रों की सूक्ष्म विविधताओं से ओतप्रोत, अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन कराने वाले और सत्साहित्य के आदर्श तत्वों से परिपूर्ण हैं। उनके भीतर कवि एवं कलाकार अपनी साधना के समग्र समारोह के साथ विराजमान् है और दार्शनिक चिन्तन, गहन अनुभूति एवं अद्भुत व्यक्त शक्ति के साथ साथ कोमल भावनाओं का उच्छृंखल आवेग इतनी भव्यता के साथ अनुस्यूत हो रहा है कि साहित्य-पारखी आश्चर्य भरी मुद्रा से आवाक् देखता रह जाता है। शताब्दियों की लम्बी खाई को लांघकर आज भी कालिदास और शेक्सपीयर की तरुण-तरुणियां उसी भांति प्रेम की आग में जल रही हैं, उत्फुल्ल हो रही हैं और अश्रुओं में मुस्करा रही हैं। हेम्लेट का पितृ-प्रेम, ओफीलिया की अन्तर्व्यथा, एण्टोनी और क्लोपेट्रा की कामान्धता, वृद्ध लीयर की दयनीय मनः स्थिति, मेकबेथ की कृतघ्नता, रोमियो-जूलियट की दुःखांत प्रेम-कथा, सिलिया व रोज़लिण्ड का प्रेमोन्माद, हेरमिओन का पति-प्रेम और मिरेण्डा का सारल्य आदि शेक्सपीयर के नाटकों के अगणित पात्रों का दुःख-सुख, हर्ष-विषाद हमारे स्मृति-पटल पर अंकित-सा प्रतीत होता है, जिसे हम जीवन पर्यन्त भुला सकने में असमर्थ हैं। इसी प्रकार कालिदास की सरल , भोली, तपोवन-पालिता सुकुमारी शकुन्तला, राजोचित गुणों से युक्त दुष्यन्त, शकुन्तला की हंसती, इठलाती, यौवन से मदमाती सखियां, 'मेघदूत' में प्रियतमा की विरह-व्यथा से पीड़ित यक्ष, 'मालविकाग्निमित्र' में मालविका की उपासना में निरत अग्निमित्र, 'विक्रमोर्वशीय' में उर्वशी के वियोग में विलाप करते हुये पुरुरवा 'रघुवंश' में इन्दुमती के प्रेम में उन्मत अज, 'कुमार संभव' में अपने स्वामी कामदेव की विरह-ज्वाला में झुलसती रति, आदर्श शासक दिलीप, शिव, मेना, पार्वती, कार्त्तिकेय आदि सभी हमारे नेत्रों के समक्ष बिल्कुल सजीव-से चलते-फिरते दिखाई देते हैं।

इन दोनों महाकवियों को मनोवैज्ञानिक अवस्था का कितना सूक्ष्म और गहरा अध्ययन था—वह उनकी रचनाओं को पढ़ने से तत्क्षण ज्ञात हो जाता है। मानव-स्वभाव के पारखी होने के साथ ही साथ वे जीवन की अनेकरूपता के भी सूक्ष्म-द्रष्टा थे और असुन्दर में भी अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण सौन्दर्य एवं सौकुमार्य की कल्पना करते थे। प्रकृति की साधारण से साधारण वस्तु भी उन्हें अत्यन्त रहस्यमयी और अर्थपूर्ण दृष्टिगत होती थी, प्रत्युत् उनकी दृष्टि ही ऐसी थी जो वाह्य आवरण पर न अटक वस्तु के अंतराल को भेदने का प्रयास करती थी। प्रकृति के विविध उपादानों एवं प्रसाधनों पर दोनों मुग्ध थे और उसकी विचित्रता और विविधता में उन्हें असाधारणत्व की प्रतीति और अन्तर्चेतना का आभास मिलता था। कालिदास का सम्पूर्ण साहित्य तो एक तरह से प्रकृति का अमर चित्र-कल्प ही है। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में शकुन्तला का मादक सौन्दर्य एवं रूप-लावण्य उस समय प्रस्फुटित होता है जबकि वह आश्रम के छोटे छोटे वृक्षों, पौधों और लताओं को सींच रही है।

अधरः किसलय रागः कोमल विटपानु कारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमंगेषु संनद्धम्॥

अर्थात्—इसके ओष्ठ कोमल किसलयों की भांति लाल हैं, सुन्दर बाहें कोमल शाखा सी प्रतीत होती हैं और अंग-प्रत्यंगों में उमड़ता तारुण्य पुष्पवत् आकर्षक और उपभोग्य है।

तपोवन में प्रवेश करते ही सम्राट् दुष्यन्त प्रकृति की रम्य-चारुता पर मुग्ध हो उठते हैं और उनका चित्त प्राकृतिक उपादानों के सौन्दर्यान्वेषण में विभोर हो जाता है।

नीवाराः शुक गर्भ कोटर मुख भ्रष्टास्तरूणामधः.
प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्- गुदी फल भिदः सूच्यन्त एवोपलाः।
विश्वासोपगमादभिन्न गतयः शब्दं सहन्ते मृगा—
स्तोयाधार पथाश्च वल्कलशिखा निष्यन्दरेखांकिता॥

अर्थात्—तोतों की चोंच से कुतरी हुई उनके कोटरों से गिरकर श्यामक की बाल वृक्षों के नीचे पड़ी है; यत्र-तत्र इगुंदी-फल पीसने की चिकनी शिलायें रक्खी हैं, मृग मनुष्यों से ऐसे परच गये हैं कि हमारी आहट से भी नहीं चौंकते, नदी से

पगडंडियों तक भीगे वल्कल-वस्त्रों से पानी की बूंदें टपक टपक कर गिरने से कैसी रेखायें बन गई हैं।

शकुन्तला को पतिगृह के लिये विदा करते हुये न केवल महर्षि कण्व, सखियां और आश्रमवासी ही विकल हैं, वरन् सारी प्रकृति ही विषण्ण और आंसू बहाती-सी प्रतीत होती है। स्थावर-जंगम सभी स्नेह-कातर हैं :—

उद्गलित दर्भ कवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुच्चन्त्य श्रूणीव लताः॥

अर्थात्—हिरण शोक में चरना छोड़कर घास को मुंह से उगल उगल रहे हैं, मोरों ने नाचना छोड़ दिया है और लता पीले पीले पत्ते गिराकर मानों आंसू बहा रही है।

'विक्रमोर्वशीय' में पुरुरवा अपनी प्रियतमा उर्वशी की खोज में पागल-सा घूम रहा है। वर्षाकालीन मेघ नभ में छाए हैं, चारों ओर बिजली कौंध रही है, हवा जोरों से बह रही है पक्षी बोल रहे हैं, जो पुरुरवा के व्यथित हृदय को और भी संतप्त बना रहे हैं :—

विद्युल्लेखा कनक रुचिरं श्रीवितानं ममाभ्रम्,
व्याधूयन्ते निचुल तरुभिर्मंजरी चामराणि।
धर्मच्छेदात् पटुतर गिरो बन्दिनो नीलकंठाः,
धारा हारोपनयनपरा नैनमाः सानुमन्तः॥

अर्थात्—विद्युत् रूपी स्वर्ण रेखाओं से मण्डित यह मेघ मेरे सिर पर राज-छत्र सा छाया है। सुगन्धित मंजरियों से लदे निचुल वृक्ष हिलते हुये चंवर डुलाते से प्रतीत होते हैं। गर्मी का ताप कम होने के कारण मधुर स्वर में बोलने वाले मयूर मागधों और चारणों की होड़ कर रहे हैं और जल प्रपातों से झरती हुई बूदों के मुक्ताहार को भेंट करती हुई पहाड़ियां प्रजा की भांति मेरा अभिनन्दन करती-सी ज्ञात होती हैं।

इसी प्रकार 'रघुवंश, 'कुमार संभव', 'मालविकाग्निमित्र' आदि ग्रन्थों में इस महाकवि की प्रकृति के साथ तादात्म्य-भावना परिलक्षित होती है और उनकी कल्पना प्राकृतिक-सौन्दर्य से परिप्लावित हो छलकती हुई उमड़ पड़ती है। शेक्सपीयर के नाटकों में कालिदास के नाटकों की भांति प्रकृति के उतने सुन्दर, सम्मोहक

चित्र तो न मिलेंगे, तथापि मानव के सुख, दुःख, हर्ष, विषाद, प्रेम, घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, क्षोभ आदि मनोविकारों का कहीं कहीं प्राकृतिक-उपादानों पर बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रभाव व्यक्त किया गया है। 'किंग लीयर' (King lear) में वृद्ध लीयर का जब उसकी पुत्रियों द्वारा अत्यधिक अपमान होता है और वह अपनी असहाय, असमर्थ, जर्जरावस्था में भीषण तूफान, आंधी, मेंह, कड़कती बिजली में घर से बाहर निकाल दिया जाता है तो उसके मस्तिष्क में भी विचारों का कम तूफान नहीं उठता। उसके हृदय में भी भयंकर उथल-पुथल है, कसक है, पीड़ा है, अन्तर्द्वन्द्व मचा है। बाहरी तूफान और उसके अन्तर में उठते हुये विचारों के तूफान में आश्चर्यजनक सादृश्य है। लीयर क्रोधावेश में प्रकृति की भीषण उग्रता का सामना करता हुआ टकराता, भागता, लड़खड़ाता, संघर्ष करता, सिर के बाल नोचता-विक्षिप्त-सा-भागा जा रहा है। उसे तूफान से किंचित् भी भय नहीं है, घबराहट और परेशानी भी नहीं-मानों जीवन की मोहासक्ति से वह उपराम हो चुका है। वह तूफान और आंधी को सम्बोधन करता हुआ कहता है :—

"हवाओ! बहो, खूब जोरों से बहो। अपनी उग्रता से सारी पृथ्वी को समुद्र में बोड़ दो अथवा समुद्र की लहरों को पृथ्वी पर फैला दो। झरनों और जल-प्रपातों! खूब जोरों से धड़ाधड़ गिरकर सारे नगरों, महलों, गिर्जाघरों, ऊंचे मकानों को ध्वस्त कर दो। ओ कड़कड़ाती, चमचमाती बिजली! अपने पूरे वेग से नीचे उतर कर मेरे सफेद बालों को जला डाल, सृष्टि के असंख्य पदार्थों को भस्मसात् कर दे और उन तत्वों को नष्ट भ्रष्ट कर दे, जो कृतघ्न व्यक्तियों का निर्माण करते हैं।"

निम्नलिखित पंक्तियों में वृद्ध लीयर की अन्तर्व्यथा, वेदना, मस्तिष्क की आंधी कितनी प्रबल हो उठी है! कितनी भीषण! और साथ ही कितनी असह्य व दयनीय :—

"मेघो! खूब पेट भर कर बरसो, बिजली चमकाओ, शोले फेंको। वर्षा, वायु, बिजली और अग्नि-तुम मेरी पुत्रियां नहीं हो, जो मैं तुम्हारी शिकायत करूंगा, तुम्हारी निर्दयता, कठोरता का उलाहना दूंगा। मैंने तुम्हें अपना राज्य नहीं सौंपा, पुत्र-पुत्री कहकर नहीं पुकारा, तुम मेरे प्रति कृतज्ञ नहीं हो, अतएव अपनी दुर्दम्य इच्छाओं को पूर्ण करो। मैं निर्धन, क्षीण, दुर्बल, दरिद्र और सभी से परित्यक्त बूढ़ा तुम्हारी सेवा में सिर झुकाए खड़ा हूं। मुझे अपने कठोर आघातों से कुचल डालो, चकनाचूर कर दो; किन्तु हां-इतना तो कहूंगा कि तुम भी मेरी दुष्ट, नीच,

कृतघ्न लड़कियों का साथ दे रहे हो, उनके दुष्कृत्यों को सम्पन्न कराने में सहायक बन रहे हो—ओह ! यह सब कितना अनुचित है ! मेरे सफेद सिर पर तो कुछ दया करो ।"

'एज़ यू लाइक इट' (As you like it) में आर्डन के बन्य-प्रदेश का उल्लासमय वातावरण वहां के उपस्थित व्यक्तियों के मन को प्रभावित करता है और उनके मनोवेगों को उभाड़ता और उत्तेजना प्रदान करता है। 'हेम्लेट' (Hamlet) में ओफीलिया की विक्षिप्तावस्था के साथ साथ नदी, झरने, जल और आसपास का समस्त प्राकृतिक-वातावरण भी क्षुब्ध और अस्तव्यस्त दिखाई देता है । कहने की आवश्यकता नहीं कि इन दोनों महाकवियों में प्रकृति के वाह्य-उपकरणों में जीवन की अनुकृति के आभास पाने की प्रतिभा निसर्ग सिद्ध थी और साधारण से साधारण तुच्छ से तुच्छ, मनुष्यों के रात दिन के उपयोग में आने वाले पदार्थों के मर्म में पैठकर वे जीवन के रहस्यमय सत्य का अन्वेषण किया करते थे । दृश्य-जगत् के रूपात्मक सौंदर्य में उन्हें चरम-सत्य का साक्षात्कार होता था और प्रकृतिजन्य लोकोत्तर-सुख एवं आनन्द-रस में निमज्जित हो उनकी कल्पना ने जो विमल काव्य-धारायें बहांई-उनसे आज भी जो चाहे अपना कलश भर कर ले जा सकता है ।

'उपमा कालिदासस्य' यह सूक्ति प्रसिद्ध है । प्रकृति के अंचल से सौन्दर्य और कल्पना के अनेकों कमनीय कुसुम चुनकर कालिदास ने अपने काव्य-ग्रन्थों को सजाया है और उपयुक्त अलंकारों को ऐसे कौशल से श्लोकों में संश्लिष्ट कर दिया है कि वे अपनी चमकती आभा से पाठक को चकाचौंध से करते प्रतीत होते हैं । रसों में प्रायः उन्होंने शृंगार-रस को प्रमुखता दी है । सैंकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी जो आज संस्कृत-कवियों में कालिदास की महत्ता सर्वाधिक है उसका विशेष कारण है उनका भाव-सारल्य और भाषा का माधुर्य । काव्य की सरसता, शब्दों का माधुर्य, अपूर्व प्रसाद, प्रेम और शृंगार, अनुपम उपमायें, करुणा की अटूट धारा, अलंकारों की छटा, रचना-कौशल एवं भाव-वैचित्र्य आदि कवित्व के समस्त गुणों के साथ साथ उनकी रचनाओं में जो एक अन्य विशेषता पाई जाती है वह है उनकी उपमाओं की सजीवता । निःसंदेह, कालिदास, उपमा के आगार थे ।

अनाघ्रातं पुष्पं किसलय मलूनं कर रु हैः
अनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च ....

अर्थात्—"शकुन्तला उस पुष्प की भांति है, जो कभी सूंघा नहीं गया, उस कोमल किसलय के सदृश है, जो कर-स्पर्श से मलिन नहीं बनाया गया, अनबेंधे रत्न की भांति, न चक्खे हुये नवीन मधु की तरह और पुण्यों के अखण्ड फल के सदृश—।"

कालिदास की उपमायें इतनी व्यंजक, रस छलकाती और स्वतः स्फूर्त्त हैं कि पढ़ने वाले को ऐसा भान होता है मानों वे उनकी कल्पना से उत्पन्न न होकर अनायास ही किसी अज्ञात-लोक से आ गई हैं और स्वतः उन्होंने काव्य-ग्रन्थों में अपना स्थान बना लिया है। शेक्सपीयर की उपमाओं में कालिदास की उपमाओं की वह ताज़गी, यथार्थता, और नूतनता कहां—तथापि कहीं कहीं—उनके नाटकों में भाव-व्यंजना बहुत सुन्दर और अनूठी हुई है। 'किंग लीयर' में लीयर अपनी ज्येष्ठ पुत्री गोनरिल के दुर्व्यवहार पर आश्चर्य प्रकट करता हुआ कहता है, "तू मुझसे उत्पन्न पुत्री नहीं, वरन् मेरे रक्त की विकृति है, व्याधि है, फोड़ा है, सड़ा और दुर्गन्धित घाव है, पीव भरा जख्म-जो मेरे मांस में उत्पन्न हो गया है।"

क्षण भंगुर जीवन की निरर्थकता की उपमा देते हुए शेक्सपीयर ने लिखा है:—"जीवन चलती छाया है, उस बेचारे ग़रीब अभिनेता की भांति, जो कुछ घण्टे रंगमंच पर अपनी तड़क-भड़क दिखाकर विस्मृति के गर्त्त में समा जाता है, उस मूर्ख पागल की व्यर्थ बकवास है, जिसमें न कोई सार है न तत्त्व।"

शेक्सपीयर के 'टेम्पेस्ट' (Tempest) और कालिदास के 'शकुन्तला' नाटक में बहुत कुछ सादृश्य है। जिस प्रकार अप्सरा मेनका और राजा की पुत्री होते हुए भी शकुन्तला का नागरिक जीवन से दूर तपोवन में लालन-पालन होता है, उसी प्रकार मिरेण्डा भी राजकुमारी होकर अपने निर्वासित पिता के साथ एक निर्जन, एकांत द्वीप में निवास करती है। दोनों ही परम पवित्र, भोली, सरल बालिका हैं, छल-कपट से दूर, सांसारिक बातों से अनभिज्ञ। शकुन्तला राजा दुष्यन्त को देखते ही उसके अटूट प्रेम-पाश में बंध जाती है, "किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवन विरोधिनो विकारस्य गमनीयाऽस्मि संवृत्ता !" अर्थात्—इस पुरुष को देख क्यों मेरे मन में तपोवन-विरोधी बातें उत्पन्न हो रही हैं।

मिरेण्डा भी राजकुमार फर्डिनेण्ड के रूप-गुण और पुरुषोचित्त सौन्दर्य पर तत्क्षण मुग्ध हो जाती है, "ओह ! यह कैसा दिव्य रूप है--ऐसा सौन्दर्य तो मैंने कभी नहीं देखा।"

शकुन्तला और मिरेण्डा, दुष्यन्त और फर्डिनेण्ड की प्रेम-पद्धति में भी बहुत कुछ समानता है। यौवन के उद्दाम ज्वार में प्रथम दृष्टि-विनिमय में ही चारों के हृदय में पवित्र प्रेम की गंगा प्रवाहित होने लगती है और उस दिव्य रस-प्रवाह में उनका अणु अणु परिप्लावित हो उठता है। दुष्यन्त और फर्डिनेण्ड दोनों ही रनवास की चपल सुन्दरियों से इन भोली, निष्कपट बालिकाओं को अधिक पसन्द करते है और उनसे गान्धर्व-विवाह कर लेते है, किन्तु कहीं-कहीं मिरेण्डा की सरलता और शकुन्तला का रोमांस औचित्य की सीमा का उल्लंघन कर गया है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से कालिदास और शेक्सपीयर के नाटकों को कसौटी पर कसने पर और भी उनकी उपादेयता सिद्ध होती है। दोनों ने ऐतिहासिक कथावस्तु की अपेक्षाकृत उत्कृष्ट एवं संग्रहणीय बना दिया है। कालिदास ने दुष्यन्त के प्रसंग में अंगूठी का आख्यान डाल कर अपने नाटक में जान फूक दी है और राजा दुष्यन्त को भी विश्वासघात के दोष से विनिर्मुक्त कर दिया है। इसी प्रकार शेक्स-पीयर ने भी इतिहास के खुले खजाने से अनमोल रत्न चुनकर अपने नाटकों की कथा-वस्तु को ऐसे कौशल से प्रस्तुत किया है कि उनका महत्त्व द्विगुणित हो गया है।

कालिदास ने अपनी अमर कलाकृतियों द्वारा संस्कृत-साहित्य को एक नवीन दिशा की ओर उन्मुख किया, उसमें नई अंतर्चेतना भरी और अपनी अपूर्व कला मर्मज्ञता, सूक्ष्म अंतर्दृष्टि तथा विश्लेषण-बुद्धि से नाट्य-साहित्य की परिधि को व्यापक और महत्त्वपूर्ण बनाया। महाकवि शेक्सपीयर की लेखनी में भी ऐसी ही अद्भुत भावोद्बोधन शक्ति थी, जिसका कि व्यापक प्रभाव उनके परवर्ती साहित्य एवं समाज पर बराबर पड़ता रहा। यद्यपि उनके समय के अनेक कलाकार मारलोव (Marlowe), वेबस्टर (Webster), बेन जान्सन (Ben Jonson), फ्लेचर (Fletcher) और डेकर (Dekker) आदि ने पर्याप्त ख्याति प्राप्त की थी, तथापि शेक्सपीयर का व्यक्तित्व इतना विशाल एवं जटिल तथा उनकी प्रतिभा इतनी बहुमुखी थी कि जिनके प्राकट्य ने अंग्रेजी-इतिहास के गौरवमय अध्याय का जाज्वल्यमान पृष्ठ खोलकर विश्व के सम्मुख एक आश्चर्य समुपस्थित कर दिया। सचमुच, युरोप में शेक्सपीयर के नाटको की महत्ता बेजोड़ है। कहना न होगा कि इस साहित्य-शिल्पी की सूक्ष्म-अन्तर्भेदिनी दृष्टि इतनी तीक्ष्ण और प्रखर थी कि दुःखान्त, सुखान्त, प्रहसन, शृंगारिक जिस विषय पर भी उन्होंने अपनी कलम उठाई—उसी में आश्चर्य जनक सफलता प्राप्त की।

शेक्सपीयर की प्रारम्भिक कृतियां यद्यपि उतनी प्रसिद्ध नहीं हैं, फिर भी उनमें उनकी कलात्मक प्रतिभा का आभास मिलता है। 'रोमियो और जूलियट' (Romeo and Juliet) 'रिचर्ड तृतीय' (Richard III) और 'हेनरी षष्टम' (Henry VI) वस्तुतः कलापूर्ण रचनायें हैं। सन् १६०१ से १६०८ तक शेक्सपीयर के जीवन का मध्यान्हकाल कह सकते हैं। उनकी बड़ी बड़ी कला कृतियां 'हेमलेट' (Hemlet), 'ओथैलो' (Othello), किंग लीयर (King lear), 'मेकबेथ' (Mecbeth), 'टाइमन आफ एथन्ज' (Timon of Athens), 'मेजर फार मेजर' (Measure for Measure) 'ट्रायलेस एण्ड क्रेसीडा (Troilus and Cressida) आदि इसी अवधि में लिखी गई। इस समय तक उनका कलाकार का रूप पूर्ण सजग एवं क्रियाशील हो उठा था। जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्होंने 'टेम्पेस्ट' (Tempest), 'विन्टर्स-टेल' (Winters Tale), 'सिम्बलाइन' (Cymbeline) आदि नाटक लिखे। इन कृतियों में उनकी अन्तरात्मा का दर्शन हुआ, मानो जीवन के चतुर्थ चरण में आते-आते उनकी अन्तर्दृष्टि व्यापक और आध्यात्मिक-चेतना सजग और सचेष्ट हो उठी।

यद्यपि इन दोनों महाकवियों में धर्म, समाज, संस्कृति, साहित्य एवं भाषा की असमानता ऐसी ही है जैसे कि आसमान और खाई की—शक्सपीयर अंग्रेजी-साहित्य के कलाकार हैं—तो कालिदास संस्कृत साहित्य के। एक की क्रीड़ाभूमि पश्चिम है, तो दूसरे की पूर्व; तथापि यह निर्विवाद सत्य है कि कोई भी सत्कवि देश और काल की सीमाओं से सीमित नहीं है। उनकी कल्पना तो देश-विशेष एवं जाति-विशेष की संकीर्णता छोड़कर समस्त विश्व का आलिंगन करती है और यही कारण है कि विश्व भी उनके चरण चूमने को आतुर हो उठता है। कालिदास और शेक्सपीयर-दोनों ही की गणना विश्व के इने-गिने कलाकारों में की जाती है। दोनों ही साहित्य एवं कला के अनन्य उपासक हैं। दोनों ने ही जीवन के सार्वभौम, सार्वजनीन चित्र प्रस्तुत किये है। शेक्सपीयर ने अपने को फैलाया है, कालिदास ने अपने को केन्द्रित किया है। दोनों ने ऐसे चरित्रों की सृष्टि की है, जिनमें सूक्ष्म-चरित्र-विकास एवं मानव-अन्तर्द्वन्द्व का आभास मिलता है। कालिदास नारी की सौन्दर्य एवं सौकुमार्य की उपासना में निरत है। शेक्सपीयर ने नारी-हृदय का अन्तर्द्वन्द्व अत्यन्त सूक्ष्मता से दर्शाया है। कहीं वह स्नेह-कातर, वात्सल्यमयी नारी है तो कहीं सहजात प्रवृत्तियों द्वारा परिचालित कठोर नारी। 'ओथैलो' में सुन्दरी

डेसडेमोना अन्त तक अपने क्रूर पति को प्यार करती है। वह अपनी सेविका एमिला से कहती है "मेरा प्रेम इतना अन्धा है कि मै उनके दोष, क्रोध, निर्ममता, क्रूर प्रहार सभी कुछ हंसते हंसते सहन कर सकती हूं।" और मरते दम तक वह अपने हत्यारे पति का पक्ष लेती है और उसे अपनी हत्या के अपराध से मुक्त कराने के लिए कहती है "इन्होंने नहीं, मैंने स्वयं अपनी हत्या की है", किन्तु 'मेकबेथ' में कोमलांगी नारी का रूप अत्यन्त भयंकर हो उठा है। लेडी मेकबेथ अपने पति को राजा डुंकान की हत्या के लिए प्रोत्साहित करती है और मारने में सहायक होती है। 'रोमियो एण्ड जूलियट' में जूलियट प्रेम की साक्षात् प्रतिमा है तो 'एण्टोनी एण्ड क्लोपेट्रा' में क्लोपेट्रा छल, कपट और धूर्त्तता की। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में भी भोली शकुन्तला का राजा दुष्यन्त द्वारा परित्यक्त होने पर उग्र रूप दिखाई देता है।

शकुन्तला---(सरोषम्) अनार्य ! आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यसि । क इदानीमन्यो धर्मकंचुक प्रवेशिन स्तृणच्छन्न कूपोपमस्य तवानुकृतिं प्रतिपत्स्यते ?

अर्थात्—शकुन्तला क्रोध में भरकर कहती है, "हे अनार्य ! तुम अपना सा कुटिल हृदय सबका जानते हो। तुम-सा धूर्त्त कौन होगा जो घास फूंस से ढके हुए कुएं की भांति धर्म का भेष बनाए रखते हो।

इस प्रकार मानव की नैसर्गिक प्रवृत्तियों मे प्रेम, क्रोध, घृणा, साहस, क्षमा, उदारता, विश्वास आदि को इन साहित्यकारों ने अपने नाटकों में बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रदर्शित किया है। दोनों ने ही अनेक प्रकार के मनुष्यों तथा स्त्रियों की चित्तवृत्तियों, भावनाओं, विचारों की कल्पना करने की सामर्थ्य रखने के कारण अपने पात्रों में पूर्ण सजीवता भर दी है, मानो उन्हें अपने सम्मुख एक बड़ा ही विस्तृत और गहन सोने का संसार खड़ा मिला। मानव-जीवन कितना विशृंखल, अस्थिर, अशांत और ऊहापोह भरा है, तथापि जीवन-धारा कभी अवरुद्ध न होकर समस्त विशृंखलताओं के मध्य भी अबाध बहती रहती है—उनकी कृतियों के मूल में भी ठीक यही प्रेरणा है। कहना न होगा उनकी रचनायें विभिन्न जीवन-चित्रों के वास्तविक दर्पण हैं, जिनमें सम्पूर्ण मानव जीवन की झांकी मिलती है।

कालिदास और शेक्सपीयर—दोनों ही में विलक्षण प्रतिभा है और उनकी रचनाओं का क्षेत्र इतना विशद एवं विविधता से पूर्ण है तथा उनमें इन महाकवियों के व्यक्तिगत अनुभव के इतने विचित्र और रंगीन चित्र भरे पड़े हैं कि उनके ज्ञान के अक्षय भंडार को देख कर दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है। उनके नाटक कला और सौंदर्य के उस विशाल महासरोवर के सदृश हैं, जिनमें सौन्दर्य-द्रष्टा-कला-पारखी छककर अपनी प्यास बुझाते हैं और अपनी परिवर्तित भावभंगी के साथ-साथ तरह-तरह का रसास्वादन कर अपने को कृतकृत्य मानते हैं।

तुलसी और मिल्टन
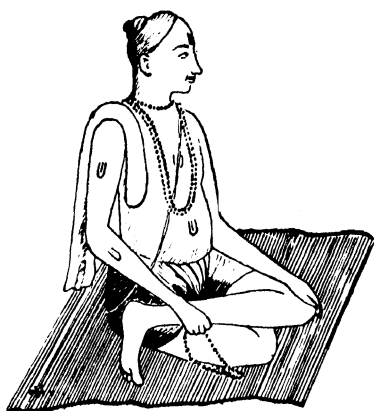
तुलसीदास

जन्म—गुसांई - चरित के अनुसार संवत् १५५४, जनश्रुति के अनुसार संवत् १५८९, मृत्यु संवत् १६८०

मिल्टन

जन्म—९ दिसम्बर, १६०८

मृत्यु—८ नवम्बर, १६७४
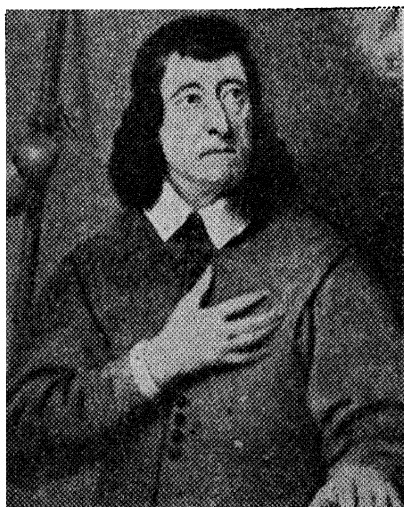
काव्य 'ज्ञान समष्टि का उच्छ्वास और उसकी सूक्ष्म आत्मा है'—उसमें जीवन के सभी तत्त्वों का सन्निवेश और जीवन की विभिन्न स्थितियों, दृश्यों, घटनाओं एवं प्रसंगों का सजीव लेखा होता है। काव्य मानवीय सत्य, सौन्दर्य एवं शक्ति का प्रतीक है और सीम में निस्सीम को तथा विशेष में निर्विशेष को व्यक्त करता है। आधुनिक युग के सुप्रसिद्ध जर्मन कवि रेनर रिल्के के शब्दों में "काव्य-रचना के लिए केवल जीवन की स्वल्प स्मृतियां ही पर्याप्त नहीं है, प्रत्युत् कवि के लिए आवश्यक है कि जब बहुत सी स्मृतियां एकत्र हो जायें तो वह उन्हें विस्मृत करदे और पुनः लौट आने तक धैर्य पूर्वक उनकी प्रतीक्षा करे, क्योंकि इन स्मृतियों में ही उसका सारा संसार निहित है और यह तभी संभव है जब कि वे स्मृतियां उसके भीतर उसके रक्त में एक हो जाएं, उसकी दृष्टि तथा उसकी चेष्टा में परिणत हो जाएं—भीतर रम जाएं, जब उनका कोई नाम और चिन्ह शेष न रह जाए, वे उसमें आत्मसात् हो जाएं—तभी, केवल तभी—उसके जीवन के किसी सुनहरे क्षण में कविता के प्रथम शब्द का उत्थान होता है, जो उससे निकल कर वाह्य-जगत् में विचरता पंछी बन जाता है।" . . .

एकरूपता

तुलसीदास का 'रामचरितमानस' और मिल्टन का 'पैराडाइज़ लास्ट' (Paradise Lost) इसी कोटि के महाकाव्य हैं, जो अपने युग का ही प्रतिनिधित्व नहीं करते, जो केवल आज के इतिहास की ही अमर निधि नहीं हैं, प्रत्युत् युग-युग तक विश्व की भावनाओं को अंकित कर मानवात्मा को परितृप्त करते रहेंगे। जो सन्देश, जो सौरभ उन्होंने बिखेरा है--वह अक्षुण्ण रहेगा--उसका कभी ह्रास न होगा। उस समय से पीछे आने वाली आज तक की पीढ़ियों पर उनका प्रभाव समान रूप से अमिट है और आज भी वे विकसित मानव-जाति को कर्तव्य-मय जीवन-आदर्शों का पाठ पढ़ाने मे पीछे नहीं हटते। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये दोनों अमर-काव्य अपने अपने स्रष्टा की सूक्ष्म अन्तर्भेदिनी दृष्टि और विलक्षण-प्रतिभा के परिचायक है—उनके मूक मनोवेगों की संगीतमयी भाषा है, जो उनकी अन्तस्तल की भावनाओं को प्रतिबिम्बित करते हुए भौतिक आवरण को चीर कर जीवन के मलभूत तत्वों को स्पर्श करते है। एक में पूर्व की आत्मा है तो दूसरे में

पश्चिम की कला। दोनों अपने अपने देश की विराट् संस्कृति के वाहक हैं और वहीं के सामाजिक संस्कारों को लेकर आगे बढ़ते हैं। काव्य के उत्कर्ष और समुचित विकास के लिए जितने उपकरणों, जीवन-संश्लिष्ट चित्रों और कल्पना-वैभव की अपेक्षा है--उतनी भाव-राशि और ज्ञात-अज्ञात भावनायें उनमें बिखरी पड़ी हैं, मानों दोनों महाकवियों ने अपने गम्भीर-चिन्तन और अन्तर्भूत-अनुभूतियों को अमर स्वरों में बांध दिया, चतुर शिल्पियों की भांति बड़ी ही सूक्ष्म और पैनी रेखाओं से अपने चित्रों को गढ़ा, जीवन और जगत् के रहस्यों का पारदर्शी की नाईं उद्-घाटन किया तथा अपनी काल्पनिक दृष्टि से जीवन के संकुल प्रवाह में झलमलाते विन्यास व सौन्दर्य की झांकी दिखाई और स्वानुभूत सुख-दुःखों को मिलाकर ऐसी अनुपम काव्य सृष्टि की, जिसमें उन्होंने अपनी निर्माणमयी वृत्ति द्वारा जीवन की अखण्डता का उदभावन किया।

यद्यपि दो महाकवियों की प्रवृत्ति कभी एकसी नहीं होती, अपनी अपनी पृथक प्रतिभा और व्यक्तिगत विचार धाराओं को लेकर उनके द्वारा उतारे गये जीवन के दो आदर्श चित्र भी कभी सम नहीं उतरते, तथापि वस्तु भिन्न होते हुए भी उनकी आत्मा एक होती है और उनके शीर्ण, विकीर्ण तंतुओं में एकसी संजीवनी-शक्ति सन्निहित रहती है, जो पीयूषधारा सी अनन्तकाल तक शुष्क धराधाम को आप्लावित करती है। कलाकार की मानसिक अवस्था विशेष में, उसके अवचेतन भाव की गहन पृष्ठ भूमि में न जाने कितनी ज्ञात-अज्ञात प्रेरणायें काम करती हैं, न जाने जीवन के कितने रंग-बिरंगे चित्र बनते और बिगड़ते रहते हैं, न जाने कितनी भूली-भटकी स्मृतियां झलक मारती रहती हैं--तो भी इन सभी विभिन्नताओं और विचित्रताओं में एकता की अनुभति अनिवार्य है। जीवन की विशृंखल, विशद और संकुल सघनता में भावों के विषय और उनके द्वारा प्रेरित व्यापारों में विभिन्नता होने पर भी एकता, समरसता, और एक स्वभावज भावना तो बनी ही रहती है। 'रामचरितमानस' और 'पैराडाइज़. लास्ट' दोनों ही काव्य मनुष्य की भीतरी वृत्तियों का वाह्य प्रकृति के साथ सामंजस्य घटित करते हुए उनकी भावात्मक सत्ता के प्रसार का प्रयास करते हैं और दोनों ही अमोघ अमृत-घट हाथ में लिए विश्व की व्याधियों का उपचार करने में सतत संलग्न हैं। दोनों में दार्शनिक-चिन्तन, लोक-कल्याण भावना, उज्ज्वल उदात्त-कल्पना, विलक्षण अनुभूति-क्षमता, अद्भुत काव्य-शिल्प और युग युग का शाश्वत सत्य प्रकट हो रहा है। दोनों में निर्मल, निभ्रान्ति जीवन-दर्शन है और अन्तर्भिमुख जीवन-धारायें अपनी सहज चरमता पर पहुंच गई हैं।

तुलसी और मिल्टन दोनों ने अनन्त सौन्दर्य का साक्षात्कार कर उसके भीतर ही अनन्त शक्ति और लोक-रंजनकारी रूप का दर्शन कराया और दोनों ने लोकोत्तर भाव-भूमि में पैठ सत्स्वरूप का सान्निध्य प्राप्त किया।

अन्तर का समाधान

जिस प्रकार दारुण परिस्थितियों की टकराहट से एक दिन तुलसीदास की मूर्च्छना भंग हुई थी और एकांत शांत गंगा के कछार पर बैठ अपनी अलौकिक काव्य-कल्पना द्वारा उन्होंने अपना सब कुछ अपने आराध्य के चरणों में उड़ेल दिया था—उसी प्रकार जीवन की विभीषिकाओं में तच कर मिल्टन भी एक दिन गहरे जीवन-द्रष्टा बन बैठे थे और वर्षों से जो एक बृहत् काव्य लिखने की वासना उनके अन्तर में दुराग्रह बन कर समा गई थी——वह अनायास ही अनुस्यूत् हो अमर संगीत-लहरीमें प्रकट हो गई। २३ सितम्बर, सन् १६३७ को मिल्टन ने अपने एक साहित्यिक मित्र को लिखा था, "तुमने मुझसे पूछा है कि आजकल मैं क्या कर रहा हूं और क्या सोच रहा हूं। निश्चय ही अपने को अमर बनाने की लालसा मुझमें है और उसके लिए मैं तैयारी कर रहा हूं। अपने पंख जमा रहा हूं, जिससे ऊपर उड़ सकूं, किन्तु अभी मेरे पंख अधिक उभरे नहीं हैं और बहुत ऊपर अन्तरिक्ष में उड़ने में मैं अभी असमर्थ हूं।" चार वर्ष पश्चात् अपने उसी मित्र को उन्होंने फिर लिखा, "अभी तक भी मैं यह निश्चय नहीं कर पाया कि अपने व्यापक अध्ययन को कैसे सफल बनाऊं।" अपनी इटली यात्रा में उन्हें अनेक काव्य प्रेरणायें मिलीं और उनका संकल्प दिन-दिन दृढ़तर होता गया, किन्तु अब भी काव्य के विषय के चुनाव में संशय बना रहा। इसके अतिरिक्त एक और कठिनाई थी। उस समय विद्वानों की सम्मानित भाषा लैटिन समझी जाती थी, अतएव मिल्टन के मन में भी कुछ खींचातानी सी होती रही, किन्तु इस विदेशी और अप्रचलित भाषा के प्रति उनके मन का यह अस्वाभाविक आग्रह अधिक नहीं चल सका और शीघ्र ही उनका निर्णय अपनी मातृभाषा अंग्रेजी के पक्ष में हुआ। उन्हीं के शब्दों में "अरस्तू का अनुकरण करते हुए मैंने भी यह संकल्प कर लिया हैं कि अपनी समस्त शक्ति और कला का उपयोग अपनी मातृभाषा को समृद्ध बनाने में ही करूं। केवल पांडित्य-प्रदर्शन ही मेरा ध्येय नहीं है, क्योंकि यह तो अहमन्यता का सूचक होगा। मेरी अपने को टटोलने की वृत्ति है, और इस प्रकार अपनी ही भाषा में अपने ही सहबन्धुओं के लिए मैं उत्तमोत्तम वस्तुओं का विश्लेषक हो सकता हूं। एथन्स, रोम या आधुनिक इटली और ग्रीस देश की प्रतिभाओं ने जो अपने देश की सेवा की है, मैं भी क्रिश्चियन होने के नाते अपने देश की सेवा करूंगा। मुझे देश-देशान्तरों में अमर बनने की अभिलाषा नहीं हैं, यद्यपि मैं प्रयत्न करने पर

इसमें भी कदाचित् सफल हो सकता था, किन्तु मुझे तो ब्रिटेन की सीमित परिधि में गौरवान्वित होने से ही पूर्ण सन्तोष रहेगा।"

सन् १६५२ के पूर्व ही मिल्टन की नेत्र-ज्योति लुप्त हो गई और सब कुछ उनके लिए मानों शून्य में समा गया। किन्तु सहसा इस अंध-तमस में भी नवालोक का उद्‌भास हुआ और स्थूल चेतना को भेदकर सूक्ष्म चेतना उभर आई। अन्तर्द्वन्द्व की रगड़ खाकर मिल्टन की अनुभूति-शक्ति प्रखर होती गई और भावों में भी तीव्रता आ गई। आत्मा की पीड़ा, जीवन की परिश्रान्ति और कटु-अनुभवों ने अंधे कवि के चित्त को क्षुब्ध कर दिया, उसकी भावनाओं को मसोस डाला और आन्तरिक-संस्कारों को हिला दिया, किन्तु क्रूर नियति का यह निर्मम आघात अभिशाप न बनकर वरदान सिद्ध हुआ और सन् १६५८ में 'पैराडाइज़ लास्ट' की रचना आरम्भ हुई। मिल्टन के विचारों को लिपिबद्ध करनेमें उनकी लड़कियों ने सहायता दीं और पांच वर्ष बाद सन् १६६३ में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ। दो वर्ष इसे दुहराने में लगे और सन् १६६७ में यह प्रकाशित हुआ।

तुलसीदास के समक्ष प्रतिकूल परिस्थितियाँ होते हुए भी काव्य के विषय के चुनाव का तो प्रश्न ही नहीं था, क्योंकि उन्होंने बाल्यावस्था से ही राम की कथा सुनी थी और वही उनकी जीवन की उपास्य-निधि बन गई थी—हां भाषा के ऊहा-पोह में कुछ दिन वे भी पड़े रहे, क्यों कि उन दिनों संस्कृत की ही प्रतिष्ठा थी और देशी भाषा को विद्वानों का समादर प्राप्त न था। किन्तु तुलसीदास ने तो अपना 'रामचरितमानस' लोकहितार्थ लिखा था, उन्हें सांसारिक-सम्मान की ज़रा भी चिन्ता न थी। "का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए सांच"—उन्हें लोक-प्रचलित भाषा में लिखने की ही अन्तः प्रेरणा हुई और उन्होंने आत्म सुख के लिए भक्ति रस की अजस्र धारा बहाई तथा परोपकार-भावना से प्रेरित हो राम-कथा के रहस्यों का उद्‌घाटन किया।

'रामचरितमानस' और 'पैराडाइज़ लास्ट' का विषय-साम्य

'रामचरितमानस' ज्ञान और भक्ति, प्रवृत्ति और निवृत्ति, जीव और ब्रह्म, लोकज्ञान और तत्वज्ञान का अपूर्व सामंजस्य उपस्थित करता है। राम के 'अनन्त-शक्ति-सौन्दर्य-समन्वित' रूप के दर्शन होते हैं, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति भी साधारण जीवन में ही कराई गई हैं। राम ईश्वर हैं, उनका सौन्दर्य अचिंत्य है, मर्यादा पुरुषोत्तमत्व अपूर्व है, उनके गुण-शील-कर्म अनन्त हैं, वे भावग्राही हैं, शूरवीर हैं, सत्यव्रती हैं, शरणागतवत्सल हैं, करुणानिधान हैं,। उनकी दृष्टि सब पर समान है। स्त्री हो

या पुरुष, सशक्त हो या अशक्त, ऊंच हो या नीच, निर्धन हो या धनी, उनके अनुग्रह को प्राप्त करने के लिए रूप, गुण, जाति, प्रतिष्ठा आदि अपेक्षित नहीं—वे तो केवल भक्तों के भाव के भूखे हैं—'रामहि केवल प्रेम पियारा।' ईश्वरोचित गुणों से युक्त होते हुए भी उन्होंने मनुष्य के रूप में ही पृथ्वी पर अवतार लिया है और आसुरी-शक्तियों को पराजित करना ही उनका ध्येय है। मोहाभिभूत जीव विराट् सृष्टि का एक क्षुद्र चेतन अंश है, वह महातमस और प्रवृत्तियों से इतना घिरा है कि उसके उद्धार के लिए ईश्वरीय-विभूति का अवतरण आवश्यक है। महामोह रूपी रावण, जो प्रवृत्ति रूपी लंका में निवास करता है और घोर अज्ञान एवं अहमत्व में पड़ा है, तथा शक्ति-स्वरूपिणी श्री सीता का सर्वनाश करने पर तुला है—अन्त में राम रूपी अलौकिक भगवदीय शक्ति का आखेट होता है। जड़ जीव को यथार्थ सत्ता का बोध कराने के लिए तदाकार-परिणति अपेक्षित है। दम्भ, अभिमान, छल, कपट, ईर्ष्या, अविवेक और मन के मैल को विच्छिन्न करने के लिए चिन्मय शक्ति के प्रकाश की किरणें चाहिएं—तभी मोहासक्त जीव को अपने लघुत्व और असामर्थ्य का बोध होगा। इस अखिल-विश्व-ब्रह्मांड में सत्-असत्, अन्धकार-प्रकाश, विद्या-अविद्या और धर्म-अधर्म का सदैव द्वन्द्व रहा है। 'रामचरितमानस' में ब्रह्म के सत्स्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति का मोहासक्त रावण की कुप्रवृत्ति से द्वन्द्व है और जगत् की स्थिति-रक्षा के लिए उसी के आचरण का उत्तरोत्तर विकास दिखाया गया है।

मिल्टन के 'पैराडाइज़ लास्ट' का प्रतिपाद्य विषय भी मानव और दानव तथा दैवी और आसुरी शक्तियों का द्वन्द्व ही है। प्रकृति की तामसिक शक्तियों से स्वात्म रक्षा की चिन्ता करते हुए भी मनुष्य उसके भयंकर पाश में आबद्ध हो जाता है और अनेक विषमताओं के मध्य भी वह अपने अस्तित्व को बनाये रखना चाहता है। उसका 'अहम्' अर्थात् उसके मन का शैतान ही उसके पतन का कारण है। अविद्या का आवरण उसके विवेक को अन्धा कर देता है, जिसके कारण वह भवचक्र में पड़ा रहता है और अभिमान, अहंकार, तथा विक्षेपों से घिरा रहता है। जब तक सत्य का चिरंतन स्वरूप उससे अदृष्ट है, जड़ पदार्थों में ही उसकी आसक्ति रहती है। मिथ्यात्व का आवरण नष्ट होते ही उसे अपनी आत्मा में सत्य का दर्शन होने लगता है और अन्धकार पर वह आत्म शक्ति के प्रकाश से विजय प्राप्त करता है। 'पैराडाइज़ लास्ट' के प्रथम परिच्छेद में नरक की भीषण पापमय यातनाओं का दिग्दर्शन कराया गया है। ईश्वरीय-आदेशों की अवहेलना करने से शैतान और उसके साथी स्वर्गच्युत कर दिये जाते हैं और वे भीषण अग्नि-कुण्ड की यातनायें झेलते झेलते संज्ञाशून्य और मृतप्राय से पड़े हैं, किन्तु इस दुरवस्था में भी उनके मन का

घोर तमस सजग है और उनकी कुत्सित प्रवृत्तियां कर्मण्य और गतिशील हैं। शैतान उठता है और अपने साथियों से मन्त्रणा करके मानव की सद्वृत्तियों का ह्रास करने पृथ्वी लोक के लिए चल पड़ता है।

'रामचरितमानस' में असुरों की परिभाषा करते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं :—

कामरूप खल जिनस अनेका। कुटिल भयंकर विगत विवेका॥
कृपा रहित हिंसक सब पापी। बरनि न जाहिं विश्व परितापी॥
कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहु जिन्ह के धरम न दाया॥
जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं वेद प्रतिकूला॥
मानहिं मात पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानहु निसिचर सब प्रानी॥

रावण और शैतान दोनों ही आसुरी शक्तियां हैं और दोनों का उद्देश्य जड़ता का प्रसार कर दिव्य ज्ञान को आवृत्त करना है।

'रामचरितमानस' में तुलसीदास भारत की प्राचीन गौरवमयी रामगाथा को वर्णित करते हुए अपने युग से आगे, बहुत आगे निकल गये हैं। उन्होंने अपनी अमूर्त, आंतरिक, एवं भक्ति-प्लावित भावनाओं को मूर्त, बाह्य एवं लौकिक रूप दे दिया है। सूक्ष्म को स्थूल बना दिया है और अपने महाग्रन्थ में प्रेम, भक्ति और मर्यादा; लोक पक्ष और अध्यात्म-पक्ष का अपूर्व सामंजस्य दिखाया है। 'पैराडाइज़ लास्ट' में मिल्टन ने अपने युग से जातीय-भाव एवं भावनाओं को ग्रहण कर अपने काव्य में निज कवित्व और कल्पना का ही रंग नहीं भर दिया, प्रत्युत् मानव के मूल, विकास और पतन की गाथा, प्रागैतिहासिक काल का सूक्ष्म चित्रांकण, भगवान् द्वारा सृष्टि का प्रसार, दैवी और आसुरी शक्तियों का प्रादुर्भाव, द्वन्द्व, प्रतिस्पर्द्धा, संघर्षण, अन्त में ईश्वरीय-न्याय का उद्घाटन आदि का सफल प्रदर्शन कराया है। सृष्टि के आरम्भ में मानव कितना सरल, निरीह, निष्कपट और भोलाभाला है। वह अपने असली रूप में है। उसमें लज्जा, विक्षेप, मनोविकार, दुर्वासनायें आदि कुछ भी नहीं हैं। प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में वह अठखेलियां करता हुआ स्वच्छंद विचरण करता है। वह अपनी कोई पृथक् सत्ता नहीं समझता, वरन् उसे पग-पग पर भगवत्कृपा का आभास होता है। वह अपनी वस्तुस्थिति से खुश है, सन्तुष्ट है और भगवान के प्रति कृतज्ञ है। उसे विराट् विश्व के प्रत्यक्ष से प्रत्यक्ष और गूढ़ से गूढ़ तथ्यों, रहस्यों, और अंतरंग भेदों में घुसने की चिन्ता नहीं है। उसमें क्रोध, घृणा, लोभ,

महत्व, लालसा आदि वासनाजन्य प्रवृत्तियों का अभाव है। बन, पर्वत, नदी, निर्झर, वृक्ष, लता, झाड़ी, पुष्प, आकाश, पृथ्वी और प्रकृति-सुन्दरी के हाथों सजाए निकुंज ही उसके क्रीड़ागार और पशु-पक्षी कीट-पतंगे ही उसके चिर-सहचर हैं। किन्तु ज्यों ज्यों उसका बौद्धिक विकास होता है, त्यों त्यों उसका जीवन जटिल से जटिल-तर बनता जाता है। वह अपने कर्त्तव्य-पथ से भटक कर नवोत्पन्न उलझनों और बहुरूपी व्यापारों में फंस जाता है। ज्ञान और नवचेतना का स्फुरण होने के साथ-साथ उसका जीवन-क्रम बदल जाता है, विचारों और भावनाओं में परिवर्तन होता है, भावों के आदिम और सीधे लक्ष्यों के अतिरिक्त वह अपने बुद्धिबल से और-और लक्ष्यों की भी स्थापना करता है, अपनी आसपास की वस्तुओं को भिन्न दृष्टि से देखता है और ऐसे बहुमुखी व्यापारों में फंसता जाता है जो उसे अनैतिकता की ओर ढकेलते हैं। 'पैराडाइज़ लास्ट' में आदि-पिता आदम और आदि-जननी ईव भी अपनी स्वाभाविक-स्थिति में चित्रित किये गये हैं। वे नितांत भोले, निश्छल, निष्पाप, प्रकृति-अनुगामी और भगवदीय सत्ता को मानने वाले हैं। ज्ञान का हलाहल अभी उन्होंने नहीं पीया है और सभ्यता के आवरण भी उनसे दूर हैं। आदम ईव में अनुरक्त है और ईव आदम को अपना सर्वस्व समझती है। दोनों अत्यन्त सुखी, निश्चिन्त, निर्द्वन्द्व और निर्विकार हैं। प्रकृति की समरसता का उपभोग करते हुए वे शान्ति का चिर-संगीत सुना करते हैं, अपने क्रीड़ा-कल्लोलों में स्वर्गीय-सुखों का अनुभव करते हैं और ईश्वर द्वारा निश्चित कर्तव्य-कर्मों में जुटे हुए मिथ्या-प्रपंचों से दूर हैं। सर्व प्रथम ईव में दुष्प्रवृत्तियां घर करती है, उसे अपनी क्षुद्रता का भान होता है और महत्वाकांक्षा जाग्रत होती है। वह आदम से पृथक्, अकेली काम करने जाती है और शैतान की बातों में फंसकर मनुष्य के लिए ईश्वर द्वारा वर्जित 'ज्ञान के फल' को चख लेती है। मोहवश आदम भी उसका अनुकरण करता है और इस प्रकार वे दोनों स्वर्गीय-सुखों से वंचित होकर सर्वनाश और हाहाकार की ओर लपकते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनके जीवन की शान्ति भंग हो जाती है और उनकी अतृप्त वासनाएं विह्वलता और कृत्रिम भावनाओं की उद्भावना करती हैं। क्षण भर में उनके सोने का संसार छल और प्रवंचना के कारण विलुप्त हो जाता है और वे जन्म भर अनुताप करने के लिए छोड़ दिए जाते हैं।

अध्यात्म--पक्ष

तुलसी और मिल्टन की दृष्टि में विश्व की समस्त चेतना का मूलस्रोत परब्रह्म-परमेश्वर है।

रामब्रह्म व्यापक जग जाना । परमानन्द परेस पुराना ॥
विषयकरन सुर जीव समेता । सकल एक ते एक सचेता ॥
सबकर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । मायाधीस ज्ञान गुन धामू ॥

मिल्टन ने भी 'पैराडाइज़ लास्ट' के तृतीय परिच्छेद में भगवान के दिव्य-स्वरूप, उनके चतुर्दिक् बिखरे प्रकाश, अनन्त-वैभव, राजकीय-सत्ता और सर्वशक्तिमान् रूप का दर्शन कराया है । भगवान् का सौन्दर्य और सामर्थ्य कल्पनातीत है । सिंहासन के चारों ओर अद्वितीय आभा बिखरी हुई है और समस्त शक्तियां कर-बद्ध खड़ी हैं । भगवान् के समीप ही उनके प्रतिबिम्ब रूप पुत्र विराजमान हैं । जिस प्रकार 'रामचरितमानस' में प्रभु को पुत्र रूप में प्राप्त करने के लिए मनु-सतरूपा ने भीषण तपश्चर्या की थी और राम पृथ्वी का भार उतारने के लिए मनुष्य रूप में अवतीर्ण हुए थे, उसी प्रकार मिल्टन के काव्य में आदि-पिता आदम और आदि-जननी ईव तथा समग्र मानवता का कल्याण करने वाले भगवान् के अंशावतार क्राइस्ट ने जन्म लिया था । क्राइस्ट में भगवदीय शक्ति, शील, सौंदर्य तीनों की चरम अभिव्यक्ति समन्वित होकर प्रकट हुई और अन्धकार में मंगल-ज्योति जगाई । तुलसीदास और मिल्टन दोनों ही अवतारवाद के कायल हैं, जब जब पृथ्वी पर पीड़ा, अन्याय और अत्याचार का बोलबाला होता है, तब तब अन्धकार का पेट फाड़कर आनन्द-ज्योति लोकरंजनकारी रूप में फूट पड़ती है, यद्यपि मिल्टन के काव्य में नर के रूप में नारायण की दिव्य-कलाओं का सम्यक् दर्शन जो तुलसीदास के ग्रन्थों में हमें होता है—नहीं मिलता ।

ईश्वर और जीव में वस्तुतः कोई भेद नहीं है—जो भेद या पार्थक्य दृष्टिगत होता है, वह ज्ञान-अज्ञान का है । जीव माया के वशीभूत है और काल, कर्म व मिथ्या प्रपंचों में फंसा हुआ जन्म-मरण के बन्धन में पड़ा है ।

तव विषम मायाबस सुरासुर नाग नर अग जग हरे ।
भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे ।

'पैराडाइज़ लास्ट' के पंचम परिच्छेद में रेफल आदम से कहता है—"ओ आदम ! वह परम प्रभु ही सर्व शक्तिमान् है । उसी से सब उत्पन्न होते और यदि उनकी पवित्रता नष्ट नहीं होती तो उसी में समा जाते हैं ।"

यहां पवित्रता का अर्थ है जीव को ऐसी उच्च मनोभूमि की प्राप्ति जिससे परम महत्व के सानिध्य में उसे निरन्तर अपने असामर्थ्य और लघुत्व का पूर्ण बोध होता रहे । प्रभु की अनन्त शक्ति का जितना ही स्थायी संस्कार उसके हृदय में

जमता जायगा उतना ही स्पष्ट साक्षात्कार उसे अपने भीतर होगा और वह 'ज्ञान' के पथ पर अग्रसर होता जायगा। मोह का बंधन कर्म के साधनों से टूटता नहीं, वरन् और भी दृढ़तर होता जाता है। जीव को जाग्रतावस्था में तभी समझना चाहिए जबकि उसे सांसारिक वासनाओं से विरक्ति और इन्द्रिय-व्यापारों से घृणा हो जाए।

जानहिं तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय विलास विरागा॥

वैषयिक-उपेक्षा

परमार्थ साधन का मार्ग दुर्गम है। मन के अन्तर में प्रज्वलित ज्ञान-दीप विषय की बयार से प्रायः बुझ जाया करता है और इस प्रकार उसके मन का अन्धकार कभी विच्छिन्न नहीं होने पाता। ज्ञानाभिमानी साधक विषयों में फंसकर अपना सर्वनाश कर लेते हैं।

इन्द्रिन्ह सुरन्ह न ज्ञान सोहाई। विषय भोग पर प्रीति सदाई॥

मनुष्य का सब से प्रबल शत्रु है 'काम', जो उसे सदैव पतनोन्मुख करता है। 'पैराडाइज लास्ट' के नवम् परिच्छेद में मिल्टन ने आदम और ईव में 'ज्ञान का फल' चखते ही कुत्सित काम-वासनाओं का जाग्रत होना वर्णित किया है, जो उनके सर्वनाश और स्वर्गीय-सुखों से वंचित होने का प्रमुख कारण है।

"मानो एक नई मादकता से मत्त होकर वे दोनों आनन्द-सागर में तैरने से लगे। उनमें ऐसी स्फूर्ति जाग्रत हुई जैसे पंखों पर उड़कर उन्होंने सारी पृथ्वी को नाप कर फेंक दिया हो। उस सर्वनाशी फल के चखते ही अन्य बाह्य-विकारों की अपेक्षा उनमें इन्द्रिय-लिप्सा तीव्र हो उठी। आदम ने ललचाई दृष्टि से ईव को देखा। ईव ने चपल कटाक्षों से उसका स्वागत किया। काम-वासना से उनका शरीर जलने लगा। अन्त में आदम ने ईव को इस प्रकार उत्प्रेरित किया--

'आओ, इतना स्वादिष्ट फल खाकर समयोचित आमोद-प्रमोद में प्रवृत्त हो जायं। शरीर और मन कितना स्वस्थ है। जब से मैंने तुझे देखा और विवाह किया है--तब से आज तक तेरे सौन्दर्य को इतना कामोत्तेजक नहीं पाया। मेरी समस्त इन्द्रियां तुझसे मिलने को आकुल हैं। इस वृक्ष का गुणकारी फल खाकर तू पहले से बहुत सुन्दर हो गई है।"

ऐसा कहकर अपनी उद्दीप्त कामवासनाओं की पूर्ति के लिए, जिसे कि ईव भलीभांति समझ रही थी और जिसकी आंखें कामाग्नि-वर्षा सी कर रही थीं-- वह उसका हाथ पकड़ कर एक जलाशय के किनारे की शीतल, सघन छाया में--

उसे ले गया। उसकी भी अनिच्छा न थी। वहां गुलाब, बेला आदि रंग बिरंगे पुष्पों से आवेष्ठित पुष्पमयी शैय्या पृथ्वी की सुन्दरतम क्रोड़ में स्थित थी। वहां उन्होंने प्रेमोन्मत्त, आनन्द-विभोर हो अपने पारस्परिक अपराध और पापों के वर्जित सुखों का तब तक उपभोग किया जब तक कि मादक निद्रा ने उनकी कामजन्य उद्दण्डता से ऊब कर उन्हें अपने में विभोर न कर लिया।"

उपर्युक्त पंक्तियों में काम-वासना ही मनुष्य की पतितावस्था की द्योतक है। जो अपने शरीर को ही अपना वास्तविक रूप समझकर इंद्रियों की तृप्ति के लिए विषय-वासना की ओर प्रवृत्त होता है उसके लिए सर्वनाश का द्वार मुंह बाए खड़ा है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है कि "पैराडाइज़ लास्ट" में आदम और ईव को अच्छे बुरे का ज्ञान फल खाते ही नहीं होता, प्रत्युत् काम वासना में प्रवृत्त होने के बाद होता है। सर्व प्रथम उनमें लज्जा का स्फुरण होता है।

"वे सोकर उठे—परिश्रान्त और बेचैन से—प्रत्येक ने एक दूसरे को ध्यानपूर्वक देखा और वे शीघ्र ही समझ गये कि उनकी आंखें कैसे खुलीं और उनके मस्तिष्क कैसे तमसाच्छन्न हैं।"

आदम ईव से कहता है, "हमारे मुखों पर हमारे दुष्कृत्य की स्पष्ट कालिमा झलक रही है।" शीघ्र ही वे दोनों अपनी नग्नावस्था पर लजा जाते हैं और शरीर को कृत्रिम आवरण से ढकने की चेष्टा करते हैं। यहां तक ही बस नहीं है, वरन अन्य मनोविकार भी उनमें उत्पन्न होते हैं।

"वे दोनों रोने बैठे गये; उनके नेत्रों से केवल अश्रु की झड़ी ही नहीं लगी, वरन उनके भीतर मनोविकारों की भीषण आंधी सी उठी—जिससे दुर्दम्य-वासनाएं-क्रोध, घृणा, अविश्वास, संदेह, संघर्ष ने उनको अशान्त बना दिया, उनके मस्तिष्क की एकाग्रता और चिरशान्ति को भंग कर दिया।"

'पैराडाइज़ लास्ट' में रेफल ने बारम्बार आदम को विषय-वासनाओं से दूर रहने का आदेश दिया है।

"ध्यान रखना, ऐसा न हो कि वासनायें तेरे विवेक को आच्छन्न करलें।"

नारी निन्दा

तुलसीदास और मिल्टन-दोनों ही आत्महित की साधना में विषय-वासना, कामोपभोग और महत्वाकांक्षा अर्थात् स्वतःपूर्ण बनने की अभिलाषा को गर्हित और हेय मानते हैं। यही कारण है कि उन्होंने नारी को विषयोपभोग का साधन बताकर उसकी हमेशा निन्दा की है।

नारि विवस नर सकल गोसाईं, नार्चांहि नर मर्कट की नाईं।

और

दीप सिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहिं राम तजि काम मदु करहिं सदा सतसंग ॥

अरण्यकाण्ड में भगवान् राम ने भक्तिपथ में विलासिता की प्रतीक नारी को त्याज्य और उपेक्षणीय सिद्ध किया है। वे नारद से कहते हैं:—

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह मंह अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ॥

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह विपिन कहुं नारि बसंता ।।
जप तप नेम जलाश्रय झारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी ॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका। इन्हहि हरषप्रद बर्षा एका ॥
दुर्वासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहं सरद सदा सुखदाई ॥
धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहइ सुखमंदा ॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ॥
पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निविड़ रजनी अंधियारी ॥
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रवीना ॥

अवगुण मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि ।।

नारी परावलम्बिनी और पुरुष की अपेक्षा कम सामर्थ्य वाली होने के कारण इन दोनों महाकवियों की दृष्टि में सदैव दैन्य और कारुण्य प्रधान है, अतएव लोक-मर्यादा की रक्षा के लिये उसे पुरुष के अधीन होना चाहिये। स्वतंत्रता और स्वेच्छा-चारिता उसके लिये सर्वथा घातक है।

"जिमि स्वतन्त्र भए विगरहिं नारी"

और **"अबला अबल सहज जड़जाती"** तथा तुलसीदास की यह प्रसिद्ध उक्ति **"ढोल, गँवार, शूद्र, पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी ॥"**

'पैराडाइज़ लास्ट' में मिल्टन ने भी पुरुष को विवेकी और पुरुषार्थ प्रधान एवं नारी को स्वाभाविक - चंचल, भावुक और अस्थिर - चित्तवाली चित्रित किया है। अपनी अत्यधिक भावुकता के कारण वह विवेकपूर्ण और कठिन कार्यों के उत्तर-दायित्व को नहीं संभाल सकती - यदि संभाले भी तो उसे पुरुष का ही आश्रय खोजना पड़ेगा। नारी विषय-प्रधान है और पुरुष विवेक-प्रधान—दोनों में आग-पानी का सा

विरोध है। विषयवासना का आधिक्य होने से नारी द्वारा सहज ही मर्यादा का उल्लंघन हो जाया करता है, जिस पर लोक मर्यादा की दृष्टि से नियंत्रण वांच्छनीय है। 'पैराडाइज़ लास्ट' में सर्व प्रथम ईव का पतन होता है, तत्पश्चात् आदम का— वह भी अज्ञान या भुलावे में पड़ कर नहीं, वरन् ईव के प्रति उसकी गहरी प्रेमासक्ति और रूपाकर्षण के कारण।

इसके अतिरिक्त ईश्वर द्वारा दोनों का निर्माण भी इस ढंग से हुआ है, जिस में ईव की अपेक्षा आदम को ही प्रमुखता प्रदान की गई है।

"उन दोनों में स्त्री-पुरुष के जातीय-विभेद के कारण अनेक विषमतायें थीं। आदम विवेक, शक्ति और सामर्थ्य का प्रतीक था; ईव सौन्दर्य, कोमलता और मधुर आकर्षण की साक्षात् प्रतिमा सी ज्ञात होती थी। आदम का सर्वस्व ईश्वर था; ईव आदम को ही अपना सर्वस्व और ईश्वर मानती थी। आदम का सुन्दर प्रशस्त ललाट और चमकते नेत्र ओज व सुशासन के सूचक थे। उसके सिर के बाल दो लटों में विभक्त होकर उसके विशाल कंधों तक इतस्ततः लटक गये थे। ईव के रेशम की भांति चिकने, सुनहले और अत्यन्त लम्बे बाल सघन होकर उसकी क्षीण कटि तक लहरा रहे थे और लता के मुड़े हुए कोमल अग्रभागों की भांति उलझ कर उनमें घुंघराली लहरें पड़ गई थीं, जो उसकी परवशता की द्योतक थीं, किन्तु उसे प्रेम और प्रतिदान से ही जीता जा सकता था; वह भी लजीली, शर्मीली और गर्वीली भीरुता से—इच्छा और अनिच्छा का प्रदर्शन करती हुई—सब कुछ उसे दे देने को तत्पर थी।"

आदम ईव की अल्पज्ञता से अनभिज्ञ न था, वह भी अपने हीन पद को तिरस्कार न समझ अपना परम सौभाग्य मानती थी, क्योंकि सौन्दर्य, शील, संकोच-सम्पन्ना होकर ही वह पुरुष से प्रेम और प्रशंसा की अत्यधिक प्रत्याशा रखती थी। एक स्थल पर ईव आदम से कहती है:—

"ओ तुम! जिसके लिये और जिससे मेरा निर्माण हुआ है, जिसके प्राण और शरीर का ही मैं दूसरा भाग हूँ, जो मेरा स्वामी, सहचर और पथ-प्रदर्शक है, जिसके बिना मेरी कोई गति नहीं। निस्सन्देह, तुम्हारा कथन सर्वथा सत्य और अभिनन्दनीय है। हमें उठते बैठते ईश्वर को स्मरण करना चाहिये और अहर्निश उसके प्रति कृतज्ञ रहना चाहिये, क्योंकि उसकी कृपा से ही तुम मुझे प्राप्त हुए हो, जिसे मैं ढूंढ़ने पर भी कहीं अन्यत्र न पा सकती थी।"

वह स्वतः निर्बल होते हुए भी आदम के सम्पर्क से सबल और शक्तिशालिनी हो गई थी - मानो—"पुरुषत्व ने सौन्दर्य पर विजय पाई और ज्ञान ने कोमलता को जीत लिया।"

एक अन्य स्थल पर ईव आदम से कहती है, "मेरे प्राणधन ! मेरे स्वामी ! जो तुम आज्ञा करोगे वही बिना किसी हिचकिचाहट के मान लूंगी, क्योंकि ऐसा ही ईश्वरादेश है। ईश्वर का आदेश तुम्हारे लिये और तुम्हारा आदेश मेरे लिये है।"

किन्तु हीन पद और कम सामर्थ्य वाली होते हुए भी नारी की सब से बड़ी शक्ति है कि पुरुष उसके बिना रह नहीं सकता। सशक्त होता हुआ भी वह उसके प्रेमपाश में आबद्ध है, सबल होता हुआ भी नितान्त निर्बल है और स्वामी होता हुआ भी उसका तुच्छ दास है। दशरथ और केकैयी के प्रसंग में तुलसीदास लिखते हैं—

कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ। भयवस अगहुड़ परइ न पाऊ॥
सुरपति बसहिं बांहबल जाके। नरपति सकल रहहिं रुख ताके॥
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई॥
सूल कुलिस असि अँगवनि हारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे॥

'पैराडाइज़ लास्ट' में रेफल के बार बार सचेत करने पर भी आदम जानबूझ कर ईव की प्रेमासक्ति के कारण पतन के गर्त में गिरता है और इस प्रकार स्वेच्छा से सारी मानवता के लिये मृत्यु का आह्वान करता है। महत्वाकांक्षिणी ईव जब उसे ज्ञान का फल चखने के लिये देती है तो 'पृथ्वी उसके रूप की मोहिनी पर कांप उठती है और प्रकृति आन्तरिक अनुताप से कराहती और अश्रु-विमोचन करती है।" आदम के पतन के पश्चात् ईश्वर निम्नलिखित कठोर शब्दों में उसकी भर्त्सना करते हैं:—

"क्या वह तेरी ईश्वर थी, जो तूने ईश्वरादेश की अवहेलना कर उसका आदेश माना, अथवा वह तेरी पथ-प्रदर्शक, गुरु और तुझसे महान् थी। छिः ! तूने अपने पुरुषार्थ को उसके मोह में पड़ कर खो दिया। ईश्वर ने उसके संरक्षण का भार तुझे सौंपा था, उसके ऊपर तेरा प्रभुत्व स्थापित किया था, तुझसे और तेरे खातिर ही उसका निर्माण किया था। तेरा गुण और महत्ता तो उससे भी बड़ी थी, फिर क्यों तू उसके चक्कर में पड़ा। उसका सौन्दर्य और रूपाकर्षण, जो तेरे मनोरंजन और उपभोग के लिए था—तेरे लिए जीवन का जंजाल बन गया।"

निःसन्देह, उच्छृंखल और स्वेच्छाचारिणी नारी समस्त पापों की जड़ है। सती-स्त्री की शुचिता और उज्जवल चरित्र में तो कोई संशय ही नहीं, किन्तु जब

वह सुपथ का परित्याग कर कुमार्ग पर चलती है तो उसका रूप अत्यन्त भयंकर और विध्वंसकारी हो जाता है ।

काह न पावक जारि सक का न समुद्र समाइ ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग काल न खाइ ।।

यही कारण है कि नारी की इस प्रचण्ड शक्ति के प्रति इन दोनों धर्मनिष्ठ महाकवियों का हृदय कभी कभी विद्रूप और भीषण अट्टहास से कराह उठा है ।

काव्य — सौष्ठव

'रामचरितमानस' और 'पैराडाइज़ लास्ट' की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उन दोनों में सत्काव्य के स्वरूप का पूर्ण विकास और इतिवृत्त, वस्तु-व्यापार-वर्णन, भावव्यंजना और संवाद आदि काव्य के भीतरी अवयवों का समुचित समाहार मिलता है । रचना-कौशल, प्रबंधपटुता, कथानक का विस्तार, प्रकृति की अनेक रूपता और कतिपय मार्मिक स्थलों के विस्तार के साथ साथ विचारों की उदात्तता, रस-परिपाक तथा जीवन के व्यापक-क्षेत्र से रागात्मक तत्वों को संघटित कर सुन्दर, सशक्त भाषा में उनकी अभिव्यंजना हुई है । इतिवृत्त का तारतम्य कहीं विश्रृंखल नहीं होने पाया है और काव्य के दो प्रमुख पक्ष—अनुभूति-पक्ष और अभिव्यक्ति-पक्ष का सुन्दर सामंजस्य हुआ है । दोनों काव्यों में हृदय की सरसता तो सन्निहित है ही-वाग्वैदग्ध्य भी प्रचुर मात्रा में मिलता है और सामयिक रूचि को रंजित करने वाले गुण भी वर्तमान हैं । चुन चुन कर ऐसे स्थलों का विस्तार किया गया है, जो हृदय - स्पर्शी और मानवीय भावनाओं को विलोड़ित करने वाले हैं । 'रामचरितमानस' में विवाह के पूर्व राम-सीता का परस्पर दर्शन, राम बनवास, दशरथ की मृत्यु, भरत का अनुताप, अरण्य-पथ में सीता और ग्रामीण-नारियों का वार्तालाप, राम का विरह वर्णन, श्री हनुमान और बानरों की भक्ति, लक्ष्मण-मूर्च्छा आदि प्रसंगो का विस्तृत चित्रण हुआ है । 'पैराडाइज़-लास्ट' में ईव की क्षमा-याचना का निम्नलिखित दृश्य कितना करुण हो उठा है—

"आदम ! मेरा इस प्रकार परित्याग मत करो । भगवान् साक्षी है—तुम्हारे प्रति मेरा कितना गहरा अनुराग और श्रद्धा है । अनजाने में मैंने तुम्हें रुष्ट किया है और दुर्दैव द्वारा मैं छली गई हूँ । मैं तुम्हारे चरणों में गिर कर तुम्हारे अनुग्रह की भीख मांगती हूँ । मुझे छोड़ो नहीं, मेरा आश्रय और कहां है ? तुम्हारी कृपा दृष्टि, तुम्हारी सहायता और तुम्हारा पथ-प्रदर्शन ही मेरा सम्बल है, तुम्हीं मेरी शक्ति और जीवन की पूंजी हो । तुमसे बिछुड़ कर मैं कहां

जाऊंगी, कैसे रहूँगी। जब तक हम जीवित हैं, तब तक इस थोड़े से अवकाश को छोड़ कर—हम शान्ति लाभ करें।

रोते रोते उसने अपना वक्तव्य समाप्त किया। उसकी दयनीय स्थिति पर आदम द्रवीभूत हो उठा, उसका हृदय हिल गया। कुछ क्षण पूर्व ही जो उसकी प्राणप्रिया और जीवन सहचरी थी - वह अब दारुण शोक में डूबी हुई उसके चरणों में पड़ी उसके प्रेम की भीख मांग रही थी। अपूर्व सुन्दरी और कोमलांगी हो कर भी वह उसकी कृपा पर निर्भर थी। वह ही उसका पथ-प्रदर्शक और सहायक था, जिसे कि उसने भूल से नाराज कर दिया था, किन्तु जिसके बिना उसका एक हाथ मानो टूटा हुआ था। उसका क्रोध शीघ्र ही शान्त हो गया और प्रेम भरे शब्दों में उसने उसे आश्वासन देना प्रारम्भ किया।"

भाषा

इन दोनों महाकवियों की भाषा अत्यन्त परिमार्जित, प्रौढ़ और व्यवस्थित है और पद-विन्यास व अलंकार-योजना भी अपने ढंग की बेजोड़ है। तुलसीदास की विशेषता है कि उन्होंने अपनी भाषा में संस्कृत-शब्दावली का दूध-पानी का सा अपूर्व मिश्रण किया है और प्रसंगानुकूल कहीं उनकी भाषा सरल, कहीं अत्यन्त गरिमामयी, कहीं अत्यधिक चिन्तन करते हुए गूढ़ और अंतर्मुखी होती गई है। व्यर्थ के शब्दाडम्बर और वाग्जाल में वे कहीं नहीं उलझे हैं और अलंकारों की योजना भी इस ढंग से हुई है कि वे अपनी अलग चमक-दमक न दिखा कर भाव-व्यंजना में सहायक होते हैं। मिल्टन की भाषा परिमार्जित और ठोस होते हुए भी कहीं कहीं क्लिष्ट और अस्वाभाविक हो गई है तथा होमर, दांतें आदि महाकवियों की काव्य-पद्धति का अनुकरण करने से उसमें लैटिन आदि विदेशी शब्दों का बाहुल्य और दुरूहता आ गई है। मिल्टन ने अपने काव्य की रचना मुक्तक छन्द में की है, तुलसीदास ने तत्कालीन प्रचलित सभी काव्य-शैलियों को अपनाया है। मिल्टन की रस-धारा कभी टकराती, अवरुद्ध होती, बंधी हुई सी चलती है--तुलसीदास में छलकता रस-प्रवाह है, जिसके अमृतमय रस-कणों का आस्वादन कर पाठक विचित्र आनंदानुभूति से भर जाता है। मिल्टन में एकांगिता है, तुलसीदास में सर्वांग पूर्णता। मिल्टन के काव्य में वैयक्तिकता अधिक है, तुलसीदास के काव्य में सामाजिक-सद्भावना की प्रचुरता है। मिल्टन में भावों की परिशुद्धि और ईश्वरीय-न्याय की रक्षा की गई है। तुलसीदास में ईश्वर-भक्ति और सांसारिक-उपरामता पर जोर दिया गया है। मिल्टन की प्रवृत्ति भीतर से बाहर की ओर है, तुलसीदास की बाहर से भीतर की ओर। मिल्टन में आत्महित-भावना निहित है, तुलसीदास में लोक-हित भावना

दृष्टिगत होती है। किन्तु इन सब असमानताओं के बावजूद भी उनकी असाधारणता इस बात में है कि अपने भावों की उत्कर्ष-व्यंजना के लिये अंतस्साधनाओं में प्रवृत्त और मन के भीतर ही दिव्य सौन्दर्य का साक्षात्कार करने वाले इन चिन्तनशील, रहस्यदर्शी साधकों ने अपनी कला में जीवन की गहनतम अनुभूतियों को अन्तर्हित कर इतिहास और कल्पना का अभूतपूर्व सामञ्जस्य किया तथा तत्कालीन धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक स्थिति का भी आभास कराया। यद्यपि राम का मर्यादा-पूर्ण जीवन और लोक-शिक्षा का आदर्श तो कथा रूप में बहुत दिनों से चला आ रहा था - उसी प्रकार 'पैराडाइज़ लास्ट' के आदम और ईव की कहानी भी बहुत प्राचीन थी - तथापि अपनी लोकोत्तर और बहुमुखी प्रतिभा से जो महान संदेश उन्होंने दिया तथा मनोरम एवं भावपूर्ण कथानक के साथ साथ जो धार्मिक और दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण किया—वह अद्वितीय है।

इसके अतिरिक्त उनके ऐतिहासिक पात्रों के चरित्र-चित्रण का अंश भी कोई ऐसा उनकी दृष्टि से अछूता नहीं बचा, जिसको इन कवियों ने झांक-झांक कर व्यक्तिगत रूप से न देखा हो और उनकी भिन्न-भिन्न विशेषताओ को पृथक्-पृथक् रूप में संकलित करके न दर्शाया हो। आज से सहस्त्रों वर्ष पूर्व उत्पन्न हुए राम-सीता और आदम-ईव के सदृश होते हुए भी तुलसी और मिल्टन के काव्यों के महानायक और महानायिका-शरीर और आत्मा से उनसे कुछ भिन्न, सघन तमिस्रा में उद्भूत आलोक-रश्मिवत्, नीहार में से झलमलाते सूर्य बिम्ब जैसे, आसमान में छितराये घनपटलों के मध्य से झांकते हुए चन्द्रवदन से दीख पड़ते हैं। हमारे जैसे मानवाकार होते हुए भी वे हमसे भिन्न हैं, हमारे सम्मुख होते हुए भी पहुंच से बाहर हैं और परिचित होते हुए भी अगोचर और कल्पनातीत हैं। इन दोनों अन्तर्द्रष्टा कलाकारों ने अपनी अद्भुत कल्पना-शक्ति, सूक्ष्म-विश्लेषण-बुद्धि और हृदय का रस निचोड़ कर उनके चारों ओर सौन्दर्य की सृष्टि कर दी, अपनी स्रोतभूत आत्मा से निस्सृत होने वाले असंख्य ज्ञान स्फुलिंगों को एकत्र कर अखण्ड प्रकाश बिखेरा और जीवन तत्वों की समष्टि कर काव्य-धारा में प्रस्फुरित किया। किन्तु ध्यान से देखने पर एक बात दर्शनीय है-जो भाव-विशदता, व्यापक ज्ञान और जीवन के निगूढ़ तत्वों की व्याख्या हमें तुलसीदास में मिलती है-वह मिल्टन में नहीं मिलती। एक काव्यकार की कला का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत और व्यापक होता है। काव्य का निर्माण मानवता के लिये और उसका उत्तरदायित्व मानवता के प्रति है। मैथ्यू आर्नल्ड ने काव्य को जीवन की आलोचना बतलाया है। प्रसाद के शब्दों में "काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध

विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञान-धारा है। – – – आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था, जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में संकल्पात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है।"

सत्काव्य के सृजन के लिये मानव जीवन की चित्य बातों और जगत् के नाना रहस्यों का जितना ही काव्यकार को ठोस ज्ञान और प्रगाढ़ अध्ययन होगा - उसकी कृति में उसके विचार उतने ही परिमार्जित और पुष्ट हो कर निकलेंगे। जीवन की व्यापकता और उसकी सफल अभिव्यक्ति ही साहित्य और कला की चिरंतन चेष्टा है, जिसमें आत्मा का सत्य और सौन्दर्य मिलकर शिवरूप हो मानव-कल्याण करता है। तुलसीदास जीवन के कवि हैं - उनके 'रामचरितमानस' में मानव की अन्तर्वृत्तियों को स्पर्श करने की शक्ति है—यही कारण है कि 'मानस' जनता के जीवन में घुल मिल गया है और उनकी शाश्वत अनुभूतियों का दिग्दर्शन कराता है। तुलसीदास जिस प्रकार जीवन के अंधकारपूर्ण रहस्यों का उद्घाटन करने में सिद्ध-हस्त हैं - उसी प्रकार मानव की कोमल अन्तर्वृत्तियों के निरूपण में भी निपुण हैं-किन्तु मिल्टन की कला में चिरंतन सत्य का सुन्दर सम्मिश्रण होते हुए भी मानव जीवन के आदर्शों, भावनाओं, अन्तर्जगत् और वहिर्जगत् की विभिन्न समस्याओं का पूर्ण समाधान नहीं मिलता। उनकी वाग्धारा परिमित परिधि में प्रवाहित होती है और जीवन के उन उच्च स्तरों को स्पर्श नही करती, जहां मनुष्य आनन्द विभोर हो पुलकित हो उठता है। अंग्रेजी समीक्षक बेली ने एक स्थल पर लिखा है, "मिल्टन की प्रवृत्ति सर्वसाधारण के छोटे-मोटे कामों में घुसने की कभी न हुई।" डाक्टर जानसन लिखते हैं, "मिल्टन ने कभी मानव प्रकृत्ति का अध्ययन नहीं किया। चरित्रों की छाया से भी वे दूर रहे और अन्तर्द्वन्द्व, जीवन-संघर्ष, परेशानियों और उलझनों में भी वे कभी न उलझे। उन्होंने पढ़ा बहुत अधिक था और पुस्तकें जो उन्हें सिखा सकती थीं-वही उन्होंने जाना और समझा। संसारी लोगों से वे बहुत कम मिलते थे-अतएव अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान की उनमें सदैव कमी रही।"

मिल्टन में उच्च कोटि की प्रतिभा, उच्च कोटि की कल्पना और भावगाम्भीर्य होते हुए भी विचारों की सदाशयता और सुबोधता न थी। उनके काव्य में उनका गम्भीर - चिन्तन अंट नहीं सका, वह अवरूद्ध हो कर पनपने से रह गया। जिन ग्रीक एवं लैटिन महाकवियों के अनुकरण पर वे अपने काव्य की रचना करना चाहते थे, जिन जिन पद-योजना और विशिष्ट उपमा-उत्प्रेक्षाओं की सहायता से वे अपनी भाषा को गम्भीर व ठोस बनाना चाहते थे - उसके अनुरूप अंग्रेजी भाषा

तब तक समृद्ध और विकसित न हुई थी, फलतः उनकी गहन कल्पना, अप्रतिम उद्गार और घनीभूत-चिन्तन का बोझ सम्हालने में वह असमर्थ सी रही, जिसका परिणाम यह हुआ कि सर्व साधारण को मिल्टन का 'पैराडाइज़ लास्ट' कभी उतना प्रिय न हुआ जितना कि तुलसीदास का 'रामचरितमानस' भारत में सभी के गले का हार बन गया।

तुलसी-ग्रन्थावली में पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं:—

"तुलसी के 'मानस' से रामचरित की जो शील शक्ति और सौन्दर्यमयी स्वच्छ धारा निकली, उसने जीवन की प्रत्येक स्थिति के भीतर पहुंच कर भगवान् के स्वरूप का प्रतिबिम्ब झलका दिया। रामचरित की इसी जीवन-व्यापकता ने तुलसी मत की वाणी को राजा, रंक, धनी, दरिद्र, मूर्ख, पण्डित सब के हृदय और कण्ठ में सब दिन के लिए बसा दिया। किसी श्रेणी का हिन्दू हो, वह अपने प्रत्येक जीवन में राम को साथ पाता है—सम्पति में, विपत्ति में, घर में, बन में, रणक्षेत्र में, आनन्दोत्सव में, जहां देखिये—वहां राम। गोस्वामी जी ने उत्तरापथ के समस्त हिन्दू जीवन को राममय कर दिया। गोस्वामी जी के बचनों में हृदय को स्पर्श करने की जो शक्ति है-वह अन्यत्र दुर्लभ है, उनकी वाणी की प्रेरणा से आज हिन्दू-जनता अवसर के अनुसार सौन्दर्य पर मुग्ध होती है, महत्व पर श्रद्धा करती है, शील की ओर प्रवृत्त होती है, सन्मार्ग पर पैर रखती है, विपत्ति में धैर्य धारण करती है, कठिन कर्म में उत्साहित होती है, दया से आर्द्र होती है, बुराई पर ग्लानि करती है, शिष्टता का अवलम्बन करती है और मानव जीवन के महत्व का अनुभव करती है।"

तुलसीदास का आदर्श राम-कथा का प्रचार कर समग्र मानवता की सेवा करना था, किन्तु मिल्टन को जीवन की बिखरी हुई वस्तुओं से कभी लगाव न हुआ। उन्होंने कल्पना के उच्च शृंग से नीचे झांक कर तो देखा, किन्तु उनकी दृष्टि वहां कभी रमने न पाई - तो भी जो उनकी भाषा और शैली, दार्शनिक चिन्तन और गम्भीर विचार-धारा के मर्म में पैठ चुका है - वह सुगमता से वहां दबे रत्नों का अन्वेषण कर सकता है।

—०—

टालस्टॉय और टैगोर

जन्म—सन् १८६१
मृत्यु—सन् १९४१
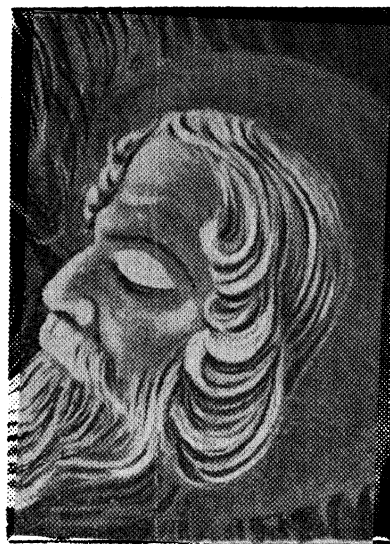
श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर
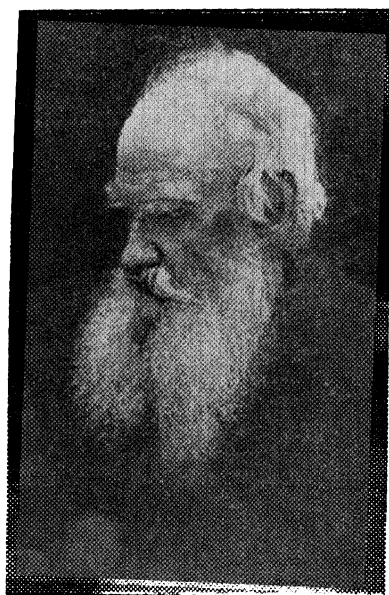
जन्म—सन् १८२८
मृत्यु—सन् १९१०

रूस के कलाकार
काउण्ट लियो निकोलविच टालस्टॉय

विराट्-साक्षात्कार से रंजित महाकवि की कल्पना विस्मय-विमुग्ध जब चिरंतन सत्य के दर्शन में खो जाती है तो उस के हृदय में क्षण-प्रतिक्षण भाव-ऊर्मियों का उद्वेलन होता है - वह सहसा गा उठता है:—

निभृत ए चित्त माझे निमेषे निमेषे वाजे
जगतेर तरंग आघात
ध्वनित हृदये ताइ मुहुर्त्त विराम नाइं
निद्राहीन सारा दिन रात ।
ए चिर जीवन ताइ आर किछू काज नाइ
रचि' शुधू असीमेर सीमा
आशा दिये भाषा दिये ताहे भालवासा दिये
गड़े' तुलि मानसी-प्रतिमा ।

'पल-पल में इस शून्य हृदय में जगत् की तरंगों का आघात टकरा रहा है । उसी की प्रतिध्वनि सुन पड़ती है - क्षण भर का विश्राम नहीं - अहर्निश पलक झांपने को भी नहीं मिलता । जीवन की इन लम्बी, दुरूह घड़ियों में और कुछ काम नहीं । निस्सीम को सीमा में बांधना है—आशा, भाषा और हृदय के सद्भाव अर्पण कर एक मानसी प्रतिमा का निर्माण करते रहना है, उसी की सृष्टि करनी है ।'

कवि आंखें फाड़ कर देखता है । उसके समक्ष दूर - बहुत दूर तक प्रकृति का विराट् वैभव बिखरा पड़ा है । हरीतिमा में ओतप्रोत प्रकृति-बाला का लहलहाता परिधान, धूल के धवल-कणों पर बिखरी स्वर्णिम किरणें उसके आभरण से प्रतीत होते हैं । सौन्दर्य-विभोर कवि आश्चर्य से भर जाता है । प्रणय के अनिर्वचनीय भाव-बंध को, अंतस्तल के चिर प्रसुप्त भाव-पटलों को झकझोरने वाली यह कौन ? वह अवाक् सा प्रश्न कर बैठता है और अणु अणु के साथ उसकी अनुभूति समरूप हो झंकृत हो उठती है:—

ना जानि केनरे एतदिन परे
जागिया उठिल प्राण
ओरे, उथिल उठेछे वारि

ओरे, प्राणेर वासना प्राणेर आवेग
रुखिया राखिते नारि ।

'न जाने क्यों इतने दिनों पश्चात् मेरे प्राण जाग उठे हैं, भाव-वारि तरंगित हो रहा है। प्राणों की वासना, प्राणों के आवेग को रोक सकने में समर्थ नहीं हो रहा हूं ।'

अनादि काल से आत्मैक्य के लिए मानव-मन में गहरी उथल-पुथल है। वह लोकोत्तर, दुष्प्राप्य, अगाध और शब्दातीत अनन्त में लीन होकर उसकी थाह पाने के लिए आतुर है। नीरव-हृदय में स्निग्ध बातायन कभी प्रेम और आनन्द की रसमयी धारा का उद्रेक कर जाती है और तब शत-लक्ष परिधियों को तोड़ कर महाकवियों की वाणी अंतर्जगत् के महापथ का अनुसरण करती हुई परस्पर टकरा जाती है।

बचपन–

२८ अगस्त, सन् १८२८ में रूस की धरती पर यासनाया पोल्याना ग्राम में एक सुन्दर, गौरवर्ण, प्रशस्त-ललाट बालक ने जन्म लिया था, जो कालान्तर में रूस का ही नहीं, प्रत्युत् विश्व-साहित्य को गौरवान्वित करने वाला लेखक सिद्ध हुआ। बालक टालस्टाय (जिसका कि पूरा नाम काउन्ट लियो निकोलविच टाल-स्टाय था) दो वर्ष का भी न होने पाया था कि माता का देहांत हो गया और पिता व नौकरों के संरक्षण में उनका लालन-पालन होने लगा। बाल्यावस्था की धुंधली स्मृतियों में एक कटु अनुभूति जो उन्होंने कभी तीव्रता से अनुभव की होगी टालस्टाय ने अपनी पुस्तक 'संस्मरण' (Recollections) में लिखी है कि किस प्रकार नर्स स्नान कराते हुये टब में बैठा कर उनके कोमल अंगों को जोर से रगड़ती, उनके शरीर को झकझोरती और फिर उष्ण जल को साबुन से चिरमिराते बदन पर छोड़ती थी। कभी वह उन्हें डराने-धमकाने की गरज़ से भयानक जन्तुओं का नाम लेदेती और तब उनका कोमल-हृदय भय से कांप उठता। टालस्टाय ने अपने फेमिली-ट्यूटर के सम्बन्ध में भी उद्गार व्यक्त किये हैं और तत्कालीन शिक्षा प्रणाली की निन्दा की है। उन्होंने लिखा है कि नृत्य की शिक्षा प्राप्त करते हुये यदि कहीं भी पैर लड़खड़ा जाते थे अथवा अभ्यास की कमी से ठीक न पड़ते थे तो जोर से सनसनाती ट्यूटर की छड़ी पड़ती थी जिससे नितांत कष्ट होता था और आंखों में आंसू बह निकलते थे ।

सुखद स्मृतियों में सब से मधुर स्मृति थी टालस्टाय को अपनी स्नेहमयी जननी की, जिसकी प्यारी याद उनके जीवन की अमूल्य निधि थी। मां की मृत्यु के

टालस्टॉय
यासनाया पोल्याना से मोरक्को की
सड़क पर जाते हुए

★

★

टालस्टॉय अपनी पत्नी के साथ
मृत्यु के ६ सप्ताह पूर्व

ही नहीं, किन्तु जब उन्हें समझ पड़ा तो वे भी अपनी हंसी न रोक सकीं। मैं अपने पिता की विशाल हृदयता पर मुग्ध हो उठा और उनसे विदा लेते समय मैंने अत्यन्त श्रद्धा के साथ उनके हाथों का चुम्बन किया।"

टालस्टाय के परिवार में एक चचेरी बहिन भी रहती थी, जिसका पति विवाह के कुछ दिन बाद ही पागल हो गया था और जो अत्यन्त दीन-हीन, विपन्नावस्था में रहकर नित्य प्रति धार्मिक पुस्तकों का पारायण कर अपना समय बिताती थी। एक और दूर की वृद्धा बुआ,जो टालस्टाय को बहुत प्यार करती थी, इनके साथ ही रहती थी। इन दोनों की धार्मिक भावना का टालस्टाय के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा था।

इसी प्रकार की अनगिनत बाल-स्मृतियां उनकी पुस्तक में इतस्ततः बिखरी पड़ी है, जिनकी अन्धकारमयी सघनता में वे आशा और आनन्द की रश्मियों का नित्य अवलोकन करते थे। यासनाया पोल्याना के सुखद वातावरण में उन्होंने न जाने कितनी बार झिलमिल तारों के प्रकाश, पूर्ण विकसित चन्द्र, बादल के छोटे छोटे उड़ते सफेद टुकड़े, खिले पुष्प, पत्ते, वृक्ष, पक्षी, जानवर आदि को देख उनके मर्म में पैठ जाने की विफल चेष्टा की थी और भगवत्सृष्टि की अलौकिकता पर उनका मन न जाने कितनी बार विस्मय-विमुग्ध हो उठा था। ज्यों ज्यों उनकी आयु बढ़ रही थी-उनके जीवन में एक मानसिक एकाकीपन का भाव पैदा हो रहा था, जोकि एक चिन्तनशील विदग्ध लेखक के मस्तिष्क की प्रारम्भिक पृष्ठभूमि थी।

ठीक ये ही भाव जोड़ासांको के बालक रवीन्द्र के मन में भी उठते थे। उनकी मां प्रायः अस्वस्थ रहती थी, पिता बाहरी कार्यों में व्यस्त थे। जैसा कि प्रायः सम्पन्न घरों में होता है-वे नौकरों के निरीक्षण में पल रहे थे–बड़े हो रहे थे। नौकर उन्हें बाहर न जाने देते थे। कमरे की सीमा में ही उन्हें बैठने, खेलने, खड़े होने की इजाज़त थी, अतएव एकान्त में रहते रहते उनकी प्रवृति भी अंतर्मुखी होती जा रही थी। किन्तु इस सबके बावजूद भी उनकी बुद्धि इतनी प्रखर थी कि कमरे की चहार दीवारी में बन्द रहकर भी वे कल्पना के पंखों पर बैठकर सुदूरवर्ती देशों का भ्रमण करते। विश्व का कोलाहल उन्हें अपने एकान्त, सूने हृदय में सुनाई पड़ता और बाहर प्रकृति की सुरम्यता और फैलाव को वे चुपचाप खिड़की से झांक कर देखा करते। प्रकृति के मादक-सौन्दर्य का पर्यवेक्षण कर उनका हृदय आनन्द से भर जाता, कभी उषाकाल की सुनहरी किरणों के सम्पर्क से चमकती ओस-मुक्ताओं को निरख उनमें बाल-सुलभ कौतूहल जाग्रत होता। कभी नील, विस्तृत गगन, कभी

भीनी बयार से प्रकम्पित वृक्षों के हिलते पत्ते और कोयल-सारिकाओं का उझक उझक कर फुदकना, कभी अपने घर के बगीचे अथवा बेर, नारियल, आंवले, मिट्ठे आदि के वृक्ष बालक रवीन्द्र के मन को मुग्ध कर लेते। कल्पना के व्यूह में बन्दी होकर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उनमें सतत जागरुकता एवं आत्मनिष्ठा बनी रहती।

टालस्टाय की भांति रवीन्द्रनाथ ने भी 'मेरे बचपन के दिन' नामक पुस्तक में अपनी बाल्यावस्था के मोहक चित्र खींचे हैं। पुस्तक पढ़ने से ज्ञात होता है कि उनकी उन्मुक्त आत्मा कोई बन्धन न चाहती थी। नौकरों के कटु-व्यवहार और शिक्षकों के कठोर अनुशासन से उनका मन विक्षुब्ध हो उठता। स्कूल का वातावरण भी उनके अनुकूल न था। क्लास में पढ़ाई चलती रहती और उनका मन-पंछी न जाने कहां कहां विचरण करता। फिर वे पढ़ाई से बचने के लिये तरह तरह के बहाने ढूंढने लगे। वे चाहते थे-किसी तरह बीमार हो जाऊं और इस पढ़ाई से पिण्ड छूटे। सर्दी की ठण्डी रात्रि में कभी खुली छत पर जा लेटते, कभी घुटने घुटने जल में जा खड़े होते और जूतों को भिगो कर दिन भर घूमते रहते, जिससे ज्वर हो जाए अथवा जुकाम हो जाए और स्कूल न जाना पड़े। मास्टरों और ट्यूटरों का भी दिन भर तांता सा लगा रहता। बालक रवीन्द्र को क्षणभर खेलने, सोचने, सांस लेने तक का अवकाश न था। उनका मन विद्रोह कर उठता। आयु छोटी होते हुये भी उनमें तीव्र अनुभूति-शक्ति एवं गहरी संवेदनशीलता थी। शिक्षकों के समक्ष वह हठ पकड़ लेते और पढ़कर न देते। "मेरे बचपन के दिन" पुस्तक में वे एक स्थल पर लिखते हैं :—

"दिये के धुंधले प्रकाश में मुझे मास्टर महाशय प्यारे सरकार लिखित पहली पोथी पढ़ाया करते थे। किताब खोली कि मुझे जंभाई आई और आंखों में न जाने कहां से अक्षय्य नींद फूट पड़ी। मैं बार बार अपनी आंखें मींजता, पर नींद कम होने का नाम न लेती। बीच बीच में मुझे मास्टर साहब के एक अन्य सुयोग्य शिष्य सतीन की प्रशंसा भी सुनने को मिलती, जिसने ऐसा गज़ब का दिमाग़ पाया था कि उसके समान मेधावी बालक शायद ही कलकत्ते में दूसरा होगा। उसे जब नींद लगती तो आंखों में सुरती मल लिया करता और इस प्रकार कभी कभी तो वह रात भर पढ़ता ही रह जाता। ऐसा होनहार विद्यार्थी था वह! और मैं? मेरे बारे में कुछ कहना ही बेकार था; मास्टर साहब की सम्मति थी कि अपने कुल में सबसे गाबदी मैं ही रहूंगा। पर उनकी यह धमकी भी मेरी नींद पर कुछ असर न करती और ज्यों ही नौ बजते और मुझे छुट्टी मिलती कि मैं झट अन्दर पहुंचता।"

रवीन्द्र बाबू के पिता महर्षि श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर बहुत ही उदार और धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्हें निर्जन, एकान्त, शान्त स्थानों में बैठकर चिंतन रत रहना अच्छा लगता था। पिता महर्षि का अपने पुत्र पर अनुग्रहपूर्ण स्नेह था। हिमालय के प्रवास में उन्होंने इन्हें साथ ही रक्खा। पर्वत के सर्वोच्च शृंग पर एक कुटिया थी, जिसमें पिता-पुत्र दोनों रहते थे। चतुर्दिक मनोरम, उल्लास-मय वातावरण, धवल हिम-राशि पर सूर्य की किरणों का नर्त्तन और घनी हरियाली में हवाई अठखेलियां-ये दृश्य बालक रवीन्द्र के मन को आकर्षित कर लेते। यहीं से उन्होंने प्रकृति में विभोर होना सीखा और यहीं से उनके हृदय का सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के साथ समन्वय हुआ।

बंगाल के बोलपुर ज़िले में महर्षि ने शांतिनिकेतन की स्थापना की थी, जहां वे अध्यात्म चिन्तन और दर्शन-ग्रन्थों का अनुशीलन किया करते थे। रवीन्द्र नाथ ने यह स्थान बहुत पसन्द किया और अपने पिता के साथ कुछ दिन वे यहां रहे। यहां की प्राकृतिक-शोभा में वे अपने अस्तित्व को भुला देते और अपने हृदय-दर्पण में सृष्टि के विराट्-रूप का दर्शन कर फूले न समाते। सात वर्ष की आयु में उन्होंने अपनी सबसे पहली कविता लिखी थी, जिसे पढ़कर उनकी विलक्षण प्रतिभा पर सभी आश्चर्य चकित रह गये थे।

प्रतिभा सम्पन्न बालक टालस्टाय ने भी नौ वर्ष की अवस्था में अपनी पहली कविता "टुमाइ डीयर आण्टी" (To my dear Auntie) लिखी थी, जिसका भावार्थ निम्नलिखित है :—

"मेरा चाहा खुशी का दिन आ गया है। मै प्रसन्नतापूर्वक यह सिद्ध कर सकता हूं कि मेरी मां जब मुझे दुलारती और प्यार करती थी तब मैं निरा मूक और जड़ न था।

और अब तो मैं सब कुछ अच्छी तरह समझने लगा हूं। जो कुछ तुमने मेरे लिये किया उसे कभी न भूल सकूंगा। तुमने अपना सारा जीवन ही हमारे लिये अर्पित कर दिया। तुम्हारा हृदय कितना विशाल है और आत्मा कितनी महान्।

मैं इस अनिर्वचनीय सुख का आस्वादन कर रहा हूं, जो आज दिन मेरे हिस्से में पड़ा है। मैं हृदय से यह इच्छा करता हूं कि भगवान् तुम्हें तुम्हारे सत्कार्यों के लिये आशीर्वाद दे।

कदाचित् हमारी देखभाल के लिये वह फिर सौभाग्य-देवी को हमारे यहां भेजे। तब फिर वही पहली सुख-शांति हम पर बरसेगी और हम आनन्द और सुख से रह सकेंगे।

उन पूर्व दिनों की स्मृति में आज का दिन मेरे लिये अत्यन्त सुखमय और कल्याणकारी हो गया है। मैं चाहता हूं—तुम्हारे जीवन का स्रोत हमेशा स्वच्छ और चमकते जल से लबालब भरा रहे।"

इस कविता से बालक टालस्टाय की चिंतन-शक्ति की गहराई का आभास मिलता है, जो उनकी भावी प्रबुद्धता और अन्तर्चेतना का परिचायक है।

श्रृंगार भावना

टालस्टाय और टैगोर दोनों का ही जीवन विधाता ने अत्यन्त घटनापूर्ण और औपन्यासिक-क्रम से बनाया था। दोनों के ही जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आए और अघटित घटनायें घटी। दोनों ही राजकीय-वंश में उत्पन्न हुये और सुख-ऐश्वर्य में जीवन बिताया। दोनों के यौवन में एक उन्माद था—एक श्रृंगारिक-भावना, जिसमें आध्यात्मिक-चेतना का भी साथ ही साथ प्रस्फुरण हो रहा था। आध्यात्मिक-आनन्द की अनुभूति एवं वासनात्मक-प्रेम के प्रति आकर्षण—दोनों प्रवृत्तियों का द्वन्द्व इन कलाकारों की युवावस्था की कृतियों में परिलक्षित होता है। यौवन के विलास-विभ्रम में दोनों के हृदय उफने पड़ रहे थे। सांसारिक-सौन्दर्य उन्हें अपनी ओर खींच रहा था—उनके प्रसुप्त-भावों को गुदगुदा रहा था, झकझोर रहा था। उषाकालीन लालिमा को देख उनका हृदय अनुरंजित हो उठता था, चन्द्र की स्निग्ध ज्योत्स्ना को देख भोगजन्य-सुख की सुधि कर तड़प उठता था, रजनी की मादकता का अनुभव कर बरबस चंचल हो उठता था। रवीन्द्रबाबू के मन के इस आकस्मिक परिवर्तन की सूचना हमें 'प्रभात-संगीत' द्वारा मिलती है।

सहसा आजिए जगतेर मुख
नूतन करिया देखिनु केन
एकटि पखीर आध खानि तान
जगतेर गान गहिल जेन।

'न जाने आज सहसा जगत् का मुख नया क्यों दीख रहा है, मानों एक पक्षी की अर्धतान ने ही जगत् के संगीत को उड़ेल डाला।"

'प्रकृतिर-प्रतिशोध', 'छवि ओ गान' और 'कड़ि ओ कोमल' आदि रचनाओं में यौवन का उन्मत आनन्द छलका पड़ रहा है।

बहु दिन परे आजि मेघ गेछे चले,
रविर किरण सुधा आकाशे उथले।

स्निग्ध श्याम पत्रपुटे आलोक झलकि उठे
पुलक नाचिछे गाछे गाछे ।
नवीन यौवन येन प्रेमेर मिलने कांपे
आनन्द विद्युत आलो नाचे ।

'बहुत दिनों के पश्चात् आज मेघ चले गये । सूर्य की अमृतमयी रश्मियां आज सारे आकाश में प्रेम-सुधा बरसा रही हैं । स्निग्ध-श्याम-पत्र-पुटों में आलोक झिलमिला रहा है, वृक्ष वृक्ष पर पुलक आनन्द नाच उठा है । प्रणय-मिलन के नवीनोन्माद में हृदय में सिहरन हो रही है और आनन्द का विद्युत-प्रकाश नर्तन कर उठा है ।'

इन दिनों की रचित टैगोर की कवितायें प्रेमरस से सराबोर हैं, उनमें हृदय का उन्माद स्पन्दित हो रहा है । कवि को समस्त प्रकृति एक रूपसी नारी की भांति अलसाई अंगड़ाई लेती और बड़ी अदा के साथ आंखमिचौनी करती सी प्रतीत होती है । उसके अंग अंग में विलास है, रम्य चारुता है, चपलता है, यौवन की क्रीड़ा है । कवि अपने भावों को रोकने में समर्थ नहीं हो रहा है ।

आमार यौवन-स्वप्ने येन छेये आछे विश्वेर आकाश,
फुल गुलि गाये ऐसे पड़े रूपसीर परशेर मतो ।
पराणे पुलक विकाशिया बहे केन दक्षिण बातास,
जेथा छिल जत विरहिणी सकलेर कुड़ाये निःश्वास ।
शत नुपुरेर रुनझुन बने येन गुंजरिया बाजे ।
मदिर प्राणेर व्याकुलता फुटे फुटे बकुल मुकुले ।
के अमारे करे छे पागल-शून्ये केन चाइ आंखि तुले,
येन कोन उर्वशीर आंखि चेये आछे आकाशेर माझे ।

'हमारे यौवन-स्वप्न ने मानों विश्वाकाश को आच्छादित कर दिया है । पुष्प हमारे शरीर पर इस प्रकार झर रहे है जैसे किसी नव यौवना सुन्दरी का स्पर्श । प्राणों को पुलकायमान करके मलय-बातायन क्यों बह रहा है, जितनी भी वियोगिनियां हैं-उन सब के निःश्वास मानों यहां संचित हैं ।

सैंकड़ों नूपुरों की रुनझुन बन में गुंजरित हो रही है । प्राणों की मादक आकुलता बकुल-कलिकाओं में फूट-फूट पड़ती हैं । अकेला समझकर मुझे कौन पागल बना रहा है, जैसे कोई उर्वशी आकाश में आंखें बिछाये अपनी ओर बरबस खींच रही हो ।'

अपनी कुछ रचनाओं में तो रवीन्द्रबाबू ने नारी के नग्न-सौन्दर्य का चित्रण किया है, तथापि एक बात विशेष ध्यान देने की है कि उनमें देहाकर्षण की अपेक्षा भावाकर्षण का ही प्राबल्य है और पवित्र, सच्ची सौन्दर्य-भोगाकांक्षा है।

टालस्टाय की युवावस्था में एक माशा नाम की लड़की ने सर्वप्रथम उनमें वासनात्मक प्रेम जाग्रत किया। वे नैतिक-स्तर से पतित होने के कारण जीवन-पर्यन्त शर्मिन्दा रहे। अपने उपन्यास 'रिजरेक्शन' (Resurrection) में कत्यूशा के भ्रष्टाचार के सम्बन्ध में जब उन्होंने लिखा तो उनकी पत्नी ने डांटकर कहा "क्या इतने बूढ़े होकर भी तुम्हें ये बातें लिखना शोभा देती हैं," और टालस्टाय ने कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु उसके कमरे से बाहर जाने के पश्चात् अपने पास बैठे हुये एक मित्र से आंखों में आंसू भरकर कहा, "देखते हो-यह कैसे मुझे लज्जित करती है। जब जब मुझ से ऐसी कोई गलती हुई है तो मैं कितना रोया और पछताया हूं।"

अपने यौवनकाल में इन्द्रिय-जन्य-सुख की आकांक्षा रखते हुये भी टालस्टाय ने सदैव ऐसी बातों से घृणा की। अल्हड़ और युवा होते हुये भी उनमें तीव्र आध्यात्मिक अन्तर्चेतना थी और वे अपने हृदय को नित्य टटोल कर देखते रहते थे। कभी कभी सोते हुये नक्षत्रों भरे नीलाकाश में वे घण्टों प्रेम भरे स्वप्न देखते और उस उन्मत मादकता में वे उस दिव्य-सौन्दर्य को खोजना चाहते जो उनके गन्दे विचारों का परिष्कार करे। एक चिन्तनशील युवा दार्शनिक की भांति उन्होंने अपने प्रेम को तीन भागों में विभक्त कर दिया था—प्रेम, सौन्दर्य और समर्पण में। उन्होंने अपनी प्रेयसी की एक कल्पित तस्वीर मन ही मन गढ़ली थी, जिसमें उनकी सरस एवं स्निग्ध भावनायें केन्द्रित थीं। वह सुन्दर प्रतिमा उनके मानस में अंतर्निहित थी और उनमें अव्यक्त आकांक्षाओं की सृष्टि करती थी। अपनी प्रेयसी को वे सर्वत्र ढूंढ़ते थे और आशा-निराशा के झकोलों में उनका मन सदैव दोलायमान रहता था। कभी कभी बहुत सोचने पर वह उनकी कल्पना में आ जाती थी, किन्तु वातावरण की तरलता और प्रकृति का उन्मुक्त सौन्दर्य उनमें व्यथा और असंतोष उत्पन्न कर देता। कभी कभी वह बिल्कुल सजीव होकर उनके नेत्रों के समक्ष आ खड़ी होती—दुखी और आकुल सी; सौन्दर्य, प्रेम और आकांक्षा की साक्षात् प्रतिमा सी और तब टालस्टाय की दृष्टि में सारा विश्व ही बदल जाता। अणु अणु से प्रेम उच्छ्वसित हो उन्हें झकझोर देता, तारागण हिल उठते, पुष्प-पत्रों और लताओं में आनन्द की लहरें लहरा उठतीं और सर्वत्र आनन्द ही आनन्द फूटा पड़ता सा दिखाई देता। किन्तु जैसे ही रात्रि की बोझिल स्वप्निलता भंग होती और अंधकार

की सघनता बढ़ती जाती कोई जैसे उनके कानों में कहता सा प्रतीत होता "यही सब कुछ नहीं है। सच्चा सुख, दिव्य आनन्द तो कहीं और है, इससे परे की चीज़ है।" सुन्दर प्रतिमा तत्क्षण अन्तंध्यान हो जाती और एक अनिर्वचनीय भावना उनके हृदय में जगा जाती कि कोई अदृष्ट शक्ति है, जोकि समस्त सुख सौन्दर्य का चिरंतन स्रोत है और तब आनन्दाश्रु उनके नेत्रों में छलछला आते और वे ब्रह्मानन्द की अनुभूति में सुध-बुध भूल जाते।

नैराश्य

किन्तु इन दोनों कलाकारों के जीवन में ऐसा समय भी आया जब दुःख और निराशा ने उन्हें आच्छन्न कर लिया। रवीन्द्रबाबू जमींदारी आदि की व्यवस्था छोड़कर अपनी पत्नी श्री मृणालिनी देवी के साथ शांति-निकेतन में आ बसे थे और दोनों पारस्परिक सहयोग-साधना से उसे उन्नत बनाने की चेष्टा कर रहे थे, किन्तु अकस्मात् दुर्भाग्य का झोंका सा आया। अभी उन्हें यहां आये एक वर्ष भी न होने पाया था कि मृणालिनी देवी का आकस्मिक निधन हो गया। इससे उन्हें दारुण शोक हुआ। पत्नी की मृत्यु से उनका मस्तिष्क बौखला उठा। उन दिनों वियोग-व्यथा से व्यथित होकर जो उन्होंने कवितायें लिखी हैं—वे 'स्मरण' नामक कविता-संग्रह में संकलित हैं। उनमें अत्यन्त करुण और व्यथित भावों की अभिव्यंजना हुई है।

तुमि मोर जीवनेर माझे
मिशायेछो मृत्युर माधुरी
चिर विदायेर आभा दिया
रांङा ये गियेछे मोर हिया।

'तुमने मेरे जीवन में मृत्यु की मधुरता घोल दी। चिर-विरह की आभा में तुमने मेरे हृदय को रंग दिया है।'

कवि असह्य वेदना में डूबा हुआ भी सजग एवं सचेष्ट है। उसे प्रिया के प्रेम-प्रतिदान का ज्ञान है। कभी आत्म-विभोर होने पर उसे पत्नी का दर्शन होता है और वह उससे तादात्म्य स्थापित कर लेता है :—

मृत्युर नेपथ्य हते आर बार एले तुमि फिरे
नूतन बधूर साजे हृदयेर विवाह-मन्दिरे
निःशब्द चरण पाते। क्लांत जीवनेर जत ग्लानि
घूचेछे मरण स्नाने।

मरणेर सिंहद्वार दिया
संसार हइते तुमि अंतरे पशिले आसि, प्रिया ।

'मृत्यु के नेपथ्य से एक बार पुनः तुम नवबधू के रूप में निःशब्द चरण धरती हुई मेरे हृदय के विवाह-मन्दिर में आई । मृत्यु-स्नान के पश्चात् जीवन की समस्त क्लांति दूर हो गई । हे प्रिया ! तुम मृत्यु के सिंहद्वार से वाह्य-संसार को पारकर मेरे अन्तर में आ समाविष्ट हुई ।'

अन्त में कवि की अनुभूति इतनी गहरी हो जाती है कि उसे कण कण में विश्व की छोटी से छोटी, सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु में भी पत्नी दिखाई देती है ।

मिलन सम्पूर्ण आजि हलो तोमासने
ए विच्छेद वेदनार निविड़ बन्धने ।
एशेछ एकान्त काछे, छाड़ि .देशकाल
हृदये मिशाये गेछो 'भाङि अन्तराल
तोमारि नयने आजि हेरितेछि सब
तोमारि वेदना विश्वे करि अनुभव ।

'इस विरह व्यथा के निविड़-बन्धन में आज तुम्हारे साथ मेरा मिलन सम्पूर्ण हो गया । देशकाल की परिधि का अतिक्रमण कर मेरे पास एकांत में आती हो और अंतराल को भेदकर मेरे उर में पैठ जाती हो । आज तुम्हारे नयनों में सब को देखता हूं और तुम्हारी वेदना को विश्व में अनुभव करता हूं ।'

पत्नी की मृत्यु के पश्चात् कवि की छोटी पुत्री रेणुका मृत्यु का ग्रास बनी, जिससे उनका दुःख पुनः हरा हो गया । अपने मित्र एण्ड्रूज को उन्होंने लिखा—"ये मृत्युएं मेरे लिये वरदान सिद्ध हुई हैं । मैं परमात्मा पर सब भार लादकर अब निश्चिंत हो गया । मृत्यु का यथार्थ स्वरूप अब तक मुझे मालूम न था । अब मैं अनुभव करता हूं कि मृत्यु का अर्थ है पूर्णता ।"

टालस्टाय भी जब रवीन्द्रनाथ टैगोर की भांति क्रिमियन युद्ध और सेवा-स्टपोल के संघर्षों से ऊबकर यासनाया पोल्याना में एक ग्रामीण-बालकों के लिये पाठशाला खोलकर अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा में उद्यत हुये और मानसिक-शांति प्राप्त करने की लालसा में एकान्त जीवन व्यतीत करने लगे, तभी उनपर एक पहाड़ सी विपत्ति आटूटी । कुछ दिन की बीमारी के पश्चात् उनके बड़े भाई निकोलइ, जिनपर कि उनका अत्यधिक स्नेह और श्रद्धा थी, चल बसे । इससे टालस्टाय के दिल पर गहरी ठेस लगी । अपने फेट नामक एक मित्र को उन्होंने लिखा कि निकोलइ ने

उनकी गोदी में प्राण छोड़े और उसकी मृत्यु ने उन्हें किस प्रकार विचलित और संतप्त कर दिया ।

निकोलइ का आकस्मिक निधन टालस्टाय के लिये अत्यन्त कष्टप्रद सिद्ध हुआ। कई मास तक उनका मस्तिष्क अशांत हो गया और वे कुछ न सोच सके, यहां तक कि उन्होंने अपनी डायरी भी लिखनी छोड़ दी और कई सप्ताह पश्चात् जब उन्होंने पुनः लिखना प्रारम्भ किया तो उनकी प्रथम पंक्तियां भी निकोलइ के सम्बन्ध में ही थी, "लगभग निकोलइ को मरे एक महीना हो गया। इस दुर्घटना ने मेरे हृदय को हिला दिया, मेरे जीवन को मसोस डाला। मैं अपने से पूछता हूं——ऐसा क्यों हुआ ? अब क्या होगा ? कहां जाऊं ? कैसे धीरज धरूं ? लिखने का प्रयत्न करता हूं, किन्तु जैसे मेरा सारा उत्साह ठण्डा पड़ गया, हिम्मत पस्त हो गई। आखिर लिखने-पढ़ने का महत्व ही क्या है। इसके लिये तो एकान्त बुद्धि और सुख-शांति की आवश्यकता है ।"

अपनी बुआ की मृत्यु से भी टालस्टाय को अत्यन्त दुःख हुआ और जब कुछ दिन बाद उनके एक पड़ौस का लड़का क्षय रोग से मर गया तो उन्हें संसार से घोर विरक्ति हुई। उन्होंने 'तीन मृत्यु' (Three Deaths) नाम की एक पुस्तक लिखी है, जिसमें उन्होंने मृत्यु-तत्व की विस्तृत विवेचना की है। कुछ दिन पश्चात् तो उनकी यह धारणा हो गई थी कि उनके भाई की आत्मा प्रकृति में समन्वित होकर पंच-भूतों में रम गई है ।

भ्रमण-प्रवृत्ति

इन दोनों कलाकारों के स्वभाव की एक विचित्रता यह भी थी कि उनकी प्रवृत्ति आश्चर्यजनक गतिशील और भ्रमण-प्रिय थी। वे सदैव चलते रहना पसन्द करते थे और उन्हें बाह्य एवं आभ्यंतर जीवन में कभी अवरोध पसन्द न था। कभी वे शांति चाहते तो कभी वे कोलाहलपूर्ण, अशांत वातावरण में कूद पड़ने के लिये आकुल हो उठते। एक स्थिति में रहना उन्हें भाता न था; यही कारण है कि उन्होंने अपने जीवनकाल में खूब भ्रमण किया। टालस्टाय ने काज़न यूनीवर्सिटी की शिक्षा को बीच में छोड़कर देश-देशांतरों का पर्यटन किया और रवीन्द्र बाबू ने भी पढ़ाई से ऊबकर सत्रह वर्षकी आयु में ही अपने बड़े भाई सत्येंद्रनाथ ठाकुर के साथ इंग्लैण्ड इटली, पेरिस आदि यूरोप के प्रमुख प्रमुख देशों का भ्रमण किया। अपने यूरोप के प्रवास में उन्होंने अपने सम्बन्धियों को कई पत्र लिखे हैं, जिनमें उनकी तत्कालीन भावनाओं का आभास मिलता है :—

"इंग्लैण्ड म आकर मैंने क्या देखा, जानते हो ? लोगों का व्यस्तभाव।. . . . उनके मुंह पर घबराहट झलकती रहती है । वे इस बात का हृदय से प्रयत्न करते रहते हैं कि उनका समय व्यर्थ न बीत जाए।"

एक दूसरे पत्र में उन्होंने लिखा :—

"यहां के बालकों की ऐसी स्वाधीनता और पुरुषत्व का भाव देखकर दंग रह जाना पड़ता है । इसका मुख्य कारण है—यहां के गुरुजनों का इनके कार्यों में पग पग पर बाधा न डालना और समान-भाव से व्यवहार करना।. . . . .यहां के नौकरों में दासता का भाव कितना कम है——इसे देखे बिना कदाचित् आप न समझ सकें । यहां के परिवारों में स्वाधीनता सजीव रूप से वर्तमान है—कोई किसी पर अनुचित दबाव नहीं डालता।"

टालस्टाय ने भी अपने पर्यटन-काल में डायरी और पत्रों द्वारा अपने अनुभवों को लिखा है। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि वह अपने खानाबदोश जीवन की घटनाओं और व्यक्तिगत अनुभवों को पुस्तक रूप में लिखें।

साहित्यिक-कृतियां

टालस्टाय और टैगोर—दोनों की ही विशेषता है कि प्रारम्भ से ही वैभव-पूर्ण और सुखमय वातावरण में रहते हुये भी उनमें सांसारिक उपरामता और तटस्थता का भाव विद्यमान् है । वे जीवन के प्रति आसक्त होने हुये भी अनासक्त और आग्रह शून्य हैं । दोनों की कृतियों में गम्भीरतम अनुभूति-प्रवणता, सूक्ष्माति-सूक्ष्म कल्पना, रहस्योद्भावना, क्षिप्रतम संवेदनशीलता, विलक्षण प्रतिभा और स्निग्ध-कोमल भावनाओं का दर्शन होता है । इन दोनों महान् साहित्यकारों ने अपने विपुल-साहित्यसृजन द्वारा अपने अपने देश के साहित्य-भण्डार की सम्यक् क्षतिपूर्ति की । साहित्य, संगीत, कला, नाटक, उपन्यास, इतिहास, दर्शन, समीक्षा, काव्य कहानी, राजनीति, तत्वज्ञान आदि सभी दिशाओं में उनकी प्रतिभा प्रकाशित हुई। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की यह उक्ति जो उन्होंने टैगोर के विषय में लिखी थी टालस्टाय पर भी लागू होती है, "वे उतना ही नहीं है जितना लिख गये हैं। वस्तुतः अपनी विशाल चिंतन-राशि का एक मामूली अंश ही वे दे जा सके हैं।" कहना न होगा कि दोनों का व्यक्तित्व और साहित्य इतना विशाल है कि दर्शक आश्चर्यभरी मुद्रा में आवाक् सा देखता रह जाता है और उनकी कृतियों के विपुल कान्तार में अपने को भूला भटका हुआ पाता है ।

जिस प्रकार टैगोर की प्रारम्भिक रचनाओं में बंकिमबाबू का प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है, उसी प्रकार टालस्टाय की प्रारम्भिक कृतियां भी रूसोसे अत्यधिक

प्रभावित हैं। मनुष्यों के कार्य-कलाप, मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण और व्यक्तिगत भावनाओं का चित्रण करने में टालस्टाय और टैगोर दोनों ने ही कमाल कर दिखाया है। मानव और उनके चतुर्दिक् वातावरण की घटनाएं ही उनकी कलाकृतियों की उपादान हैं और उनके सफल चित्रण द्वारा उन्होंने नित्य परिवर्तनशील समाज और राष्ट्र के रूपांतर को प्रत्यक्ष करने का प्रयास किया है।

टालस्टाय की 'चाइल्डहुड, वायहुड एण्ड यूथ' (Childhood, Boyhood and Youth) नामक पुस्तक में उच्च कोटि की बौद्धिक चेतना और जीवन के गम्भीर मर्म में पैठने की बलवती आकांक्षा दृष्टिगत होती है। यद्यपि उनकी अन्य रचनायें 'स्नोस्टार्म' (Snow Storm) 'पिलिकुश्का' (Pilikushka) 'दि टु हुसर्स' (The two Hussars) 'दि हिस्ट्री आफ हार्स' (The History of Horse) और 'फेमिली हेप्पीनेस' (Family Happiness) उतनी प्रसिद्ध नहीं हैं, तथापि उनमें तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था में छटपटाते व्यक्ति तथा रूढ़िवादी परम्पराओं और अन्धविश्वासों से प्रताड़ित मानव का, अद्भुत पर्यवेक्षण शक्ति के साथ, सूक्ष्म चित्रण हुआ है। सामाजिक-अव्यवस्थायें समाज और राष्ट्र को कितना खोखला और निर्जीव बना देती हैं—उनसे मानव की आत्मा कैसे मुक्त हो—इसी की सफल चेष्टा उनकी रचनाओं में सर्वत्र दिखाई देती हैं।

टालस्टाय के दोनों विलक्षण महाग्रन्थों 'वार एण्ड पीस (War & Peace)और 'अन्ना करेनिना' (Anna Kerenina) की रचना उनके विवाह के पश्चात् हुई। कुछ विद्वानों की सम्मति में ये विश्व के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास हैं, किन्तु यदि ऐसा न भी हो तो इतना तो निर्विवाद हं कि विश्व के उपन्यासों में इनकी महत्ता सर्वमान्य है। 'वार एण्ड पीस' में दो रूसी परिवारों का चित्रण और नेपोलियन द्वारा रूस पर आक्रमण दर्शाया गया है। उसकी विस्तृत पृष्ठभूमि में महाकाव्य की सी गरिमा, विकास और अंतर्जीवन का गम्भीरतम इतिहास निगूढ़ है। उसके प्लान में जीवन-दर्शन झलकता है और यह जीवन-दर्शन इतना व्यक्त है कि सारा उपन्यास विविध घटनाओं का एक चित्रपट सा ज्ञात होता है। इस वृहत् उपन्यास में लेखक ने मानवीय शक्ति के समन्वय का मूर्त्त रूप, चरित्र की तेजस्विता, आत्मविश्वास की दृढ़ता एवं मानव-हृदय में जो विभिन्न भावनाओं का अनवरत संघर्ष चल रहा है—उसका एक सूक्ष्म अन्वीक्षक की नाईं, दिग्दर्शन कराया है। टालस्टाय की प्रतिभा कल्पनालोक की सीमाओं को लांघकर भाव की गहराइयों में रम गई है और पाठक भाषागत लालित्य को विस्मृत कर भावानुभूति में पैठ जाने को आकुल रहता

है। ऐसा ज्ञात होता है उपन्यासकार स्वयं एक नवीन सृष्टि का सृजनहार है। उसके पात्र और चरित्रों में आश्चर्यजनक सजीवता और घटनाओं में दुर्दमनीय गतिवेग है। मारिस बेरिंग के शब्दों में "इस ऐतिहासिक उपन्यास को पढ़ते हुये यह कहने के बजाय "यह संभवतः सत्य ही होगा" अथवा "इसमें कैसी विलक्षण ऐतिहासिक गाथा वर्णित है" हम तत्क्षण यह अनुभव करते हैं मानों हमारे व्यक्तित्व का सच्चा रूप इसमें प्रकट हो रहा है तथा इन पात्रों को हम बहुत निकट से जानते और पहचानते हैं और वस्तुतः वे हमारे ही संगी-साथी और जीवन के अंग हैं।" 'वार एण्ड पीस' पढ़ने से विदित होता है कि लेखक के अंतर्मानस में बाल्यावस्था से जितनी उच्च कल्पनायें पुंजीभूत हो रही थीं एवं जितनी घनीभूत भावनायें हृदय में द्वन्द्व मचाये थीं—उन सबका विश्लेषात्मक चित्र इसमें अंकित हुआ है। विश्व-साहित्य की ऐतिहासिक महागाथाओं में इतना सच्चा और सरल चित्रण जैसा कि इसमें रोस्टोव के पारिवारिक जीवन का मिलता है, अन्यत्र न होगा। स्त्री-पात्रों में नाटाशा के सुन्दर और आकर्षक व्यक्तित्व के सदृश अन्य चरित्र मिलने कठिन हैं। उसके चरित्र में इतनी सत्यता और वास्तविकता है कि ऐसा प्रतीत होता है मानों हम नाटाशा से जीवन में नित्य प्रति ही मिलते हैं और उससे हमारी प्रतिदिन मार्ग में मुठभेड़ हो जाती है।

टालस्टाय के दूसरे प्रख्यात उपन्यास 'अन्ना करेनिना' में नारी-जीवन का सूक्ष्म, अनोखा और चकाचौंध कर देने वाला चित्रण है। लेखक ने सेंट पिटर्सवर्ग और रूस के उच्च घरानों के रहन-सहन और जीवन-पद्धति का सुन्दर वर्णन किया है। उपन्यास में इतनी सादगी और सचाई है कि उस पाठक को जो कि रूसी जीवन से अनभिज्ञ है ऐसा बोध होता है मानो उपन्यास की समस्त घटनायें उसके अपने देश में ही घटित हुई हैं और सारा वातावरण बहिर्देशीय न होकर एतद्देशीय ही है। टालस्टाय ने प्रत्येक वस्तु के अन्तर्निष्ठ और बहिर्निष्ठ दोनों रूप प्रस्तुत किये हैं। घुड़दौड़ के समय अन्ना का अन्तर्द्वन्द्व और वेरांस्की की आन्तरिक अनुभूतियों को मानों हम स्वयं ही अनुभव करते हैं। कितनी यथार्थता और बारीकी से वेरांस्की के प्रति अन्ना के प्रेम के क्रमिक विकास को दर्शाया गया है। अन्ना का सीधा-सादा, विशाल-हृदय पति कितनी सचाई से हमारी नजरों के सामने घूम जाता है और किस प्रकार इस विचित्र नारी अन्ना के प्रेम की प्रत्येक घटना, अपने पूर्व पति से उत्पन्न बालकके प्रति उसका स्वाभाविक अनुराग और उसे देखने के लिए उसका आतुर हो उठना, पति को छोड़ देने के पश्चात् संसार से विरक्ति, गहरा मानसिक अनुताप, अन्तर्व्यथा

और अन्त में कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय न कर सकने के कारण निर्मम आत्मघात–कितनी कठोर सत्यता और यथार्थता से परिपूर्ण है । उपन्यास का नायक लेविन मानो स्वयं टालस्टाय ही है । उसके ये अन्तिम शब्द, "मैं अपने को घृणा करता हूं। अब सब कुछ स्पष्ट हो गया है", टालस्टाय की सांसारिक-उपेक्षा एवं अन्तर्ज्ञान के परिचायक हैं। जीवन को घसीटते घसीटते मानों वे थक गये थे। धन, वैभव, जमींदारी सभी से उनका मन ऊब गया था किन्तु जैसे परिस्थितियों एवं पारिवारिक-बन्धनों को तोड़ने में वे अबभी असमर्थ थे ।

उनका तीसरा प्रसिद्ध उपन्यास "रिजरेक्शन"अत्यन्त वृद्धावस्था में लिखा गया, अतएव उसमें पहले का सा उत्साह और जीवन नहीं है। लगता है मानों सांसारिक घात-प्रतिघातों से क्षत-विक्षत टालस्टाय की आत्मा मूक साधना में एकनिष्ठ हो दिव्य सौन्दर्यलोक में खो जाना चाहती है और उसकी प्राप्ति ही उसने अपना चरम ध्येय बना लिया है ।

महामनीषी श्री टैगौर भी इसी कोटि के आत्मदर्शी थे । उन्होंने जीवन पर्यन्त अध्यात्म-चिंतन और सत्य का अन्वेषण किया। उनकी अमर कृति 'गीतांजलि' में उपनिषदों की तत्व-चिंता एवं आध्यात्मिकता का सन्निवेश है, मानो उन्हें अपने हृदय के अन्तस्थ में नित्य उस प्रकाश के दर्शन हुए जो लोकोत्तर और अनिर्वचनीय है।

"प्रिय ! तू छाया में छिपा कहां खड़ा है ? राहगीर तेरी अवहेलना करके तुझे ढकेल कर निकल जाते हैं, यहां मैं उपहार लिए घंटों से तेरी प्रतीक्षा में खड़ा हूं।

प्रातः बीत गया, दोपहर भी। संध्या के धुंधलके में उनींदी आंखों से तेरी बाट जोह रहा हूं । आते जाते लोग मुझे झांक कर देखते हैं और मुस्करा देते हैं–मैं लज्जा से सिर झुका लेता हूं । भिक्षुक बालिका की भांति मैं मुंह ढापे बेठा हूं। वे पूछते हैं—'तुम क्या चाहते हो ?' किन्तु मैं नीची आंखें करके उन्हें उत्तर नहीं दे पाता ।

आह ! कैसे उनसे कहूं मैं तेरी प्रतीक्षा कर रहा हूं और तूने आने का आश्वासन दिया है ।

समय बीत रहा है और अब तक तेरे आने की कोई सूचना नहीं । कितने ही जलूस धूमधाम और समारोह के साथ बीत गए । तू ही अकेला चुपचाप पर्दे के पीछे छिपा खड़ा है और मैं व्यर्थ प्रत्याशा में रोता-कलपाता अपना दिल जला रहा हूं ।"

'गीतांजलि' टैगोर की विश्व-प्रख्यात रचना है, जिसका अन्तर्राष्ट्रीय अभिनन्दन हुआ और जिसपर एक लाख, बीस हज़ार का नोवेल पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।

उनकी अन्यान्य सभी रचनाओं में एक महान कलाकार, कवि एवं दार्शनिक का रूप व्यक्त होता है। कविता में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर लेने के पश्चात उनका उपन्यासों की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ। उनके उपन्यासों से बंगला-साहित्य में एक नई ऋजुता और सबलता दिखाई पड़ी और वह गौरवान्वित भी हुआ। 'नष्टनीड़', 'नौका डुबी', 'चौखेर बालि' 'बहुठाकुरानीरहाट' में रवीन्द्रनाथ की अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी दोनों प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं। 'गोरा' कदाचित् उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। उसमें उनका आत्मिक-सौन्दर्य लहरा रहा है और रचना–शक्ति एवं भावानुभूति की दृष्टि से उनकी लेखनी मानों जादू सा उडेंलती चलती है। पात्रों का चरित्र-चित्रण भी मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है और सामयिक परिस्थतियों का सुन्दर रीति से निर्वाह हुआ है। 'राजर्षि', 'घरे-बाहिरे', 'योगा-योग', 'शेशेर कविता', 'बांसुरी', 'मालञ्च', 'दोवन' आदि सभी उपन्यासों मे उनकी परिष्कृत कल्पना एवं उत्कृष्ट व्यंजनशैली का परिचय मिलता है।

टालस्टाय और टैगोर-दोनों ने कहानियां भी लिखी हैं, जिनके भीतर सजीवता, ताज़गी, कलापूर्ण चित्रण एवं कोमल भावाभिव्यक्ति के साथ-साथ एक युग की सामूहिक साधना भी निहित है। प्रायः इन दोनों की वे कहानियां अधिक उत्कृष्ट और स्वाभाविक बन पड़ी हैं, जिनमें ग्राम्य-जीवन का चित्रण हुआ है। क्या कहानी, क्या उपन्यास, क्या नाटक, क्या गीतिकाव्य सभी में उनकी बहुमुखी प्रतिभा के दर्शन होते हैं मानों उनकी लेखनी से सभी कुछ वरबस निकल पड़ा है। कभी-कभी उनकी साहित्यिक कृतियों को पढ़ते पढ़ते ऐसा भान होने लगता है जैसे वे कुछ खोज रहे हैं और उन्हें अभीष्ट प्राप्त होना ही चाहता है। कभी अंतहीन सौंदर्य के विराट्-लोक में विचरण करते करते उनकी बुद्धि भ्रमित और थकित सी लगती है और कभी पोथागोरस के स्वर में स्वर मिला कर वे कहते से प्रतीत होते हैं:—

"सृष्टि संगीतमयी है। अनन्त आकाश को पूर्ण करके एक अनादि संगीत अविश्रांत उत्थित हो रहा है। रवि-चन्द्र-तारा इस शाश्वत संगीत के छंदताल में नृत्य करते हुए सृष्टिक्रम को चला रहे हैं। हमारी जीवन तंत्री जब इस सुमहान् संगीत के साथ समसुर में मंद्रित हो उठेगी तभी हम अपने जीवन में सम्पूर्ण सार्थकता प्राप्त करेंगे।"

महात्मा गान्धी और रोम्याँ रोलाँ

जन्म—२ अक्टूबर, १८६९
मृत्यु—३० जनवरी, १९४८
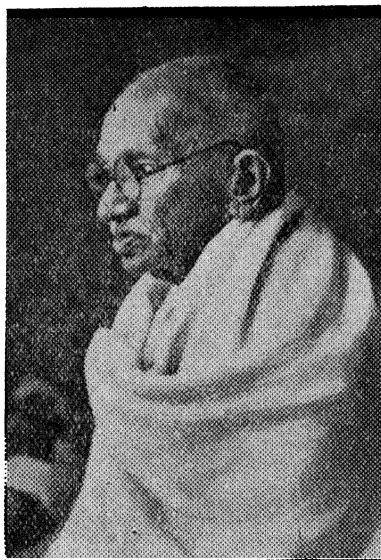
महात्मा गांधी

जन्म—२९ जनवरी, १८६६
मृत्यु—३० दिसम्बर, १९४४

रोम्यां रोलां

स्विनबर्न के शब्दों में 'जिसने विश्व की अनन्तता को अपनी छोटी-सी जिन्दगी से खरीद लिया है, जो सन्तप्त, आहत हृदयों को सान्त्वना और प्रश्रय देता है, जो इन्सान होकर भी इन्सान के भाग्य का सामना करता है, वह मर कर भी सदैव अमर है। अपनी आंखें ऊपर उठा कर देखो, उसके जीवन का प्रकाश सर्वत्र ही तो दीख पड़गा—याद के शिखरों पर, दुनिया की गहरी भावनाओं के झरनों में, सब लोगों की आंखों में। जहाँ उससे सभी कुछ आच्छादित है, वहाँ वह नहीं, सिर्फ मौत ही मरती है।'

महात्मा गांधी और रोम्याँ रोलाँ दोनों ही आज उस ऊंचाई पर खड़े हैं, जहां से उनकी महत्ता को हम ठीक-ठीक आंक सकने में असमर्थ हैं। निःसन्देह महापुरुषों का निर्माण ही उन टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों से होता है, जिनसे सम्पूर्ण व्यक्तित्व का दर्शन करना या उनकी अन्तर्चेतना को भांप लेना साधारण जनों के लिए असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य होता है। उनकी प्रवृत्तियों का क्षेत्र इतना व्यापक हो जाता है, उनकी आध्यात्मिक प्रेरणा मानवता के समस्त विविध रूपों का अपने में समन्वय करती हुई लोक-सामान्य-सतह से इतनी ऊपर उठ जाती है तथा उनकी आचरण-आभा इतनी चकाचौंध कर देने वाली होती है कि विश्व उस पावन प्रकाश-पुंज में अपना पथ खोजता है और मूक मानव उनकी अमर वाणी में अपनी अन्तर्हित भावनाओं को मुखरित देख उनसे प्रेरणा प्राप्त करता है।

२९ जनवरी, सन् १८६६ में बरगंडी (फ्रांस) के क्लेमेसी नामक एक छोटे से कस्बे में बालक रोम्याँ रोलाँ ने जन्म लिया था और २ अक्टूबर, १८६९ में ठीक दो वर्ष आठ महीने पश्चात् भारत-स्थित पोरबन्दर (काठियावाड़) नगर में इस युग के क्या, युग-युगों के महानतम व्यक्तित्व ने प्रथम बार अपनी पलकें खोली थीं। हाड़-मांस के चोले में दोनों महान् आत्मा को लिए हुए वे शनैः-शनैः बढ़ने लगे। बाल्यावस्था से ही उन दोनों की सत्यान्वेषी प्रवृत्ति थी। सत्य को ही वे परब्रह्म-रूप मानते थे और सेवा एवं सतत साधना को सत्य के समीप पहुंचने का साधना। गांधीजी में सात वर्ष की अल्प आयु में ही सत्य का अंकुर उभर रहा था। अपनी आत्म-कथा में उन्होंने लिखा है—"मुझे याद नहीं पड़ता कि अब

तक मैंने किसी भी शिक्षक से झूठ बोला हो।...मैं बहुत झेंपू लड़का था। मदरसे में अपने काम से काम रखता, घंटी बजते समय पहुंच जाता और स्कूल बन्द होते ही घर भाग आता।"

सत्य का अन्वेषण

रोम्यां रोलाँ भी बचपन से ही अपनी आत्मा में सत्य का प्रकाश देखने लगे थे। आत्म-साक्षात्कार की उनमें तीव्र लगन थी, और जब उन्हें अपना निर्दिष्ट पथ खोजने में किसी पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता का अनुभव हुआ, तो उन्होंने रूस के सुप्रसिद्ध अन्तर्द्रष्टा कलाकार टालस्टॉय को पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने अपनी जिज्ञासा इस प्रकार व्यक्त की थी —"मैं यह जानने को व्याकुल हूं कि किस प्रकार सच्चे अर्थों में जीवन बिताऊं? केवल आपसे ही इस महत् प्रश्न के उत्तर की आशा रखता हूं।" टालस्टाय उन दिनों 'आन लाइफ' पुस्तक लिखने में व्यस्त थे, अतएव इस पत्र का उत्तर न दे सके। पर रोम्यां रोलाँ ने आशा न छोड़ी और छः महीने पश्चात् पुनः टालस्टॉय को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने अपनी समस्त करुणा और हृदय की कोमल भावनाएं उंड़ेल दीं—"मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है और साथ ही यह जानने की उत्कट अभिलाषा भी कि क्या आपको उस सत्य के दर्शन में, जिसे आपने पा लिया है, सदैव ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है? मैं भ्रान्त-सा हो रहा हूं। मुझे किसी मार्ग-दर्शक की साध है। कृपया उत्तर दीजिये और यह बताइये कि क्या आपके बचनामृत केवल रूसी लोगों के लिए ही हैं, औरों के लिए नहीं—हम फ्रांस वालों के लिए नहीं? और क्या उन पथ-भ्रष्टों के लिए भी नहीं, जो निराशा और कष्टों से जर्जरित हैं?" इन पंक्तियों ने टालस्टॉय के हृदय को हिला दिया। उन्होंने अश्रुपूरित नेत्रों से रोम्यां-रोलाँ को उत्तर दिया, जिसका प्रथम वाक्य था—**"तुम्हारे पत्र को पढ़ कर मैं रो पड़ा।"** आगे अपने पत्र में उन्होंने मानव-धर्म की व्याख्या की और सेवा एवं कर्त्तव्य का महत्त्व समझाया।

गांधीजी को कभी-कभी सत्यान्वेषण के प्रयोगों में ऐसा ही भ्रम हो जाता था, और वे कर्त्तव्याकर्त्तव्य के निर्णय में अपने को असमर्थ-सा पाते; किन्तु दूसरे ही क्षण उनके समक्ष जैसे बिजली-सी कौंध जाती और कोई दिव्य, अदृष्ट शक्ति उनमें प्रेरणा-सी भरती। उन्हीं के शब्दों में—**"वही सनातन प्रश्न मेरे सामने भी था। मैं आगे बढ़ूं या पीछे हट जाऊं? आगे कदम बढ़ाने की शक्ति जैसे**

मुझमें नहीं थी। मेरा हृदय कांप रहा था। लेकिन इस चारों ओर के अन्धकार में मेरे अन्तर में ही एक क्षीण ज्योति चमक रही थी। एक वाणी मेरे अन्तःकरण में उठ रही थी कि आगे बढ़ने में ही मेरा कल्याण है।" एक अन्य स्थल पर वे लिखते हैं—**"एक अलक्ष्य, रहस्यमय शक्ति है, जो वस्तु-मात्र में व्याप्त है। मैं उसे देखता नहीं, परन्तु अनुभव करता हूं। यह अदृश्य शक्ति अनुभव द्वारा ही गम्य है। प्रमाणों से उसकी सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती; क्योंकि मेरी इन्द्रियों से गम्य जो-कुछ भी है, उस सबसे यह शक्ति सर्वथा भिन्न है।"**

कहना न होगा कि महामानव गांधी और रोम्यां रोलां दोनों ही आत्मदर्शी, सहिष्णु और कर्मनिष्ठ योगी थे, जिन्होंने सत्य के विराट् रूप का दर्शन आंखों से नहीं हृदय से किया था, जिन्होंने मिथ्या आवरणों में प्रच्छन्न अज्ञान को अन्तर्चक्षुओं से भांप लिया था, जिन्होंने साधारण मनुष्य में ब्रह्म-दर्शन किया था तथा जो अपने साथी मानव से प्रेम करने के लिये जीवित रहे और प्रेम के लिए ही मर कर अमर हुए। यद्यपि दोनों का कार्यक्षेत्र भिन्न था; दोनों भिन्न स्थान, भिन्न देश और भिन्न परिस्थितियों में उत्पन्न हुए थे, भौतिक शरीर भी दोनों का पृथक् था और बौद्धिक विकास भी पृथक्-पृथक् दिशा में हुआ था। गांधीजी ने कर्त्तव्य की बलि-वेदी पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था, तो रोम्यां रोलां सौन्दर्य और कला-मन्दिर के आराधक थे। एक अपने प्रत्येक कर्म से विश्वात्मा के प्रति प्रेम की पूर्त्ति करता था, तो दूसरा आत्म-प्रकाश की किरण से अन्तस के अन्धकार को विच्छिन्न करने की चेष्टा में सतत संलग्न था। एक के बल का स्रोत सेवा-भाव था, तो दूसरे में यह विलक्षण गुण था कि कष्टों, अत्याचारों और संघर्षों की चोट खाकर और भी सत्य एवं सेवा की लहरें उमड़ती थीं। एक का जीवन जनसेवा में लगा था, तो दूसरे का जन-कल्याणकारी साहित्य-साधना में। तथापि दोनों का उद्देश्य एक था, लक्ष्य एक, विचारधारा की दिशा और दृष्टिकोण का केन्द्रबिन्दु एक। दोनों ने ही विश्व को मानवता, सत्य, शान्ति, प्रेम और अहिंसा का पुनीत सन्देश दिया था। दोनों की इच्छा शक्ति प्रबल, मनोवृत्ति धार्मिक, आत्मा तेजोमय, व्यक्तित्व महान् और हृदय स्फटिक की भांति स्वच्छ और निर्मल था। इन दोनों मनीषियों ने मानव-जाति के नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान में अपना जीवन लगाया। दोनों को दीन-दुखियों और दरिद्रों में भगवान् के दर्शन हुए। दोनों ही बन्धनमुक्त जीवन के मन्त्रदाता थे।

पूर्व और पश्चिम का सामंजस्य

यद्यपि रोम्यां रोलां को सार्वजनिक कार्यों के लिए तो अधिक अवकाश न मिला, राजनीति और जन-आन्दोलनों में भी उन्होंने कभी भाग न लिया, तथापि अपनी वाणी, लेखनी, पुस्तकों और महापुरुषों की जीवनियों से उन्होंने न-जाने कितने पथभ्रष्टों को सुपथ पर चलने की प्रेरणा दी, कितनों को प्रकाश दिखाया और न-जाने कितनों का अत्मिक-उत्थान किया। वे एकाग्रनिष्ठ और सन्तुलित बुद्धि के व्यक्ति थे। उन्हें आत्म-ज्ञान की क्षुधा थी और जीवन के मूलभूत प्रश्न को हल करने के लिए वे सदैव जागरूक थे। सत्पथ के पथिक होने के कारण जहां भी उन्हें प्रकाश दीखता, वे उधर ही मुड़ जाते। पहले उन्हें शेक्सपियर ने आकर्षित किया, फिर संगीतज्ञ वागनर ने। फ्रेंच साहित्यिकों एवं कलाकारों का भी उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया। पश्चिम में बीटोफेन, माइकेल एंजेलो, टालस्टॉय आदि आत्मदर्शियों पर और पूर्व में स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ और महात्मा गांधी आदि महापुरुषों पर उन्होंने सोचने, मनन करने, सूक्ष्म मनोबुद्धि से उनके आन्तरिक एवं वाह्य जीवन के ऊहापहों को समझने की चेष्टा की। उन्होंने इन महान् आत्माओं में 'सत्यं, शिवं' का दर्शन किया। बीटोफेन उनकी हृदय-वीणा के तारों को झंकृत करने वाला वीणाकार था, तो माइकेल एंजेलो और टालस्टॉय अपनी अमृतमयी, मीठी, मधुर थपकियों से अन्तर की सुषुप्त भाव-चेतना को जगाने वाले महान् साधक। समस्त झंझावातों, अगणित संघर्षों, विघ्नों और सम्भावनाओं के मध्य भी उनकी क्षुद्र जीवन-नौका आशा की लहरों पर डगमगाती, हिलती-डुलती और डूबती-उतराती हुई दूर––बहुत दूर––क्षितिज के क्षीण आलोक का सहारा ले अग्रसर होती रही––आगे बढ़ती रही। सहसा पूर्व में उन्हें उस महाज्योति के दर्शन हुए, जहां उनकी आंखें दिव्य-तेज से चकाचौंध हो उठीं। सर्वप्रथम स्वामी विवेकानन्द की तेजस्वी वाणी ने, फिर शान्तिनिकेतन के अमर-शिल्पी सन्त की शान्त मुद्रा ने और सबके बाद भारतीय पुनर्जागरण के ऋषि एवं अपने युग के महान् राजनीतिक नेता महात्मा गांधी ने उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। अन्तिम केन्द्रबिन्दु पर उनकी दृष्टि आ टिकी। पश्चिम की खाद से जो सत्य का अंकुर उनमें प्रस्फुटित हुआ, वह पूर्व की खाद के मिश्रण से पनपा और बढ़ा। पश्चिम के कला-गुरुओं और साहित्य-शिल्पियों से उन्हें जो प्रेरणा मिली, उसका समाधान पूर्व के महापुरुषों के जीवनादर्शों से हुआ। यद्यपि उनका जीवन, उनके सिद्धान्त, उनकी साधना पश्चिम की नींव पर आधारित थी,

तथापि उनका निर्माण पूर्व के चूने और ईंटों से हुआ। पूर्व की बातें, पूर्व के आदर्श उनके जीवन में इस प्रकार ओतप्रोत हो गए थे, मानो जन्म से ही उनमें विद्यमान हों। वर्षों तक कठोर साधना और आत्म-निरोध करते-करते उनके अन्तःकरण का परिष्कार हो गया था। अपने और पराये का भेद-भाव मिट गया था और समस्त परोक्ष-अपरोक्ष वैभिन्य में उन्हें चिरन्तन ऐक्य का आभास होता था। यही कारण है कि उनके साहित्य में सर्वात्म-भाव की झलक है और सार्वदेशिक सिद्धान्तों के सामंजस्य की चेष्टा। गांधीजी में भी यही एकात्म-भावना दृष्टिगत होती ह, जिसकी परिणति सर्वभूत-हित में उनके जीवित क्षणों में ही हो गई थी। उन्होंने संसार के सभी प्रमुख धर्मों का अध्ययन किया था और विश्व की समस्त तत्त्व-दर्शन-प्रणालियों में उन्हें एक ही अनन्त सत्ता सक्रिय दिखाई देती थी। भारतीय अध्यात्म-परम्परा को उन्होंने पाश्चात्य अध्यात्म-परम्परा के समकक्ष रख कर तौला और उनके आधारभूत तत्त्वों में उन्हें कोई विशेष अन्तर न दिखाई पड़ा। उनकी दृष्टि में उस अनन्त स्रोत में ही सबका उद्गम, विकास एवं निलय है, वही अन्धकार में प्रकाश की रश्मियां बिखेरता है और अन्तःसत्त्व को स्फूर्त्त करता एवं अन्तःप्रेरणा प्रदान करता है। गांधीजी लिखते हैं—"**मेरा यह दावा तो नहीं है कि मेरे सभी कार्य ईश्वर की प्रेरणा से होते हैं; पर जब मैं अपने बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे काम का लेखा लगाता हूं, तो मुझे ऐसा लगता है कि ये ईश्वर की प्रेरणा से किए गए थे—ऐसा कहना अनुपयुक्त न होगा। मैंने ईश्वर का दर्शन नहीं किया, पर उसमें मेरी श्रद्धा अमिट है और उस श्रद्धा ने अब अनुभव का रूप ले लिया है। शायद कोई कहे कि श्रद्धा को अनुभव का उपनाम देना सत्य की फजीहत होगी, अतः मैं कहूंगा कि मेरी ईश्वर-श्रद्धा का नामकरण करने के लिए मेरे पास और कोई शब्द नहीं है।**"

रोलां और गांधी जी का सम्पर्क

सन् १९२० में रोलां ने जब सबसे पहले दिलीपकुमार राय से गांधीजी का नाम सुना, तो उनके सम्बन्ध में अधिकाधिक जानने की उनकी तीव्र इच्छा हुई। सन् १९२१ में रवीन्द्रनाथ ठाकुर पेरिस गये, और उन्होंने गांधीजी के सम्बन्ध में उन्हें बहुत कुछ बताया। डा० कालिदास नाग ने भी रोलां को गांधीजी के विचारों से अगवत कराने में सहायता दी। ज्यों-ज्यों रोलां को गांधीजी के सम्बन्ध में अधिक जानकारी होती गई, त्यों-त्यों वे उनकी आत्मा के निकट आते गये

और उनका प्रेम व श्रद्धा बढ़ती गई। १९२२ में अपनी बहन की सहायता से उन्होंने गांधीजी के लिखे "यंग इंडिया" (Young India) के सभी निबन्ध पढ़े और फरवरी, १९२३ में रोलाँ ने गांधीजी पर एक बहुत बड़ा लेख लिखा, जो बाद में पुस्तकाकार छपा। जुलाई, १९२४ में गांधीजी के लिखे 'यंग इंडिया' के सभी निबन्धों का उन्होंने फ्रेंच भाषा में अनुवाद किया। इस बीच गांधीजी पर लिखी अपनी पुस्तक भी उन्होंने उनके पास भेजी और यह अनुरोध किया कि जो त्रुटियां पुस्तक में रह गई हों, उनका संशोधन कर दें। गांधीजी उसी समय जेल से छूटे थे। उन्होंने पुस्तक देखी और २२ मार्च, १९२४ को रोलां को लिखा—"**आपके कृपा-पत्र के लिए धन्यवाद। यदि मेरे सम्बन्ध में लिखी पुस्तक में यत्र-तत्र कुछ गलतियां हो भी गईं, तो क्या हानि है? मुझे तो आश्चर्य है कि इतनी कम गलतियां हुईं, और यद्यपि यहां से दूर—एक दूसरे ही वातावरण में—आप रह रहे हैं, तो भी आपने मेरे विचारों को इतने सुन्दर ढंग से दर्शाया है, जिससे ज्ञात होता है कि मानव-प्रकृति में कितना ऐक्य है और विभिन्न देशों में रह कर भी विचारों में कितनी समानता हो सकती है!**"

गांधीजी के सम्बन्ध में रोलाँ की कितनी ऊंची धारणा थी, यह उनके एक उद्धरण से ज्ञात होता है—"**यूरोप एक ऐसी दुर्भर रात्रि के नीचे दबा कराह रहा था, जिसके गर्भ में थी निराशा और निःसहाय अवस्था; और प्रकाश की एक भी रेखा दृष्टिगत नहीं हो रही थी। ऐसे मुहूर्त में इस दुर्बल, नग्न और नन्हें-से गांधी का अवतरण हुआ, जिसने सर्वांगीण हिंसा की भर्त्सना की, न्याय और प्रेम ही जिसके हथियार थे और जिसके नम्र, किन्तु अविचल सौजन्य ने अपनी प्रारम्भिक सफलताएं अभी प्राप्त की ही थीं। ऐसे गांधी का उद्भव पश्चिम की परम्परागत, चिर-प्रतिष्ठित और सुनिर्धारित विचारधारा तथा राजनीति की छाती पर एक अद्भुत प्रहार के रूप में जान पड़ा। साथ-ही-साथ वह आशा की एक किरण के रूप में भी लगा, जो निराशा के अन्धकार में फूट पड़ी थी।**"

एक दूसरे स्थल पर रोलां ने लिखा है—"**हमारे यूरोपियन क्रान्तिकारियों की भांति गांधीजी केवल कानूनों और नियमों के ही नियामक नहीं हैं, प्रत्युत् उन्होंने एक नवीन मानवता को जन्म दिया है।**" **और रोलाँ ने गांधी जी में यह विलक्षण चमत्कार देखा कि अत्यन्त ऊंचाई पर खड़े होकर भी वे सदैव नीचे ही देखते थे और सर्वसाधारण से ऊपर उठ कर भी वे अपने को उन्हीं का एक**

अंग मानते थे। गांधी जी से परिचित होने के लगभग तीस वर्ष पूर्व रोलां ने अपनी एक पुस्तक में लिखा था--"दीनता और विफलताओं में सब समान हैं।" और अपनी इस कल्पना को उन्होंने गांधीजी में साकार पाया। गांधीजी के मख पर विजयोन्माद का दर्प, हृदय में अहंकार और अपने को सबसे ऊंचा समझने की भावना न थी। वे जनता के सेवक थे और उनके होकर, उनके दिलों में पैठ कर, उनमें सत्य और अटल निश्चय का अग्निमन्त्र फूंक रहे थे। मनुष्यों के प्रकृत अधिकार और भारत की आज़ादी का प्रश्न उनके लिए महज़ फुर्सत की घड़ियों का मनबहलाव न था, वरन् उन्होंने अपने देश और देशवासियों के लिए अपना तन-मन-धन न्यौछावर कर दिया था।

ज्यों-ज्यों रोम्यां रोलां की आत्मीयता गांधीजी से बढ़ती जा रही थी, उनमें उनके प्रति एक विचित्र आसक्ति की भावना जाग्रत हो रही थी। टालस्टॉय के प्रति रोलां का जो आकर्षण था, उसमें भी कुछ न्यूनता आ गई, मानो गांधीजी के व्यक्तित्व में टालस्टॉय और रोलां दोनों ही समाहित थे। टालस्टॉय की त्रुटियां गांधी जी की महत्ता का मापदण्ड बनीं, और इसमें किंचित भी संदेह नहीं कि जहां टालस्टॉय को असफलता मिली, वहां गांधीजी सफल हुए। रोलां की दृष्टि में गांधी जी एक विनम्र टालस्टॉय थे--सन्तोषी, सरल, दया से भरपूर--जिनमें सभी कुछ शान्त, निर्मल, स्वाभाविक, स्वच्छ था, जब कि टालस्टॉय में अहं के साथ अहं का और क्रोध के साथ क्रोध का संघात, प्रत्येक वस्तु में दुर्दम्यता, यहां तक कि जिसकी अहिंसा भी अछूती न थी। रोलां में बाल्यावस्था में ही सत्य और असत्य को जानने की जो बलवती आकांक्षा उत्पन्न हो गई थी, उसका उत्तर तब नहीं, प्रत्युत् बहुत दिनों बाद उन्हें गांधीजी से मिला था और जिस प्रकार संगीत में एक ध्वनि अगणित ध्वनियों को उत्पन्न करती है तथा तारों की झन-झनाहट एवं ताल-स्वर का आरोह-अवरोह क्रमशः चरमता को प्राप्त करता है, उसी प्रकार रोलां ने भी न-जाने कितने उतार-चढ़ाव और मानसिक ऊहापोहों के पश्चात् अपने विश्वास की परिपक्वता समझी। उनकी आत्मा में पहली-सी अशान्ति अथवा खिन्नता न थी, अज्ञान के कुहरे को भेद कर उनमें प्रकाश की किरणें छा गई थीं।

समन्वयात्मक विकास

रोम्यां रोलां का प्रख्यात उपन्यास 'जां क्रिस्तफ़' (Jean Christophe) उनके अपने जीवन का सजीव चित्रण है। जीवन और संसार दोनों ही मनुष्य के लिये

सत्यान्वेषण की पुनीत प्रयोगशाला हैं। कर्त्तव्य की प्रत्येक दिशा में और जीवन के प्रत्येक मार्ग में कठिनाइयां हैं—भीषण कष्ट और अड़चनें हैं, जिससे अपने लक्ष्य तक पहुंचना आसान नहीं। उपन्यास के नायक क्रिस्तफ़ को जीवन में न कहीं सहारा दिखाई पड़ता है, न प्रकाश। उसे चतुर्दिक् अन्धकार-ही-अन्धकार दृष्टिगत होता है। उसका मार्ग स्वच्छ और समतल नहीं है, प्रत्युत् उसमें द्वन्द्वकी पथरीली कंकड़ियां बिछी हैं, जिससे पग-पगपर ठोकर लगती है। उस क्षुब्ध वातावरण में जिसमें कि वह क्रूर नियति द्वारा बरबस ढकेल दिया गया है, अगणित संघर्षों, सन्तापों और विषम परिस्थितियों के मध्य भी जबकि उसका भाग्य-क्षितिज अन्धकार और बादलों से आच्छन्न है, जबकि उसका मन शिथिल, नैतिक बल विस्मृत और आध्यात्मिकता मूर्च्छित-सी हो रही है, जबकि उसका देश, उसके देशवासी, घनिष्ट मित्र, साथी, आत्मीय जन—जिन्हें कि वह प्यार करता है—उसकी अवहेलना और तिरस्कार करते हैं तथा जिसका समूचा जीवन-पथ ही तमिस्रा की कालिमा में भटकता-सा प्रतीत हो रहा है, तब, ऐसी दशा में भी, उसकी आत्मा में विश्वास की चमक है और जीवन-व्यापार की प्रत्येक कला के ऊपर नियंत्रण। वह घबराता नहीं, उसका साहस और धैर्य विचलित नहीं होता, जीवन की नाजुक घड़ियों में भी उसके पैर डगमगाते और लड़खड़ाते नहीं, वरन् वह दृढ़ और निर्भीक कदम रखता हुआ आगे बढ़ता रहता है और अकस्मात् एक दिन उसमें जीवित रहने और कुछ करने की भावना पैदा होती है। उसके निराश और हतोत्साह जीवन में उल्लास और हर्षोन्माद फूट पड़ता है। कभी संगीत का मधुर स्वर, कभी किसी कमरे या गली में मुस्कराता मुखमंडल या घूमते हुये अवकाश के क्षणों में अन्तरिक्ष का प्रसार अथवा किसी सुन्दर कलात्मक चित्र को देखकर उसमें पुनर्जीवन भर जाता है—उसका मन-मयूर नाच उठता है—"**मानो उसकी सूनी, मृत आत्मा में दिव्य आलोक बरस रहा हो। वायु के शीतल झोंको ने मानो उसके कंठ में अमृत घोल दिया हो और ये अमृत-कण उसके शरीर के अणु-अणु में रम कर उसके अन्तस्तल तक पैठ गये हों। ऐसे दिव्य क्षणों में उसे लगा, मानो वह खुशी से पागल हो उठेगा और इतना आनन्द वह सहन न कर सकेगा। दुःख-सुख के विचित्रोन्माद में उसने चिल्लाना चाहा, किन्तु केवल अस्पष्ट-सी ध्वनि उसके मुख से निकली। आनन्दोन्मत्त वह नाचता रहा, चिल्लाता रहा, अपने हाथों से दीवारों को पीटता रहा, जब कि कागज़ के छोटे-छोटे टुकड़े हवा के साथ उसके इर्द-गिर्द उड़ रहे थे।**"

रोलां भी गांधीजी की भांति किसी देश अथवा जाति के समन्वयात्मक विकास में विश्वास रखते हैं। उनकी दृष्टि में समय एक विशाल समुद्र के सदृश है, जिसमें असंख्य लहरों का अनवरत संघर्ष चलता रहता है, कभी कोई राष्ट्र या जाति किसी लहर पर चढ़ कर उत्थित होती है, तो कभी पतन के गर्त्त में जा समाती है; किन्तु जब कि एक तटस्थ द्रष्टा इस परिवर्त्तन को वाह्य परिस्थितियों और राजनीतिक दांव-पेंचोंका परिणाम समझता है—रोम्यां रोलां इसे किसी जाति के जीवन-मरण का प्रश्न समझते हैं। वे मृत्यु और जीवन दोनों में समत्व देखते हैं। उनकी सम्मति में मृतप्राय जीवन में ही ऊर्ध्व चेतना का विकास सम्भव है। 'जाँ क्रिस्तफ' में फ्रांस-निवासी आलीवियर अपने मित्र क्रिस्तफ से कहता है—"पराजय श्रेष्ठ है और दुःख वांछनीय। प्यारे क्रिस्तफ, तुम्हीं ने हमें राहत दी है, तुम्हीं ने हमें पुनर्जीवन दिया है। हमारी इस पराजय से बुराई कम, भलाई अधिक हुई है। तुमने आदर्श की मशाल जलाई है, हमारे विज्ञान में जान फूक दी है, हमारे विश्वास को जगाया है और हमारे जातीय आत्मोत्थान में एक नवीन चेतना और प्राण भर दिये हैं।"

जीवन का संघर्ष

गांधीजी और रोलां किसी भी स्थिति में मनुष्य को कर्मक्षेत्र से हटने का आदेश नहीं देते, प्रत्युत् रूढ़िग्रस्त मानवात्मा को उस चिर-आभा से आलोकित करना चाहते हैं, जिससे उसकी विचार-दृष्टि व्यापक, हृदय उदार और अनुभूतियां विशाल बनें। भूतल पर रह कर आसुरी शक्तियों से द्वन्द्व करते हुये ही परम सत्व की विजय संभव है और ऐसे साहसी व्यक्ति ही काल के विध्वंसी पंजों से बचकर युगान्तर उपस्थित करते तथा सम्पूर्ण राष्ट्र की चेतना एवं जागरूकता के प्रतीक होते हैं। गांधीजी के शब्दोंमें—"**मनुष्य के हृदय में दो शक्तियों का अनवरत संघर्ष चल रहा है। ये दो शक्तियां अन्धकार और प्रकाश की हैं। जिसने अपने बचाव के लिये दिव्य-शक्ति को अपनी आधारशिला नहीं बनाया, वह किसी भी क्षण अन्धकार की शक्ति का आखेट हो सकता है।**"

जिन्दगी एक खेल है और खतरों से भरा एक प्रयोग। हमें कभी सत्पथ से विचलित न होना चाहिए। मृत्यु और जीवन का भय कायरता है, इसीलिये गांधीजी और रोलां कभी भयातुर नहीं होते। अपने उपन्यास 'जां क्रिस्तफ' में रोलां लिखते हैं—"जवानों ! आज के नवयुवको ! डरो नहीं, वरन् हमारी डरपोक आत्मा को कुचल कर आगे बढ़ जाओ। हमसे अधिक सबल और साहसी बनने की

चेष्टा करो। अपनी थोथी, जीर्णशीर्ण आत्मा से मैं अब पृथक् होता हूं और इस प्रकार इसका परित्याग करता हूं, जैसे कोई निस्सार, निरर्थक वस्तु को फेंक देता है। जीवन-मृत्यु और पुनर्जीवन की अटूट श्रृंखला है। ओ क्रिस्तफ़! हमें फिर जीने के लिये मरना चाहिए।"

रोलाँ और गांधीजी के विशाल जीवन का एक और पक्ष है—'कर्म'। कर्म वह, जो मानवता को ऊपर उठाये और आत्म-कल्याण करे। सत्कर्म की साधना जीवन का उद्देश्य है। गांधीजी और रोलाँ ने मनुष्यों को एक नयी कर्ममयी दीक्षा दी और कर्त्तव्य-कर्म को ईश्वरीय उपासना के समकक्ष बताया। बहुमूल्य जीवन को यदि साधारण और व्यर्थ के कार्यों में प्रयुक्त किया जाय, तो वहां जीवन का सर्वनाश ही समझना चाहिए। जीवन की तपस्या कला और साहित्य-साधना से भी श्रेष्ठ है; जो अच्छी तरह जीना जानता है, वही वस्तुतः सच्चा कलाकार है। गांधीजी एक स्थल पर लिखते हैं—**"जो झोंपड़ी में काव्य, चर्खे में संगीत, आत्मा में ईश्वरीय सन्देश सुनता है, वही सच्चा कलाकार है। सत्य जिसकी आस्था है, अहिंसा जिसकी शैली है और प्रेम जिसका आदर्श है, वही वास्तव में साहित्यकार भी हो सकता है। जो स्वतः के विकारों को आत्मसात् कर ले और किसी का कभी अहित न इच्छे, उसी के सिद्धांत दर्शन की सीमा में प्रवेश कर सकते हैं। मानवता ही जिसका सम्बल हो, वही कुछ कर सकता है; क्योंकि वह मनुष्य पर विश्वास करना जानता है, उसकी सेवा करना जानता है, उसका स्वभाव जानता है, साधुता की ओर साधना से पहुंचना चाहता है। उसका स्वभाव अनुकरण नहीं, वरन् अन्तःकरण की आवाज सुनना होता है। इसीलिये संवेदनशील होकर संस्कारिता को जगाता है, सस्ती सुविधाओं से दूर रहता है।"**

जीवन और सत्य का सौन्दर्य

गांधीजी जीवन और सत्य के सौन्दर्य में कला के दर्शन करते हैं, तो रोम्याँ रोलाँ उसी कला को सर्वश्रेष्ठ कला समझते हैं, जो जीवन को उपयोगी और महत्वपूर्ण बनाने में सहायक हो—**"सर्वश्रेष्ठ कला वह है, जो 'कला' नाम को यथार्थ रूप में सार्थक कर सके, जिसमें धूमकेतु की तरह गतिशीलता हो और जो हमारे जीवन को गतिशील बनाने में प्रेरणा प्रदान करे। यह हो सकता है कि इसकी यह शक्ति उपयोगी हो, यह भी हो सकता है कि वर्तमान कर्ममय जगत् की जो व्यवस्था है, उसके लिए यह शक्ति खतरनाक हो; फिर भी यह एक शक्ति है,**

गति है और है ज्वाला। आकाश से छूटी हुई बिजली की तरह इसमें गतिवेग है। इस प्रकार का साहित्य पवित्र होगा और इसलिए वह हितकारक भी होगा। वह सूर्य की तरह ज्योतिर्मय होगा। उसके सम्बन्ध में सुनीति और दुर्नीति का कोई प्रश्न ही नहीं होता। सूर्य न तो नैतिक है और न अनैतिक। सूर्य जिस प्रकार अन्धकार की शून्यता के स्थान पर प्रकाश की किरणें बिखेर देता है, उसी प्रकार सच्ची कला भी जीवन को ज्योतिर्मय बना देती है।"

शान्ति और सुख

मानव-जाति और संसार के कल्याण के लिये आत्मोत्सर्ग ही रोलाँ और गांधीजी का जीवनादर्श था। सन् १९१४ में जब प्रथम महायुद्ध का समारंभ हुआ, तो सारा विश्व ही आतंकित एवं त्रस्त हो उठा। रोलाँ युद्ध-काल तक स्वीज़रलैंडमें रहे,जिसके लिये फ्रांसमें उन्हें कभी क्षमा नहीं किया गया। जेनेवा के रेडक्रॉस-आफिस में प्रतिदिन आठ घंटे बैठ कर वे उन दुःखी,निराश,पीड़ित आत्माओं को पत्रों द्वारा सान्त्वना प्रदान करते थे, जिनका हरा-भरा जीवन विद्वेष और प्रतिहिंसा की वह्नि-शिखाओं से प्रज्ज्वलित हो उठा था। बाहर से आये अगणित पत्रों से उन्होंने समझा कि मानवात्मा कभी अशांति नहीं चाहती। वह अपने अधिकार और सुख को सदैव सुरक्षित रखना चाहती है। द्वन्द्व, विषमताएं, कलह, विरोध, हाहाकार सभी को कष्ट और पीड़ा पहुंचाते हैं। उन्होंने अहिंसा और विश्व-प्रेम का प्रचार किया और सारी दुनिया से युद्ध के विरुद्ध आंदोलन करने की अपील की। किंतु उन दिनों विद्वेष और प्रतिहिंसा के भाव इतने प्रबल थे और मनुष्य मनुष्यके रक्तका इतना प्यासा हो उठा था कि किसी भी व्यक्ति का युद्ध में शरीक न होना अक्षम्य अपराध समझा जाता था। फलतः रोम्याँ रोलाँ अपनी युद्ध-विरोधी भावनाओं के कारण अपने देशवासियों की नज़रों में खटकने लगे। उन्हीं दिनों २२-२३ अक्टूबर, १९१४ को जेनेवा के एक प्रमुख पत्रमें 'अबव दि बैटल" नाम का रोलाँ का एक बहुत बड़ा निबन्ध निकला, जो बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। 'दि प्रिकर्जर्स' और 'दि सोल एंचांटेड' पुस्तकों में भी रोलां ने अहिंसा और एकता का महत्व समझाया। निःसंदेह रोलाँ ने अपने समकालीन विश्व को एक ऐसा साहित्य दिया, जिसके प्रधान अंग सत्य, अहिंसा और शांति-स्थापना आदि थे। गांधीजी की भांति उनके जीवन में भी आत्म-प्रकाश की किरण का उदय हुआ और तत्क्षण यह भाव उनमें दृढ़ हो गया कि अहिंसा पर विश्वास रखने वाला ही आत्मनिष्ठ पुरुष है—न वह किसी से भयभीत होता है, न दूसरे में ही भय उत्पन्न करता है। वह मारने की नहीं,

प्रत्युत् मरने की कला सीखता है। वह किसी का अहित नहीं चाहता, प्रत्युत् अपने त्याग और प्रेम से दूसरे पर विजय प्राप्त करता है। महात्मा गांधी पर लिखी अपनी पुस्तक में रोलाँ लिखते हैं—"**हिंसा से मैं नफरत करता हूं। समस्त विश्व से इस घृणास्पद वस्तु से दूर रहने का मेरा आग्रह है। क्या कोई भी यह सिद्ध करने का दावा करता है कि हिंसा मानव का उग्र रूप और उसकी आत्मा का पतन नहीं है?**"

कहने की आवश्यकता नहीं कि गांधीजी तो अहिंसा और क्षमा के मूर्त्तिमान प्रतीक ही थे। साम्प्रदायिक राष्ट्रवाद के संकीर्ण दायरे से ऊपर उठने का उन्होंने बार-बार आदेश दिया और इसी उद्देश्य की पूर्त्ति में उनका सारा जीवन खप गया। उनकी अहिंसा कितनी ऊंची थी, यह इन पंक्तियों से ज्ञात होता है—"**सिर्फ मर जाने से हम परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं होंगे। हमारे दिल में मारने वालों के लिए दया होनी चाहिए। वे अज्ञानी हैं, इसलिए ईश्वर से प्रार्थना करेंगे कि वह उन्हें ज्ञान दे। हम तितिक्षा से उनके आघात सह लेंगे। हमारे हृदय से दया के उद्गार निकलेंगे। केवल लोगों को सुनाने के लिये नहीं, वरन् सच्चे दिल से हम उन पर दया करेंगे। कोई मुझ पर हमला करता है, लेकिन मुझे उस पर गुस्सा नहीं आता; वह मारता जाता है, मैं सहता जाता हूं। मरते-मरते भी मेरे मुख पर दर्द का भाव नहीं, बल्कि हास्य है; मेरे दिल में रोष के बदले दया के भाव हैं; तो मैं कहूंगा कि हमने वीर पुरुषों की अहिंसा सिद्ध कर ली। अहिंसा में इतनी ताकत है कि वह विरोधियों को मित्र बना लेती है और उनका प्रेम प्राप्त कर लेती है।**"

सतत साधना और कठोर तपश्चर्या के पश्चात् जीवन के अन्तिम वर्षों में महात्मा गांधी और रोम्याँ रोलाँ को जो अनमोल वस्तु प्राप्त हुई, वह था 'आत्म-ज्ञान'। अपने आत्म-ज्ञान के आलोकमें अन्धकार और नैराश्य को भेद कर एक कर्मठ योद्धाकी भाँति तम से परे पहुंचने के संघर्ष से वह कभी पीछे नहीं हटे। असत्य, विद्वेष और हिंसा के तमस में दो देवदूतों की भाँति सत्य की मशाल लेकर उन्होंने उचित पथ-निर्देश किया और व्यामोह के क्षणों में ज्ञान-दीप लेकर मानव-मात्र को सुख और शांति का मार्ग सुझाया। निःसंदेह वे साधारण से भिन्न थे और उनकी अन्तः-शक्ति एक अगाध आध्यात्मिक भण्डार से बहती-सी जान पड़ती थी। विश्वकवि रवीन्द्र की ये पंक्तियाँ इन दोनों महामानवों पर कितनी खरी उतरती हैं :—

मरण-सागर पारे तोमरा अमर—तोमादेर स्मरि।
निखिले रचिया गेले आपनारि घर—तोमादेर स्मरि॥
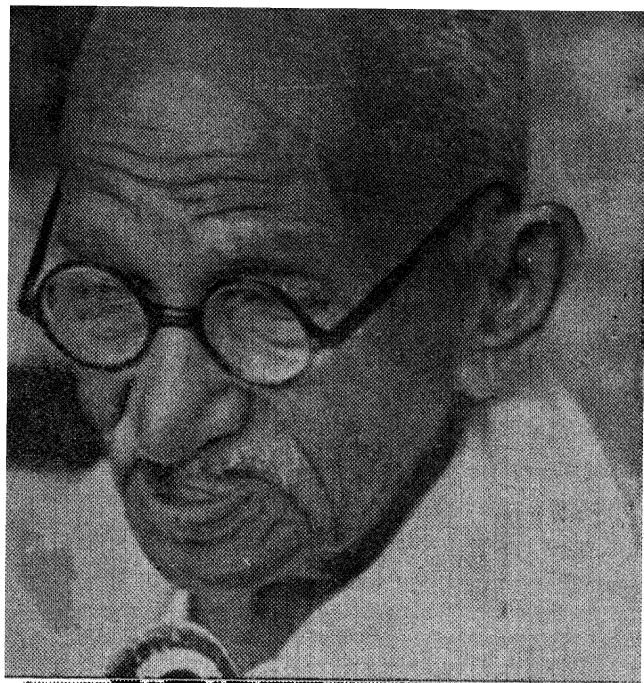
प्रवचन करते हुए महात्मा गांधी की गम्भीर मुद्रा

महात्मा गांधी और उनके राजनीतिक उत्तराधिकारी पटेल और नेहरू
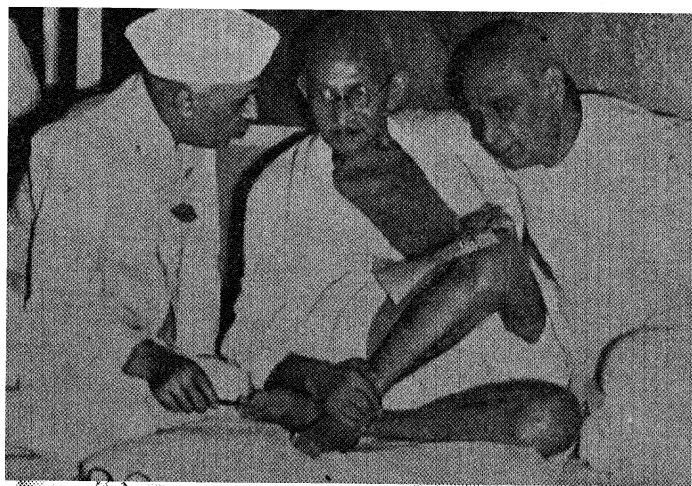
संसारे ज्वेले गेले जे नव आलोक
जय होक जय होक तारि जय होक—तोमादेर स्मरि ।
बन्दीरे दिये गेछे मुक्तिर सुधा—तोमादेर स्मरि ।।
सत्येर वरमाले साजाले वसुधा—तोमादेर स्मरि ।
रेखे गेले वाणी से—जे अभय अशोक
जय होक जय होक तारि जय होक—तोमादेर स्मरि ।।

—अर्थात् मृत्यु-सागर के उस पार तुम अमर हो गए, तुम्हें हम सदैव स्मरण रखते हैं। तुम अखिल-विश्व को अपना घर बना कर चले गए, तुम्हें हम सदैव स्मरण रखते हैं। संसार में जो तुम नवालोक-दीप जला गए हो, उसकी जय हो, जय हो, जय हो—तुम्हें हम सदैव स्मरण रखते हैं। बन्दी को तुम मुक्ति-सुधा पिला गए हो, तुम्हें हम सदैव स्मरण रखते हैं। सत्य-रूपी वरमाला से तुमने वसुधा का शृंगार किया है, तुम्हें सव स्म रण रखते हैं। तुमने जो वाणी हमे सुनाई, वह भय और शोक से परे है। जय हो, जय हो, तुम्हारी जय हो।

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द
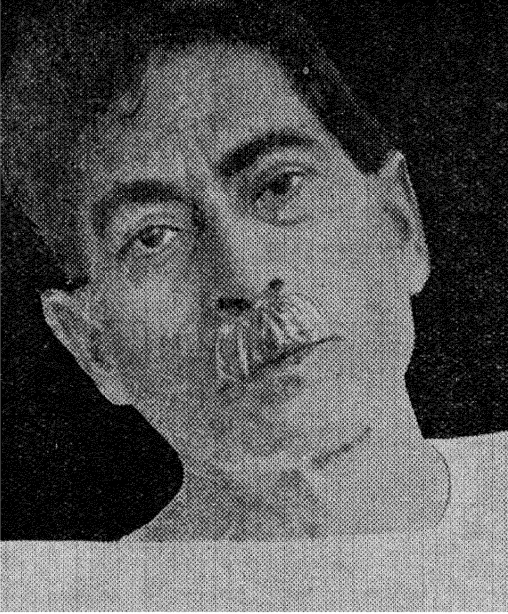
प्रेमचन्दजी

जन्म—विक्रम संवत्—१९३७

मृत्यु—विक्रम संवत्—१९९३

स्वर्गीय श्री प्रेमचन्दजी ने हिन्दी-उपन्यास के विपुल साहित्य-कान्तार में सर्वप्रथम पगडंडियों का निर्माण किया। उनके पूर्व के उपन्यास-कारों ने चरित्र-चित्रण, मानव जीवन की सूक्ष्म-अनुभूतियों और मानसिक-विश्लेषण तथा अन्तर्द्वन्द्व के ऊहापोह भरे चित्रों के निदर्शन का प्रयास नहीं किया था, साथ ही उनमें शील-वैचित्र्य की उद्भावना और अन्तर्भावों की विशद व्याख्या भी नहीं के बराबर थी। तत्कालीन उपन्यास-लेखक श्री देवकी-नन्दन खत्री, पं० किशोरीलाल गोस्वामी और श्री गोपालराम गहमरी के तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों में कथानक प्रायः प्रेम-प्रधान होते थे, चरित्र भी किसी एक विशेषता को ही लेकर चलते थे—या तो वे अत्यधिक दैवी-गुणों से सम्पन्न होते थे अथवा अत्यन्त पतित और निन्दनीय। चरित्रों के क्रमिक विकास एवं मानवीय गुण-दोषों को एक ही व्यक्ति में प्रदर्शित करने की ओर भी किसी का ध्यान अभी तक न गया था। उनका कोई पात्र आदर्श प्रेमी था—तो कोई नीच, निर्मम डाकू; कोई तिलस्मी अय्यार था—तो कोई जासूस और समस्त धूर्त्तताओं का ज्ञाता। उदार, परोपकारी, दयालु और विशाल हृदय व्यक्ति भी कभी, किसी क्षण, हीन प्रवृत्तियों के शिकार हो जाते हैं और दुष्ट व्यक्तियों में भी कभी-कभी अच्छाइयों की रश्मियां फूट पड़ती हैं—ऐसा इन उपन्यासकारों ने कभी सोचा न था। इसके अतिरिक्त उनके उपन्यासों में कथानक सौन्दर्य और वैचित्र्य का भी विकास न हो सका, अतएव कथा की प्रगति के लिए वाह्य एवं अस्वाभाविक प्रसाधनों का प्रश्रय लेना पड़ा, जिसके फलस्वरूप उन्हें संयोग-वियोग, प्रेम-घृणा, सुख-दुःख, आनन्द-विषाद और कल्पित, कौतूहलपूर्ण, दैवी घटनाओं का सहारा लेकर नई-नई कृत्रिम उलझनों की सृष्टि करनी पड़ी। कहना न होगा कि प्रेमचन्द जी ही सर्वप्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने उपन्यास-क्षेत्र में युग-प्रवर्त्तक का कार्य किया। उन्होंने उपन्यास की उत्कृष्ट भूमिका में प्रवेश करके उसकी श्लाघ्य अंगपुष्टि की और ऐसे साहित्य का सृजन किया, जिसमें उपन्यास, कहानी, गल्प आदि के द्वारा मानव-जीवन की ही भावनाओं को व्यक्त किया, उन्हीं के जीवन की नित्य प्रति की अनु-भूतियों का निदर्शन किया और उन्हीं के चरित्र के विविध, आकर्षक चित्र खींचे।

प्रेमचन्दजी के चरित्र-चित्रण का ढंग भी बड़ा ही निराला था। उनके प्रत्येक उपन्यास में अनेकों पात्र एक साथ मिलते हैं, किन्तु सब का व्यक्तित्त्व पृथक् दृष्टिगत होता है। उन्होंने अपने यथार्थ चित्रण के बल से उनकी व्यक्तिगत रुचि, आदर्श, भावना, तथा उनके स्वभाव की विशेष प्रवृत्तियों के, उनके बातचीत, रहन-सहन, रंग-ढंग, चाल-ढाल और उनके विशेष लक्षणों के चित्रण द्वारा उनका सच्चा चित्र पाठकों के समक्ष उपस्थित कर दिया है। हमें ऐसा प्रतीत होने लगता है कि वे सजीव चलते - फिरते नर-नारी, बालक-बालिकाएँ, वृद्ध-तरुण अपने ही अंगी व सहयोगी हैं, उनसे हमारा निकट का सम्पर्क है, हमारे हृदय को वे आकर्षित कर लेते हैं, अपनी ओर बरबस खींचते हैं, हम उनसे प्रसंगानुसार प्रेम तथा द्वेष करते हैं, उनकी हँसी के साथ हमारा आह्लाद फूट पड़ता है, उनके आंसुओं के साथ हमारे अश्रु भी ढुलक पड़ते हैं। वे हमारी राग-बिराग की प्रवृत्तियों से इतना गहरा सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं, हमारे जीवन में इतने घुल-मिल जाते हैं, हम पर अपना इतना व्यापक और स्थायी प्रभाव छोड़ जाते हैं कि हम उन्हें आजन्म नहीं भूल पाते।

प्रेमचन्दजी के कहानी कहने की प्रणाली भी अत्यन्त रोचक और सारगर्भित है। कथा में कल्पना की क्रीड़ा, वाग्वैचित्र्य और नए नए प्रसंगों की उद्‌भावना भी बड़े ही कौशल और सुन्दर ढंग से हुई है। प्रत्येक घटना और दृश्य की अपनी अपनी विशेषता है और वे विशृंखल होते हुए भी एक ऐसे सूत्र में बंधे चलते हैं कि उनमें पृथकत्त्व का आभास ही नहीं होने पाता। कभी कभी तो पाठक को ऐसा भान होने लगता है कि ये सभी लघु-कथाएँ महत्त्वपूर्ण जीवन-विश्लेषक चित्र हैं, जिन्हें एक सूत्र में बांध कर लेखक ने अपने बुद्धि-बल से एक विशद कथानक के रूप में प्रस्तुत कर दिया है।

प्रेमचन्दजी को मानव-चरित्र का भी अत्यधिक ज्ञान है और उनका विवेचन भी बड़ी सफलता के साथ हुआ है। किसान-जमींदार, मजदूर-मिल-मालिक, शिक्षित-अशिक्षित, सच्चरित्र-दुश्चरित्र, स्त्री-पुरुष, सभ्य-ग्रामीण, बालक-बालिकाएं आदि सभी पात्रों का वर्णन इतना आकर्षक और पूर्ण है कि वे उपन्यासों के रंग मंच पर अपना अभिनय करके अपना स्थायी प्रभाव हमारे हृदय-पटल पर अंकित कर जाते हैं। मानसिक वृत्तियों के सूक्ष्म विश्लेषण और उनके उत्थान-पतन के चित्र अंकित करने में तो प्रेमचन्द जी ने कमाल कर दिखाया है।

उदाहरणार्थ—'प्रेमाश्रम' में से ज्ञानशंकर,'रंगभूमि' से सूरदास और विनय, 'सेवासदन' में से पदमसिंह और सुमन, 'गोदान' में से होरी-धनिया, गोबर-झुनिया, मातादीन-सिलिया, मेहता-मालती, खन्ना-गोविंदी, और 'गबन' में से रामनाथ और जालपा के चरित्रों को ले लीजिये। अपने नित्यप्रति के जीवन-क्षेत्र में हमें जिस प्रकार के मनुष्य मिलते हैं, उनकी ठीक प्रतिकृति उन्होंने खींच दी है।

"चुहिया-दोहरी देह की काली-कलूटी, नाटी, कुरूपा, बड़े-बड़े स्तनों वाली स्त्री थी।" "गोबर-साँवला, लम्बा, एकहरा युवक था।" "बड़ी लड़की सोना लज्जाशीला कुमारी थी, सांवली, सुडौल, प्रसन्न और चपल। गाढ़े की लाल साड़ी, जिसे वह घुटनों से मोड़कर कमर में बांधे हुए थी, उसके हल्के शरीर पर कुछ लदी-हुई सी थी, और उसे प्रौढ़ता की गरिमा दे रही थी। छोटी रूपा पांच-छः साल की छोकरी थी, मैली, सिर पर बालों का एक घोंसला-सा बना हुआ, एक लंगोटी कमर में बांधे, बहुत ही ढीठ और रोनी।" "झींगुरी सिंह नाटे, मोटे, खल्वाट, काले, लम्बी नाक और बड़ी बड़ी मूंछों वाले आदमी थे—बिलकुल विदूषक जैसे।" इसी प्रकार 'रंगभूमि' में "सूरदास एक बहुत ही क्षीणकाय, दुर्बल और सरल व्यक्ति था। उसे दैव ने कदाचित् भीख मांगने के लिए ही बनाया था।" "जानसेवक दुहरे बदन के गोरे-चट्टे आदमी थे। बुढ़ापे में भी चेहरा लाल था। ----मुख की आकृति से गरूर और आत्म-विश्वास झलकता था।" "मिसेज़ सेवक के चेहरे पर झुरियां पड़ गई थीं, उससे उसके हृदय की संकीर्णता टपकती थी।" प्रेमचन्दजी के इन चित्रों में जो स्वाभाविकता और ताज़गी है—उसका प्रमुख कारण है—मानव-स्वभाव की उनकी खरी परख और जीवन की सच्ची परिस्थितियों का मार्मिक अनुभव। अपने उदार और ऊंचे हृदय को संसार के वास्तविक व्यवहारों के बीच रखकर उन्होंने जो संवेदना प्राप्त की है—उसी की व्यंजना उनके उपन्यासों में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है। इसके अलावा उन्हें ग्राम्य-जीवन, वहां के दृश्यों, खेलों, पुरुष तथा स्त्रियों के स्वभावों का, उनके सामाजिक, नैतिक और पारिवारिक जीवन—विशेषताओं का बहुत ही निकट-परिचय प्राप्त था। उनके कुछ पात्रों में ऐसे स्वाभाविक ढांचे की व्यक्तिगत विशेषताएं मिलती हैं कि जिन्हें सामने पाकर हमें यह भ्रम होने लगता है कि इनका और हमारा कहीं न कहीं साक्षात्कार हुआ है। निःसंदेह, उनके मनोहर और रस छलकाते चित्र बिल्कुल सच्चे और खरे उतरे हैं। उनमें मार्मिकता और अनूठी व्यंजना है। उनके भीतर से एक सच्चा हृदय झांक रहा है।

प्रेमचन्द जी आदर्शवादी कलाकार हैं। उनका मत है कि कला जीवन के लिए है न कि केवल कला के लिए। उनके यथार्थवाद पर आदर्शवाद का मानो मुलम्मा चढ़ा रहता है, किन्तु कहीं भी आदर्श के लिए कला की हत्या नहीं की गई। आदर्शवाद एवं कला का बहुत सुन्दर समन्वय उनके उपन्यासों की विशेषता है।

प्रेमचन्दजी की एक दूसरी विशेषता है कि कथानक सामान्य होते हुए भी वे अपनी वर्णन-पटुता एवं आकर्षक-शैली से उसे सजीव बना देते हैं। जीवन का इतना रहस्यमय, गूढ़ और रंजनकारी चित्रण, वाह्य और अन्तर को समान कौशल से चित्रित करने की उनकी पटुता तथा हृद्गत भावनाओं को बड़ी सुन्दरता से प्रदर्शित करने की उनकी प्रणाली देख कर विस्मय-विमुग्ध हो जाना पड़ता है। समयानुकूल आकांक्षा, प्रेम, क्षोभ, क्रोध, चिंता, प्रतीक्षा, आत्मग्लानि, घबराहट, उदासीनता, विह्वलता, सहृदयता, कोमलता, उदारता आदि के शब्द-चित्र बहुत ही सुन्दर उतरते हैं। आशा-निराशा के मानसिक-द्वन्द्व का एक चित्र देखिये:—

"धनिया सन्नाटे में आ गई। एक ही क्षण में उसके जीवन का मद स्वप्न जैसे टूट गया। अब तक वह मन में प्रसन्न थी कि उसका दुख-दरिद्र सब दूर हो गया। जब से गोबर घर आया उसके मुख पर हास की एक छटा खिली रहती थी। उसकी वाणी में मृदुता और व्यवहारों में उदारता आ गई। भगवान् ने उस पर दया की है तो उसे सिर झुका कर चलना चाहिए। भीतर की शान्ति बाहर सौजन्य बन गई थी। ये शब्द तपते हुए बालू की तरह हृदय पर पड़े और चने की भांति सारे अरमान झुलस गए। उसका सारा घमंड चूर-चूर हो गया। इतना सुन लेने के बाद जीवन में क्या रस रह गया। जिस नौका पर बैठ कर इस जीवन-सागर को पार करना चाहती थी वही टूट गई, तो किस सुख के लिये जिये।"

ईर्ष्याग्नि नारी की कोमल भावनाओं को झुलसा कर उसकी मृदुता को सुखाकर कितना भीषण रूप धारण कर लेती है, इसका एक उदाहरण देखिए:—

"देखो सिल्लो, मुझसे साफ साफ बता दो, नहीं तो मैं तुम्हारे सामने, यहीं, अपनी गर्दन पर गंडासा मार लूंगी। फिर तुम मेरी सौत बन कर राज

किरणों में नहा रही थीं और सिल्लो विक्षिप्त-सी स्वप्न-छाया की भांति नदी में चली जा रही थी।

प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में कथोपकथन भी एक मुख्य तत्व है, जिसके द्वारा उन्होंने अपने विचारों, आदर्शों और सिद्धान्तों को प्रकट किया है। उनके कथोपकथन बहुत ही सजीव, पात्रों के अनुकूल, सारगर्भित और प्रभावशाली होते हैं। वे नपे तुले, अधिक बड़े न अधिक छोटे और व्यर्थ के शब्दाडम्बर से विनिर्मुक्त होते हैं।

आरोप-प्रत्यारोप का एक दृश्य देखिए :—
"मिस मालती ने तंखा को तिरस्कार भरी आँखों से देखा।

"आप लोग इतने कायर हैं, यह मैं न समझती थी।"

"मैं भी यह न समझता था कि आपको रुपये इतने प्यारे हैं और वह भी मुफ्त के।

"जब आप लोग मेरा अपमान देख सकते हैं, तो अपने घर की स्त्रियों का भी अपमान देख सकते होंगे?"

"तो आप भी पैसे के लिये घर के पुरुषों को होम करने में संकोच न करेंगी।"

एक औपन्यासिक के लिए जिस प्रकार की भाषा वांछनीय है वैसी ही प्रेमचंदजी को प्राप्त है। उनमें ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभा है और वह सृजनात्मक कल्पना है, जिसके फलस्वरूप उनकी भाषा अत्यन्त मधुर, ओजपूर्ण, मुहावरेदार और रचनाकौशल एवं आकर्षक शब्दावली से युक्त है। ऐसा प्रतीत होता है मानों उसमें नैसर्गिक प्रवाह है और वह स्वयमेव कलम से फिसलती चलती है। प्रत्येक पात्र की चारित्रिक विशेषताओं, योग्यता, परिस्थिति और अवस्था के अनुरूप कहीं तो भाषा अत्यन्त परिमार्जित, सारगर्भित, साहित्यिक और संस्कृतमय हो गई है:—

"वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है। फिर मध्याह्न का प्रखर ताप आता है, क्षण क्षण पर बगूले उठते हैं और पृथ्वी कांपने लगती है। लालसा का सुनहरा आवरण हट जाता है और वास्तविकता अपने नग्न रूप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममय

संध्या आती है, शीतल और शान्त जब हम थके हुए पथिकों की भाँति दिन भर की यात्रा का वृत्तान्त कहते और सुनते हैं, तटस्थ भाव से मानों हम किसी ऊंचे शिखर पर जा बैठे हैं, जहां नीचे का जनरव हम तक नहीं पहुंचता ।"

कहीं इतनी उर्दूमय हो गई है कि जिसका आशय उर्दू के अच्छे जानकार ही समझ सकते हैं ।

"मैं इख़राज की तहरीक पर एतराज़ करने को जुरअत कर सकता हूं ।"

कहीं सरल, कहीं साहित्यिक, कहीं उर्दूमय, कहीं संस्कृतगर्भित, कहीं क्लिष्ट, तो कहीं ग्रामीण—कहने का तात्पर्य यह है कि अपनी भाषा को पात्र परिस्थिति और प्रसंगानुकूल मोड़ने-तोड़ने में वे अत्यन्त सिद्धहस्त थे । हिन्दी-उर्दू की उन्हें पूर्ण जानकारी थी ।

कुछ साहित्यिक विद्वानों के मतानुसार प्रेमचन्दजी नारी के चरित्र-चित्रण में असफल हुए हैं, किन्तु हमें तो लगता है कि नारी की शक्ति और दुर्बलताओं का, उनके सामाजिक, नैतिक और शारीरिक स्वभाव एवं विशेषताओं का, उनकी रुचि, आदर्श, भावना तथा चारित्रिक उत्थान-पतन आदि का जितना मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रेमचन्द ने किया है उतना अन्य किसी आधुनिक उपन्यासकार ने नहीं । नारी कब प्रेम करती है, कब द्वेष करती है, कब उसके हृदय के तार सहसा झनझना उठते हैं, कब वह पश्चात्ताप और आत्मग्लानि से भर जाती है, प्रेम में वह कितनी द्रवीभूत हो उठती है, क्रोध और प्रतिशोध के समय वह किस प्रकार चण्डी का रूप धारण कर लेती है, लज्जा से वह कितनी मर सी जाती है और गर्वोन्मत्त वह कितनी उज्ज्वल और गौरवमयी हो उठती है—इसका जितना ज्ञान प्रेमचन्दजी को था, उतना कदाचित् ही अन्य किसी को । सुमन, धनिया, जालपा. निर्मला, झुनिया, सिलिया, गोविंदी आदि के चरित्र क्या भुलाए जा सकते हैं ।

कहानी-क्षेत्र में भी प्रेमचन्दजी ने अद्वितीय कार्य किया है । उनकी कहानियों में मार्मिक प्रसंगों और दृश्यों का चुनाव, प्रभाव की व्यंजना एवं निगूढ़ मनोगतियों का निदर्शन हुआ है । वस्तुतः यदि मार्मिकता एवं प्रभाव की दृष्टि से देखा जाय तो उनका महत्त्व उपन्यासों से कम नहीं है । वरन् यों कहना चाहिये कि उनकी कहानियों में जो जीवन-सम्पर्क और सहानुभूति है, कल्पना की मनोरमता के साथ-साथ मानव-स्वभाव का सूक्ष्म विश्लेषण और वैचित्र्य है

तथा कहानी कहने के ढंग में जो नैसर्गिक प्रवाह एवं प्रतिभा है—उसी के कारण वे हिन्दी-कहानी के जन्मदाता कहे गए हैं और उसी का परिणाम है कि हमारा कहानी-साहित्य विश्व साहित्य में कुछ स्थान पा सका है।

उनकी कई कहानियों के अनुवाद जापानी, अंग्रेजी, रूसी तथा कई भारतीय भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। ग्राम्य-जीवन का जो यथार्थ एवं स्वाभाविक चित्रण, वस्तुविन्यास की अकृत्रिमता एवं अनुभूति-प्रवणता जो हमें इनके उपन्यासों और कहानियों में मिलती है—वह बेजोड़ है। निःसंदेह, हिन्दी-कथा-साहित्य में एक ये ही ऐसे अन्तर्द्रष्टा कलाकार हुए हैं, जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय-ख्याति प्राप्त है और जो निर्विवाद रूप से भारतीय उपन्यास तथा कहानी-साहित्य के प्रतिनिधि माने गए हैं।

प्रेमचन्द और गोर्की
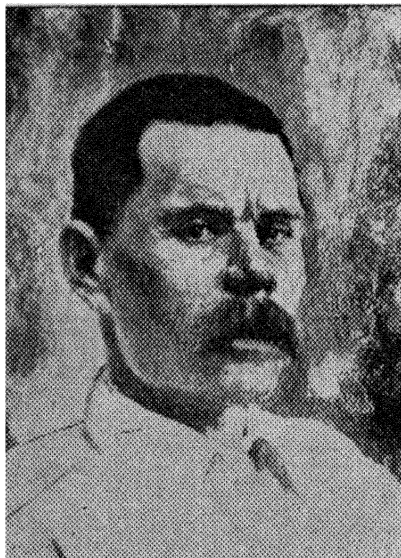
रूसी उपन्यासकार मैक्सिम गोर्की
जन्म–सन् १८६८
मृत्यु–सन् १९३६

गोर्की ने एक स्थल पर लिखा है—'कलाकार अपनी प्रवृत्तियों से भी विशाल है। उसकी भाव-राशि अथाह एवं अचिन्त्य ह।' वस्तुतः सच्चा कलाकार अपनी कला के भीतर विराट् सत्य को व्यक्त करता है। उसकी कला प्रकृत सौन्दर्य का प्रतिरूप न होकर अन्तःसौन्दर्य का दर्पण है, जिसके कण-कण में उसकी आत्मा समाई रहती है। प्रत्येक कला कोविद के अन्तर्मानस से अनन्त कला-धाराओं का स्रोत निस्सृत होकर उसकी विराट् क्षमता को व्यक्त करता हुआ देश और काल की परिधि का अतिक्रमण कर सभी के लिये इन्द्रिय-ग्राह्य बन जाता है। यही नहीं, वह अपनी संस्कृति से युगान्तर उपस्थित कर देता है। वह पथ-प्रदर्शक ही नहीं होता, युगनिर्माता होता है। युग के वातावरण, परिस्थिति, विचारधारा एवं आदर्शों पर उसके व्यापक प्रभाव की मुहर लगी रहती है, जो उसकी महत्ता की चिरद्योतक है। प्रेमचन्द्र और गोर्की दोनों ही महान् कलाकार हैं, युग-प्रवर्त्तक हैं, अन्तर्द्रष्टा हैं। दोनों की रचनाओं में उच्च कोटि की प्रतिभा, कल्पना और भावप्रवणता है और है वह वैलक्षण्य और रचना-चातुर्य, जिससे कि वे एकदेशीय न होकर विश्व-साहित्य की अमूल्य निधि बन गए हैं।

गोर्की का उदय

रूस के साहित्यिक गगन में मैक्सिम गोर्की के उदित होने के पूर्व तत्कालीन कथा-साहित्य सस्ते और भद्दे किस्सों, उच्छृंखलता और उन्माद के गर्त में पड़ा था। उसमें विलासिता, धनिकों के कार्य कलाप, रहन सहन, मनोरंजन और प्रेम-व्यंजना का ही चित्रण विशेष रूप से था। जितने भी उपन्यास और कहानियां अब तक लिखी गई थीं,उनमें शृंगार-रस और वासनात्मक प्रेम की मादकता का ही प्राधान्य था,उनमें था एक स्वप्निल संसार, जो वास्तविकता से अति दूर था। प्रेम, हाव-भाव, द्वन्द्व, द्वेष के आकर्षक चित्र ही उस साहित्य की जान थे। गोर्की ही सर्वप्रथम कलाकार था, जिसने इस प्रवाह में न बह कर त्रस्त मानवता का—सदियों से दासता की शृंखला में बंधे किसान-मजदूरों का—उत्पीड़ित एवं शोषित नर-नारियों, बच्चों एवं ग्रामीणों का जीता-जागता चित्र अंकित किया। उसने ही पहली बार अपने उपन्यासों में अपने देश के समकालीन जीवन और संघर्ष, गरीबी के हृदयविदारक दुःखों एवं कटु अनुभवों का दिग्दर्शन कराया। कारण स्पष्ट है। उसने बचपन से ही दुःख और कष्ट झेले थे। प्रारम्भिक अवस्था में ही अत्यन्त दीन, विपन्न जीवन-साधनों पर जीने के लिये उसे छोड़ दिया गया था। चार वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु हुई। दुखिया माँ के आश्रित ननिहाल में उसने दरिद्रता पूर्वक जीवन व्यतीत किया। पुनः दुःखों के भार से जर्जर माँ भी चल बसी। गोर्की को कोमल वय में ही कष्टों और और मुसीबतों का सामना करना पड़ा। भाग्य की विडम्बना! बालक गोर्की को क्या-कुछ नहीं करना पड़ा—बर्त्तन मांजने का काम, चपरासीगीरी, नानबाई के यहां रोटी सेंकने का काम, चिड़िया पकड़ कर बेचना, मोची के यहां जूते बनाना, मजदूरी और रेलवे-चौकीदारी आदि सभी कार्यों को करने के लिये उसे बाध्य होना पड़ा। बस, यहीं से गोर्की का जीवन समस्त मानवता के हित-चिन्तक के रूप में प्रारम्भ होता है।

उसके हृदय में हूक थी, व्यथा की कराह, जिसके अन्तर में विश्व-प्राण का स्पन्दन जाग्रत था। अपनी वैयक्तिक भाग्य-विडम्बना की निष्ठुर अवज्ञा को उसने सार्वजनिक लज्जा एवं तिरस्कार के रूप में देखा। उसकी आत्मा चीत्कार कर उठी। अपने संघर्षों की तस्वीर खींचते हुए उसने एक बार लिखा था-"मैं संघर्षों में पला

हूं। मैने वाल्यावस्था से ही लोगों की असह्य घृणा और कुविचारपूर्ण निष्ठुरता को सहा है। कभी-कभी मुझे आश्चर्य होता था यह देखकर कि कोई तो कष्टों से जजर मुसीबतों का मारा है और कोई प्रचुर वैभव में खेल रहा है ! मैंने बहुत छोटी उम्र में ही इस बात को समझ लिया था कि बड़े आदमी अपने को न-जानें क्या समझते है और उनका असली रूप तो तब दिखाई देता है, जब कि वे गरीब मेहनतकशों से जी-तोड़ काम लेते हैं,उनकी भर्त्सना करते हैं। यह सब मुझे सुहाता न था। मेरे दिल में चिनगारियां-सी जलती थीं। कभी-कभी मैं क्रोध और प्रतिशोध की भावना से पागल हो उठता था। मुझे ऐसा प्रतीत होता था, मानों सघन बन में मैं अपना मार्ग भूल गया हूं, कांटों में उलझा हुआ हूं, ऐसे झाड़-झंखाड़ में जा फंसा हूं, जहां से मेरा निकलना कठिन हो गया है।" बस, इन्हीं दुरवस्थाओं और विषम परिस्थितियों ने उसे अपने समय का सबसे अधिक लोकप्रिय लेखक बना दिया। वर्त्तमान समय में विश्व का कोई ऐसा जाग्रत, मेहनतकश और बुद्धिजीवी वर्ग नहीं है, जो गोर्की को न जानता हो ।

प्रेमचन्द और उनकी पृष्ठभूमि

लगभग इसी प्रकार प्रेमचन्दजी की साहित्य-साधना भी प्रारम्भ होती है। १५-१६ वर्ष की अवस्था में ही उनके पिता की मृत्यु हो गई थी। तब से सारे परिवार को संभालने की ज़िम्मेदारी उन पर ही आ पड़ी। अत्यन्त निर्धनता और मुसीबतों से उन्होंने अपने दिन काटे। ये उद्‌गार उन्ही के हृदय के तो हैं, जो उन्होंने धनिया द्वारा व्यक्त कराये हैं–"फिर वह बैन कहकर रोने लगी–इस घर में आकर उसने क्या नहीं झेला, किस-किस तरह पेट-तन नहीं काटा, किस तरह एक-एक लत्ते को तरसी, किस तरह एक-एक पैसा प्राणों की तरह संचा, किस तरह घर भर को खिला कर आप पानी पीकर सो रही। और आज उन सारे बलिदानों का यह पुरस्कार। भगवान् बैठे यह अन्याय देख रहे हैं और उसकी रक्षा को नहीं दौड़ते। गज की और द्रौपदी की रक्षा करने वैकुण्ठ से दौड़े थे। आज क्यों नींद सोए हुए हैं ?" निःसन्देह ये पंक्तियां प्रेमचन्द की अपनी आर्थिक कठिनाइयों का भी दिग्दर्शन कराती हैं। अन्ततः जीवन की प्रयोगशाला में अपने हृदय को मानव-मात्र की पीड़ा में अभिभूत कर एक नवीन पथ की ओर उन्मुख कर देने की महान् योग-साधना में

वे अपनी लेखनी के बल पर प्रवृत्त हुए ।

उन दिनों हमारा उपन्यास और कहानी-क्षेत्र भी अधूरा और अविकसित था। तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों तथा प्रेम-आख्यानों की ही प्रधानता थी । अन्तर्द्वन्द्व, चरित्र-चित्रण, सूक्ष्म पर्यवेक्षण एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का तो सर्वथा अभाव ही था। प्रेमचन्द ने प्रथम बार उपन्यासों का एक नवीन रूप प्रस्तुत किया। साधारण एवं अश्लील घटनाओं और दृश्यों से पीछा छुड़ा कर वे अपनी प्रौढ़-रचना, उत्कृष्ट व्यंजना-शैली एवं सृजन-शक्ति द्वारा अपने युग के आगे—बहुत आगे निकल गए। कहने की आवश्यकता नहीं कि उन्होंने गोर्की के सदृश ही अपने उपन्यासों में भारतीय कृषक-जीवन का संघर्षमय और दर्दीला चित्र बड़ी कुशलता के साथ खींचा है ।

प्रेमचन्द और गोर्की दोनों ही कलाकारों की यह विशेषता है कि उन्होंने अपने अपने देश के कथा-साहित्य को परिपुष्ट किया, उसे अग्रगामी बनाया और उसमें जीवन फूंका। वे उन तेजवान् स्वप्नद्रष्टाओं में थे जिनका जीवन निःशेष आत्मदान की दिव्य, भव्य अग्नि-शिखा के रूप में प्रज्ज्वलित होकर जनता के जड़ीभूत और तिमिराच्छन्न हृदयों को चैतन्य-प्रकाश से जगमगा जाता है और उनमें शक्ति एवं संजीवन डाल देता है। प्राणों को निचोड़ कर मानों वे लिखते थे। उनकी मुस्कराहट में अश्रु छिपे थे उनके अन्तर्मानस में वह द्वन्द्व और दुर्दम्य इच्छाओं का आलोड़न-विलोड़न था जिसमें मानव-मात्र की वेदना पुंजीभूत हुई थी। प्रेमचन्द और गोर्की दोनों ने ही अपने-अपने उपन्यासों में किसान और मजदूर के परवश जीवन, उनके कष्टों और संघर्षों का विशद चित्रण कर जमींदार, मिल-मालिक, पटवारी, पुलिस और राज कर्मचारियों के जोर-जुर्म और ज्यादतियों पर प्रहार किया है। नियति की चक्की में पिसते हुए दरिद्र किसान की दुरवस्था और राज कर्मचारियों की उद्दण्डता का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द का व्यंग-विद्रूप कितना तीव्र और कठोर हो उठा है, देखिए—"हैं हमारे ही भाई-बन्द पर हमारी ही गरदन पर छुरी चलाते हैं। किसी ने ज़रा साफ कपड़े पहने और ये लोग उसके सिर हुए। जिसे घूस न दीजिए, वही आप का दुश्मन। चोरी कीजिए, डाके डालिये, घरों में आग लगाइए, गरीबों का गला काटिए, कोई आप से न बोलेगा। बस, कर्मचारियों की मुट्ठी गरम करते रहिए दिन दहाड़े खून कीजिए, पर पुलिस की पूजा कर दीजिए, आप बेदाग छूट जायेंगे।

आपके बदले कोई बेकसूर फांसी पर चढ़ा दिया जायगा। कोई फरियाद नहीं सुनता। कौन सुने,सभी एक ही थैली के चट्टे बट्टे हैं। यह समझ लीजिए कि हिंसक जन्तुओं का गोल है, सब-के-सब मिल कर शिकार करते और मिल-जुल खाते हैं। राजा है, वह काठ का उल्लू। उसे विलायत में जाकर विद्वानों के सामने बड़े-बड़े व्याख्यान देने की धुन हैं। मैंने यह किया और मैंने वह किया। या तो विलायत की सैर करेगा या यहां अंग्रेजों के साथ शिकार खेलेगा। सारे दिन इन्हीं की जूतियां सीधी करेगा, इसके सिवा उसे कोई काम नहीं, प्रजा जिए या मरे।"

प्रेमचन्द के 'गोदान' और गोर्की के प्रख्यात उपन्यास 'मां' (Mother) में बहुत-कुछ साम्य है। 'गोदान' का प्रमुख पात्र है 'होरी', जो भारतीय किसान का प्रतिनिधित्व करता है और 'मां' का नायक है 'पावेल व्लासोव' जो एक साधारण और दरिद्र मिल-मजदूर है। मेहनतकश जनता का वह शोषित,उत्पीड़ित,जर्जर मानव किसान और मजदूर संघर्षों के भंवर में इर्द-गिर्द चक्कर काट रहा है। उसमें कितनी ही कमजोरियां हैं, असंगतियां हैं, दुर्बलताएं हैं, नैतिक त्रुटियां हैं। कभी वह अपने आदर्श से गिर जाता है। कभी उसकी आत्मा चीत्कार कर उठती है और धनिकों के प्रति विद्रोह करने लगती है। 'गोदान' में होरी की पत्नी धनिया कहती है–"ये हत्यारे हमारे गांवके मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसने वाले। सूद-व्याज, डेढ़ी-सवाई, नजर-नजराना, घूस-घास जैसे भी हो, गरीबों को लूटो। उस पर सुराज चाहिए। जेहल जाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धरम से,न्याय से।" 'मां' में पावेल-व्लासोव के हृदय में भी इसी प्रकार की विद्रोही चिनगारियां सुलग रही हैं।

'गोदान' में होरी एक आदर्श और सच्चा किसान होने पर भी अपने जीवन में दो निन्द्य कर्म करता है–एक तो बांसों का सौदा करते हुए भाव में बेईमानी करना, दूसरे छोटी कन्या रूपा के विवाह में रुपये लेकर बृद्ध के हाथ लड़की बेंचना। गोर्की के 'मां' उपन्यास में भी व्लासोव शराब पीता है, गन्दी-गन्दी गालियां देता है। वह अड़ियल और अभिमानी है। उसमें अन्य मज़दूरों की भांति ही पारस्परिक घृणा और ईर्ष्या के भाव हैं। इन सब चारित्रिक दुर्बलताओं और नैतिक त्रुटियों का कारण है निर्धनता और परवशता, जो मानव को दानव बना देती है, उसके विवेक

को खो देती है, उसकी कोमलता और जीवन-रस को सुखा डालती है। प्रेमचन्द के शब्दों में "उनकी निरीहता जड़ता की हद तक पहुंच गई है, जिसे कोई कठोर आघात ही कर्मण्य बना सकता है।" होरी की मृत्यु के समय एक गाय भी दान करने को नहीं है। उसके जीवन-अवसान का यह दृश्य कितना करुण और रोमांचकारी हो उठा है–"धनिया यन्त्र की भांति उठी। आज जो सुतली बेंची थी, उसके बीस आने पैसे लाई और पति के ठण्डे हाथों पर रख कर सामने खड़े दातादीन से बोली– 'महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है।' और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।" ठीक इसी प्रकार पावेल व्लासोव की मृत्यु के समय भी बहुत देर तक उसके लिये कोई रोने वाला नहीं है। उसके शव को दफना कर जब सब लोग चले जाते हैं, तो उसका एक मात्र कुत्ता उसकी समाधि पर चुपचाप बैठा अपनी मूक संवेदना प्रकट करता है।

अधूरे ध्वंस से क्रान्ति की ओर

सन् १९०५ और १९१७ की दो रूसी क्रांतियां गोर्की के हृदय पर अपना स्थायी प्रभाव छोड़ गई थीं। उसने बोल्शेविकों का साथ दिया था और उन महान् क्षणों में वह क्रांति के उस अग्रदूत मशालची के रूप में हमारे समक्ष आता है, जिसे हर कदम पर अपनी कठोर साधना की सचाई की कड़ी परीक्षा देनी होती है। उसकी सिद्धांत निष्ठा, दलितों, पीड़ितों और दुखियों के प्रति उसका अनुपम स्नेह एवं सहानुभूति, समग्र मानवता के प्रति उसकी स्वाभाविक सद्भावना और प्रकृत अधिकारों के लिये सजग एवं क्रियाशील होने की उसकी सहजात प्रवृत्ति उसकी शक्तिशाली आत्मा की परिचायक है। 'वे तीनों', 'फोमा गोर्देव', 'दि ओर्लोव्स', 'दि आत मोनोव्स', 'क्लिम सोम्गिन की जीवनी' आदि उसकी महान् रचना शिष्ट समाज के अधूरे ध्वंस की चिरन्तन शोक-गाथा है। वह संघर्षों का अंकुर था और ग़रीबी की गोद में पला था। साधना और तपस्या, प्रतिभा और प्रयत्न, अनुभव और अध्ययन, प्रेम और घृणा के अनमिल भावों को हृदय में संजोए एक सचोट और शक्तिशाली कलम से वह अबाध गति से लिखता चला जा रहा था। उसकी रचनाओं में तप्त निःश्वास छिपे हैं, आंसुओं की अनमोल बूंदें अन्तर्निहित हैं, जो कसक-कसक कर निकल पड़ती हैं। निःसन्देह वह जनता का साथी था। उसे अपने सिद्धांतों के बीज

जनता के हृदय की धरती पर बोने थे। किसानों और मज़दूरों की दयनीय स्थिति का चित्र खींचते हुए वह लिखता है–'हमारे इन दुखी भाइयों का कोई इतिहास नहीं। इतिहास उनका होना चाहिए। इतिहास का उन्होने निर्माण किया है, किन्तु वे इसे जानते नहीं। वे इसे लिख नहीं सकते,समझ नहीं सकते,इसका एक बहुत ही छोटा-सा तुच्छ कारण है कि वे अशिक्षित,भोले मानव हमारे इतिहास में पशु से भी बदतर समझे जाते हैं। वे उच्च वर्ग और धनिकों की स्वतन्त्रता का अपहरण करने वाले समाज का अभिशाप और कलंक के रूप में देखे जाते हैं। यद्यपि उन्होने ही राजाओं की उच्च अट्टालिकाओं की सुदृढ प्राचीरें चिनी हैं; उन्होंने ही विशाल नगरों लम्बी चौड़ी सड़कों, कोठियों, किलों और महलों का निर्माण किया है, उन्होंने ही हमारे लिये सुन्दर सुन्दर वस्त्र, दरी, कालीन और तरह तरह की रेशमी पोशाकें बनाई हैं; चमड़ा, ऊन, लकड़ी, धातु आदि विभिन्न प्रसाधनों से उन्होंने ही हमारी सुख-सुविधा की चीजें प्रस्तुत की हैं; उन्होने ही सजावट की चीजें देकर हमें सजाया है, हमें बड़ा बनाया है, हमें सुख और सम्मान प्रदान किया है, उन्ही के अनुग्रह से हम मनुष्य कहलाने योग्य हुए हैं– यही नहीं, वे हमें रोटी देते हैं, हमारा पेट भरते हैं, हमारे पोषक और प्रतिपालक हैं, किन्तु हमारी कृतघ्नता तो देखिए कि हम उनको अपनाने,अपना बताने और पास बिठाने में भी शर्माते हैं, लज्जा से सिर झुका लेते हैं।"

हिन्दी के औपन्यासिक सम्राट् प्रेमचन्द के हृदय में भी किसानों और मजदूरों के प्रति ऐसा ही असीम स्नेह का स्रोत उमड़ा पड़ रहा था। 'रंगभूमि', 'प्रेमाश्रम', 'सेवा सदन', 'कायाकल्प', 'कर्मभूमि', 'निर्मला' आदि उनके उपन्यासों में मानव की महानता में विश्वास, पतन के गर्त में पड़े हुए व्यक्तियों के कल्याण की दृढ़ भावना, गरीबों से प्यार, श्रमिकों के उद्धार की भावना आदि सभी गोर्की की प्रमुख प्रवृत्तियां विद्यमान थीं। ठीक गोर्की के ही भाव उनकी निम्न लिखित पंक्तियों में प्रतिध्वनित हो रहे हैं– "आपके मजूर विलों में रहते हैं–गन्दे, बदबूदार बिलों में–जहां आप एक मिनट भी रह जायें, तो आप को कै हो जाय। कपड़े जो वे पहनते हैं, उनसे आप अपने जूते भी न पोछेंगे। खाना जो वे खाते हैं, वह आप का कुत्ता भी न खाएगा।'

प्रेमचन्द और गोर्की दोनों ही यथार्थवादी कलाकार हैं। दोनों में सहानुभूति, पैनी अर्न्तदृष्टि, विलक्षण प्रतिभा और चित्रण शक्ति है। विचार-धाराओं एवं जीवन-दृष्टियों की समता में भी वे किसी हद तक एक ही स्तर पर हैं।

उनकी विशेषता इस बात में है कि उन्होंने मनोरंजक और कलापूर्ण कथा-साहित्य एवं उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के बीच की झूठी खाई को सर्वथा मिटा दिया। उन्होंने अपनी कल्पना-शक्ति,भाव-गाम्भीर्य और मनोवैज्ञानिक बारीकियों तथा सहानुभूति-पूर्ण उद्गारों को प्रकट करके बहुत अधिक प्रसिद्धि और लोकप्रियता प्राप्त की। प्रेमचन्द और गोर्की के उपन्यास अपनी सूक्ष्म विविधताओं और चलचित्रात्मक प्रभाव उत्पन्न करने में अपना सानी नहीं रखते। वर्षों बीत गये, किन्तु उनके उपन्यासों के पात्र आज भी हमारी कल्पना में जीवित हैं। उनके विचार, कार्य-कलाप हम कभी भूल नहीं पाते—मानों उनका अंकन उस सधी और निर्भीक कलम से हुआ है, जो विश्व की विराट् चित्रशाला में अगणित चित्र नित्य बनाती और मिटाती है।

भारत से कोसों दूर रूस में मलोतफ़ ने जो एक बार गोर्की के बारे में लिखा था, वही आज प्रेमचन्द पर भी हू-ब-हू लागू होता है—"गोर्की की महत्ता इसमें है कि वह जनता का सच्चा कलाकार है। उसमें मानसिक शक्तियों का पूर्णरूपेण प्रस्फुरण हुआ है। संघर्षों की कड़ी चोट से उसकी वृत्तियां सजग हो गई हैं, उसकी आत्मा में सबलता आ गई है, धमनियों में स्फूर्ति भर गई है। वह नितान्त सजग और सचेष्ट है। उसके उपन्यास गरीबों की गीता है। उनमें किसानों और मजदूरों की करुण आहें और चीत्कार छिपे हैं। इस प्रकार उसने सर्वसाधारण को जीत लिया है, उन्हें अपना मित्र और सच्चा हितैषी बना लिया है।"

गेटे और प्रसाद

श्री जयशंकर प्रसाद

जन्म–विक्रम सम्वत्–१९४६

मृत्यु–विक्रम सम्वत्–१९९४

जर्मनी का महान् कलाकार योहान वुल्फगांग गेटे

जन्म–सन्–१७४९

मृत्यु–सन्–१८३२
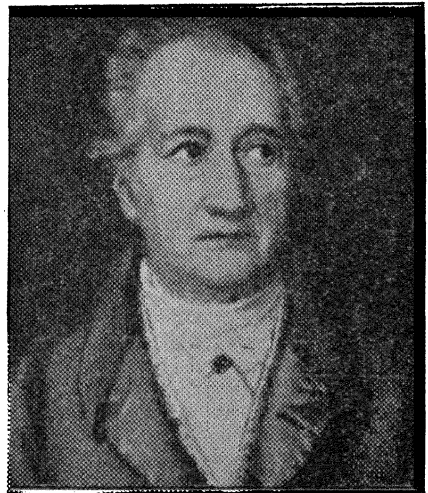
गेटे और प्रसाद—दोनों ने कला-साधना के भग्न खण्डहर में एक दिन चंचल मन, किन्तु अकम्पित करों से स्नेह-दीप संजोया था और आकुल प्राण एवं हृदय की टीस लिए वे अनिश्चित् काल तक किसी तिमिराच्छन्न अज्ञात-पथ में भटकते रहे थे, जहां प्रेम और साधना के द्वन्द्व ने उनके मार्ग को दुर्गम बना दिया था तथा जहां उनकी बंदिनी, आहत आत्मा रह-रह कर न जाने कितनी बार तड़प पुकार उठी थी, **"मैं एक भटकी हुई बुलबुल हूं। मुझे किसी टूटी डाल पर अंधकार बिता लेने दो। इस रजनी-विश्राम का मूल्य-अंतिम तान सुनाकर जाऊंगी।"**

जर्मनी के महामहिम, वयोवृद्ध कलाकार गेटे के साथ तरुण-कवि प्रसाद की तुलना का प्रयास कदाचित कुछ साहित्य-रसिकों को हास्यास्पद प्रतीत हो, किन्तु जिस बहुमुखी-प्रतिभा और विराट्-कल्पना के सहारे गेटे ने अपने महाग्रन्थ 'फॉस्ट' (faust) की रचना साठ वर्ष के लम्बे, दीर्घ-काल में अपने तरल रक्त-कणों से सींच-सींच अत्यन्त कठिनाई से पूरी की थी, उस अलौकिक प्रतिभा का आभास प्रसाद में हमें उनके अल्प जीवन काल में ही हो गया था। जिन कला-पारखियों ने उनके अन्तर में संचित अनंत वैभव का यत्किंचित आभास पाया है, वे इस अप्रत्याशित भावना को मन में लाये बिना नहीं रह सकते—काश ! वे कुछ दिन और जीवित रह पाते। निःसन्देह, इन युग्म व्यक्तित्वों में अनेक असमानताओं के बावजूद भी जो एक विशेष समानता दृष्टिगत होती है—वह है उनके स्वभावों की विचित्रता, रंजित कल्पना, दार्शनिक रहस्यात्मकता और असाधारण, निर्व्याज्य भाव-सघनता में। जीवन के कगार पर खड़े हो दोनों ने प्रकृति के अणु-अणु में प्रेमतत्व को सन्निहित कर यौवन के मादक सौंदर्य-स्वप्नों को कल्पना की निविड़ रंगीनियों में आंख-मिचौनी करते देखा था और उनके मन का आह्लाद व विफल प्रेम का अवसाद सुख-दुःख के विविध, रंगीन चित्रों को सृजन करने में समर्थ हुआ था। कहना न होगा—दोनों की रचनाओं में एक स्वप्निल मानसिक वातावरण और व्यथा का सम्मोहन है। प्रेमोन्माद और बाह्य-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में उनके भाव जितने ही अन्तर्गूढ़ होते गये हैं—उनकी भावाभिव्यंजन की कला भी उतनी ही सघन और गुम्फित होती गई है। न जाने उन्होंने कितनी बार नीरव क्षणों में अपनी अलसायी, अर्द्धनिमीलित पलकों को तन्मयता की कारा

में बन्दी बना किन्हीं अज्ञात कारणों से अपने मन के अन्तरतम प्रदेश में एक विचित्र उमंग, एक विचित्र कसमसाहट और मीठी व्यथा का अनुभव किया था। यौवन का उद्दाम वेग कभी उनकी धमनियों में इतना तीव्र हो उठता था कि उन्हें ऐसा लगता मानो वे इसे रोक सकने में असमर्थ हैं। एक अजीब मदहोशी एवं तन्द्रिलता में उन्हें वातावरण की निस्तब्ध शान्ति, असीम शून्य का मूक मौन, और जीवन की बृहत्तम शून्यता अखरने लगती। उनका मन किसी अज्ञात वस्तु के साक्षात्कार की लालसा में तड़प उठता। जब शुभ्र, स्निग्ध चांदनी की पतली सी हल्की, झीनी चादर प्रकृति पर छा जाती और आकाश में बादल के सफेद, छोटे टुकड़े चपल शिशु से इतस्ततः दौड़ते, जब सारा संसार थककर सो जाता और ज्योत्स्ना पर तिरते हुए शीतल बयार के झोंके एक छोर से दूसरे छोर तक लहरा-लहरा उठते, तब उनके हृदय की उमंग, आकांक्षा और मस्तिष्क की अशान्ति चांदनी के दूरस्थ तट पर टकरा-कर लौट आती और किसी का किसी के प्रति नीरव संदेश कहती हुई प्रकृति के तार तार में प्रकम्पन भर देती।

यौवन स्वप्न

अपने जन्मस्थान फ्रांकफुर्ट नगर में स्थित अपने विशाल पारिवारिक भवन की खिड़कियों से गेटे ने न जाने कितनी बार आत्म-विभोर हो, सुषुप्ति के आवरण में आवृत्त, प्रकृति के अदृश्य संकेतों में अपनी प्रेयसियों के सुन्दर मुख-मण्डल का दर्शन किया था। अल्हड़, नवयौवना क्रीशन की व्यथाभरी, स्निग्ध मुस्कान और चपल नेत्रों के क्रूर कटाक्ष न जाने कितनी बार उसकी गीली आंखों के समक्ष बिजली से कौंध गये थे, जिन्हें कि वह मर्मघाती और पीड़क होने पर भी यावज्जीवन न भुला सका था। एक स्थल पर वह लिखता है:—

"उसका प्यारा गोल मुख खिड़की से बाहर लटका हुआ था। सचमुच, मैंने उसे आकाश की ओर निहारते देखा। वह ज़रा भी हिली-डुली नहीं। बहुत धीमी पुराने गीत की अस्पष्ट सी एक कड़ी सुन पड़ रही थी "यदि मैं चिड़िया होती।" वह नगर की सुदृढ़, विशाल प्राचीरों का अवलोकन कर रही थी, जो उसकी विरह-व्यथा पर अट्टहास-सा करते प्रतीत होते थे।"

अपनी द्वितीय प्रेयसी फ्रेडरिका ब्रॉयन की सरल उत्सुकता, उद्दीप्त लालसा एवं निराश प्रेम की आकुल पीड़ा को भी वह मन ही मन सोच अधीर हो उठता था, जिसके सच्चे प्रेम की अवहेलना कर उसने घोर अपराध किया था और जिसके

लिये वह अपने आप को कभी क्षमा न कर सका। 'फॉस्ट' के प्रथम भाग की नायिका मार्गरिट उसकी प्रेयसी फ्रेडरिका ब्रायन की प्रतीक ही है. जिसकी सच्ची लगन और 'प्रेम की पीर' को उसने निम्नलिखित पंक्तियों में इस प्रकार व्यक्त किया है—

"मेरी शांति भंग हो गई।
मेरा हृदय तड़प रहा है।
आह! उस शांति को मैं कभी न पा सकूंगी—न—न कभी नहीं।
केवल उसे देखने के लिये ही मैं यहां बैठी हूं।
केवल उससे मिलने के लिये ही मैं घर से निकल पड़ी हूं।"

'फॉस्ट' में मार्गरिट की दयनीय स्थिति पर फॉस्ट का हृदय भी द्रवीभूत हो उठता है और वह अपनी दुर्बुद्धि और अनुचित व्यवहार पर आत्मग्लानि से भर जाता है, जिससे कि हम फ्रेडरिका ब्रायन के प्रति गेटे की अन्तर्व्यथा और मानसिक अनुताप का सहज ही अनुमान लगा सकते हैं।

सुन्दर युवक गेटे के आकर्षक व्यक्तित्व पर मुग्ध होने वाली मनचली छोकरियों की कभी कमी न रही और एक के बाद एक उसे अपने प्रेमपाश में आबद्ध करने की मानो होड़ सी लगा रही थी। क्रीशन, फ्रेडरिका ब्रायन, लोट (चारलोटबफ), लिली, चारलोट फॉन स्टाइन, क्रिश्चियन बुलूपियस आदि अनेक सुन्दरी सुकुमारियां उसके जीवन में आईं। सभी ने उसके हृदय के तार झनझना दिये, किन्तु किसी के प्रति भी वह विश्वस्त न रह सका और प्रेम की शृंखलाएं उसके अस्थिर मन को कभी बांध कर न रख सकीं। गेटे के प्रेम का दम्भ, उसके हृदय की जलन, किसी में अपने हृदय का समूचा प्रेम उंड़ेल देने की उसकी उत्कट इच्छा, किसी में अपने को खो देने, अपने अस्तित्व को विलीन कर देने की उसकी अतृप्त लालसा कभी पूरी न हो पाई। उसने स्वयं लिखा है—"मेरे जीवन का सबसे बड़ा आनन्द है उस वस्तु की अभिलाषा, जो मेरी पकड़ से बाहर है—जो मुझ से अदृश्य है।" आदर्शवादियों की दृष्टि में गेटे का यह कदाचित् सबसे महान् अपराध था, किन्तु उसकी उसने पर्वाह न की। वह आजन्म स्वच्छन्द प्रेम का उपासक रहा।

"आह! यह पृथ्वी, यह सूर्य
यह उल्लास, यह आनन्द
यह प्रेम, यह आकर्षण
कितना सुन्दर है, कितना मोहक और कितना सुखकर जैसे प्रभातकालीन

मेघ पर्वत-शिखरों पर उड़ानें भरते हों।"

प्रेम की मधुर व्यथा की अभिव्यंजना करते हुए गेटे लिखता है—

"प्रेम में स्वर्गीय आनन्द और मृत्यु की-सी यन्त्रणा है, किन्तु जो प्रेम करता है वही सच्चा सुखी और भाग्यवान् है।"

प्रसाद भी जब 'निर्जन प्रांत में अंधकार खुले आकाश के नीचे तारों से अठखेलियां करता' अथवा बाह्य सौंदर्यकी रमणीयता में उनका मन विभोर हो जाता तो वे 'पावस की मेघमाला में छिपे हुये आलोक पिंड को निरखने की अदम्य चेष्टा करते।' प्रेम की अभ्यर्थना में वे लिखते हैं,"स्वास्थ्य, सरलता तथा सौंदर्य के प्राप्त कर लेने पर प्रेम-प्याले का एक घूंट पीना-पिलाना ही आनन्द है। इसकी पूर्णता बंधनयुक्त होने पर ही संभव है।"

अल्हड़ यौवन की देहरी पर पांव रखते ही उन्होंने प्रेम की कसक का अनुभव किया था और वह ही उनके हृदय का मूर्त्त हाहाकार बन उनके स्वरों में पिघल गया था।

"शैशव ! जब से तेरा साथ छूटा, तब से असंतोष, अतृप्ति और अटूट अभिलाषाओं ने हृदय को घोंसला बना डाला। इन विहंगमों का कलरव मन को शांत होकर थोड़ी देर भी सोने नहीं देता। यौवन सुख के लिये आता है—यह एक भारी भ्रम है। आशामय भावी सुखों के लिये इसे कठोर कर्मों का संकलन ही कहना होगा। उन्नति के लिये मैं भी पहली दौड़ लगाने वाला हूं। देखूं, क्या अदृष्ट में है।"

कभी कभी उनके हृदय के किसी सुदूर, भीतरी कोने में उदासी उभर आती और एक हल्का-सा, अजीब-सा बोझ मन पर छा जाता। अलबेली प्रकृति जब पत्तों की पायलें झनकारती और इन्द्रधनुष की रंगीनी एवं बिजली की कौंध के चमचमाते आभूषण धारण कर इठलाती, मचलती नीलाकाश में मेघमाला से आंखें लड़ाती तो कवि के हृदय-पटल पर किसी निर्मम बाला की चाह मचल उठती, अधरों पर अनुराग बिखर जाता और नयनों में विरह की छाया छटपटा उठती। मौन वातावरण में वह खोया सा अवाक् बैठा रह जाता और विशाल गहरी वेदना में उन्हें एक चुटीली मिठास का अनुभव होता। एक अस्पष्ट-सा आकार, प्रतिक्षण विलीन होकर पुन: जुड़ती हुई वर्त्तुल रेखाओं से घिरा एक ज्योतिपुंज मानवाकार उनके नेत्रों के समक्ष थिरक उठता, जिससे उन्हें अनिर्वचनीय सुख-शांति की अनुभूति होती। "अजात शत्रु" से उद्धृत निम्नलिखित पंक्तियों में उनके अपने हृदय की प्रेमोन्मत्त स्थिति का कुछ कुछ आभास मिलता है।

"मल्लिका ! तुम्हें मैंने अपने यौवन के पहले ग्रीष्म की अर्द्ध-रात्रि में आलोक-पूर्ण नक्षत्र लोक से कोमल हीरक कुसुम के रूप में आते देखा। विश्व के असंख्य कोमल कंठ की रसीली तानें पुकार बन कर तुम्हारा अभिनंदन करने, तुम्हें संभाल कर उतारने के लिये नक्षत्र लोक को गई थीं। शिशिर कक्षों से, रिक्त पवन तुम्हारे उतरने की सीढ़ी बना था। ऊषा ने स्वागत किया, चाटुकार मलयानिल परिमल की इच्छा से परिचारक बन गया, और बरजोरी मल्लिका के एक कोमल वृन्त का आसन देकर तुम्हारी सेवा करने लगा। उसने खेलते खेलते तुम्हें उस आसन से भी उठाया और गिराया। तुम्हारे धरणी पर आते ही जटिल जगत् की कुटिल गृहस्थी के आलबाल में आश्चर्यपूर्ण सौन्दर्यमयी रमणी के रूप में तुम्हें सबने देखा।"

'वेर्टेर' और 'आंसू'

कहने की आवश्यकता नहीं कि गेटे और प्रसाद के वैचित्र्यपूर्ण जीवन में जो जो करुण अनुभूतियां हुई, जो जो आघात और ठेसें लगीं, जो जो वेदना और निराशाएँ संचित होती गईं—वे गेटे की लेखनी से 'वेर्टेर के शोकाश्रु' (The sorrows of Werther) और प्रसाद द्वारा 'आंसू' में उमड़ बह चली।

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आंसू बन कर
वह आज बरसने आई।

गेटे ने मन की बहुत ही डांवाडोल स्थिति में अपने रोमांचकारी उपन्यास 'वेर्टेर' की रचना की थी। 'लोट' नाम की एक अठारह वर्षीया किशोरी ने उसके प्रेम को ठुकराकर उसके हृदय पर गहरा आघात किया था। उस मातृ-विहीना बाला के सुन्दर, सौम्य मुख-मंडल, गम्भीर चेष्टा, ललकती दृष्टि और दयार्द्र एवं करुणा-विगलित व्यवहार में कुछ ऐसा आकर्षण था जो दूसरों को सहज ही वश में कर लेता था। वह जिस खूबी और चतुराई से अपने छोटे छोटे ग्यारह भाई-बहिनों की देखभाल करती और अपनी उद्धत तरुणाई में भी मन को संयत रखकर अपनी समस्त गृह-व्यवस्था को सम्भालती—उससे गेटे के मन पर बिजली की भांति असर हुआ। वह अनजाने में ही अपना सब कुछ उस पर न्यौछावर कर बैठा। लोट का विवाह—सम्बन्ध एक मेधावी युवक जॉन केसनर से तय हो चुका था, अतएव

उसने प्रेम की डोर कभी शिथिल न होने दी और केसनर ने भी सब परिस्थिति से अवगत होते हुये उस पर कभी सन्देह न किया। वह गेटे की भावुकता से परिचित था और लोट की सच्चरित्रता पर उसे इतना दृढ़ विश्वास था कि ईर्ष्या करने का उसे कोई कारण नज़र नहीं आया। अन्त में गेटे के भावी जीवन का रंगीन स्वप्न बालू की भीत साबित हुआ। उसकी आशाओं और आकांक्षाओं पर पानी फिर गया। घोर अशांति, विप्लव और मन में करुण क्रन्दन लिये वह निरुपाय और असहाय हो फ्रांकफुर्ट लौट आया। उस समय लोट और केसनर को जो उसने पत्र लिखे हैं; उनकी ध्वनि अत्यन्त विकृत, दर्दीली, अतृप्त प्रेम की प्यास और हृदय की तड़पन से ओतप्रोत है। प्रेम के कंटकाकीर्ण पथ पर वह अरमानों की झोली लेकर प्रेमकी भीख मांगने चला था, किन्तु बदले में उसे मिला क्या-निराशा और दुत्कार। वह विक्षिप्त सा हो उठा और आत्महत्या करने की बात सोचने लगा। उन दिनों सोने की मूठवाली एक सुन्दर कृपाण उसके सिरहाने लटकी रहती थी और उसका मन मौत की अंधेरी छाया में भटकता रहता था। उसी समय एक और भयंकर घटना घटी, जिससे गेटे के दिल पर मर्मभेदी प्रहार हुआ। यरूशलम नाम का एक धार्मिक प्रवृत्ति का लेखक, जो गेटे से व्यक्तिगत रूप से परिचित था, अपने एक मित्र की पत्नी से असफल प्रेम के कारण आत्महत्या कर बैठा। इस दुःख भरे संवाद को सुनकर गेटे तिलमिला उठा और उसने तत्क्षण केसनर को एक अत्यन्त शोक एवं व्यथा-भरा पत्र लिखा, जिसमें उसने ऐसे कठोर और वज्रहृदय व्यक्तियों की भर्त्सना की, जो दूसरों के अरमानों की राख पर अपना घर बसाते हैं। मन की उद्दण्ड स्थिति में लिखा हुआ होने के कारण इसका कथानक भी अत्यन्त प्रचंड और प्रभावोत्पादक सिद्ध हुआ। इसमें एक निराश प्रेमी के दारुण आत्मघात की कथा वर्णित की गई, जिसमें घोर अंतर्व्यथा और चीत्कार होने से गहरी निराशा और अंतर्वेदना निहित थी। गेटे ने 'वेर्टेर' लिखने के कई वर्ष बाद लिखा था,

"जिस प्रकार जल दारुण शीत से बर्फ की कठोरता में परिणत हो जाता है और किंचित् उष्णता पाकर पिघल कर बह जाता है—उसी प्रकार 'वेर्टेर' की रचना करते हुए जो निर्मम परिस्थितियाँ मेरे दिल पर आ संघटित हो गई थीं वे जरा-सी शह पाते ही उपन्यास में उमड़ आईं।"

इस उपन्यास के छपते ही जर्मनी और सारे यूरोप में खलबली मच गई और कई भाषाओं में इसके अनुवाद हुये। 'वेर्टेर' से पूर्व गेटे ने 'गोट्ज विद दि आयरैन हेण्ड' (Goetz with the Iron Hand) पुस्तक की रचना की थी, किन्तु अभी तक जनता

उसे जान न पाई थी। 'वेर्टेर' केवल उसी के अल्हड़ यौवन की करुण अभिव्यक्ति न थी, अपितु प्रत्येक तरुण की दुर्दम्य इच्छाओं का आलोड़न प्रकट करती थी। इस उपन्यास को पढ़कर मनचले युवक-युवतियों के दिल विचलित हो गये और कई प्रेम की भ्रामक स्थिति में आत्महत्या कर बैठे, जिससे गेटे को अपनी सफलता पर गर्व होने के बजाय हार्दिक क्षोभ और पश्चात्ताप हुआ।

प्रसाद द्वारा रचित ''आंसू' विरह-काव्य में हृदय का उच्छल आवेग होते हुये भी 'वेर्टेर' जैसी भावों की तीव्रता और विचारों का विस्फोट नहीं है। पूर्व रचित 'चित्राधार', 'कानन–कुसुम','प्रेम–पथिक' और 'झरना' में जो अव्यवस्थित विषाद, परिवर्त्तनोन्मुखी प्रवृत्ति एवं बिखरे प्रेम की अभिव्यंजना मिलती है वह 'आंसू' में आकर बहुत कुछ संयत और गम्भीर हो गई है। पहले की रचनाओं में अनिर्दिष्ट प्रेयसी के प्रति प्रेम की लौकिक-अलौकिक भावनाएं बिखरी पड़ी हैं, किन्तु 'आंसू' में स्निग्ध आर्द्रता और हृदय की आहें हैं। जिस रूपसी रमणी के सम्पर्क से कवि के दिल में एक अजीब मस्ती, प्रेमोन्माद, विलासितापूर्ण सरसता और यौवन-विलास का उद्रेक हुआ था, वह उसके विछोह से क्षण भर में विलुप्त हो गया। वह तो अपनी झलक दिखाकर शून्य में समा गई, किन्तु उसकी स्मृति न मिटी। जो तड़पन, जो आकुलता, जो व्यथा वह छोड़ गई-वह बल खाता हुआ 'आंसू' में बह आया। ठीक जिस परिस्थिति में गेटे द्वारा 'वेर्टेर' की रचना हुई उसी परिस्थिति में 'आंसू' भी लिखा गया, किन्तु 'वेर्टेर' में धधकती अग्नि सुलग रही है, जिसकी आंच दूसरों को भी दग्ध करती है और 'आंसू' में शीतल ज्वाला है, जिसका धुआं अन्दर ही अन्दर उठकर रम जाता है। 'वेर्टेर' में प्रचण्डता और दाह है, 'आंसू' में रोदन और करुणा। 'वेर्टेर' में मस्तिष्क की आंधी तूफान बनकर प्रकट हुई है-'आंसू' में प्रशांत भाव-धारा अश्रुकणों में बिखर फूट पड़ी है। गेटे की निराशा और कटूक्तियां दिल पर चोट करती हैं, प्रसाद की व्यंजना परिष्कृत और हृदय-तल को स्पर्श करने वाली हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि विश्व के विरह काव्यों में 'आंसू' का विशिष्ट स्थान है और कवि की आंतरिक जिज्ञासाएं अत्यन्त सूक्ष्म और रम्य होकर प्रकट हुई हैं। कवि की दृष्टि नारी के बाह्य-सौंदर्य तक ही सीमित नहीं, वरन् अंतर्मुखी और रहस्यमयी होती गई है। सत्य और सौंदर्य में नित्य डूबे रहने के कारण उसमें सामूहिक अनुभूतियों का एकीकरण है।

इस करुणाकलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती

क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती ?
　　बस गई एक बस्ती है
　　स्मृतियों की इसी हृदय में
　　नक्षत्रलोक फैला है
　　जैसे इस नील निलय में ।

'आँसू' में प्रेयसी की निष्ठुरता और हृदय की गहरी टीस है। मानस-सागर म अतीत स्मृतियों की ऐसी उथल-पुथल मची हुई है कि ज़रा भी शांति नहीं। शून्य क्षितिज से हाहाकार की प्रतिध्वनि टकरा टकरा कर लौट आती है और कवि की विकल वेदना को जगा कर बेसुध सा कर जाती है।

मानस सागर के तट पर
क्यों लोक लहर सी घातें ।
कलकल ध्वनि से हैं कहतीं
कुछ विस्मृत बीती बातें ।

इस विकल वेदना को ले
किसने सुख को ललकारा
वह एक अबोध अकिंचन
बेसुध चैतन्य हमारा ।
　　आती है शून्य क्षितिज से
　　क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी
　　टकराती बिलखाती सी
　　पगली सी देती फेरी ।
अभिलाषाओं की करवट
फिर सुप्त व्यथा का जगना
सुख का सपना हो जाना
भीगी पलकों का लगना ।

'आँसू' के अंत में सुख-दुःख का सामंजस्य और निराश प्रेम का समाधान है। रोने के पश्चात् कवि का मन बहुत हल्का हो गया है।

मानव-जीवन वेदी पर
परिणय हो विरह-मिलन का

दुःख-सुख दोनों नाचेंगे
है खेल आँख का मन का ।

और भी . . . . .

लिपटे सोते थे मन में
सुख-दुःख दोनों ही ऐसे
चन्द्रिका अंधेरी मिलती
मालती कुंज में जैसे

कवि की आंतरिक कसक इन पंक्तियों में आ विश्राम पाती है और त्रस्त मन को सुखमय जीवन का संदेश दे जाती है ।

चेतना लहर न उठेगी
जीवन समुद्र थिर होगा
संध्या हो सर्ग-प्रलय की
विच्छेद मिलन फिर होगा ।

विकास-पथ की ओर

गेटे और प्रसाद के जीवन में 'वेर्टेर' और 'आँसू' की रचना एक महत्त्वपूर्ण घटना है । उनकी अपरिपक्वावस्था की खुमारी, आकुलता, पीड़ा, उन्माद और भावोद्वेलन इन प्रारम्भिक कृतियों में आ मानों केन्द्रीभूत हो गया है । किन्तु इन्हें लिखने के पश्चात् पहले की बेचैनी शनैः शनैः भावनाओं की गहराई बनने लगी और प्रेम की उद्दण्डता कोमलता में परिणत हो गई । जीवन का अंधड़ और पागल उन्माद शांत हो गया और अंधकार को विच्छिन्न करके प्रकाश की रेखायें फूट पड़ीं । इन दोनों प्रेम-पथिकों ने अपनी अनवरत साधना से विषमताओं में भी सरल पथ का अन्वेषण किया और वासनाजन्य कलुषता में आध्यात्मिक उत्कर्ष और जीवन की समरसता का आभास पाया ।

परिस्थितियों के समयाश्रित प्रभाव के कारण गेटे के जीवन में भी अभूतपूर्व परिवर्तन हो चुका था । अब सीना फुलाकर और सिर ऊंचा करके चलने की चाह कुछ कम हो गई थी, अभिरुचि में परिष्कार हुआ था और श्रृंगार-भावना व सौन्दर्य-प्रेम-चित्र भी तन्मयता के सधे स्वरों में बदल गये थे । फ्रांकफुर्ट के उच्छृंखल जीवन से गेटे का मन अकस्मात् ऊब गया और वह ड्यूक के आमंत्रण पर वाइमार चला आया । कुछ लोगों ने उसके वाइमार में बसने पर आश्चर्य प्रकट किया है, क्योंकि 'गोट्ज़' और 'वेर्टेर' में गेटे ने दरबारी जीवन की विभीषिकाओं का विशद चित्रण

किया है। वस्तुतः फ्रांकफुर्ट के कोलाहलपूर्ण जीवन से दूर भागने की इच्छा के मूल में उसके सामाजिक अथवा राजनीतिक दृष्टिकोणों में परिवर्तन होने की बात न थी, जैसा कि कुछ लोगों का भ्रम है, प्रत्युत् वह निष्क्रियता में कर्म के आह्वान का कायल था और निम्नस्तर से साहित्य-साधना की उच्च मनोभूमि को स्पर्श करने का हिमायती। उसने मानव-जीवन के विविध पहलुओं में झांकने का प्रयास किया और मनोवृत्तियों के संकीर्ण दायरे से ऊपर उठकर विकास-पथ की ओर अग्रसर होने में गौरव और गर्व का अनुभव किया। जिस समय वाइमार का ड्यूक फ्रांकफुर्ट में गेटे से मिला, उस समय उसका मन अपने चतुर्दिक् वातावरण से अत्यन्त अशान्त रहता था। वह कुछ ऐसे आवारा युवक-युवतियों के कुचक्र में फंस गया था, जिसका नेतृत्त्व स्थानीय बेंकर की लड़की लिली करती थी और जिसके पंजे से छूटना आसान बात न थी। लिली के सौंदर्य, सुगठित शरीर के उभार और आकर्षक भावभंगियों पर वह इतना मुग्ध हो उठा था कि सीसनहेम में उसे फ्रेडरिका ब्रॉयन ने भी इतना आकर्षित न किया था और 'वेर्टेर' की लोट के उन्मत्त प्रेम से भी वह इतने दिन तक प्रभावित न रहा था। गेटे इस 'इश्क' की बला को अपने सिर से टालने की भरसक चेष्टा कर रहा था। उसे लगता था जैसे लिली और उसका फैशनेबुल परिकर उसकी जीवन-शक्तियों का ह्रास कर रहा है, उसकी चेतना को शिथिल बना रहा है और रूप की मोहिनी डाल कर उसकी सोचने, समझने और विवेकपूर्वक कार्य करने की शक्ति का अपहरण कर रहा है। अपनी उन दिनों की स्फुट रचनाओं में गेटे ने अपनी इस घृणित आसक्ति के प्रति असंतोष प्रकट किया है और लिली को मायाविनी व जादूगरनी बताया है।

किन्तु वाइमार में आकर रहने पर भी गेटे की जीवन-प्रणाली में कोई विशेष अन्तर न हुआ। नौजवान ड्यूक और उसके साथियों के सम्पर्क में निरन्तर आमोद-प्रमोद में ही उसे जुटा रहना पड़ता। हाँ—वहाँ वह फ्रांकफुर्ट की भांति किसी रूपसी नारी के हाथों की कठपुतली मात्र न था, वरन् उस पर ही सब कार्यों को सम्पन्न करने का उत्तरदायित्व था। वह नृत्यशालाओं, रंगमंचों, नाटकों, खेलों और पार्टियों का स्वयं प्रबन्ध करता, कभी घुड़दौड़ और शिकार आदि खेलने की योजना बनाता और कभी वाइमार के इर्दगिर्द के जंगलों और समीपवर्ती ग्रामों में दोस्तों और लड़कियों के साथ सैर-सपाटे को निकल पड़ता। गेटे के इस आचरण की कुछ लोगों ने निंदा की है, यहां तक कि अनुभवी और मननशील लेखक वाइलैण्ड ने भी इसे पाशविक वृत्तियों के प्रदर्शन की पराकाष्ठा बताया है। किन्तु गेटे को वह

समय का अपव्यय न लगता—जैसा कि लिली की संगति में उसे ज्ञात होता था। निर्बंध विलास एवं अधिकार की स्पृहा ने उसकी सुप्त चेतना को जगा दिया था और उसका आंतरिक प्रेम बाहरी आनन्द से ओतप्रोत हो भीतर से परिपुष्ट और विकसित होता जा रहा था।

११ जून, सन् १७७६ को वह ड्यूक द्वारा स्टेट का प्रिवीकौंसिलर नियुक्त कर दिया गया, जिससे सेना-संचालन और गृह-विभाग की व्यवस्था का भार भी उस पर आ पड़ा। गेटे की जिम्मेदारियाँ बढ़ गई। उसका दैनिक कार्यक्रम अत्यन्त व्यस्त हो गया। वह सारे कामों की स्वयं देखभाल करता और गांव-गांव, घर-घर घूमकर किसानों और ग्रामीणों की जीवनदशा का अवलोकन करता। कभी दूर खेतों अथवा उनकी झोंपड़ियों में घुसकर उनकी दुरवस्था पर करुणा से भर जाता और ड्यूक से उनकी उन्नति और सुव्यवस्था की सिफारिश करता। एक बार किसी गाँव में आग लगने पर वह स्वयं घटनास्थल पर पहुंच गया और बहुत देर तक अग्नि से संघर्ष करता रहा, उन्हीं दिनों उसने लिखा, "मेरी आंखों में आग की लपटें और धुएं की तसवीर खिंच गई है। मेरे पैरों की एड़ियों में अभी तक कसक और पीड़ा है। फायर-ब्रिगेडों के सम्बन्ध में मेरी पहले की धारणा अब बिलकुल बदल गई है।"

वाइमार में रह कर उसने अपना आत्मानुभव बढ़ाया और उसकी विचारधारा भी क्रमशः परिपुष्ट और विकसित होती गई। गेटे के प्रारम्भिक नाटकों, उपन्यासों और स्फुट कविताओं में इतनी परिपक्वता न आई थी, जितनी कि सन १७७५ से लेकर सन्१७८६ तक की उसकी रचनाओं में दृष्टिगत होती है। इस समय की कृतियाँ जीवन के श्रेष्ठतम चित्रों से पूर्ण हैं। मानव की विभिन्न भावनाओं को उसने सच्चे कलाकार की भांति एक अदृश्य सूत्र में बांध कर दर्शाया है। 'इफीगीनी' (Iphigenia), 'इगमोंट' (Egmont) और 'विल्हेल्म माइस्टर' (Wilh-elm Meister) में उसकी दृष्टि जीवन के किसी एक पक्ष अथवा अंश-विशेष पर न पड़ कर समष्टि पर पड़ती है और अनुभूति के व्यस्त पट पर एक विचित्र एक्योत्पादन प्रकाश को बिखेर देती है। सिद्धांत रूप से गेटे तो न बदला था, उसके विचारों और दृष्टिकोणों में भी विशेषअन्तर न हुआ था, किन्तु उसकी अभि-व्यंजन-शैली और कला का बाह्य रूप बदल गया था। उसकी भौतिक-प्रवृत्ति अंतः प्रवृत्ति में परिणत हो गई थी और रोमांटिसिज्म से क्लासिसिज्म की ओर उसका सहज झुकाव दीख पड़ता था।

गेटे की चिंतन शक्ति और प्रतिभा का सबसे भव्य रूप उसके एक नाटक

'टारकेटो टासो' (Torquato Tasso) में प्रस्फुटित हुआ, जिसकी रचना उस वाइमार में आते ही शुरू कर दी थी, किन्तु जो लगभग दस वर्षों में इटली लौटने तक समाप्त हुआ। 'वेर्टेर' में दुःख और निराशा का कोलाहल है, 'टासो' कवि की वयः-सन्धि की रचना होने के कारण कोमल-कल्पना और प्रौढ़ भावनाओं से ओतप्रोत है। 'वेर्टेर' में यौवन की खुमारी है, पर उसका कोई उपचार नहीं,'टासो' में समस्या और उसका समाधान साथ साथ प्रस्तुत किया गया है। 'वेर्टेर' का शृंगार और यौवनोन्माद 'टासो' में आत्म-समर्पण और उत्सर्ग में परिणत हो गया है। उसमें गोधूलि की सी मदिर शिथिलता और जीवन की समरसता का पूर्ण सामंजस्य है। उसका 'विल्हेल्म माइस्टर' उपन्यास भी जर्मनी के पारिवारिक और सामाजिक जीवन का सुन्दर दिग्दर्शक है। इसने छपते ही उपन्यास-क्षेत्र में धूम मचा दी और गेटे की विराट्-प्रतिभा, सूक्ष्म-चित्रण-शक्ति और अंतर्वैभव का खज़ाना खोल कर जनता के समक्ष रख दिया।

वाइमार में आते ही एक और आश्चर्यजनक घटना गेटे के जीवन में घटी। चारलोट वॉन स्टाइन नाम की एक विवाहिता महिला से, जो आयु में उससे सात वर्ष बड़ी थी और जिसके कई बच्चे थे, उसका प्रेम हो गया। गेटे के इस विचित्र प्रणय-सम्बन्ध का लोगों ने भिन्न भिन्न अर्थ लगाया है। कुछ व्यक्तियों की सम्मति में चारलोट वॉन स्टाइन के प्रति उसकी आसक्ति फ्रेडरिका और लिली की आसक्ति से सर्वथा भिन्न थी। वह उसे अपनी माँ अथवा अपनी मृत बहिन 'कार्नेली' के रूप में देखता था। उसे देख कर उसमें वासना के बदले समादर का भाव जागृत होता और उसके सम्पर्क से उसे आंतरिक शांति एवं साहित्यिक प्रेरणा मिलती। कुछ भी हो—यह सम्बन्ध भी अधिक न टिक सका और वह सन् १७८६ में चारलोट और वाइमार के शासन-भार से पिण्ड छुड़ा कर इटली भाग आया। चारलोट को उसके इस आकस्मिक परिवर्त्तन का कुछ भी पता न लगा और सन् १७८८ में जब वह पुनः वाइमार लौट कर गया तो उनके पारस्परिक सम्बन्ध में पर्याप्त शिथिलता आ गई थी।

कला की साधना

जीवन और विज्ञान संबंधी कतिपय छुटपुट रचनाओं तथा उसकी अपनी 'आत्मकथा' के अतिरिक्त गेटे के जीवन की सबसे वृहत्तम कृति है 'फॉस्ट', जिसे पूरा करने में उसकी सारी उम्र ही खप गई। इस महानाटक में उसने अपने जीवन के असंख्य भाव-रूपों, विविध प्रसंगों और विशेष परिस्थितियों को काव्योचित रूप दिया, वैयक्तिक धरातल पर पनपनेवाली भीतरी आत्मचेतना की रहस्यात्मक

भावच्छायाओं को उभारकर दर्शाया और स्नेहसिक्त हृदय की करुण-कल्पनाओं को शाश्वत सत्य में परिणत कर दिया। उसकी समस्त अनुभूतियाँ, यौवन की छटपटाहट, संघर्ष, द्वन्द्व, विषमताएं, मधुर और कटु-स्मृतियाँ इसमें बिखरी पड़ी हैं, मानों अपने जीवन का सारा रस उड़ेलकर उसने विश्वव्यापी वृत्तियों को कला और सौन्दर्य की रंगीनियों में रंग अपनी अमर कलाकृति द्वारा लोकोत्तर और कल्पनातीत रूप दे दिया है। इस महाग्रंथ की कथन-शैली प्रधानतः भावात्मक है, किन्तु साथ ही इसमें बौद्धिक और निगूढ़ दार्शनिक-चिंतन भी दृष्टव्य है। इसका कथानक गेटे से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व रचित 'अरफॉस्ट' (Urfaust) नामक पुस्तक से लिया गया है, जिसमें सहस्रों वर्षों से प्रचलित एक दुष्ट और बदकिस्मत जादूगर की अत्यन्त रोचक कथा वर्णित थी। स्वाबिया के निवासी इस जादूगर ने अपने चचा द्वारा दी हुई सम्पत्ति को आमोद-प्रमोद में उड़ाकर और निर्धन हो जाने पर संतोष करने के बजाय पुनः भौतिक उन्नति की लालसा में अपनी आत्मा को एक शैतान के हाथ बेच दिया था, जिसकी आसुरी-शक्ति की सहायता से वह चौबीस वर्ष तक निर्द्वन्द्व ऐश्वर्य और सांसारिक सुखों का उपभोग करता रहा, किन्तु अंत में उसके पाप का घड़ा इतना लबालब भर गया कि उसके अंग-प्रत्यंग नोच कर उसे नरक की भीषण यातनाओं को सहन करने के लिये फक दिया गया। 'अरफॉस्ट' की यह भयंकर कहानी मध्ययुगीन जर्मनी में अत्यन्त प्रसिद्ध थी और इस पुस्तक का यूरोप की समस्त भाषाओं में अनुवाद हो चुका था। एलिज़बेथिन-कालीन अंग्रेजी में अनुवादित होने पर इसने मारलोव को भी प्रभावित किया था और इस कथा का सूत्र पकड़कर उसने एक कल्पित डॉक्टर फॉस्टस की कथा अपने अमर दुःखांत नाटक में प्रस्तुत की थी।

गेटे बाल्यावस्था से ही इस कथा को सुनता आ रहा था। एक दिन कठपुतली के खेल में इसकी पुनरावृत्ति देखकर उसे अद्भुत अंतःप्रेरणा मिली और तभी से यह कथा उसके हृदय-पटल पर अंकित हो गई। इसी कथा के आधार पर एक विशद ग्रंथ लिखने का संकल्प-विकल्प उसके मन में होता रहा और चौबीसवें वर्ष में उसने अपनी यह पुस्तक लिखनी प्रारंभ कर दी। मित्रों की प्रशंसा से उसकी लिखने की गति कभी तीव्र हो जाती और कभी छिद्रान्वेषी व्यक्तियों की निन्दा से उसका उत्साह शिथिल पड़ जाता। मस्तिष्क की अशांति और ऊहापोह में इस प्रकार कई वर्ष बीत गये और सन १८०६ में 'फॉस्ट' का प्रथम भाग समाप्त हुआ।

गेटे के 'फॉस्ट' में मनुष्य रूपधारी मेफिस्टोफेलीज़ (शैतान) 'अरफॉस्ट' से कम भयंकर और मारलोव के दुःखांत नाटक से कम शानदार है, किन्तु उसकी अव्यक्त वीभत्सता और क्रूर चेष्टाओं ने मार्गरिट—ट्रेजेडी को अधिक व्यंजक बना दिया है। मार्गरिट संबन्धी करुण दृश्यों का उद्‌घाटन जल्दी जल्दी होता है, जो बीच बीच में गेय पदों के रख देने से अत्यन्त मर्मस्पर्शी और प्रभावोत्पादक होगया है। भोली मार्गरिट जब फॉस्ट की दुर्वासनाओं का शिकार होती है और भाई व पिता की मृत्यु के दारुण शोक से विक्षिप्त होकर अत्यन्त करुण गीत गाती है तो समस्त वातावरण विक्षुब्ध हो उठता है।

"ओफ्! मेरा दम घुट रहा है, जैसे किसी ने मेरा गला दबोच लिया हो। मेरा हृदय टूटा जा रहा है।"

मस्तिष्कीय अस्तव्यस्तता के कारण वह अपने नवजात शिशु की भी हत्या कर देती है और उसे इस अपराध में मौत का दंड दिया जाता है। मार्गरिट की दयनीय मृत्यु के समय एक दिव्य संगीत सुन पड़ता है कि मेफिस्टोफेलीज़ के षडयंत्र और इसके द्वारा किए गए पापों के बावजूद भी उसे क्षमा कर दिया गया है। संगीत समाप्त होते ही शैतान के क्रूर अट्टहास के साथ 'फॉस्ट' के प्रथम भाग का अंत होता है।

'फॉस्ट' का द्वितीय भाग घटनापूर्ण और दुरूहता लिए हुए है। उसमें अनेक कथाओं एवं उपकथाओं की उत्पत्ति और विकास, आंतरिक एवं वाह्य निरीक्षण के आधार पर मानवीय-भावनाओं का सूक्ष्म चित्रांकण और ज्ञान-विज्ञान की न जाने कितनी बातें व्यक्त की गई हैं। प्रथम और द्वितीय परिच्छेद में फॉस्ट द्वारा स्वर्ग और नरक की साहसपूर्ण यात्राओं का वर्णन है। तृतीय परिच्छेद में ग्रीक देश की सुन्दरी हेलेन का आविर्भाव होता है, जिसके अद्‌भुत सौंदर्य पर फॉस्ट मुग्ध हो जाता है। रोमांटिसिज्म और क्लासिसिज्म के प्रतीक फॉस्ट और हेलेन के सम्मिलन से नवीन युग का प्रतिनिधित्व करने वाले बालक यूफोरियन की उत्पत्ति होती है। उसकी प्रकृति बड़ी ही चपल और विचित्र है। वह उछलता, कूदता, नाचता, गाता, चढ़ता, उतरता और तरह तरह के उत्पात करता हुआ कभी चुप नहीं बैठता। उसके माता-पिता उसकी इन आदतों से अत्यन्त दुःखी और परेशान हैं। असमय में ही यूफोरियन की मृत्यु हो जाती है और उसके मरने के बाद शोक-गीत गाया जाता है। यूफोरियन तत्कालीन अंग्रेज कवि बॉयरन को लक्ष्य में रखकर लिखा गया है, जिससे गेटे बहुत अधिक प्रभावित था और बिना देखे ही जिससे वह

अपना आत्मिक संबन्ध मानता था ।

चतुर्थ परिच्छेद में लड़ाइयों और साहसिक कृत्यों का उल्लेख है, जिसमें सम्राट् की ओर से फांस्ट और मेफिस्टोफेलीज़ भाग लेते हैं । मेफिस्टोफेलीज़ भ्रमात्मक जल और अग्नि उत्पन्न करके शत्रु को पराजित करने में सफल होता है ।

पंचम परिच्छेद में नाटकीय तत्व अपनी चरमता पर पहुंच गये हैं । मेफिस्टोफेलीज के सम्पर्क से फांस्ट की आत्मा और सद्‌गुणों का दिन दिन ह्रास दिखाया गया है और सुख-ऐश्वर्य को पाकर वह इतना अविवेकी और क्रूर हो गया है कि थोड़ी सी ज़मीन के लोभ में दो निरपराध वृद्ध व्यक्तियों का बध करा देता है । अपने अवसान-काल में शैतान की शक्तियों पर भी अविश्वास करने के कारण वह अंधा और निरुपाय हो मरने को पड़ा है । मेफिस्टोफेलीज के तत्त्वाव न में उसके लिए कब्र खोदी जारही है, किन्तु उसे लगता है कि यह उसके लिए बनाए जाने वाले भवन-निर्माण की ध्वनि है । नियति का क्रूर व्यंग उस समय और भी भीषणता धारण कर लेता है जब कि फॉस्ट भावी सुखों की कल्पना करके खुशी में चिल्ला पड़ता है और तत्क्षण निर्जीव होकर कब्र खोदनेवालों की गोद में ढुलक पड़ता है । मेफिस्टोफेलीज़ भी इस दर्दनाक दृश्य को देख कर विचलित हो जाता है ।

"मेफिस्टोफेलीज़– -आखिर यह भयानक, दुःखदायी मृत्यु की अंतिम घड़ी भी आ पहुँची, जिसको यह बेचारा सदैव टालने की कोशिश करता रहा । अपने साहस और दंभ-बल से इसने मेरी भी अवहेलना की, किन्तु समय ज़बर्दस्त है, वह टाले नहीं टलता । देखो, इस बूढ़े की क्या दशा है । घड़ी भी स्तब्ध हो गई है ।

प्रतिध्वनि––घड़ी भी स्तब्ध हो गई है-जैसे कि सुनसान अर्ब-रात्रि । उसकी सुइयां रुक गई हैं ।

मेफिस्टोफेलीज़––उसकी सुइयाँ रुक गई हैं और सब कुछ समाप्त हो गया है ।"

कहना न होगा-ऐहिक उन्नति-अवनति, जीवन-मृत्यु और सुख-दुःखों का कितना गंभीर तथ्य गेटे के इस महानाटक में सन्निहित है । प्रत्येक मानव में सत्-असत् की दो प्रवृत्तियों का सदैव द्वंद्व रहा है । महत्वाकांक्षा और सुखोपभोग की

लालसा विवेक, नीतिज्ञता और सुस्थिर मन पर अनायास ही विजय प्राप्त कर लेती है और मानव को नीचे पतन के गर्त में ढकेल देती है।

गेटे की जिन मूल अंतः-प्रवृत्तियों का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं—उनका आभास हमें प्रसाद की रचनाओं में भी यत्र-तत्र होता है। मानव-हृदय की वेदना और विरह-कातरता जो 'आँसू' में व्यक्त हुई थी-वह समय की रगड़ खाकर भावों की गहराई और मानव-जीवन के सत्य में बदल गई। 'लहर' का एक स्फुट पद देखिये:—

> जीवन कितना ? अति लघु क्षण,
> ये शलभ पुंज से कण कण,
> तृष्णा यह अनिल शिखा बन—
> दिखलाती रक्तिम यौवन ।
> वेदना विकल यह चेतन,
> जड़ का पीड़ा से नर्त्तन,
> लय-सीमा में यह कम्पन,
> अभिनयमय है परिवर्त्तन ।

कभी कवि का हृदय आशा के आलोक से भर जाता है, कभी अतीत की स्मृतियां उभर आती हैं और कभी विषाद की छाया उसके हृदय को मलिन बना देती है। कोलाहल से दूर वह उस निर्जन स्थान में जाना चाहता है, जहां चिरंतन-विश्राम और अमर-जागरण की ज्योति बिखरी हुई हो।

> ले चल वहां भुलावा देकर,
> मेरे नाविक ! धीरे धीरे ।
> जिस निर्जन में सागर लहरी
> अम्बर के कानों में गहरी—
> निश्छल प्रेम कथा कहती हो,
> तज कोलाहल की अवनी रे ।
> श्रम विश्राम क्षितिज बेला से—
> जहां सृजन करते मेला से—
> अमर जागरण उषा नयन से—
> बिखराती हो ज्योति घनी रे ।

प्रसाद की बहुमुखी प्रतिभा का ज्यों ज्यों विकास होता है, उसकी जीवन-सरणि विविध दिशाओं का अनुधावन करती हुई प्रवाहित होती है। कभी इतिहास के गौरव-गान में वह रम जाती है, कभी अतीत उसे अपनी ओर आकृष्ट करता है और कभी जीवन का गंभीरतम तथ्य कण कण हो उसके समक्ष बिखर जाता है। प्रसाद के नाटकों में बौद्ध-संस्कृति और भारत के अतीत जीवन की झांकी है। 'राज्यश्री', 'विशाख', 'अजातशत्रु', 'जन्मेजय का नाग-यज्ञ', 'चन्द्रगुप्त', 'स्कंदगुप्त' आदि सभी नाटक सांस्कृतिक भावनाओं से युक्त और मानवीय-मनोभावों का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। गेटे के नाटकों में अमानुषी-तत्व की प्रचुरता होने से दुरूहता और एकांगीपन है। उनमें मानव-हृदय को विलोड़ित करने वाली वे अमर भावनाएं और जीवन का वह साम्य और समरसता नहीं मिलती, जो प्रसाद के नाटकों में एक विशिष्ट युग का चित्रण होने से सहज ही विद्यमान है। गेटे के नाटकों में मानवीय और आसुरी शक्ति का संघर्षमय द्वन्द्व और आकस्मिकता होने से जीवन-विकास की अपूर्णता प्रकट होती है, प्रसाद के नाटकों में जीवन-समष्टि के समस्त तत्वों का निदर्शन होता है। उनके नाटकों के छोटे-छोटे गेय-पदों में भी काव्यत्व और कला का निर्दिष्ट विकास देखा जा सकता है। 'अजातशत्रु' से उद्धृत श्यामा के गीत में अंतस्तल की पीड़ा और हृदय की कसक है।

> **'निर्जन गोधूलि प्रांतर में खोले पर्णकुटी के द्वार'**
> **पलकें झुकी यवनिका सी थीं।**
> **अंतस्तल के अभिनय में ॥**
> **इधर वेदना श्रम-सीकर,**
> **आंसू की बूंदें परिचय में ॥**
> **फिर भी परिचय पूछ रहे हो,**
> **विपुल विश्व में किसको दूं ?**
> **चिनगारी श्वांसों में उड़ती,**
> **रो लूं ठहरो दम ले लूं।**

'जन्मेजय का नाग यज्ञ' से लिए हुए मणिमाला के निम्न कथन में सरस कल्पना और ओजपूर्ण शैली के दर्शन होते हैं।

मणिमाला—"मुझसे तो मानो कोई कहता है कि महाशून्य में विश्व इसीलिये बना था। यही उद्देश्य था कि वह एक स्रोतस्वती की तरह नील बनराजि के बीच, यूथिका की छाया में बह चले और उसकी मृदु-बीचि से सुरभित पवन के परमाणु आकाश की शून्यता को परिपूर्ण करें।"

आस्तीक पूछता है, "**क्या तुम कोई स्वप्न सुना रही हो**"?

मणिमालाः—"भाई, यह स्वप्न नहीं है, भविष्य की कल्पना भी नहीं है। जब संध्या को अपने श्याम अंग पर तपन रश्मियों का पीला अंगराग लगाए देखती हूं, तब हृदय में जो भाव उत्पन्न होते हैं—वे स्वयं मेरी समझ में नहीं आते, **किन्तु फिर भी जैसे कोई कहता हो कि उस सुदूरवर्त्ती शून्य क्षितिज के प्रत्यक्ष से उस कोकिल का कोई सम्बन्ध है, और वह सम्बन्ध तभी विदित होगा जब शून्य पर फिर कालिमा के आवरण चढ़ने और कोकिल बोली का अर्थ समझ में आ जायगा।"**

नीचे के अवतरण में प्रणय-वंचिता नारियों के मनोभावों का कैसा सुन्दर चित्रण है:—

"प्रणय-वंचिता स्त्रियां अपनी राह के रोड़े, विघ्नों को दूर करने के लिये बज्र से भी दृढ़ होती हैं। हृदय को छीन लेने वाली स्त्री के प्रति हृत सर्वस्वा रमणी पहाड़ी नदियों से भयानक, ज्वालामुखी के विस्फोट से भी वीभत्स और अनल-शिखा से भी लहरदार होती है।"

प्रसाद के 'कामना' और 'एक घूंट' नाटक काव्यमय और दार्शनिक तत्वों से परिपूर्ण है। इनकी सभी रचनाओं में कुछ न कुछ अद्‌भुत चमत्कार देखा जा सकता है, यहां तक कि छोटी छोटी कहानियों में भी दार्शनिक-विवेचना और मनोभावों की सूक्ष्म व्यंजना है। 'आकाश दीप' की इन पंक्तियों में प्रेम और घृणा का कैसा विचित्र द्वंद्व है।

"विश्वास? कदापि नहीं बुद्धगुप्त! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब कैसे कहूं। मैं तुम्हें घृणा करती हूं। फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूं, अंधेर है जलदस्यु! मैं तुम्हें प्यार करती हूं। चम्पा रो पड़ी।"

'अघोरी का मोह' शीर्षक कहानी से लिए गए इस अवतरण में दार्शनिकता और गंभीर चिंतन है।

"लहरें क्यों उठती और फिर विलीन होती हैं ? बुदबुद और जलराशि का क्या सम्बन्ध है ? मानव-जीवन बुदबुद है कि तरंग ? बुदबुद है तो विलीन हो फिर क्यों प्रकट होता है। मलिन अंश फेन कुछ जल से मिल कर बुदबुद का अस्तित्व क्यों बना देता है। क्या वासना और शरीर का भी यही सम्बन्ध है। वासना की शक्ति कहां कहां किस रूप में अपनी इच्छा चरितार्थ करती हुई जीवन को अमृत-गरल का संगम बनाती हुई अनंत काल तक दौड़ लगावेगी ? कभी अवसान होगा, कभी अनंत जल-राशि में विलीन होकर अपनी अखण्ड समाधि लेगी।"

प्रसाद ने भी गेटे की भांति अपने जीवन में केवल तीन उपन्यास ही लिखे—'कंकाल', 'तितली' और एक 'ईरावती' नाम का अधूरा उपन्यास। तीनों में जीवन का तत्वज्ञान और मानवीय-भावनाओं की कलापूर्ण अभिव्यक्ति हुई है, मानों मानव-जीवन के समस्त पाप, क्षुद्रताएं, आनंद, विषाद और त्रुटियों को स्वीकार कर उन्होंने मनोवैज्ञानिक ढंग से अपनी सजग चेतन-शक्ति और कल्पना द्वारा एक अपूर्व मानव-सृष्टि का सृजन कर उसके विराट् रूप का दर्शन कराया। अपने उपन्यास के पात्रों के साथ प्रसाद ने भाव-तादात्म्य का अनुभव किया और उनके सुख-दुःखों, विचारों एवं भावनाओं में अपनी आत्मा का स्पन्दन ध्वनित किया।

किन्तु उनकी समस्त जीवन-शक्तियों का समाहार 'कामायनी' में आकर हुआ। इस खण्ड-काव्य में कवि के बौद्धिक विकास, जीवन के सत्य, सौंदर्य और साधना का श्रेय भरा है। जीवन-व्यापी परिश्रांति से शिथिल कवि की कल्पना मानों आध्यात्मिक-प्रवाह में डूब गई है और आदिम-युग की मानव-सभ्यता के द्वार खटखटाती हुई दार्शनिकता और आत्मप्रकाश की ओर मुड़ बह चली है। 'कामायनी' में आदि-पिता वैवस्वत मनु और आदि-जननी श्रद्धा (काम की पुत्री कामायनी) की कथा है। देव-सृष्टि के जल-प्लावन के दृश्य से इस काव्य का आरंभ होता है। मनु इस विध्वंसकारी दृश्य के मध्य एकाकी, चिंतित और निराश बैठे हुए हैं। अकस्मात् उनकी श्रद्धा से मुठभेड़ होती है और वे उसे पत्नी रूप में स्वीकार कर लेते हैं। कुछ दिन उसके साथ आनंदपूर्वक रहकर उनके मन में उच्चाटन होता है

और वे भ्रमण के लिए निकल पड़ते हैं। वहां इड़ा (बुद्धि) से उनका साक्षात्कार होता है और वे उस पर आसक्त हो जाते हैं। इस पर प्रजा विद्रोह करती है, और मनु घायल हो जाते हैं। श्रद्धा अंत में आकर उनका कल्याण करती है और इच्छा, कर्म, ज्ञान के समन्वित ज्योतिर्मय त्रिपुर का दर्शन कराती है।

'कामायनी' में गूढ़ तात्विक विवेचन, प्रकृति-चित्रण, सौंदर्य और रहस्यमय चेतन का वृहत् संयोजन है। विश्व के कोलाहल से दूर अदृश्य मानस-जगत् की असंख्य उदात्त-भावनाओं को अपने उन्मुक्त उच्छ्वासों में भर कवि ने निस्सीम गगन में निर्बन्ध छोड़ दिया है और साधना की तल्लीनता में अपने हृदय का समस्त रस इस भाव-सागर में उड़ेल वह मानों निश्चिंत हो गया है।

परिणति

गेटे और प्रसाद की कृतियों में यत्र-तत्र रहस्याभास भी है, जो परोक्ष का संकेत है और विराट्-शक्ति की सत्ता का व्यंजक है। 'फॉस्ट' में फॉस्ट मार्गरिट से कहता है—

"उसकी व्याख्या करने का कौन साहस कर सकता है और इसका स्पष्टीकरण भी कैसे किया जाय—यह कह कर कि "मैं उसमें विश्वास करता हूं। जो देखता, चलता और अनुभव करता हूं वह कैसे उसकी सत्ता को अस्वीकार कर सकता है यह कह कर कि "मैं उसमें विश्वास नहीं करता।" वह सर्वशक्तिमान् परमेश्वर क्या मेरे, तेरे और समस्त चराचर जगत् के रूप में व्यक्त नहीं होता। क्या हमारे ऊपर आकाश नहीं है, क्या हमारी दृष्टि के समक्ष पृथ्वी का अनंत प्रसार फैला हुआ नहीं है और क्या हमारे सिरों पर मित्र की भांति मुसकराते चांद-सितारे नित्य ही उदित नहीं होते? मुख से मुख, नेत्र से नेत्र, हृदय से हृदय और तेरा-मेरा साक्षात्कार होने पर क्या उसकी परोक्ष-अपरोक्ष सत्ता का आभास नहीं होता और क्या इस प्रकार तेरे-मेरे जीवन के चतुर्दिक् लिपटे हुए दृश्य-अदृश्य रहस्य का उद्घाटन नहीं हो जाता। उसकी शक्ति अपरिमेय और अचिंत्य है। उस अव्यक्त सत्ता की अचेतन-अभिव्यक्ति को अपने हृदय में अनुभव कर और जब तेरा हृदय दिव्य-रस से सराबोर हो जाए तो उसी को ब्रह्मानन्द, प्रेम और ईश्वर की निनादित होती हुई कृपा समझ।"

'कामायनी' में भी मनु महाविनाश को देखकर अध्यात्म-चिंतन रत हो जाते

हैं। उन्हें सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, आकाश यहां तक कि दृश्यलोक के प्रत्येक कम्पन में उसी विराट् की छाया छटपटाती दृष्टिगत होती है।

विश्वदेव, सविता या पूषा
सोम, मरुत चंचल पवमान;
वरुण आदि सब घूम रहे हैं
किसके शासन में अम्लान ?
किसका था भ्रू-भंग प्रलय सा
जिसमें ये सब विकल रहे;
अरे! प्रकृति के शक्ति-चिन्ह ये
फिर भी कितने निबल रहे!
विकल हुआ सा कांप रहा था
सकल भूत चेतन समुदाय।
अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान;
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत् कण
छिप जाते हैं और निकलते
आकर्षण में खिंचे हुए;
तृण वीरुध लहलहे हो रहे
किसके रस से सिंचे हुए ?
सिर नीचा कर किसकी सत्ता
सब करते स्वीकार यहां;
सदा मौन हो प्रबचन करते
जिसका, वह अस्तित्व कहां ?
हे अनन्त रमणीय! कौन तुम ?
यह मैं कैसे कह सकता!
कैसे हो? क्या हो ? इसका तो
भार विचार न सह सकता!
'हे विराट्! हे विश्वदेव! तुम
कुछ हो ऐसा होता भान'
मंद गंभीर धीर स्वर संयुत
यही कर रहा सागर गान।

[प्रसाद और गेटे की सबसे बड़ी खूबी है कि उन्होंने मानव-जीवन के किसी भी पहलू को अछूता नहीं छोड़ा। उनकी कृतियां जीवन-समष्टि के समन्वयात्मक संस्कारों का भव्य समारोह हैं। उनकी दृष्टि रमणी की कोमलता और स्थूल सौंदर्य तक ही सीमित नहीं, वरन् क्षितिज से दूर विश्व-व्यापी चेतना को स्पर्श करती है। इन दोनों महाकवियों के ग्रंथ 'फॉस्ट' और 'कामायनी' क्रूर काल के भाल पर अमर सौभाग्य-विद्रुवत् हैं। एक में जीवन-समष्टि का सांगोपांग पदार्थ-पाठ है तो दूसरा उसका सार-अंश। एक में विरोधी तत्त्वों का संधान है तो दूसरे में आत्मिक-मनोभावों को अधिकाधिक रम्य बनाने का उपक्रम। दोनों में चिरंतन-स्वर और शाश्वत-संगीत सुन पड़ता है।

जैसे जल का बुदबुद नीचे से स्वतः ऊपर उठ कर आता है, उसी प्रकार इन महाकवियों की अंतश्चेतना भी मन की गहराइयों से उभर कर ऊपर झलक मारती है और विराट्-चेतना में लीन हो उसी को व्यक्त करती हुई उसी में समाहित हो जाती है—स्थूल-दृष्टि से दूर—न जाने कहां ?

श्री सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
जन्म—विक्रम संवत् १९५३
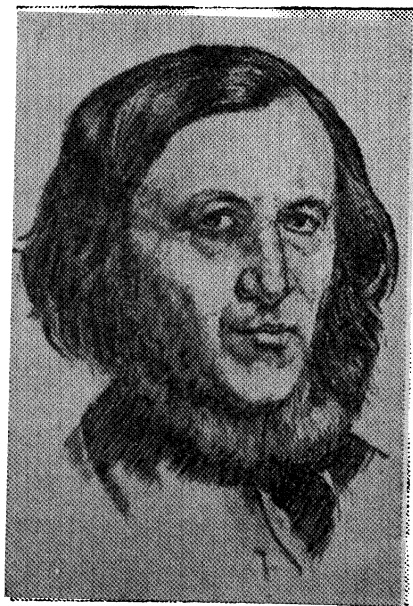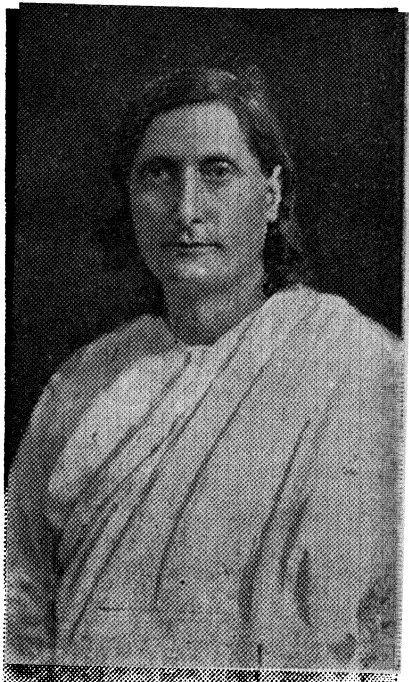
राबर्ट ब्राउनिंग
जन्म—ईसवी सन् १८१२
मृत्यु—ईसवी सन् १८८९

जैसे नीरव निशीथ में अंधियारी किरणों में बंध दो अम्लान सौंदर्य-पुंज तमिस्रा की नत-अलकों से होड़ लगाने किसी अज्ञात-लोक की ओर अनजाने चल पड़ते हैं, उसी प्रकार निराला और ब्राउनिंग–नियति के आवर्त्तन-चक्र में दो शुक्रतारों की भाँति उदित हुए और अपनी आन्तरिक-जिज्ञासा को विराट् की छाया में भर कभी रोये–कभी मुस्कराये। विपत्तियों ने उन्हें झुलाया, संघर्षों ने उन्हें झकझोरा, जीवन के झंझा–रथ पर आरूढ़ जगत् के क्रूर अट्टहासों ने उन्हें विचलित करने की चेष्टा की, अंध–स्वार्थों ने अपने निविड़ अंचल में उन्हें आवेष्टित करने का प्रयास किया, किन्तु प्राणों में पुलक लिए, हृदय में मीठी व्यथा और कोमल–भावनाएं संजोए एक मस्त पथिक से वे निर्भीक कदमों से अनन्त, अगाध और अचंचल से साक्षात्कार करने के लिए आगे बढ़ते रहे। मार्ग दुर्गम था, ऊबड़खाबड़ और अपरिचित, किन्तु अन्तर की प्रेरणा अपरिचित न थी। किसी अदृश्य शक्ति ने उंगली पकड़ कर मानों उन्हें उनकी मंज़िल तक पहुंचा दिया और अंतिम छोर पर पहुंच कर उन्हें विदित हुआ कि वे उस साकार क्षितिज पर आ टिके हैं, जिसका कोई आदि है नअंत। जीवन के कठोर धरातल पर क्रूर स्मृतियों ने जितनी बार निर्मम प्रहार किया, कवि के हृदय की प्रतिध्वनि उतनी ही बार आंतरिक-चेतना से टकरा कर तड़प मूक रह गई।

"जीवन चिरकालिक क्रन्दन !
मेरा अन्तर वज्र-कठोर,
देना जी भरसक झकझोर,
मेरे दुःख की गहन-अँध
तम-निशि न कभी हो भोर !
क्या होती रहती उज्ज्वलता
इतना बन्धन-अभिनन्दन !"

निराला की उपर्युक्त पंक्तियों में विपन्नता का भाव है। जब अंतस्तल में भाव-सरिता लहराती, टकराती और उफनती हुई प्रवाहित होती चलती है तो अपने ही दुःख-सुख और हास्य-रुदन की अभिव्यक्ति के लिये कवि का मन अधीर हो उठता है, मानों उसकी उन्मुक्त भावनायें छहर छहर कर बाहर फूट पड़ना चाहती हैं और उस स्वप्निल-लोक के अन्वेषण में उन्मत्त उल्लास से उद्वेलित हो भटकती हैं, जहां तन्मय आत्म-निवेदन साकार लहलहा उठता है और बाह्य अनुभूतियाँ अंतर्मुखी हो रहस्यावरण खोलती चलती हैं।

निराला और ब्राउनिंग की रचनाओं में करुण-अभिव्यक्ति और भावोन्मेष झांक रहा है। उनका बाह्य-रूप मधुर और प्रभावोत्पादक तथा आंतरिक रूप भावात्मक है। अनेक कविताओं में उनकी कल्पना पंखों पर उड़कर रहस्यात्मक-झलक दिखाकर छिप जाती है और भावोन्माद की तरंगों पर तिरकर विराट्-सौन्दर्य की छाया में अभिसार-सा करती प्रतीत होती है। ब्राउनिंग लिखता है :—

"तमसाच्छन्न हृदयाकाश में मैंने ईश्वरीय-ज्योति प्रज्ज्वलित कर दी। कभी न कभी तो अन्धकार को भेदकर आलोक बरसेगा ही। एक दिन मेरा अंतर्मन दीप्त हो उठेगा। कदाचित् तुम मेरी बात समझते हो। मेरा संकेत पर्याप्त है।"

संघर्ष

जीवन का रहस्य सघन-तमिस्रा से भी सघन और दुर्भेद्य है। साधक के लिए परिस्थिति कभी प्रतिकूल नहीं होती, प्रत्युत् स्वर्णिम-क्षण नित्य उसकी बाट जोहा करते हैं। अपने अपने पृथक् व्यक्तित्वों को लेकर, अपनी अपनी अलग साधों और तरुण मचलनों को समेटे ये दोनों महाकवि जीवन की कठिन पगडंडी पर निर्भीक कदमों से आगे बढ़े, किन्तु निर्दय संसार ने उन्हें अविश्वास की नज़रों से

देखा। जीवन की पूर्णता के लिए वे एक नवीन आशा-समन्वित दृष्टिकोण को लेकर प्रकट हुए, किन्तु भौतिक कठिनाइयों से परास्त होकर, मानव-उपेक्षा से विचलित होकर उनकी आकांक्षाएं मूर्त्त विडम्बना-सी विजड़ित रह गईं। प्रभात-वेला में मधुर-झकोरों से आन्दोलित होकर वे दो पक्षी-शावकवत् अपने नीड़ों से अबाध उड़े। उनके सुकुमार हृदय में आनन्द का ज्वार, नेत्रों में आनन्दाश्रु, अधरों पर मधुर मुस्कान और आत्मा में सुख की सिहरन थी। एक दिव्य झंकृति से उनकी हृदय-वीणा के तार झंकृत हो रहे थे। उनके मधुर कंठों से निकली मस्त-तान में अद्भुत प्रकम्पन था। उनके सुकुमार, सुरीले स्वर में तरलता और शाश्वत-गति थी। उनका अंतर्नाद गंभीर और सागर की भाँति निस्सीम था, किन्तु उन पर अभियोग लगाया गया—वे स्वच्छन्दवादी हैं। उनकी कविताएं जीवन से विलगाव उत्पन्न करती हैं और रूढ़ि-परम्पराओं को तोड़ साहित्य-क्षेत्र में एक बेबस उद्योग हीनता को फैलाती हैं।

उनसे पूछा गया—क्या वे अपनी कला की धारा को अन्यत्र मोड़ सकते हैं? उन्होंने अपनी विवशता प्रकट की। उन्मुक्त भावधारा उनके समष्टि-चिंतन की सहज उद्भूति थी। उनका दृष्टिकोण सार्वजनीन था और उनकी अंतर्भावनाएं उनके प्राणों को हिलाकर, उनकी चेतना-परिधि को तोडकर बरबस मुखर हो उठती थीं। कुछ ने सोचा—कदाचित् उनकी साधना अधिक चल न सके और अपने ही स्वरों के उतार-चढ़ाव में विशृंखल होकर वह शायद बिखर जाए, किन्तु कलाकार अपनी साधना में खोये हुए, अपनी कला में डूबे हुए विश्व की उपेक्षा पर विद्रूप की हंसी हंस रहे थे। उनके हृदय में उल्लास था, आगे बढ़ने का उत्साह था और उनके प्राणों की हर दौड़ के साथ यौवन की अथक सी उसांसे उनके अधूरे सपनों को बिखेर देने को आकुल थीं। अंततः विकर्षण आकर्षण बन गया। लोगों ने विरोध किया, किन्तु उनका विरोध ही उनकी कमजोरी बन बैठा। कला से दुराव ही कला से लगाव का कारण बना। उनकी कला में न जाने क्या आकर्षण था जो कहता कला श्रेय है और कलाकार में न जाने क्या था जो सोचने को बाध्य करता कलाकार प्रेय है। विरोध और द्वन्द्व से ऊबकर वे इस प्रलोभन से दूर भागना चाहते, किन्तु न जाने कहां से शिथिल भावुकता उन्हें लाचार और असहाय बना जाती और वे अपने हृदय के उठते हुए उफान को रोक सकने में असमर्थ हो जाते।

अपने अपने देश के साहित्य की अनुपम विभूति महाकवि निराला

और ब्राउनिंग का जीवन संघर्ष और द्वन्द्वों की अटूट शृंखला है। अनवरत आफतों, जीवन आवर्त्तों और तूफानी हलचलों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने वाले इन विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न कलाकारों की बहुमुखी प्रवृत्तियां सरल और चंचल, कोमल और कठोर, शिशु-सुलभ और गम्भीर, सोद्देश्य और निस्पृह का अपूर्व सामंजस्य है। उनके जीवन का एक और दर्दीला पहलू है, जिसकी झांकी अत्यन्त करुण और मर्मस्पर्शी है।

अल्हड़ जवानी में ब्राउनिंग ने अपने अरमानों की झोली जिस सुन्दरी, मादक सौन्दर्य-सपनों की स्नेहभरी रानी बेरट ब्राउनिंग के चरणों में बिखेर दी थी, जो स्वयं एक उच्चकोटि की कवयित्री थी और जिसने अपनी कलात्मक-अभिव्यक्तियों से पति के हृदय में प्रेरणा और स्फूर्ति भरी थी, वह असमय में ही उसे छोड़ कर परलोक सिधार गई थी। निराला का तो पांच-छः जीवन-वसन्तों के पश्चात् ही सोने का संसार उजड़ गया और उस जीवन-सहचरी प्राणप्रिया मनोहरा देवी का चिर-वियोग उन्हें सहना पड़ा जिन्होंने हिन्दी सीखने और पढ़ने की उनमें अभिरुचि जाग्रत की थी। 'गीतिका' अपनी पत्नी को समर्पित करते हुए निराला लिखते हैं:——

"जिसकी हिन्दी के प्रकाश से, प्रथम परिचय के समय, मैं आंखें नहीं मिला सका——लजा कर हिन्दी की शिक्षा के संकल्प से, कुछ काल बाद देश से विदेश, पिता के पास चला गया था और उस हीन-हिन्दी प्रान्त में, बिना शिक्षक के, 'सरस्वती' की प्रतियां लेकर, पद-साधना की और हिन्दी सीखी थी; जिसका स्वर गृहजन, परिजन और पुरजनों की सम्मति में मेरे संगीत-स्वरों को परास्त करता था; जिसकी मैत्री की दृष्टि क्षणमात्र में मेरी रुक्षता को देखकर मुस्करा देती थी, जिसने अंत में अदृश्य होकर मुझसे मेरी पूर्ण-परिणीता की तरह मिल कर मेरे जड़ हाथ को अपने चेतन हाथ से उठाकर दिव्य शृंगार की पूर्ति की, उस सुदक्षिणा स्वर्गीया प्रिया-प्रकृति श्रीमती मनोहरादेवी को सादर।"

पत्नी की मृत्यु से इन महाकवियों के दिलों पर गहरी ठेस लगी, मानों क्रूर झंझावात के एक ही झोंके ने उनके प्यार की मीठी कल्पनाओं का हरा-भरा चमन उजाड़ दिया। उनके हृदय की सुकुमार भावनाएं इस भीषण आघात से सिसक उठीं। उनके सोचे सपने बिखर गये और बीते हुये सुखद पलों की याद मीठी कड़ुवाहट बन उनके चेतना-क्षितिज पर छा गई। परिणाम यह हुआ—उनकी अंतर्व्यथा कविताओं में फूट पड़ी और दृश्यलोक के प्रत्येक कम्पन के साथ उनका दर्द, उनकी

बेकली और बेबसी रम गई । उनका आंतरिक प्रेम व्यापक होकर जीवन-जलधि में लहराने लगा, मूर्च्छनाएं जागीं, प्रणय-गीत उठे और उनके हृदयाकाश को आच्छन्न कर लिया । उनकी नसों में पहले का भावोन्माद व्यथा की सिहरन बन गया और भीतरी आनन्द-पुलक पलकों पर धुंधियारी बन छा गया । अंतःप्रेरणा सूक्ष्म से साकार होगई, व्यक्तित्व बनकर छा गई, उनके मन की अधीरता सधे स्वरों में बदल गई और पागल उन्माद कठोर साधना में परिणत होगया । उनकी उस समय की लिखी हुई कविताओं में एक उन्मन उदासी, प्यार की थकी हुई प्यास और किसी में बरबस आत्मसात् होजाने की भावना व्यक्त होती है । निराला के हृदय की वेदना 'जुही की कली' में कितनी सूक्ष्म और अव्यक्त होकर प्रकट हुई है ।

> "विजन-बन-बल्लरी पर
> सोती थी सोहाग भरी स्नेह-स्वप्न-मग्न
> अमल कोमल तनु तरुणी-जुही की कली,
> दृग बन्द किए, शिथिल पत्रांक में—
> बासंती निशा थी ।"

विपुल बन-सुषमा के मध्य निर्जन बन-वल्लरी पर पत्रों की क्रोड़ में एक जुही की कली शिथिल, अलसायी, उनींदी और थकित सी दृग बन्द किये पड़ी थी । वसन्त ॠतु की मादक निशा थी । ऐसी स्थिति में उसका प्रियतम पवन उससे बिछुड़ गया था और किसी दूर, अज्ञात देश में उड़ चला गया था ।

> "विरह-विधुर-प्रिया-संग छोड़
> किसी दूर देश में था पवन
> जिसे कहते हैं मलयानिल ।"

किन्तु दोनों प्रेमियों के दिलों में एक दूसरे से मिलने की आतुरता थी । दोनों अंदर ही अंदर तड़प रहे थे और एक दूसरे की याद उन्हें उन्मत्त बना रही थी । इधर जुही की कली बेचैन थी और उधर पवन परेशान था ।

> "आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात
> आई याद चांदनी से धुली हुई आधी रात
> आई याद कान्ता की कम्पित कमनीय गात ।"

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि के जीवन की झीनी स्मृतियाँ रह रह कर झलक मार रही हैं और उसकी अतृप्त लालसा की ओर भी संकेत करती हैं ।

नीचे उद्धृत कविता तो 'स्मृति' शीर्षक से ही लिखी गई है :—

"जटिल-जीवन-नद में तिर-तिर,
डूब जाती हो तुम चुपचाप;
सतत द्रुत-गति-मयि अयि, फिर फिर
उभड़ करती हो प्रेमालाप।
सुप्त मेरे अतीत के गान,
सुना प्रिय, हर लेती हो ध्यान !

आंसुओं से कोमल झर-झर
स्वच्छ-निर्झर-जल कण-से प्राण,
सिमट सट-सट अन्तर भर-भर
जिसे देते थे जीवन-दान,
वही चुम्बन की प्रथम हिलोर
स्वप्न-स्मृति, दूर, अतीत, अछोर।"

कहीं कहीं कवि की भावनाएं अत्यन्त सघन और गुम्फित होकर रहस्यमय अभिव्यंजना करती हैं :—

रश्मि से दिनकर की सुन्दर
अंध-वारिद–उर में तुम आप
तूलिका से अपनी रचकर
खोल देती हो हर्षित चाप,
जगा नव आशा का संसार,
चकित छिप जाती हो उस पार।

पवन में छिपकर तुम प्रतिपल,
पल्लवों में भी मृदुल हिलोर,
चूम कलियों के मुद्रित दल,
पत्र-छिद्रों में गा निशि-भोर
विश्व के अंतस्तल में चाह,
जगा देती हो तड़ित् प्रवाह।

ब्राउनिंग ने भी अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद लिखा था, "ईश्वर ने उसे अपनी गोदी में ऐसे ले लिया जैसे तुम किसी अंधकारमय, बेआराम बिस्तर से

बच्चे को उठा कर प्रकाश में लेजाते हो"।

इस उद्विग्न स्थिति में एक बेरहम उदासी कवि को सदैव व्यथित करती रहती। वह अपने पुत्र के साथ स्टिमेरी नामक एक छोटे से ग्राम में जा बसा था। वहाँ सूनी कुटिया का एकांत उसके हृदय को ढाढ़स बंधाता और वह कभी कभी समुद्री-तट के साथ साथ दूर—बहुत दूर मीलों भ्रमण करने निकल जाता। उसकी उस समय की मानसिक स्थिति का चित्रण करते हुए अंग्रेजी समीक्षक गोस लिखता है, " सन् १८६३ में पत्नी की मृत्यु के बाद ब्राउनिंग के स्वभाव में काफी परिवर्तन होगया था। किसी भी सामाजिक उत्सव या समारोह में वह भाग न लेता था और अपने पुत्र को पढ़ने के लिए स्कूल में दाखिल करने के बाद तो सूनी संध्याएं उसके लिए और भी असह्य होगई थीं।" स्वयं ब्राउनिंग ने भी एक स्थल पर लिखा है, "जब मैं खिड़कियों में से झांककर देखता हूं तो लगता है जैसे मेरे पैरों के नीचे से धरती खिसकी जा रही है। समुद्र कितना तूफानी और हवा कैसी विषादमयी है।"

भ्रांति

किन्तु इन महाकवियों के मन इस आकस्मिक दैवी-आपत्ति के आघात से त्रस्त हो केवल शून्य की परिधि में ही नहीं भटकते रहे थे, प्रत्युत् उन की बहु-वस्तु-स्पर्शिनी प्रतिभा संश्लेषात्मक सत्य के आलोक का सहारा ले जीवन- रहस्यों के अनुसंधान में भी प्रवृत्त थी, केवल कुछ समय के लिए उनकी जीवन-दिशा बदल गई थी और उनकी इच्छाओं के संसार में नैराश्य और करुण-संवेदना व्याप्त होगई थी। उनका सांसारिक-मोह बहुत कुछ हल्का पड़ गया था और सहज जीवन-प्रणाली में भी एक धक्का सा लगा था। क्षणभंगुर संसार उन्हें विपन्न क्षणों में चिरंतन सत्ता की क्रीड़ास्थली सा प्रतीत होता और उनके समस्त सुख—स्वप्न और हृदय की आशा—आकांक्षाएं किसी अज्ञात सत्ता में लीन हो जाने को आकुल हो उठतीं।

साधना की परीक्षा

कहने की आवश्यकता नहीं कि निराला और ब्राउनिंग की भाव-व्यंजना का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है और उनकी कविताओं का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि जीवन के विस्तृत दायरे के विभिन्न पहलुओं का काव्यात्मक आकलन करने की उनमें अद्भुत क्षमता है। जीवन की दारुण—परिस्थितियों और संघर्षों ने उनकी चेतना को इतना विकसित कर दिया है कि उनकी आंतरिक अनुभूतियाँ अत्यंत संयमित और मंज-घिस कर प्रकट हुई हैं।

उनमें अतृप्त वासना, चीख-पुकार और अट्टहास का आलोड़न नहीं है, वरन् उनकी अनमोल कलाकृतियां उनके प्रेरणामय व्यक्तित्व से परिपूरित और गौरवमय हैं।

निराला का आत्मिक-सौंदर्य उनकी कृतियों में लहलहा रहा है। जब कि हिन्दी-साहित्य के अंगों का विकास भी न हो पाया था, उन्होंने सब अंगों की सम्यक् पूर्ति के लिए कुछ न कुछ मसाला एकत्र किया और अपनी साहित्यिक–कृतियों में मानव-जीवन से सम्बन्धित सभी भावनाओं का समावेश किया। उनकी कविता-शैली बंगला प्रगीत-पद्धति पर नवीन रूप लेकर प्रकट हुई और उन्होंने हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में सर्वप्रथम मुक्त-वृत्त अथवा स्वच्छंद-छंद का प्रयोग किया। अपनी 'परिमल' की भूमिका में उन्होंने लिखा है, "मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से पृथक् हो जाना। जिस प्रकार मुक्त मनुष्य कभी किसी के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके समस्त कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं—फिर भी स्वतन्त्र–इसी तरह कविता का हाल है। मुक्त–काव्य साहित्य के लिए कभी अनर्थकारी नहीं होता, प्रत्युत् उससे साहित्य में एक प्रकार की चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।" इस में संदेह नही—निराला अपने स्वच्छन्द छंदों के प्रयोग से ही कविता-क्षेत्र में युग-प्रवर्त्तक के रूप में देखे गए और अपनी मौलिक प्रतिभा के कारण ही साहित्यिक-क्रान्तिकारी सिद्ध हुए।

निराला अनंत पथ के पथिक हैं। उनमें भावों की ऊंची उड़ान और विचारों की गहराई है। उनकी दृष्टि के समक्ष भावनाओं के ऐसे सामूहिक रूप आकर-उपस्थित हो जाते हैं कि वे निस्सीम के घूंघट-पट में झांककर देखने का प्रयास करते हैं। उनकी 'परिमल,' 'गीतिका', 'अनामिका' आदि पुस्तकों में उन्मुक्त भावनाओं का प्रवाह है। 'परिमल' की अनेक कवितायें तत्त्वज्ञान और रहस्यमयी भावनाओं से ओतप्रोत हैं। एक उदाहरण देखिए :—

तुम दिनकर के खर किरण-जाल, मैं सरसिज की मुस्कान;
तुम वर्षों के बीते वियोग, मैं हूं पिछली पहचान।
तुम योग और मैं सिद्धि,
तुम हो रागानुग निश्छल तप,
मैं शुचिता सरल समृद्धि।
तुम मृदु मानस के भाव और मैं मनोरंजिनी भाषा;

तुम नन्दन-वन-घन विटप और मैं सुख-शीतल-तलशाखा ।
तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म,
मैं मनोमोहिनी माया ।
तुम आशा के मधुमास और मैं पिक-कल-कूजन तान;
तुम मदन-पंच-शर-हस्त और मैं हूं अनजान ।
तुम अम्बर में दिग्वसना,
तुम चित्रकार, घन पटल श्याम
मैं तड़ित् तूलिका रचना ।

प्रकृति-चित्रण

निराला ने प्रकृति-चित्रण के भी बहुत ही सम्मोहक चित्र खींचे हैं । उनकी 'बसंत-समीर', 'संध्या-सुन्दरी', 'बासंती', 'जलदके प्रति', 'शुरत्पूर्णिमा की विदाई', 'बन-कुसुमों की शय्या', 'यमुना के प्रति', 'प्रभात के प्रति' आदि रचनायें गूढ़ भावनाओं और जीवन-व्यापी प्रकृत-तत्त्वों से ओतप्रोत हैं । निम्नलिखित 'संध्या' का चित्र कितना सुन्दर और सजीव उतरा है ।

"डूबा रवि अस्ताचल
संध्या के दृग छलछल
स्तब्ध अन्धकार सघन
मन्द गन्ध-भार पवन,
ध्यान-लगन नैश गगन,
मूंदे पल नीलोत्पल ।"
"देकर अन्तिम कर, रवि गए अपर पार,
श्रमित चरण आये, गृहिजन निज निज द्वार ।
अम्बर पथ से मंथर, सन्ध्या श्यामा,
उतर रही पृथ्वी पर , कोमल पद भार ।"

प्रभात कालीन सूर्य की रश्मियां जब नवालोक से आलोकित प्राची-दिशा में फूट पड़ती हैं तो उनकी शोभा अनुपम और दर्शनीय होती है ।

"प्रथम कनक-रेखा प्राची के भाल पर,
प्रथम श्रृंगार स्मित तरुणी वधू का,
नील गगन विस्तार केश,

किरणोज्ज्वल नयन नत,
हेरती पृथ्वी को ।"

किरणों के आगमन के बाद 'प्रभात' का वर्णन भी आकर्षक और हृदय को गुदगुदाने वाला है ।

"'सौध शिखर पर प्रात मनोहर,
कनन-गात तुम अरुण चरण धर,
सरणि सरणि पर उतर रही भर,
छन्द-भ्रमर-गुंजित नीलोत्पल ।"

ब्राउनिंग के मनोभाव भी यत्र-तत्र प्रकृति के स्पंदनों में मुखरित हो उठे हैं। उसकी रचनाओं में सूक्ष्म-निरीक्षण और उपमायें बड़ी नपी-तुली, सुन्दर और प्रभावोत्पादक होती हैं । प्रकृति का अंचल थाम उसने उसके प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वरूपों और विविध कार्य-कलापों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है । नीचे का अवतरण कितना स्वाभाविक और बोधगम्य व्यंजना से युक्त है :—

"पृथ्वी शीत के आधिक्य से ठिठुरी हुई और जड़ पिण्ड सी निर्जीव पड़ी है, किन्तु वासंतिक वायु संगीतात्मक लय में नर्त्तन करती हुई उसके वक्षःस्थल पर इस प्रकार तैर रही हैं जैसे वह उसे सजग करने के प्रयत्न में हो। ऊबड़खाबड़ पगडंडियों के किनारे पर कहीं कहीं हरियाली दृष्टिगत होती है । मुरझाए वृक्षों के जड़ों के खोखले और कुहरे में फटी दरारे झुर्रीदार चेहरे की विवश मुस्कराहट सी ज्ञात होती हैं । लवा-पक्षी प्रसन्नता से झूमता हुआ ऊपर-नीचे उड़ानें भर रहा है । प्रकृति की तटस्थता पर प्रभु अपने अनुग्रह का वरदान बिखेरा ही चाहते हैं ।"

तथ्य व्यंजना और वातावरण-सृष्टि के लिए भी ब्राउनिंग ने प्रकृति से मानव का अनविच्छिन्न सम्बन्ध दिखलाया है, जो नीचे के उद्धरण से सहज ही दृष्टव्य है ।

"सारा जंगल बर्फ से ढका हुआ श्वेत कठोरता में परिणत हो गया है । अंततः जंगली वृक्षों पर गुलावी पत्ते फूट आए हैं । बबूल के पेड़ देवदार-वृक्षों की संधियों में उगे हुए हैं और स्तब्ध अरण्य में मुस्कराते से प्रतीत हो रहे हैं । एक जादूगरनी मंत्रों का उच्चारण करती हुई रक्त भरे कढ़ाव से कचरा निकाल कर धुएं से धूमिल देवदार-वृक्षों के मोटे तनों पर लीपा-पोती कर रही हैं ।

दिन दिन श्वेत पुष्पों पर अधिक ताज़गी छा रही है और गुलाब की कलियाँ शनैः शनैः प्रस्फुटित हो रही हैं ।"

मौलिक-उद्भावनाएं

निराला और ब्राउनिग ने छोटे छोटे, सुन्दर गीत भी लिखे हैं, जिनमें कोमल कल्पना और मधुर भावनाओं की मार्मिक व्यंजना हुई है। कोई कोई गेय-पद तो उनकी बड़ी कृतियों से अधिक उत्कृष्ट, मधुर, गूढ़-तत्वों से युक्त और हृदय को स्पंदित कर देने वाली उन्मत्त-भावना से ओत-प्रोत हैं। उन्हें पढ़ने से ज्ञात होता है जैसे वे कवि की आंतरिक सिहरन, स्पंदन और कम्पन से आविर्भूत हुए हैं। 'गीतिका' में निराला के ऐसे बहुत से गीत बिखरे पड़े हैं। एक उदाहरण देखिए :—

"सखि ! बसन्त आया,
भरा हर्ष बन के मन,
नवोत्कर्ष छाया।
किसलय वसना, नव-वय-लतिका,
मिली मधुर प्रिय-उर, तरु-पतिका,
मधुप—वृंद बन्दी,
पिक-स्वर नभ सरसाया।
लता-मुकुला-हार-गंध-भार भर,
वही पवन बंद मन्द-मंदतर,
जागी नयनों में बन—
यौवन की माया।
आवृत सरसी—उर—सरसिज उठे,
केशर के केश कली के छुटे,
स्वर्णशस्य अंचल,
पृथ्वी का लहराया।"

निराला के गीतों में मनोवेदना, भावुकता, अनियन्त्रित हृदय की उथल-पुथल और भावना का स्रोत उमड़ा पड़ रहा है।

"(प्रिय) यामिनी जागी,
अलस पंकज-दृग अरुण मुख,
तरुण - अनुरागी,
खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे।

बादलों में घिर अपर दिनकर रहे,
ज्योति की तन्वी,
तड़ित्‌द्युति ने क्षमा मांगी ।"

ब्राउनिंग के दो छोटे छोटे प्रख्यात गीत 'यामिनी-मिलन' और 'प्रभात-कालीन-विदा' का भावानुवाद यहां दिया जाता है ।

यामिनी मिलन (Meeting at Night)

(१)

"नीचे विस्तृत उदास समुद्र और लम्बा कृष्ण-वर्ण भूखण्ड
ऊपर बड़ा, अर्धाकार धूमिल अर्ध-चन्द्र
जैसे ही मैं अपनी नाव को खेता हुआ घुमावदार खाड़ी तक पहुंचता हूं
तो लघु लघु लोल लहरियां गोलाकार हो थिरक उठती हैं और मैं अपने
द्रुत-गमन को दलदली ज़मीन के पास जाकर रोक देता हूं ।

(२)

पुनः उष्ण समुद्रीय तट के साथ साथ एक मील लम्बा भ्रमण ।
तत्पश्चात् तीन खेतों को पार करके एक फार्म का दृश्य ।
फिर खिड़की के शीशे पर हल्की सी थपथप, शीघ्र ही चटखनी खुलने
की आहट और दियासलाई की सींक का हल्का, नीला प्रकाश । प्रसन्नता
और भय से लचकता धीमा स्वर और फिर दो धड़कते दिलों का परस्पर
गाढ़ालिंगन ।"

प्रभातकालीन विदाई (Parting at Morning)

"अन्तरीप के इर्द-गिर्द घुमावदार समुद्र,
और पर्वत-शृंग के ऊपर झांकता हुआ नवोदित सूर्य,
फिर दृष्टि-पथ के समक्ष दूर तक फैला हुआ सुनहरा प्रकाश,
और तब कोलाहलपूर्ण विश्व के लोगों से शीघ्र ही मिलने की मेरी
दारुण विवशता ।"

इस प्रकार अत्यन्त छोटे छोटे गेयपदों में इन महाकवियों की आन्तरिक संवेदना और उन्मत्त मादकता अधिक जाग्रत रूप में प्रकट हुई है । इन गीतों में लय, आकर्षण, आवेग और सरसता है । सांसारिक-वैविध्य के प्रति उनकी द्वन्द्वात्मक,प्रसरणशील विह्वलता के कारण उनके मनोभाव इतने गहरे हो गये हैं कि कभी स्वप्निल रंगीनियों में डूबते-उतराते प्रकट होते हैं, कभी सविशेष कल्पना की तलैया में पैठकर ऊपर उभर उभर कर आते हैं और कभी जीवन-वैचित्र्य

पर मुग्ध हो संवेदनात्मक-भावस्थिति में पहुंच जाते हैं। 'भिक्षुक' पर लिखी हुई निराला की कविता कितनी सजीव और करुणा-विगलित है।

"दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को,
मुंह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।"

कवि की लेखनी से उभरी रेखायें कितनी सुस्पष्ट, संयत और बारीकी से अंकित की गई हैं। निम्नलिखित 'विधवा' का चित्र कितना पवित्र और उदात्त-भावनाओं को जगाने वाला है।

"वह इष्ट-देव के मन्दिर की पूजा-सी,
वह दीप-शिखा सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर-काल-ताण्डव की स्मृति-रेखा सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन,
दलित भारत की ही विधवा है।"

ब्राउनिंग भी शब्द-चित्र उपस्थित करने में बड़ा ही सिद्धहस्त है। विभिन्न नारियों के चित्र देखिए :—

"छोटे, गोल मुख वाली, जीर्ण-शीर्ण चिथड़ों में लिपटी उस रुग्ण बालक की मां ने त्रस्त भावभंगी और भीत चेष्टा से मुड़कर पीछे देखा।"

"वह मोटी, श्रांत, हांफती और घबराई हुई महिला, जिसकी फड़फड़ाती छतरी जमीन पर पटकी हुई नसों का ढांचा मात्र है।"

"तुम्हारा जैसा विचित्र मुंह मैंने कभी नहीं देखा, क्योंकि वह इतना फटा है कि कभी बन्द नहीं होता। तुम्हारी ठोढी भी बड़ी बेढंगी है और तुम्हारे बोलने की प्रक्रिया ऐसी अजीब है कि जिन शब्दों को तुम जानते हो उनका ठीक उच्चारण नहीं कर पाते।"

निराला ने भी भद्दी, कुरूपा नारियों के बड़े ही सजीव चित्र खींचे हैं। 'खजोहरा' में गांव के तालाब में स्नान करती हुई बुआ का वर्णन बड़ा ही रोचक है।

"पैठी बुआ ताल में जैसे हथिनि,
मारे डर के कांपने लगा पानी,
लहरें भगीं चढ़ने को किनारे पर,

रेला पानी बुआ ने बाहों में भर ।
नीब के खम्भों से पैर कीच में थे,
जांघ से छाती तक अंग बीच में थे ।"

'रानी और कानी' कविता की भी कुछ पंक्तियां यहां उद्धृत की जाती हैं ।

"लेकिन था उलटा रूप,
चेचक मुंह दाग, काली, नक-चिपटी,
गंजा-सर, एक आंख कानी ।
रानी, औरत की जात
ब्याह, कहो, कैसे हो
कानी जो है वह ।"

कहना न होगा कि निराला और ब्राउनिंग की प्रतिभा इतनी बहुमुखी है कि साहित्य-क्षेत्र में उनके विचारों का योगदान अपूर्व है । कहीं कल्पना की मनोहर उड़ान है तो कहीं रुचि-सौन्दर्य और अपने लक्ष्य का स्पष्टीकरण । कहीं अनुभूतियों का एकीकरण है तो कहीं जीवन के प्रत्येक पहलू की मार्मिक तत्त्वालोचना । कहीं प्रकृति की अनुपम झांकी है तो कहीं प्रणय और वेदना का करुण क्रन्दन । कहीं वीरों की यशोगाथा है तो कहीं दीन-दुखियों के दुःख-दर्द की सच्ची तसवीर खींचने का जागरूक प्रयत्न । हास्य और व्यंग का भी उन्होंने उन्मुक्त व्यवहार किया है । निराला का 'कुकुरमुत्ता' और 'नये पत्ते' तथा ब्राउनिंग का 'दि पाइड पाइपर' (The Pied Piper) व्यंगात्मक कविताओं के संग्रह हैं । इसके अतिरिक्त उनकी अनेक स्फुट रचनाओं में ढोंग, यशोलिप्सा, धनिकवर्ग का अहम्, साम्य-वादी विचारधारा, आधुनिक रोमांस, दकियानूसी रूढ़-प्रणाली और प्राचीन आदर्शवादिता पर मीठी चुटकियां ली गई हैं । निराला की श्रेष्ठ रचनाओं में 'तुलसीदास' का विशेष महत्त्व है-जिसमें कवि की भावनाओं की गठित तारतम्यता और आन्तरिक प्रेरणा का अंकन है । 'अप्सरा', 'अलका', 'निरुपमा', 'प्रभावती' नामक चार उपन्यास और 'उषा' नाम की एक छोटी सी नाटिका भी है ।

इसके अतिरिक्त 'रवीन्द्र-कविता-कानन', 'हिन्दी-बंगला-शिक्षक','प्रह्लाद', 'ध्रुव', राणा-प्रताप' आदि इनकी कृतियां हैं । 'सखी' नाम का एक कहानी-संग्रह और पुत्री के शोक में लिखी हुई कविता 'सरोज-स्मृति' भी है, जो हिन्दी का सर्व-श्रेष्ठ शोकगीत (Elegy) है ।

निराला और ब्राउनिंग की रचनाओं में गहरा आत्म-विश्वास और तटस्थ जीवन-दर्शन है । यद्यपि उनका हृदय सदैव संतप्त और चिन्ताओं से जर्जर रहा,

तो भी उनका काव्य स्वानुभूत सत्य और अंतर्जगत् की अनहद ध्वनि है, जिसमें भाव-संकुलता और गंभीर विचारधारा बरबस फूट पड़ी है। कभी कभी इन कवियों की कोमल भावनाओं पर परिपार्श्विक प्रभावों की ऐसी आकस्मिक ठेस लगती है कि भाव-प्राबल्य के कारण उनके छंदों का बारीक सूत्र छिन्नभिन्न हो जाता है। कोई कोई पंक्ति विशृंखल, उखड़ी-उखड़ी और बेकार सी लगती है, किन्तु इस अस्थिर शैली में भी इन महाकवियों की काव्य-शक्ति और अंतर्वैभव का सहज ही परिचय मिलता है।

ब्राउनिंग की कृतियों में मार्मिक तथ्य-व्यंजना, मानव के मनोजगत् में पैठने की बलवती आकांक्षा, बौद्धिक मनोविश्लेषण, गम्भीर-चिन्तन और अन्धकार में टटोलने की वृत्ति अधिक परिलक्षित होती है। कवि अपने बुद्धिबल से सत्य को पकड़ने की चेष्टा में सतत संलग्न है। उसकी दृष्टि निरन्तर कुछ खोजने का प्रयास करती है और वस्तुओं के मर्म में पैठने की इच्छा रखती है। प्रारम्भ में ब्राउनिंग कीट्स और शेली से अत्यधिक प्रभावित था, किन्तु ज्यों ज्यों उसका बौद्धिक विकास होता गया, उसकी भाव-प्रवणता और उद्भ्रांत कल्पना विचारों की गहराई और निर्वेद-चिंतन में परिणत होती गई। 'पालिन' (Pauline) केवल प्रेमगीति ही नहीं है, वरन् कवि की अन्तर्चेतना की अभिव्यक्ति है। 'पैरासिलसस' (Paracelsus) में संघर्षमय और संश्लेषात्मक विचारधारा उद्भूत हुई है, जो समस्त नियन्त्रणों को तोड़कर अजस्र रूप से प्रवाहित हो उठी है। इस जीवन-नाटिका में ब्राउनिंग का व्यक्तित्व आनुषंगिक रूप में व्यक्त हुआ है, क्योंकि उसकी विश्लेषक बुद्धि कल्पना एवं भावतरलता के आवरण में लिपटी हुई प्रकट होती है।

सन् १८४० में 'सोरडेलो' (Sordello) प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक जीवन से इतनी दूर जा पड़ी और कवि की भावनायें इसमें इतनी पांडित्य और विद्वत्ता के भार से लद कर प्रकट हुई कि स्वयं टेनीसन ने लिखा कि मैं इसकी प्रथम और अन्तिम पंक्ति को छोड़ कर और कुछ न अधिक समझ सका। डगलस जेरोल्ड विषयक एक विचित्र घटना 'सोरडेलो' के सम्बन्ध में प्रचलित है। डगलस लम्बी बीमारी से उठा था। उसने डाक्टर से दिन में कुछ पढ़कर दिल बहलाने की अनुमति प्राप्त करके अचानक अपने सिरहाने रक्खी हुई पुस्तकों में से 'सोरडेलो' निकाल कर पढ़ना शुरू किया, किन्तु शीघ्र ही उसके मुंह पर हवाइयां उड़ने लगीं और वह सिर थाम कर बैठ गया। मन में सोचा, "हाय ! मैं अच्छा हो गया, किन्तु मेरी ग्रहण-शक्ति जाती रही। आश्चर्य ! महान् आश्चर्य ! एक अंग्रेजी कविता की मैं कुछ पंक्तियां भी न समझ सका।" उसने अपने सारे परिवार को बुलाया और

उनके हाथों में चुपचाप पुस्तक देकर इस कविता पर उनकी सम्मति जानने का आग्रह किया। लेकिन सभी के मुखों पर घबराहट की छाया फैल गई और उन्होंने इसे समझने में अपनी असमर्थता प्रकट की। डगलस आश्वस्त हुआ और सोने चला गया।

उस समय 'सोरडेलो' के महत्त्व से जनता अनभिज्ञ थी, अतएव यह पुस्तक अधिक समादृत न हुई। ब्राउनिंग भी अपनी कमजोरी समझ गया और उसने मध्यम-मार्ग अपनाया। अब तक की अपनी कृतियों में वह कलाकार कम और विचारक एवं आदर्शवादी अधिक था। अब कलात्मक अभिव्यक्ति की ओर उसका ध्यान आकृष्ट हुआ। 'दि ड्रेमेटिक लिरिक्स' (The Dramatic Lyrics) जिसके निर्माण में उसे पूरे दस वर्ष लगे, उसके जीवन-साक्षात्कार की विवृत्ति है। 'इवेलिन होप' (Eyelyn Hope) में कोमलता, 'इन ए गोण्डोला' (In a Gondola) में सूक्ष्मदर्शिता, 'माइ लास्ट डचेस' (My last Duchess) में बौद्धिक चमत्कार, 'वेरिंग' (Waring) में करुण भावुकता और 'दि पाइड-पाइपर' (The Pied Piper) में हास्य, विनोद, व्यंग और उन्मत्त उन्माद फूटा पड़ रहा है।

एक बार सन् १८३५ के दिसम्बर मास में ब्राउनिंग तत्कालीन अभिनेता मेकरेडी का अतिथि होकर उसके गांव एल्सट्री गया। चलते हुए मेकरेडी ने उससे सानुरोध प्रार्थना की, "ब्राउनिंग ! आप एक नाटक लिखें।" कवि ने वायदा कर लिया और उसी वर्ष अगस्त मास में उसका सर्वप्रथम नाटक 'स्ट्रैफोर्ड (Strafford) प्रकाशित हुआ, जो मेकरेडी द्वारा रंगमंच पर खेला गया। इसके पश्चात् तो नाटकों का तांता-सा लग गया और ब्राउनिंग ने सन् १८४१ में 'पिप्पा पासेस' (Pippa Passes), सन् १८४२ में 'किंग विक्टर एण्ड किंग चार्ल्स' (King Victor and king Charles), सन् १८४३ में 'दि रिटर्न आफ दि ड्रूजेस' (The Return of the Druses) और 'ए ब्लाट इन दि 'स्कुचियान' (A Blot in the Scutcheon), सन् १८४४ में 'कोलोम्बीज बर्थ-डे' (Colombe's Birthday), सन् १८४६ में 'ए सोल्स ट्रेजेडी' (A Soul's Tragedy), और 'ल्यूरिया' (Luria) तथा सन् १८५३ में 'इन ए बालकनी' (In a Balcony) आदि अनेक नाटक लिखे। सभी नाटकों में हृद्गत भावनाओं का स्वाभाविक चित्रण, मानव-स्वभाव को परखने की अद्भुत क्षमता और सांस्कृतिक गौरव की प्रतिध्वनि है।

अपने विवाह के पश्चात् ब्राउनिंग पत्नी सहित इटली में जा बसा और

वहां सन् १८५० में 'क्रिसमस ईवे और ईस्टर डे' (Christmas Eve and Easter Day) और सन् १८५५ में 'मेन एण्ड विमेन' (Men & Women) पुस्तकें लिखीं। पत्नी की मृत्यु का निर्मम आघात और जनता की उपेक्षा ने ब्राउनिंग को कुछ वर्षों तक निष्क्रिय बना दिया। सन् १८६४ में वह पुनः सजग हुआ और दो तीन वर्षों के भीतर ही उसकी दो पुस्तकें 'ड्रेमेटिस परसनिया' (Dramatis Personea) और 'दि रिंग एण्ड दि बुक' (The Ring and the Book) प्रकाशित हुई। अब जनता शनैः शनैः उसके महत्त्व को समझने लगी थी और अपने जातीय कवि को सम्मान प्रदान करने को उत्सुक थी। उसकी बाद की लिखी रचनाओं में 'फिफाइन एट दि फेयर' (Fifine at the Fair), 'दि इन-एलबम' (The Inn Album), 'ड्रेमेटिक आइडिल्स' (Dramatic Idyles), 'फरिश्ताहज् फेन्सीस्' (Ferishtah's Fancies) और 'एसोलंडो' (Asolando) आदि कविता-संग्रह प्रमुख हैं।

कवित्त्व और दार्शनिकता का समन्वय

निराला और ब्राउनिंग की कृतियों में कवित्व और दार्शनिकता का अपूर्व सामंजस्य तथा उनकी अंतः-साधना के साथ साथ आत्म-साक्षात्-भावना और दार्शनिक तथ्य सन्निहित हैं। ऐसा लगता है मानो जीवन के कर्ममय प्रहर में भी ये महाकवि विराम चाहते हैं—चिरंतन विराम और शाश्वत शांति। जब उनकी कोमल भावनायें अवगुंठन हटाकर वास्तविकता में झांकने का प्रयास करती हैं तो बौद्धिक आलोक में जीवन के सुख-दुःख, बन्धन और मुक्ति दोनों की सीमायें मिटती हुई सी प्रतीत होती हैं। कवि सांसारिक थपेड़ों से मूर्च्छित होते हुए भी निर्लिप्त हैं और तत्त्वज्ञानी की दृष्टि से अपनी आन्तरिक-प्रेरणा का अंकन करते हैं। ब्राउनिंग लिखता है:—

"जीवन जागरण है, सुषुप्ति नहीं, उत्थान है, पतन नहीं। पृथ्वी के तमसाच्छन्न, अन्धकारमय पथ से गुज़र कर दिव्य-ज्योति से साक्षात्कार करना है, जहां द्वन्द्व और संघर्ष कुछ भी नहीं है और जहां हृदय की अनुभूति विराट् की छाया से तादात्म्य स्थापित करती है। निःसन्देह चिन्मय शक्ति ही अनुपम सत्ता है।"

जब उदात्त-कल्पना ईश्वर की सत्ता में झलकती है, तो दार्शनिक-भावनायें मुखर हो उठती हैं और दुःख-सुख की मृग-मरीचिका से परे उनकी बुद्धि का निर्माण होता है। निराला लिखते हैं:–

"करना होगा यह तिमिर पार,
देखना सत्य का मिहिर द्वार

बहना जीवन के प्रखर ज्वार में निश्चय।"

निराला और ब्राउनिंग ज्यों ज्यों जीवन-पथ पर अग्रसर होते हैं, उनका मन ऊर्ध्वगामी होता चलता है मानो जीवन की श्रांति को वहन करते करते उनका बोझ बहुत हलका हो गया है और भावनाओं के तीव्र यातायात से उनका सम्मोहक सपना टूट गया है।

"मैं अकेला,
देखता हूं, आ रही,
मेरे दिवस की सान्ध्य बेला।"

कभी वे कल्पना के यान पर चढ़ कर अंतरिक्ष में विहार करते हैं तो कभी कठोर दार्शनिक की भांति जीवन के मर्म में पैठने का अथक प्रयास। कभी अपने सुमधुर, दिव्य स्वरों से वे अंतर के तार झनझना देते हैं तो कभी अपनी सद्प्रेरणाओं से शाश्वत सत्य का मार्ग सुझा देते हैं। उन्हें सौन्दर्य-स्रोत में चेतन-स्वरूप का दर्शन होता है और वे सीम में निस्सीम तया विशेष में निर्विशेष का आभास पाते हैं।

तुम हो अखिल विश्व में,
या यह अखिल विश्व तुम में,
अथक अखिल विश्व तुम एक,
यद्यपि देख रहा हूं तुममें भेद अनेक?
विन्दु! विश्व के तुम कारण हो
या यह विश्व तुम्हारा कारण?
कार्य पंच भूतात्मक तुम हो,
या कि तुम्हारे कार्य भूतगण?
"पाया हाय न अब तक इसका भेद।
सुलझी नहीं मेरी, कुछ मिटा न खेद।"

जीवन-दर्शन

निराला और ब्राउनिंग का जीवन परिस्थितियों की शृंखला में आबद्ध हो कर भी दुःख-सुख की परिधि से परे है। वे सामाजिक-मर्यादाओं में रह कर भी उन से बहुत ऊपर उठ गये हैं। उन्होंने असीमता का आह्वान किया है और क्षुद्र कामनाओं में महानुराग का स्वप्न देखा है। हमें तो पूर्व और पश्चिम के इन महान् कलाकारों के स्वभावों में भी आश्चर्यजनक समानता दृष्टिगत होती है। दोनों ही मानवीय अहं और वैयक्तिक-स्वार्थ की पराजय के प्रतीक हैं और दोनों ही वहिर्द्वन्द्व और अंतर्द्वंद्व से आंशिक मुक्ति पा चुके हैं। निराला की निम्नलिखित पंक्तियां

इन दोनों के व्यक्तित्वों की अतल गहराई और व्यापक मनोभूमि की व्यंजना करती हैं और उनके विराट् और बहु-रूप-समन्वित जीवन का दर्शन कराती हैं।

ऐ निर्बंध !—
अंधतम-अगम-अनर्गल—बादल !
ऐ स्वच्छन्द !—
मंद-चंचल-समीर-रथ पर उच्छृंखल !
ऐ उद्दाम !
अपार कामनाओं के प्राण !
बाधा रहित विराट् ।
ऐ विप्लव के प्लावन !
सावन-घोर-गगन के
ऐ सम्राट् !

शैली और पन्त
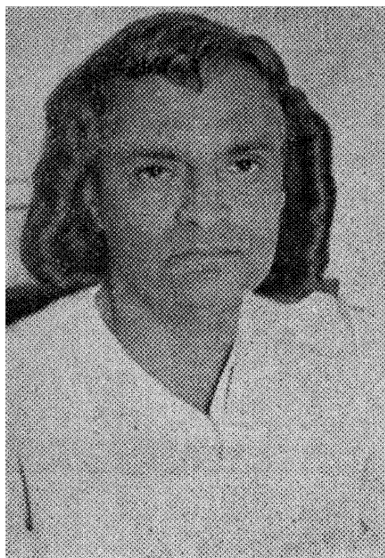
श्री सुमित्रानंदन पंत

जन्म—विक्रम संवत् १९५८

पर्सी बिसे शेली

जन्म—ईसवी सन् १७९२

मृत्यु—ईसवी सन् १८२२

"मनुष्यों द्वारा परित्यक्त, शून्य, रहस्यमय, अज्ञात गुम्बज में अनजानी लटकी हुई निःशब्द, गतिहीन और चिर-विस्मृत वीणा की भांति मेरी हृदय-वीणा के मूक स्वरों में ओ पिता ! अपना दिव्य प्रकम्पन भर दो, जिससे ऐसी अपूर्व रागिनियां बज उठें, जो सृष्टि के अणु-परमाणु को झंकृत कर दें ; जो बन, समुद्र और जीवित प्राणियों को बेसुध और तन्मय बना दें ; जो नर्त्तन करती हुई संगीतात्मक ध्वनियों की प्रत्येक धड़कन पर चुपके चुपके पद-प्रहार करके दूर ठेल दें और मनुष्य की गहराइयों में पैठ उसके अन्तर के गूढ़ तत्त्वों का रहस्योद्घाटन कर दें।" (शेली)

अनन्त के अज्ञात स्वप्नलोक की एकांत-साधना में लीन शेली और पंत की अतृप्त, तृषित दृष्टि लहराते हुये जीवन सागर में भावमग्न हो उन्मन लहरियों से टकराती और मदमाती क्रीड़ा करती हुई ससीमता से उठ कर असीमता के सूक्ष्म किन्तु अटल रहस्य का भेद जानने को सदैव उत्सुक है। नश्वर जगती के दो अनश्वर पुष्प एक दूसरे का हाथ पकड़े और मुस्कराते हुये मानों शून्यता के बितान से निकल कर न जाने आवेग का एक कैसा भीना उच्छ्वास दिग्दिगन्त तक बिखर जाते हैं और तत्क्षण वृक्षों की दूर तक फैली हुई सघन छाया और तन्द्रिल अधखिली कलियों से टकरा कर गूंज उठती है एक मादक मर्मर ध्वनि, जो विश्व की अलस पलकों में स्वप्न छाया-सी भर लौट जाती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन दोनों कवियों की रूप-सुधा-अनुरंजित नेत्रों की मदिर शिथिलता में अंतर्विश्व का

अनुराग छिटका पड़ रहा है और उनकी अंतस्तल की गहराइयों में आनन्द की शीतल, रसमयी धारा प्रवाहित हो रही है। प्रकृति के अंचल में जब उनका औत्सुक्य जाग्रत हो जाता है और उनकी मूक भावना हृत्तन्त्री के विशृंखल तारों से झनझनाती अवर्णनीय वेदना-सम्भूत रागिनियों का उद्रेक करती है, जब प्यार का पागल उन्माद उनमें कोमल सिहरन पैदा कर देता है और अज्ञात प्रिय की आंखें अपना समस्त रस उनकी आंखों में उड़ेल झांकती हैं, जब मन कल्पना के पंखों पर उड़ कर अंतरिक्ष में विचरण करता है और उन्माद भावुकता से समरस हो कर हृदय को मथने लगता है, तब भाव-वारिधि में न जाने कितनी चपल-लहरियां उठती हैं और गिरती हैं और आशा-निराशा में डूबती-उतराती मोहक-व्यंजनायें उनकी अमूर्त्त भावना को साकार बना जाती हैं। शेली की 'ओसकण' पर लिखी निम्नलिखित पंक्तियों में इन दोनों की उदात्त अंतश्चेतना और हृदय के स्पंदन का प्रत्युत्तर मिलता है।

"क्षुद्र ओसकण कुहरे में सूक्ष्माकार हो आकाश के विशाल, नील वक्ष पर इतस्ततः चक्कर काटता है। मध्यान्ह को पार कर सूर्य की अन्तिम रश्मि पर तिरकर वह ज्योतित-कण स्फुलिंगवत् अमिट रूप से स्थित हो जाता है।"

ओसकण की ही भांति शेली और पंत की अनुभूति ऊर्ध्वगामी और उच्च मनोलोक में सुस्थिर है। इन दोनों की कृतियों में प्रेम और यौवन की मादक स्मृतियां इतनी सत्यता के साथ व्यक्त हुई हैं और उनका अंतर्प्रवाह भी इतना स्वच्छंद एवं निर्मुक्त है कि नैतिक-बंधन का क्षीण सूत्र उन्हें बांध रख सकने में असमर्थ है। उनके काव्य में स्थान स्थान पर हास-अश्रु की स्रोतस्विनी झरझर बहती दिखाई पड़ती है, कविता की एक एक कड़ी हृदय-रस से डूब कर निकलती है और आशा-निराशा की धूप-छाया खिलती-मुंदती नज़र आती है। कभी जब मधुर मधुर भावनाओं का खुमार उनकी तबीयत पर छा जाता है और अव्यक्त प्यार के बोझ से भीतर ही भीतर उनका दम घुटने सा लगता है तो बाह्य-लोकाचार की विभाजक रेखायें मिट जाती हैं और भिन्नता अभिन्नता में तथा अनैक्यता एकता में परिवर्तित हो जाती है। विहंगिनी के कल-कण्ठ से फूटी गीतियों की भांति उनकी स्वर-लहरी भी शब्दों के स्पर्श से झूम झूम कर उथल-पुथल मचा देती है और क्षणिक, तीव्र मनोवेग समस्त अन्तर्वाह्य को एक साथ झंकृत कर जाते हैं। शेली के मनोवेगों का विस्फोट भयंकर है, पंत में अपेक्षाकृत गम्भीरता और भाव-सघनता है। शेली के अंतस में भावनाओं की प्रचण्ड आंधी सी उठती है, जो किसी प्रेरणा के भार से दब कर एक साथ गीतों में फूट पड़ती है—पंत का आवेश कल्पना की मधुर थपकियों में

बिखर जाता है और उनके भावों की गति भाषा की गति के साथ समरस होकर आगे बढ़ती है। शेली में धुआंधार अप्रतिहत वेग है, पंत में अपूर्व धारा प्रवाह है। शेली बाह्य-सौन्दर्य पर मुग्ध है, पंत आभ्यंतरिक सौन्दर्य के संवेदनशील द्रष्टा हैं। शेली के हृदय में सृजन की स्फूर्ति और स्वप्न-निर्माण का वैभव है, पंत में आध्यात्मिक चेतना और वस्तु-सत्य के समन्वय की जागृति। एक की दृष्टि आकाश की ओर एक-टक निहार रही है, दूसरे की नीचे-ऊपर के सूक्ष्म-सत्यों को जानने को सतत उत्सुक। एक में भौतिकता का परिष्कार करने की प्रवृत्ति है, दूसरे में चिरंतन समाधान की आकांक्षा। किन्तु दोनों ही कल्पना-लोक के स्वच्छन्द बिहारी हैं और मनचाही नवीन सृष्टि की रूप-रेखायें अंकित करने में अति पटु हैं। दोनों की कृतियां रस-भावना की सुन्दर सरसी है और प्रेम-वेदनाओं की डाली में दोनों मानों कोमल भावना-कलियों का संचय कर रहे हैं। उनके हृदय-कोष से निस्सृत स्निग्ध, रसीला मधु-गुंजन अनंत रागिनी बजा रहा है और जगती के अचिन्त्य स्वरों में दिव्य प्रकम्पन भर रहा है।

धूल की ढेरी में अनजान
छिपे हैं मेरे मधुमय गान।
कुटिल कांटे हैं कहीं कठोर,
जटिल तरुजाल है किसी ओर,
सुमन दल चुन चुन कर निशि भोर
खोजना है अजान वह छोर।"

प्रिया से साक्षात्कार

मदमाते यौवन के कठिन, एकाकी डगर में शेली और पंत का नन्हा सा मन-पंछी फुदक फुदक कर चहक मचाता है और प्रणय की मदिरा-सिक्त प्याली कोमल कर में लिये सूनी सांझ की बेला में अर्द्ध-उन्मीलित नयनों से दूर क्षितिज के पार अपनी अंतर्व्यथा को साकार देखता रह जाता है। जीवन की शून्यता उन्हें अखरने लगती है और मादक क्षणों में एकाकी यौवन उन पर भार-सा बन लद जाता है।

"अविरत इच्छा ही में नर्त्तन,
करते अबाध रवि, शशि, उडुगण,
दुस्तर आकांक्षा का बंधन !
रे उडु, क्या जलते प्राण विकल,

क्या नीरव, नीरव नयन सजल,
जीवन निसंग रे व्यर्थ-विफल !
एकाकीपन का अंधकार
दुस्सह है इसका मूक-भार
इसके विषाद का रे न पार।"

शेली और पंत प्रेम-पथ के पथिक हैं। उनकी थकी थकी सी अधखुली पलकें निद्राहीन, निर्निमेष क्षितिज की धूमिलता में अपने चारों ओर स्वर्णिम-कल्पना का ताना-बाना बुन कर किसी अल्हड़, नवयौवना चिर सुन्दरी का अनुसंधान करते हैं और उसकी खोज में भटकते भटकते कभी अपनी ही भावनाओं के बीहड़ अरण्य में भटक जाते हैं। उनके पैर थक जाते हैं और उनका मानसिक संतुलन भी खो जाता है, किन्तु इस शून्यता में उषा के सौन्दर्य से मिलता-जुलता एक हल्का सा गुलाबी प्रकाश उनके प्राणों के काले क्षितिज पर छा जाता है और किसी अज्ञात की चरण-ध्वनि उनके विह्वल हृदय को उद्भ्रांत बना जाती है। जब दूर—बहुत दूर श्वेत बादलों के छोटे छोटे टुकड़े हवा के साथ तैरते नज़र आते हैं और उनकी आंखों के लाल डोरों में प्यार की अरुणिमा बिखेर जाते हैं, तब हृदय के एकांत-कोण में प्रणय की रसभरी, मधुर बातें विराट् बन कर छा जाती हैं और तभी सहसा अंतस्तल की सघन गहराइयों में आशा-किरण की ज्योति छिटकाती, मुग्ध गति से रुनझुन पायलों को झनकारती किसी रूपसी बाला का सजीव चित्र सौन्दर्य का प्रकाश और हृदय की मिठास लिये उनके मन-मन्दिर में पैठ जाता है। घुंघराले बाल, आसव-सिक्त मदमाती आंखें, यौवन के उभार से गदराया हुआ शरीर, विहंसता मुखमंडल, स्वर और चाल में अपूर्व माधुर्य तथा कोमलता के साथ साथ एक अजीब अल्हड़पन को देख कर वे अवाक् खड़े रह जाते हैं और दृश्य-जगत् के सौन्दर्य के साथ उसका सौन्दर्य एकरस और एकाकार सा दीख पड़ता है। मंद वातायन रूपसी बाला के सुनील अंचल को सहसा लहरा देता है, जिसमें टंके हुये मोती तारक-दल से धुंधले प्रकाश में चमक उठते हैं और उस सदेह मूर्च्छना की रूप-राशि को तस्तत: विखेर जाते हैं। शेली की निम्नलिखित कविता में प्रेयसी का कैसा सजीव अंकन हुआ है।

"देखो, वह खड़ी हुई कैसी लग रही है, मानों प्रेम, प्रकाश, सौन्दर्य और अलौकिक तत्वों से निर्मित मानवाकार हो। उसमें गति है, वह सचेतन और सप्राण है, मृत नहीं। वह मानों चिरन्तन सत्ता की मूर्त्तिमान् प्रतीक है, किसी स्वर्णिम-स्वप्न की छाया है,

अदृश्य लोक की सुषमा है, प्रेम-शशि की स्निग्ध निर्मल आभा है, जिसके संकेत मात्र से निर्जीव प्राणों में भी जीवन लहरा उठता है। वह प्रभात, बसंत और यौवन की प्रतिमा है और स्वप्नलोक की मधुर झंकार।"

पंत की 'भावी पत्नी के प्रति' कविता में उनकी प्रियतमा का भी ऐसा ही भाव-चित्र है।

"मृदूर्मिल-सरसी में सुकुमार
अधोमुख अरुण-सरोज समान,
मुग्ध कवि के उर के छू तार
प्रणय का सा नव-गान;
तुम्हारे शैशव में, सोभार,
पा रहा होगा यौवन प्राण;
स्वप्न-सा, विस्मय-सा अम्लान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !"

इन कवियों की प्रेयसियों की रूप-राशि अखिल विश्व में बिखरी हुई है और उनके नेत्रों में तीव्र मादकता और अनन्त स्नेह-कोष छलका पड़ रहा है। लजीली पलकों पर बिखरी अलकों के साथ होड़ करती हुई कोमल आरक्त कपोलों की अरुणिमा प्रकृति के तार-तार में मुखरित हो रही है और उनकी वाणी का अक्षत माधुर्य अणु-परमाणु में एक दिव्य उद्वेलन और नवल प्रकम्पन भर रहा है। प्रेयसी की सौन्दर्य-दीप्ति शनैः शनैः प्रणयियों की उन्मद भावनाओं को उस अनन्त ज्योति की ओर अग्रसर करती है, जहां स्थूल और सूक्ष्म का भेद मिट जाता है, जहां चिर-वियोग में आकुल प्राण किसी अज्ञात से मिलने के लिये तड़फड़ा उठते हैं और जहां विश्व कवि टैगोर के स्वर में स्वर मिला कर उनकी अंतश्चेतना गूंज उठती है, "सीमे सीमे माझे असीम तुम्हीं, बाजाओ आपोन सुर।" वस्तुतः इन कवियों को सृष्टि का प्रत्येक तत्त्व प्रेयसी की सौन्दर्य-सुषमा से समरस दीख पड़ता है।

"मुकुल-मधुपों का मृदु मधुमास,
स्वर्ण, सुख, श्री सौरभ का सार,
मनोभावों का मधुर-विलास,
विश्व सुषमा ही का संसार
दृगों में छा जाता सोल्लास
व्योमबाला का शरदाकाश।"

प्रणय की भावुक कल्पना जब अत्यन्त उत्तेजित हो जाती है और कवियों की सूक्ष्म-बुद्धि हृदय की तीव्रानुभूति के साथ मिल कर सजीव हो उठती है तो प्रेयसियों का बिखरा रूप अत्यन्त व्यापक होकर प्राकृतिक चित्रों में रम जाता है।

"आज उन्मद मधु-प्रात
गगन के इन्दीवर से नील
झर रही स्वर्ण-मरन्द समान
तुम्हारे शयन शिथिल सरसिज उन्मील
छलकता ज्यों मदिरालज, प्राण !"

अंततः उनकी सारग्राहिणी भावुकता जब पराकाष्ठा को पहुंच जाती है तो प्रत्येक छोटी से छोटी, सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु भी उन्हें प्रेयसी का मूर्त्त रूप दीख पड़ती है, जिसकी व्यापकता में उनका मन-पंछी खो जाता है।

"तुम्हारे नयनों का आकाश
सजल, श्यामल, अकूल आकाश !
गूढ़, नीरव गंभीर प्रसार;
बसाएगा कैसे संसार
प्राण ! इनमें अपना संसार !
न इनका ओर छोर रे पार,
खो गया वह नव-पथिक अजान।"

समग्र सृष्टि सौन्दर्य की दिव्य प्रकाश-धारा में स्नान करती हुई सी प्रतीत होती है। उषा निश्चल और निस्तब्ध प्रेयसी की किंचित् सी झांकी पाने को उत्सुक है और सन्ध्या उन्मनी-सी सूने नभ के आंगन में उसी की प्रतीक्षा में चक्कर काट रही है।

"कब से विलोकती तुमको
ऊषा आ वातायन से ?
सन्ध्या उदास फिर जाती
सूने नभ के आंगन से !"

शेली की भी आह्लादजनक अनुभूति जब हृदय में अंगड़ाइयां लेती उभर पड़ती है तो उसके नयन-कोरों में प्राणप्रिया की अंतरतम झलक बिजली सी कौंध जाती है। उसे ऐसा प्रतीत होता है मानों वह अद्भुत शृंगार किये अचिंत्य आभा

बिखेरती हुई पृथ्वीलोक पर उतर रही है और समस्त वातावरण के अंचल में सम्मोहन और अपने अनुराग की अरुणिमा भर रही है। निम्न पंक्तियां देखिये :—

"समस्त वातावरण मादक मृदुता से ओतप्रोत है। पुष्पों की गन्ध प्रकृति के तार-तार में सुगन्ध भर रही है और अस्पृश्य एवं अदृश्य आद्रता का कुहरा सदृश हल्का झीनापन पृथ्वी के वक्ष पर तैर रहा है, जो अलसायी पलकों पर अपनी तन्द्रिलता का साया बिखेर जाता है। श्वेत और गुलाबी पुष्पों की पंखुड़ियां उभर-उभर कर बाहर झांक रही हैं और मस्तिष्क में तीक्ष्ण गंध भर रही है। एक अजीब मदहोशी और मधुर कसक बाह्य-चेतना को मूर्च्छित-सा बना जाती है और प्रत्येक ध्वनि, प्रत्येक संकेत, प्रत्येक रश्मि, प्रत्येक सुगन्धित बयार का झोंका चिरंतन संगीत के साथ समरस हो कर थिरक रहा है। इस बासन्ती मधुरिमा में अपनी समस्त यौवन-सुषमा लिये कोई प्रणय की भव्य-साधना सी चुपचाप सकुची और लजायी हुई खड़ी है—वह किसी स्वप्न की अव्यक्त आकार और मधु-बात की मूक प्रतिध्वनि-सी प्रतीत होती है।"

जगत् की अनन्त सौन्दर्य-श्री के मध्य विहंसती, इठलाती, यौवन-विलास का भार और माधुरी की छलना लिये किसी सजीली सुन्दरी की रूप-माधुरी इन कवियों को मतवाला बना जाती है और राका-रजत-परी-सी उनकी प्रणय-भावनाओं को इन्द्रधनुषी सप्तरंगी आभा में भर बेसुध बना जाती है।

"अरुण अधरों की पल्लव प्रात,
मोतियों का हिलता हिम हास;
इन्द्रधनुषी पट से ढंक गात
बाल-विद्युत् का पावस लास,
हृदय में खिल उठता तत्काल
अधखिले अंगों का मधुमास
तुम्हारी छबि का कर अनुमान
प्रिये, प्राणों की प्राण !"

इसी प्रकार प्रेयसी के शत शत प्रतीक, उसके मधुर अधरों पर बिखरा हास, श्यामल कुन्तलपाश की बिखरी रेखायें, यौवन—भार से विकम्पित वक्षःस्थल, क्षीण कटि-प्रदेश में झलमलाता रेशमी परिधान और मृग-शावक सदृश नयनों में मादक मधुरिमा लिये वह सुहाग की मधुमयी रात्रि में मंथर गति से नीची पलकें

किये चुपचाप सशंकित मन प्रियतम के पास आती है और कवि की सूक्ष्म कल्पना के स्पर्श से सजीव रूप धारण कर लेती है ।

"अरे यह प्रथम मिलन अज्ञात !
विकम्पित उर मृदु, पुलकित गात,
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप,
जड़ित-पद नमित पलक दृग्-पात;
पास जब आ न सकोगी प्राण !
मधुरता में सी मरी अजान
लाज की छुई मुई सी म्लान
प्रिये, प्राणों की प्राण !"

कवि तन्वंगी के स्पर्श से आत्म-विभोर हो जाता है और मन की मलिनता को अपहरण करने वाली पावन तरंगों में स्नान करता है ।

"तुम्हारे छूने में था प्राण !
संग में पावन गंगा स्नान !
तुम्हारी वाणी में कल्याणि !
त्रिवेणी की लहरों का गान ।"

शेली के मन-मन्दिर में विस्थापित प्रेयसी की मानसिक प्रतिमा भी अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक है । 'एलास्टर; अथवा, दि स्पिरिट आफ सालिट्यूड'(Alastor or, The Spirit of Solitude) नामक कविता में कवि की कल्पना भ्रमण करती हुई जब काश्मीर की घाटी में विचरण करती है तो एक प्राकृतिक निकुंज की शोभा को देख ठिठकी रह जाती है और एक छोटे से नाले के समीप लेट कर प्राणप्रिया की मधुर झांकी का दर्शन कर उल्लसित हो उठती है । उपर्युक्त कविता की कुछ पंक्तियों का भावानुवाद यहां दिया जाता है :—

"काश्मीर की दूर, सूनी घाटी में, जहां सुगन्धित पौधों और कोमल वृक्ष-वृन्तों ने खोखली चट्टानों के निम्न भाग को आवेष्ठित कर लिया था—एक प्राकृतिक निकुंज में स्वच्छ जल से परिपूरित नाले के समीप कवि ने अपने परिश्रांत अंगों को फैला दिया । अर्द्ध-निद्रा की अचेतन-स्थिति में उसके मानस-क्षितिज पर मधुमयी आशाओं का ऐसा कल्पनातीत ज्योतिर्पुंज मानवाकार आ समुपस्थित हो गया, जिसने उसके कपोलों पर लज्जा की लाली बिखेर दी । उसे स्वप्न हुआ मानों

एक अवगुंठनमयी नारी उसके समीप बैठी हुई अत्यन्त गम्भीर और धीमे स्वर में उससे वार्त्तालाप कर रही है। उसकी वाणी उसके अपने अंतस्तल की अंतर्ध्वनि से मिलती-जुलती थी, जो प्रशांत विचार-धारा की अतल गहराई में स्पष्ट सुन पड़ रही थी और उसकी वाणी से निस्सृत संगीतात्मक ध्वनि वायु अथवा जल-प्रपात की मर्मर-ध्वनि के सदृश लहरा रही थी तथा कवि की सूक्ष्म-चेतना को तरंगित-आभा और विविध-रंगों के ताने-बाने में उलझाकर जड़वत् मूक बना गई थी। ज्ञान, सत्य और गुणों की वह साक्षात् प्रतिमा थी और दिव्य-स्वातन्त्र्य से उद्भूत उदात्त-आशाओं को संचरित कर रही थी। वह अत्यन्त प्रिय भावनाओं और कविता को जगा रही थी, यही नहीं प्रत्युत् वह स्वयं भी एक कवि थी।"

शेली की सूक्ष्म भावना शनैः शनैः सजीव हो उठती है और बहुत ही मनोरम, चित्रमय स्थूल रूप धारण कर लेती है .

"सहसा वह उठ खड़ी हुई—मानों अपनी ही आकुल भावनाओं के असह्य भार को वह वहन करने में असमर्थ थी। आवाज़ से चौंक कर वह मुड़ा और उसने अपने आसपास फैले आलोक मे हवा से भी झीने आवरण के मध्य से झांकते हुये उसके लावण्यमय अंगों को देखा। उसकी फैली हुई बाहुयें निरावरण थीं, उसकी श्यामल अलकावलियां रात्रि की नीरवता में सिहर सी रही थीं, उसकी लज्जावनत पलकें, उसके अधखुले मुरझाये ओष्ठ तीव्र औत्सुक्य से कांप रहे थे। कवि का मजबूत दिल भी डोल उठा और वह प्रेम की उमंग में विभोर हो गया। उसने अपने प्रकम्पित अंगों को सुस्थिर किया, तीव्र श्वास-प्रश्वास को शांत किया और उसके धड़कते वक्ष को अपने में समाहित करने के लिये उसने अपनी भुजायें फैला दीं। वह ठिठक कर पीछे हट गई, किन्तु प्रेमोन्माद की विचित्रानुभूति का लोभ वह अधिक समय तक संवरण न कर सकी। एक अस्पष्ट सी आह और उन्मत्त अदा के साथ वह उसकी सुदृढ़ बाहुओं में ढुलक पड़ी और तभी कवि की उनींदी आंखों में धुंध सा छा गया। रात्रि की कालिमा उस सुन्दर प्रतिमा को निगल गई और निद्रा ने उसके मस्तिष्क की शून्यता को आच्छन्न कर लिया।"

'ग्रन्थि और एपिपर्स्किडियॉन' (Epipsychidion)

उपर्युक्त कृतियां इन दोनों कवियों के व्यक्तिगत प्रेम, वेदना और आंतरिक कसक के हाहाकार की झांकी हैं। जब उनके भावी-जीवन का रंगीन-स्वप्न ध्वस्त हो गया और समस्त आशा-आकांक्षाओं पर पानी फिर गया तो उनका अहर्निश

तड़पता हृदय करुण-सत्य की अभिव्यक्ति की भावना से प्रेरित होकर इन प्रणय-ग्रन्थों मे उमड़ पड़ा। शेली के जीवन में प्रथम दाम्पत्य–प्रेम की असफलता और अतृप्त प्रेम की प्यास कभी तृप्त न हो पाई। उसका समस्त जीवन प्रणय की मादक अनुभूतियों से ओतप्रोत है। तारुण्य की मधु बेला में, जब वह केवल उन्नीस वर्ष का था तो एक हेरियट वेस्टब्रुक नाम की स्कूल में पढ़ने वाली सोलह वर्षीया बालिका से उसका परिचय हुआ। वह शेली के आकर्षक व्यक्तित्त्व पर इतनी मुग्ध हो उठी कि उसने उसे लिखा कि वह उसके बिना जीवित न रह सकेगी। वे दोनों प्रच्छन्न रूप से एडिनबरा चले गये और विवाह-सूत्र में बंध गये। किन्तु उनका यह प्रेम दो वर्षों से अधिक न टिक सका और वैवाहिक जीवन का दुःखमय अन्त हुआ। हेरियट ने दुःखावेश में अपनी आत्महत्या कर ली और इस बीच उससे उत्पन्न अपनी दो संतति पर भी शेली अधिकार खो बैठा। उसकी द्वितीय पत्नी मेरी गोडविन थी, जो स्वयं साहित्यिक अभिरुचि की विदुषी महिला थी।

इसके पश्चात् शेली के जीवन में एक और महत्त्वपूर्ण प्रणय-घटना घटी, जिसकी याद वह जीवन-पर्यन्त न भुला सका। एमिली विवियानी नाम की एक अत्यन्त सुकोमल सुकुमारी ने उसके जीवन में प्रवेश किया। उसके कुंचित केश, लजीली चितवन, शरीर के अंग-प्रत्यंग और यौवन-विलास में कुछ ऐसा अद्भुत आकर्षण था, जो ग्रीक-सौन्दर्य से मिलता-जुलता था और देखने वालों के हृदय में एक अजीब नशा और मधुर गुदगुदी उत्पन्न करता था। एमिली ने अपने पिता द्वारा अभिप्रेत वर से विवाह करना अस्वीकार कर दिया था, अतएव उसने रुष्ट होकर उसे ऐसे स्थान में रख दिया था, जहां से उसे बाहर आने-जाने की सख़्त मनाही थी। शेली को यह सब ज्ञात होने पर अत्यन्त दुःख हुआ और उसने उसे इस घृणित कारा से मुक्त करने की भरसक चेष्टा की। इसी बीच उन दोनों में कसमसाता, आवेशपूर्ण, तीव्र आकर्षण जाग्रत हुआ, जो 'एपिपस्किडियॉन' (आत्मा की कविता) के अमर शब्दों में अनश्वर रूप से स्थापित हो गया। प्रेम के मादक क्षणों में कवि को ऐसा भान होता है मानों वह प्रेम के पंखों पर चढ़ कर किसी दूसरे अज्ञात लोक में उड़ा चला जा रहा है, जो विश्व के कोलाहल से अत्यन्त परे है।

"एमिली!
एक जहाज द्वीप की ओर बढ़ा जा रहा है।
हवा पर्वत-शृंग को स्पर्श करती हुई बह रही है।

समुद्र के विशाल, नील वक्ष पर सीधा मार्ग है।
किसी भी जहाज की धुरी ने आज तक इस मार्ग को चीर कर पार नहीं किया।
शांत द्वीप के इर्द गिर्द समुद्र में घोंसला बनाने वाली चिड़ियायें उड़ती रहती हैं।
और विश्वासघाती समुद्र की लहरें वहां तक पहुंच नहीं पातीं।
वहां के बसने वाले खुशदिल मल्लाह भी वीर और साहसी हैं।
मेरी आत्म-सखि ! बोल, क्या तू मेरे साथ वहां तक चलेगी ?
हमारी नाव उस समुद्री पक्षी की भांति है, जिसका घोंसला दूर प्राची दिशा में नन्दन कानन में स्थित है।
आकाश के नीचे विचित्र प्रकार से लटका हुआ यह द्वीप स्वर्ग का भग्नावशेष सा प्रतीत होता है।
इजियन–नदी का नीला जल परिवर्तनशील ध्वनियों से भरा झलमलाता हुआ झाग सहित उसे स्पर्श कर रहा है।"

कवि चाहता है कि इस एकांत द्वीप में अपनी प्रेयसी के साथ वह निश्चिंत होकर रहे, जिससे समस्त दुःख-क्लेश मिट जायें और उसके हृदय-दीपक को वह सदैव प्रकाशित करती रहे।

"किन्तु सब से अधिक विलक्षण बात यह है कि इस निर्जन प्रदेश में एक सूना घर है। यह कब बनाया गया और किसके द्वारा बनाया गया इस बात को कोई द्वीप-निवासी नहीं जानता। यह कोई सुदृढ़ इमारत नहीं है, यद्यपि यह अपनी ऊंचाई से सारे जंगल को आच्छन्न किये हुये है। यह आमोद-गृह है और किसी बुद्धिमान् व दयालु समुद्री-राजा द्वारा, जबकि पाप का आविष्कार भी नहीं हुआ था, बनवाया गया था। उस प्राचीन समय का यह एक भव्य-स्मारक है। यह द्वीप और घर मेरा है और मैंने इस एकांत स्थल की रानी बनाने का तुम्हें निश्चय किया है। वहां हम प्रेम की बातें करेंगे, जबकि हमारे अन्तर्मन की संगीत-धारा इतनी मादक और मधुर गुदगुदी उत्पन्न करने वाली होगी, जो वाणी द्वारा व्यक्त न हो सकेगी। हम कुछ बोल न सकेंगे, हमारी भावभंगी और चेष्टायें हमारे मनोभावों को प्रकट करने में असमर्थ होंगे और शब्द निस्सृत होकर भीतर ही भीतर घुट कर रम जायेंगे। हमारे हृदय साथ-साथ धड़केंगे और हमारे अधर मूक संभाषण का अभिनय करते हुये हमारी जलती आत्मा को तिरोहित कर लेंगे। हमारी नसों में जो सिहरन है, हमारे दिलों में जो गुबार है और हमारे अन्तरतम हृदय-प्रदेश से जो वासनात्मक स्रोत निस्सृत हो रहे हैं—वे प्रेम की पावन-धारा में उसी प्रकार उमड़ बह चलेंगे,

जैसे सूर्य की रश्मियों में झलमलाते पर्वत-निर्झर बह उठते हैं। हम दोनों एक होंगे, एक शरीर, एक प्राण। दो इच्छा-शक्तियों के मध्य एक प्रेरणा। दो तमसाच्छन्न मस्तिष्कों के बीच एक संकल्प, एक अभिलाषा, एक जीवन, एक मृत्यु, एक स्वर्ग, एक नरक। हम साथ साथ अमर होंगे और साथ साथ ध्वस्त।"

अन्त में सहसा जब कवि को वास्तविकता का बोध होता है तो उसका हृदयाकाश निराशा के कुहरे से घिर कर अंधकारमय हो जाता है और एक दर्दीली टीस उसके हृदय से निकल पड़ती है।

"ओफ्! मेरा दुर्भाग्य!
वे नभचारी शब्द जिनके पंखों पर बैठकर मैं प्रेम के उच्च मनोलोक में भ्रमण कर रहा था, वे अग्नि की प्रचण्ड शिखायें और लौह-शृंखला में बन कर मुझे जकड़े हुए हैं। मैं हांफ रहा हूं, नीचे धंसा जा रहा हूं, कांप रहा हूं और नष्ट हो रहा हूं।"

पन्त द्वारा रचित 'ग्रन्थि' भी कवि की व्यक्तिगत प्रणय-वेदना की सहज उद्भूति है, जिसमें विफल प्रणयोन्माद और प्राणों की अजान तड़पन छिपी है। कवि का हृदय दुःख-दग्ध और चिंताओं से जर्जर है, तो भी आंतरिक-पीड़ा ज्वलित आभा बन कर फूट पड़ती है। 'ग्रन्थि' का कथानक बहुत छोटा है। संध्या समय कवि की नौका एक झील में डूब जाती है और कुछ क्षण के लिये वह निश्चेष्ट पड़ा रहता है। किन्तु पुनः सजग होते ही वह देखता है कि एक सुन्दरी युवती उसका सिर अपनी गोद में रक्खे हुए उसे एकटक बैठी निहार रही है। दोनों के हृदय प्यार, ममता और मूक संवेदना से भर जाते हैं, परस्पर आंखें चार होती है और उनके नयनों के दर्पण में स्नेह-प्रतिबिंब उभर आते हैं। कवि जिस अनुकूल जीवन-संगिनी का अन्वेषण कर रहा था वह उसे सहज ही मिल जाती है। किन्तु समाज के फौलादी-पंजे उसे अपने प्रेम-व्यापार में सफल नहीं होने देते। कवि उपेक्षित रह जाता है और उसकी प्रणयिनी का ग्रन्थिबंधन किसी दूसरे युवक से कर दिया जाता है। प्रथम परिचय के समय दोनों का दृष्टि—विनिमय कितना सजीव है।

"एक पल; मेरे प्रिया के दृग्-पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे
चपलता ने इस विकम्पित पुलक से
दृढ़ किया मानों प्रणय सम्बन्ध था।"

आगे की पंक्तियों में उसके हृदय के उद्भ्रान्त–भाव छहर छहर कर बाहर प्रस्फुटित होते हैं। प्रिया के स्पर्श से उसके अंग-प्रत्यंग में एक अजीव पुलक और मधुर सिहरन पैदा हो रही है।

"कौन मादक कर मुझे है छू रहा,
प्रिय! तुम्हारी मूकता की आड़ में।"

कवि अपने प्यार और असंयमित भाव-स्रोत को रोक सकने में असमर्थ है। उसके हृदय-कोण में प्रेम की दर्दीली अनुभूति और तीव्र कसक है। निम्नलिखित पंक्तियों में प्रेम की कैसी रम्य-व्यंजना हुई है।

"यह अनोखी रीति है क्या प्रेम की
जो अपांगों से अधिक है देखता
दूर होकर और बढ़ता है, तथा
वारि पीकर पूछता है घर सदा।"

कवि ने अपने अल्प-जीवन काल में ही इतने कष्ट झेले हैं, इतनी तकलीफें उठाई हैं कि उसके प्राण दुःखों की लू में सदैव झुलसते ही रहे। बाल्यावस्था में माता-पिता का वियोग, अविवाहित जीवन, आर्थिक-वैषम्य और साधन-विहीन व्यवस्था होने से उसे लगता है कि उसके भाग्य का लेखा अविराम बहते अश्रुओं से लिखा गया है। 'ग्रन्थि' में कवि ने अपने जीवन पर भी किंचित् प्रकाश डाला है। फिर उसकी वह असफल प्रेम–कहानी अंकित है—जबकि वह सर्वप्रथम प्रेम के पंखों पर बैठ कर ज्योत्स्ना-स्नात स्वप्निल-लोक में उड़ा चला जा रहा था और दुर्भाग्य के क्रूर थपेड़ों ने उसके पंख नोच कर उसे ज़मीन पर गिरा दिया था। अभी तो प्रेम-पौधा पनपा भी न था कि दुर्भाग्य की आंधी ने उसे झकझोर डाला। प्रभात-वेला में जो स्वर्णिम-रश्मि का आलोक उसके जीवन–पट पर बिखर गया था–वह संध्या की धूमिलता में तत्क्षण अदृश्य हो गया।

"प्रात सा जो दृश्य जीवन का नया
था खुला पहिले सुनहले स्पर्श से,
सांझ के मूर्च्छित प्रभा के पत्र पर
करुण-उपसंहार, हा, उसका मिला!"

कवि के हृदय-मंदिर की आराध्यदेवी, जिसे वह भूल से अपनी समझे बैठा था, देखते ही देखते किसी दूसरे की हो गई और सदैव के लिये उसके हृदय में हाहाकार बसा गई।

"हाय, मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रन्थि-बंधन हो गया, वह नवकुसुम
मधुप-सा मेरा हृदय लेकर, किसी——
अन्य मानस का विभूषण हो गया !"

प्रियतमा के वियोग में कवि का हृदय तड़प रहा है, तिलमिला रहा है और उसमें गहरी निराशा व वेदना व्याप्त है। उसे प्रकृति का अणु अणु प्रेम-रस में डूबा हुआ दीख पड़ता है, किन्तु उसका अपना हृदय सूना और निर्जीव है।

"शैवलिनी ! जाओ मिलो तुम सिन्धु से
अनिल आलिंगन करो तुम गगन का,
चन्द्रिके चूमों तरंगों के अधर,
उडुगनों गाओ पवन बीना बजा।
पर हृदय सब भांति तू कंगाल है।

अंत में प्रिया-मिलन की असफलता कैसी मर्मभेदी निराशा का रूप धारण कर लेती है ——देखिये :——

"हा अभय भवितव्यते ! किस प्रलय के
घोर तम से जन्म तेरा है हुआ !
तू सरल कोमल कुसुम दल में कहां
है छिपी रहती कठिन कंटक बनी।

*   *   *   *

स्वर्ण-मृग तेरा पिशाचिनि! हर छका
इष्ट कितनों के हृदय का है अहा !"

कहना न होगा कि 'ग्रन्थि' और 'एपिपस्किडियॉन' दोनों में ही प्रेम की मार्मिक अभिव्यंजना, कला का निखरा रूप, हृदय की अंतरतम अनुभूतियों का अभिनव चित्रण, निराशा, दुःख, आकुल वेदना और हृदय को उन्मत्त बना देने वाली भावना का जाग्रत स्वरूप है। कहीं प्रेम की शीतल धारा प्रवाहित हो रही है तो कहीं हृत्तल से विरहाग्नि की चिनगारियां छिटक छिटक कर बाहर फूट पड़ती हैं। कहीं करुण उच्छ्वास हैं तो कहीं आंसू की बूंदें, कहीं उन्मुक्त-प्रेम की कलकल ध्वनि है तो कहीं आंतरिक-वेदना का करुण-क्रन्दन। दोनों ही प्रणय-ग्रन्थ उत्कृष्ट, चित्रमय-कल्पना से युक्त और परिष्कृत शृंगार-रसज्ञता से ओतप्रोत हैं।

'पल्लव' और 'प्रोमोथियस अनबाउण्ड'

शेली और पन्त के अत्यन्त करुण प्रणयोद्‌गार, जो अटपटे और अल्हड़पने से एक अनिर्वचनीय टीस और विवशता के साथ उनकी प्रारंभिक कृतियों में फूट पड़े

थे—वे 'पल्लव' और 'प्रोमोथियस अनबाउण्ड' में आकर दार्शनिक अंतर्धारा और प्रेम की गहराई में परिणत हो गए। शेली की अब तक की रचनायें 'क्वीन मेब' (Queen Mab), 'एलास्टर' (Alastor) और 'दि रिवोल्ट आफ इस्लाम' (The Revolt of Islam), भावोन्माद, चित्रमयी कल्पना और उद्दीप्त भावुकता से ओतप्रोत थीं। उनमें गंभीर-चिंतन और जीवन के विराट्-चित्र देखने को न मिले थे, किन्तु 'प्रोमोथियस अनबाउण्ड' में कल्पना की उड़ान सूक्ष्मातिसूक्ष्म और अंतस्थ की भावनायें अत्यन्त परिपक्व और गंभीर हो कर मौलिक रूप में प्रकट हुई। ग्रीस देश के कलाकार एचिलस द्वारा जो 'प्रोमोथियस-बाउण्ड' नाटक की रचना हुई थी और उसका दूसरा भाग 'प्रोमोथियस अनबाउण्ड' विस्मृति के गर्त में समा गया था—उस स्थान की पूर्ति शेली का यह काव्य-नाटक करता है, यद्यपि ग्रीक-नाटक से इसका बहुत कम सादृश्य है। इसमें विश्व का अंतरतम संगीत, कल्पना का अद्भुत सृजन और मार्मिक अनुभूतियों का अनुपमेय एकीकरण है। शेली ने लिखा है, "रोम का स्वच्छ, निर्मल नीलाकाश, उल्लासमय वातावरण और वासन्तिक उन्माद, जो मस्तिष्क को बौखला देता है—इस नाट्य-ग्रंथ की प्रेरणा है।" एचिलस के प्रोमोथियस की भांति शेली के नाटक का नायक भी मनुष्य-मात्र का हितैषी होने के कारण पर्वत-शिखर पर ज्यूस देवता द्वारा बन्दी बना लिया जाता है, किन्तु क्रोध के भयंकर विस्फोट और उत्तेजना में वह दहाड़ता है। आसुरी-शक्तियां उसके चारों ओर चक्कर काटती है और उन भावी मानवीय आपत्तियों के दृश्य उसकी दृष्टि के समक्ष उपस्थित करती हैं, जो आगामी युगों में मनुष्य जाति को अवांछित रूप से सहन करने पड़ेंगे। किन्तु शनैः शनैः दैवी-कोप नष्ट हो जाता है और सात्विक-शक्तिया, समुद्र-देवियां और दैव-वाणी उसे धीरज बंधाती है, सारे वातावरण को आह्लाद और औत्सुक्य से भर देती है और उसके चिंतित मन में दिव्य दीप्ति बिखेर जाती है। निम्नलिखित पंक्तियों में जीवन-व्यापी संघर्षो के वात्याचक्र में पड़े हुए प्रोमोथियस के हृदय का अंतर्प्रवाह है।

"ओ पृथ्वी! ओ पर्वत! क्या तुमने मेरे दुःखों को महसूस नहीं किया?

ओ स्वर्ग! ओ सर्वव्यापी सूर्य! मैं तुमसे पूछता हूं कि क्या तुमने मेरी मुसीबतें नहीं देखीं?

ओ समुद्र! जो नित्य ही अपनी शांत अथवा तूफानी छाती पर विस्तृत गगन के प्रसार की हिलती छाया को लिये रहता है क्या तेरी बधिर तरंगों ने मेरी करुण-गाथा नहीं सुनी? आह! मेरे चारों ओर विषाद ही विषाद और दुःख ही दुःख की काली घटायें छायी हुई हैं।"

* * * *

"बर्फ के श्वेत टुकड़े जो स्फटिक की भांति कटकट कर मेरे शरीर पर गिर रहे हैं वे ऐसे लगते हैं जैसे असंख्य भाले मेरे मांस में चुभा दिए गए हों। चमकती जंजीरें मेरी अस्थियों को भेद कर शीताधिक्य से वदन में ऐसी ऐंठ गई हैं जैसे मुझे समूच निगल जायेंगी। भयानक शिकारी-पक्षी, जिनकी चोंच विष से बुझी हुई है, मेरे हृदय को चीर देने को आकुल हैं। वीभत्स और घृणित दृश्य मेरी आंखों में तैरते हुए दिखाई पड़ रहे हैं और किसी दूर देश के पिशाच एकत्रित होकर मेरा उपहास कर रहे हैं। पृथ्वी के गर्त में समाई दानवी शक्तियां मेरे ताजे घावों को नोच नोच कर फाड़ डालने को सन्नद्ध हैं, जबकि विशाल चट्टानें बार बार टकरा कर इतनी भीषण आवाज़ कर रही है जैसे कोई बड़ा भारी तूफान, आंधी या भीषण उल्कापात हुआ हो।"

'प्रोमोथियस अनबाउण्ड' से उद्धृत 'स्पिरिट सांग' (Spirit Song) की कुछ अनुवादित पंक्तियां देखिए।

"प्रेम के स्वप्नों में विभोर मैं कवि के अधरों पर सोती हूं। वह भी भौतिक-सुखों की पर्वाह न करके विचित्र आनन्दानुभूति में रमण करता है। विचारों के अरण्य में जो अजीब अजीब आकृतियां उसे नजर आती है——उन्हें वह सुबह से शाम तक निरखा करता है। झील में सूर्य-बिम्ब झलमलाता है, विकसित माधवी-लता में मधुमक्खियां भिनभिना रही हैं, किन्तु वह कुछ भी नहीं देखता, उसे किसी बात की भी परवाह नहीं है। उसके द्वारा चित्रित पात्र जीवित मनुष्यों से भी अधिक स्वाभाविक हैं और उनमें शाश्वत कल्पना का अमर वैभव है।"

शेली की ही भांति 'वीणा' और 'ग्रन्थि' के कवि पन्त ने भी अपनी इन प्रारम्भिक कृतियों में सावचेत होकर प्रत्येक वस्तु के मर्म में पैठने का प्रयास न किया था। वह अपनी नव-निर्मित सृष्टि और स्वकल्पित अर्थभूमियों की अनेक रूपता में रंग बिरंगे फूलों और मधुमय चित्रों को संश्लिष्ट करने में संलग्न था, उसकी दृष्टि ससीमता में ही जैसे मनोरंजक कलापूर्ण नर्त्तन कर रही थी। किन्तु 'पल्लव' में कवि का भावावेश, अतृप्त तृष्णा और उमंग भरी भावना बहुत कुछ प्रौढ़ और सुसंयत हो कर प्रकट हुई। दृश्य-जगत् के नाना रूपों एवं व्यापारों को वह किंचित् झांक कर नहीं, वरन् दृष्टि फैलाकर देखता है और जीवन-क्षेत्र में सतत अग्रसर होता जाता है। 'उच्छ्वास', 'आंसू', 'परिवर्तन', 'बादल, 'स्वप्न', 'मौन-निमंत्रण' आदि 'पल्लव' की प्रमुख कवितायें हैं। 'छाया' की कुछ पंक्तियां यहां उद्धृत की जाती हैं।

"अहो, कौन हो दमयन्ती-सी
तुम तरु के नीचे सोई,
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि ! नल सा निष्ठुर कोई ?"

'मौन-निमंत्रण' में रहस्यात्मक-भावना और कोमल कल्पना का अवस्थान है ।

"देख वसुधा का यौवन-भार
गूंज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास
न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन ।"

यहां हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि 'पल्लव' और 'प्रोमोथियस अनबाउण्ड' में कथा-साम्य न हो कर इन कवियों की अंतर्मुखी वृत्तियों का साम्य है । दोनों कवि व्यापक चेतनाओं में इतने रम गये हैं और अपने विषय के सौन्दर्य से इतने अभिभूत हो गए हैं कि जीवन के स्थूल पहलू उनकी दृष्टि से ओझल हो गए हैं । प्राकृतिक-तत्वों के साथ क्रीड़ा करते हुए इन दोनों अनासक्त कलाकारों ने सौन्दर्य के पार्थिव रूप को हटाकर उसके दृश्य-आवरण के भीतर छिपी रहने वाली दिव्य-आत्मा का दर्शन किया है । उनकी सूक्ष्म बुद्धि ने वस्तुतल को स्पर्श कर उभार उभार कर दर्शाया है और अपनी अमर लेखनी से हृदय के आलोड़न-विलोड़न और जीवन के मार्मिक मन्थन को प्रकट किया है । 'पल्लव' और 'प्रोमोथियस अनबाउण्ड' विश्व के ग्रन्थ-रत्नों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं ।

प्रकृति चित्रण

इन दोनों कवियों ने प्रकृति के सौन्दर्य का अंकन भी अत्यन्त सधी रेखाओं से किया है । प्रकृति के व्यक्त प्रसार को देखकर दोनों की जिज्ञासा की तृप्ति होती है और जगत् की अनेकरूपता और विभिन्न चेष्टाओं में वे भगवान् की मंगलमयी शक्ति का दर्शन करते हैं । स्वयं पन्त के शब्दों में, "कविता करने की प्रेरणा मुझे सब से पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्माचल प्रदेश को है । कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घंटों एकांत में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था; और कोई अज्ञात आकर्षण, मेरे भीतर, एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुन कर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था । जब कभी मैं आंखें मूंद कर लेटता था, तो वह दृश्य-पट, चुपचाप, मेरी आंखों के सामने घूमा करता था । अब

मैं सोचता हूं कि क्षितिज में सुदूर तक फैली, एक के ऊपर एक उठी, ये हरित नील धूमिल कूर्माचल की छायांकित पर्वत-श्रेणियां, जो अपने शिखरों पर रजत-मुकुट हिमाचल को धारण की हुई हैं, और अपनी ऊंचाई से आकाश की आवाक् नीलिमा को और भी ऊपर उठाई हुई हैं, किसी भी मनुष्य को अपने महान् नीरव संमोहन के आश्चर्य में डुबा कर, कुछ काल के लिये भुला सकती हैं। और यह शायद पर्वत-प्रांत के वातावरण ही का प्रभाव है कि मेरे भीतर विश्व और जीवन के प्रति एक गंभीर आश्चर्य की भावना, पर्वत ही की तरह, निश्चय रूप से, अवस्थित है।"

कहना न होगा कि शेली और पन्त ने कही कहीं तो अपने प्राणों का समस्त रस उड़ेल कर सूखी वस्तुओं का सिंचन किया है, अपनी रंगीन और मधुमयी कल्पना से बेढंगी-वस्तुओं को संवारा-सजाया है और अपनी अन्यतम सृजन-शक्ति से निर्जीव प्राणों में भी जान डाल दी है। निम्नलिखित पंक्तियों में सूर्य का कैसा सजीव चित्रण हुआ है।

"अभी गिरा रवि, ताम्रकलश सा,
गंगा के उस पार
क्लान्त पान्थ, जिह्वा विलोल
जल में रक्ताभ प्रसार।"

पंत प्रकृति-जगत् के एक जाग्रत प्रहरी हैं और हिमगिरिवासी होने के कारण बन, पर्वत, नदी-नाले, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी आदि प्रकृति के खुले क्षेत्र में उनकी कल्पना विचरती है। प्राकृतिक-उपादान उंगली के संकेत से उन्हें अपने पास बुलाते-से ज्ञात होते हैं और चतुर्दिक् वातावरण की मीठी कुहुक उनकी चेतना को विमूर्च्छित सा कर जाती है। कवि आत्मविस्मृत सा विहंगिनी से पूछ बैठता है।

"प्रथम रश्मि का आना रंगिणि ! तूने कैसे पहिचाना ?
कहां कहां हे बाल-विहंगिनि ! पाया तूने यह गाना ?"

कभी वह भ्रमरी से सानुरोध आग्रह करता है—

"सिखा दो ना हे मधुप कुमारि !
मुझे भी अपने मीठे गान !"

कभी कभी छायारूप जगत् में कवि की कल्पना इतनी विभोर हो जाती है कि अल्मोड़े की चित्रित घाटी भी उसे उड़ती हुई नज़र आती है।

"लो, चित्र शलभ सी पंख खोल
उड़ने को है चित्रित घाटी,

यह है अलमोड़े का बसन्त
खिल पड़ी निखिल पर्वत पाटी !"

पंत के मस्तिष्क में प्रकृति सदैव एक प्रयोगशाला के मूर्त्त रूप में विद्यमान रहती है और उनकी सहज चेतना प्रयोग में सतत तत्पर। उनकी व्यंजनाओं में जड़-पदार्थ भी बोल उठे हैं और उन्होंने अपने अंतर्प्रेम को प्रकृति के साथ मिला कर एकाकार कर दिया है। उनकी प्रियतमा सदैव प्रकृति के अंचल में छिपी रहती है, जिसे खोजने के मिस वे उसकी तह पर तह उघाड़ते चलते हैं। 'चांदनी' कविता में चांदनी की कल्पना द्वारा एक नारी की भावभंगी का कैसा सजीव चित्र खींचा है।

"नीले नभ के शतदल पर वह बैठी शारदहासिनी
मृदु करतल पर शशिमुख धर अनिमिष एकाकिनी।"

शेली के प्राकृतिक चित्र भी सूक्ष्म-कल्पना के साथ मिल कर सजीव हो उठे हैं और प्रकृति की गोचर सीमा में उसे अव्यक्त सत्ता का आभास कराते हैं। 'टु नाइट' (To Night) कविता में कल्पना की मधुरता के साथ साथ अंतर्भावों का कैसा कोमल अंकन हुआ है।

"ओ रात्रि ! अपने को तारों मंडित नीली साड़ी में लपेट कर तू अपने काले घने लहराते बालों से दिन की आंखों को धूमिल कर दे और उसके मुख पर इतनी चुम्बनों की बौछार कर कि वह परिश्रांत हो जाए। नगर, समुद्र और पृथ्वीतल को अपनी जादू की छड़ी से स्पर्श करती हुई तू जल्दी ही वापिस लौट आना। मैं तेरी प्रतीक्षा करूंगा।

जब मैं सोकर उठा तो देखा दिन निकल आया है। मैंने तेरे लिये एक ठण्डी आह भरी।। जब और भी प्रकाश फैल गया और ओसकण सूख गये, दोपहरी भार बनकर कोमल पुष्पों और वृक्षों पर लद गई तथा थका हुआ दिवस अप्रिय अतिथि की भांति आश्रय खोजने के लिये मुड़ चला तो मैंने तेरे लिये एक ठण्डी आह भरी।

तेरा भाई 'मृत्यु' आया और चिल्ला कर कहने लगा 'क्या तुम मुझे पसन्द करोगे ?' तेरी बालिका 'निद्रा' भी अपनी उनीदी पलकों को उघाड़ कर मधुमक्खी की भांति गुनगुनाई 'क्या मैं तुम्हारी बगल में सो जाऊं ? मेरी उपस्थिति तुम्हें बुरी तो न लगेगी ?' मैंने उत्तर दिया, 'नहीं, मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं है।'

जब तेरा अन्त होगा, तब मृत्यु आएगी। जब तू भाग जाएगी तभी नींद का भी आगमन होगा। मैं किसी से वरदान की याचना न करूंगा। प्यारी रात ! मैं तुझसे प्रार्थना करता हूं कि तू जल्दी—बहुत जल्दी लौट कर आना।"

'दि स्काइ लार्क', (The Sky Lark) 'दि वेस्ट विंड' (The West Wind) और 'दि क्लाउड' (The Cloud) में कवि की आत्म-भाव की परिधि इतनी व्यापक हो गई है कि वह मानव-हृदय की उर्मिल-वृत्तियों को गुदगुदा कर उसकी मेधा की सक्रिय शक्ति का अवलोकन कराती है। दृश्यजगत् का सूक्ष्म से सूक्ष्म क्रिया-कम्पन उसके नयन-द्वार से सीधा मानस पर आ कर अंकित हो जाता है। पतझड़ के मौसम में 'अरनो' नदी के तट पर घूमते हुए कवि के मस्तिष्क में, पश्चिमी हवा के बगूले जो हरे, पीले, धूमिल, और गुलाबी पत्तों के ढेर के ढेर अपने साथ उड़ा कर इतस्तत: विखेर जाते हैं, नवीन भावनाओं का उद्रेक कर रहे है।

"पीले, काले, मुरझाये और लाल पत्ते,
हवा-महामारी से जर्जर पत्र समूह,
ओ तू ! जो उनके काले, धूमिल विस्तरे पर विश्राम करती है।

* * * *

पंखदार बीज श्मशान भूमि में रक्खे हुए शव की भांति
तब तक शिथिल और निर्जीव पड़े रहेंगे जब तक कि तेरी बहिन बसंत
उन्हें आकर जीवन-दान न देगी।

* * * *

सुप्त धरा पर उसकी प्राण-भेरी बज उठेगी
और प्यारी मधुर कलियों को हवा से सजग करती हुई उनके चटकीले
रंग और सुगन्ध से मैदान और पहाड़ियों को भर देगी।

* * * *

ओ भीषण वायु-देव ! जो अप्रतिहत वेग से सर्वत्र घूम रहा है
और जिसमें संरक्षण और ध्वंस दोनों ही शक्तियां निहित हैं-तू सुन, जरा सुन।"

पतझड़ की 'पछवाई' हवा संरक्षक और विध्वंसक दोनों ही है। वह यदि हरीतिमा का अपहरण करती है तो समुद्र, आकाश और जंगल के कूड़े-कर्कट और मलिनता को स्वच्छ बनाती है तथा मनुष्य के हृदय को सुस्थिर और मज़बूत बनाती है। 'वेस्ट विंड' में शेली की बौद्धिक-चेतना पराकाष्ठा को पहुंच गई है। ज्यों-ज्यों कविता की ध्वन्यात्मक लय अग्रसर होती है उसकी कल्पना पृथ्वी, आकाश और समुद्र के ओर-छोर को स्पर्श करती हुई अंतरिक्ष में वायु के साथ अठखेलियां करती है--

"ओ तू ! मुझे लहर, पत्ता और बादल की भांति उड़ा कर ले चल।"

जिस प्रकार व्यक्त रूप में संसार के लिये उसी प्रकार अव्यक्त रूप में कवि की आत्मा के लिये भी यह हवा संरक्षक और विध्वंसक दोनों है। कवि उससे अनुरोध करता है--

"मुझे भी तू अपनी वीणा बना ले जैसे कि तूने सारे जंगल को अपने वश में कर लिया है। क्या है-यदि मेरे पत्ते झड़ झड़ कर नीचे गिर रहे हैं। तेरे महान् स्वरों का कोलाहल गंभीर, रहस्यमय ध्वनियों का सृजन करेगा--चाहे वे स्वर उदासी से भरे क्यों न हो।

जैसे शिथिल, मुरझाये पत्रों को नव-जन्म देने के लिये तू उन्हें उड़ा ले जाती है, उसी प्रकार मेरी निर्जीव, थोथी भावनाओं को छितरा कर समस्त पृथ्वीतल में विखेर दे।"

आगे की पंक्तियों में कवि की व्यक्तिगत भावना विश्वव्यापी भावना में परिवर्तित हो जाती है। पतझड़ के साथ साथ पुरातनता का ह्रास और बसन्त के साथ साथ नवीनता का आगमन पीड़ित मानव- जाति के लिये सुख का संवाहक है।

"ओ हवा !

यदि शीत ऋतु आ गई है तो क्या बसन्त दूर हो सकता है ?"

बस, यहीं इस विलक्षण कविता का अन्त होता है। विश्व-साहित्य में इस कविता की तुलना में बहुत कम कविताएं रक्खी जा सकती है।

शेली का 'स्काइलार्क' उसकी ऊर्ध्वगामी वृत्तियों का दिग्दर्शक और 'दि क्लाउड' अध्यात्मचेता आत्मा की पुकार है। पंत की 'बादल', 'समुद्र' आदि कई कविताएं शेली के अनुकरण पर लिखी गई हैं, किन्तु वे भाव और कल्पना की दृष्टि से मौलिक हैं और उनमे कोमल भावनाओं का सुन्दर चित्रण हुआ है।

अन्य कृतियां

पंत की प्रमुख कृति 'पल्लव' के पश्चात् 'गुंजन' और 'युगांत' में उनका गम्भीर चिन्तन और दार्शनिक-अंतर्धारा का प्रवाह हमें देखने को मिलता है। 'पल्लव' में उनकी चित्रमयी कल्पना, जो आकर्षक एवं स्पृहणीय रूप में प्रस्फुटित हुई थी-- वह 'गुंजन' में आ कर सरस-प्रौढता में परिणत हो गई और 'युगांत' में सौंदर्य-भावना का अन्त होकर एक नवीन प्राण-धारा का उद्रेक हुआ, जिसमें दार्शनिक-सत्य के साथ साथ गंभीर-चिंतन का भी समावेश था। बाहरी तूफानो और हलचलों से टक्कर लेने के पश्चात् कवि में आत्मस्थता आ गई थी और जीवन के प्रति भी सुख-दुःखों से परे उसका सम-दृष्टिकोण था।

"सुख दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन,
फिर घन में ओझल हो शशि—
फिर शशि में ओझल हो घन।
जग-पीड़ित है अति दुख से
जग—पीड़ित है अति सुख से
मानव जग में बंट जावे
दुख सुख से औ सुख-दुख से।"

पंत द्वारा रचित 'ज्योत्स्ना' दार्शनिक-तत्त्वो से पूर्ण कल्पना-प्रधान नाटिका है। यह पाश्चात्य पद्धति पर कल्पित कथानक लेकर लिखी गई है, जिसमें अनूठा किन्तु सीमित कलावाद है। शेली ने भी 'दि विच आफ एटलस' (The Witch of Atlas) में बहुत ही मनोरंजक और आकर्षक ढंग से एक अत्यन्त सुन्दरी जादूगरनी की कहानी लिखी है, जो एक निर्झर के समीप पर्वत-गुफा में रहती थी। कीट्स की मृत्यु के पश्चात् लिखा हुआ शोकगीत 'एडोनेस' (Adonais) भी शेली की अमर कृति है।

परिवर्त्तित दृष्टिकोण

शेली और पंत के जीवन के कतिपय विभिन्न पहलू हैं—कोई परिष्कृत मधुर-रस से अभिषिक्त, कोई आत्मगत एवं आध्यात्मिक और कोई सामाजिक धरातल पर आधारित। उनकी अधिकतर कृतियां कोमल भावनाओं से उच्छ्वसित होकर चलती हैं, किन्तु कुछ में आध्यात्मिक चेतना निहित है। कभी छायावाद में आदर्श-वाद अपनी परिधि में लिपटा हुआ दृष्टिगत होता है और कभी वे जीवन के निकट आकर उसमें झांकते हुए-से प्रतीत होते हैं। शेली आजन्म गोडविन की फिलासफी से प्रभावित रहा, किन्तु प्लेटोनिज्म में विशेष अभिरुचि होने से वह अपनी सौंदर्य-चेता आत्मा का हनन न कर पाया। जब जब उसकी वस्तुवादी स्थूल दृष्टि प्रकृत-तत्त्वों को स्पर्श करती हुई यथार्थवाद की ओर झुकी, तब तब उसकी हृदय को रमाने वाली भावुकता उभर आई और वह तीव्र-अनुभूति एवं आंतरिक सिहरन को व्यक्त किए बिना नहीं रह सका। शेली का अंतस्तल मानवतावादी है, किन्तु मस्तिष्क में तीव्र भावावेश होने के कारण वह व्यक्ति की अपेक्षा भावना से अधिक अनुप्राणित है। उसकी सृजनात्मक-बुद्धि मानवगत क्रिया-कलापों के आधारभूत तत्त्वों को स्पर्श करती हुई भी प्रेम और कल्पना की ऊर्ध्वगामी-वृत्तियों में जा अटकती है और उसी की चकाचौंध में खो जाती है। शेली में स्वातन्त्र्य-भावना, विश्व बन्धुत्व और शोषितों के प्रति गहरा अनुराग और सहानुभूति है। जहां कहीं और जब कभी

भी उसका मानवतावादी दृष्टिकोण कविताओं में प्रस्फुटित हुआ है–उसमें गहरा आत्मविश्वास और अन्तर्मुख चेतना का दर्शन होता है। 'दि मास्क आफ एनार्की' (The Masque of Anarchy), 'प्रोमोथियस अनबाउंड' (Prometheus Unbound), 'हेलाज' (Hellas) और 'दि ओड टु दि वेस्ट विंड' (The Ode to The West Wind) आदि कविताएं हमें उसकी प्रेम-कविताओं से भी अधिक प्रभावित करती हैं।

पंत भी समयाश्रित जीवन की कठोर परिस्थितियों से प्रभावित होकर 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में यथार्थ की प्रकृत-भूमि पर उतर आये हैं और एक नवीन दृष्टिकोण को लेकर प्रकट हुए हैं, जो पूर्णतः युग-प्रवृत्ति का निर्देशक है। 'वीणा' से लेकर 'युगांत' तक उन्होंने अपनी आंतरिक-भावनाओं को कल्पना के रंग में रँग कर अर्थ-व्यंजना की थी, किन्तु अपनी इधर की नव-कृतियों में मृग-मरीचिका के प्रति अपने इस तीव्र आकर्षण को उन्होंने झटके के साथ अस्वीकार कर दिया और अतिशय भावपरकता में पगा हुआ उनका मन वस्तुगत-तत्त्व में पैठने की चेष्टा करता रहा। यद्यपि उनकी चित्रण की पट-भूमि निराला और प्रसाद की भांति विस्तृत नहीं है, तथापि उनकी अन्तरिक्ष में विचरण करती हुई दृष्टि विकृत-मानवता पर भी यदा कदा आ टिकी है।

"खड़ा द्वार पर लाठी टेके,
वह जीवन का बूढ़ा पंजर,
चिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी,
हिलती हड्डी के ढांचे पर।
उभरी नीली नसें जाल सी
सूखी ठठरी से हैं लिपटी,
पतझर में ठूंठे तरु से ज्यों
सूनी अमर बेल हो चिपटी।"

शेली की एक कविता का भी कुछ ऐसा ही मिलता-जुलता भाव है, जो जीवन और जगत् के मिथ्यात्त्व का बोध कराता है।

"मेरी एक ऐसे पथिक से भेंट हुई, जो किसी अज्ञात दूर देश से लौट रहा था। उसने बताया कि दो विशाल मानवाकार पत्थर के पैर–विहीन ढांचे मरुस्थल में खड़े हैं। उनके पास ही एक ओर विरूप मानवाकार प्रस्तर-खण्ड पृथ्वी पर पड़ा है, जिसकी भयंकर चेष्टा, विकृत मुखाकृति और भाग्य-विडम्बना का विद्रूप उस मूर्त्ति में इतना स्पष्टतया अंकित है कि मूर्त्तिकार मानव-अन्तर्भावों की अतल गहराई में

पैठकर आज भी अपनी कला की अमिट छाप लोगों की दृष्टि के समक्ष छोड़ गया है। उसके कलात्मक हाथों ने जीवन की अस्थिरता का उपहास किया है और उसकी सजग चेतना ने बड़प्पन के गर्व को तोड़ा है। प्रस्तर-खण्ड के नीचे खुदा हुआ है, 'मैं सम्राटों का सम्राट् ओजिमंडियास हूं। महानुभावो! मुझे देखो और जीवन से निराश हो जाओ।' उस जर्जर, विशाल प्रस्तर-खण्ड के समीप और कुछ न था, केवल अथाह धूल का ढेर उसे चारों ओर से घेरे हुए था।"

पंत की नवीन कृतियां 'स्वर्ण-धूलि' और 'स्वर्ण-किरण' सामाजिक-चेतना और आत्म-परक-भावना से युक्त हैं। जीवन की चकाचौंध और रंगीनियों को निरखते निरखते कवि की दृष्टि मानों इतनी श्रांत हो गई है कि वह सात्विक उदात्त-भावना में कुछ समय के लिये विश्राम चाहती है। कवि क्रांतिदर्शी हो गया है, उसकी अनुभूति पहले से अधिक जाग्रत है, भावना का परिष्कार हुआ है और चिंतन-प्रवृत्ति भी अपेक्षाकृत विकासोन्मुख और अन्तर्मुखी होती गई है। प्रेमोन्माद और यौवन की खुमारी से आंखें बन्द करके वह स्वस्थ दृष्टिकोण प्रस्तुत करना चाहता है और मानव-कल्याण की भावना से प्रेरित हो अपने युग के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन का नैतिक सदादर्शों पर महत्त्वांकन करता है। उसकी आकांक्षा है कि जन-जन में नवजीवन का संचार हो और अन्धकार में प्रकाश की किरणें फूट पड़ें।

"नवजीवन का वैभव जाग्रत हो जन गण में,
आत्मा का ऐश्वर्य अवतरित मानव-मन में।
रक्त सिक्त धरणी का हो दुःस्वप्न समापन
शांति प्रीति सुख का भूस्वर्ग उठे सुर-मोहन।"

किन्तु पंत में इस नवीन दृष्टिकोण के अवतरित होने के बावजूद भी कल्पना-वैभव और रूप-रंगों के प्रति मोह का सुनहरा तार कभी टूटने न पाया। उनकी पहले की विस्मय-विमुग्ध दृष्टि तलस्पर्शी और शुद्ध आत्मानुभूति में पैठकर भी अनिर्वचनीय-सौंदर्य एवं शृंगारिक-उन्माद से पृथक् न हो सकी।

शेली और पंत-दोनों ही भावी स्वप्न-स्रष्टा हैं। वे विहंग के स्वर्ण-पंख पर बैठ कर अंतरिक्ष में विचरते हैं। अमर-सत्य के परीक्षण के लिये उन्होंने अमर कृतियों का सृजन किया है, जिन्हें काल के क्रूर थपेड़ें भी अपने गर्भ में कभी समाहित न कर सकेंगे।

मैथिलीशरण गुप्त और रॉबर्ट बर्न्स

जन्म संवत्–१९४३

जन्म–ईस्वी सन् १७५९
मृत्यु–ईस्वी सन् १७९६
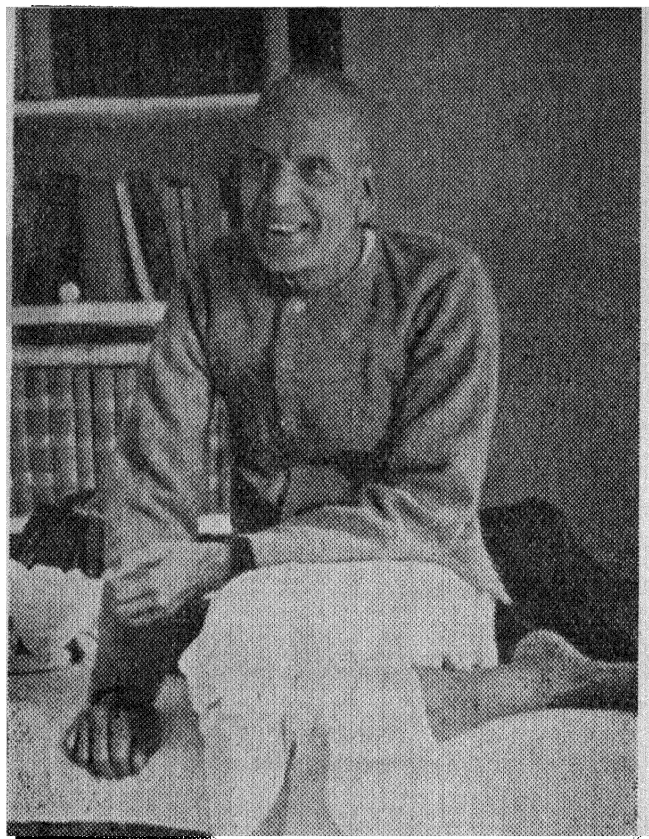
प्रमाद

दो दिन भी कौन यहाँ खा-पी सका स्वाद से,
जीवन का आरम्भ ही हो गया सो हो गया।
अपनी कहूँ क्या, एक मात्रा के प्रमाद से
मेरा शरीर सिन्धु सा है, भार सिन्धु हो गया।

आपका मैथिलीशरण
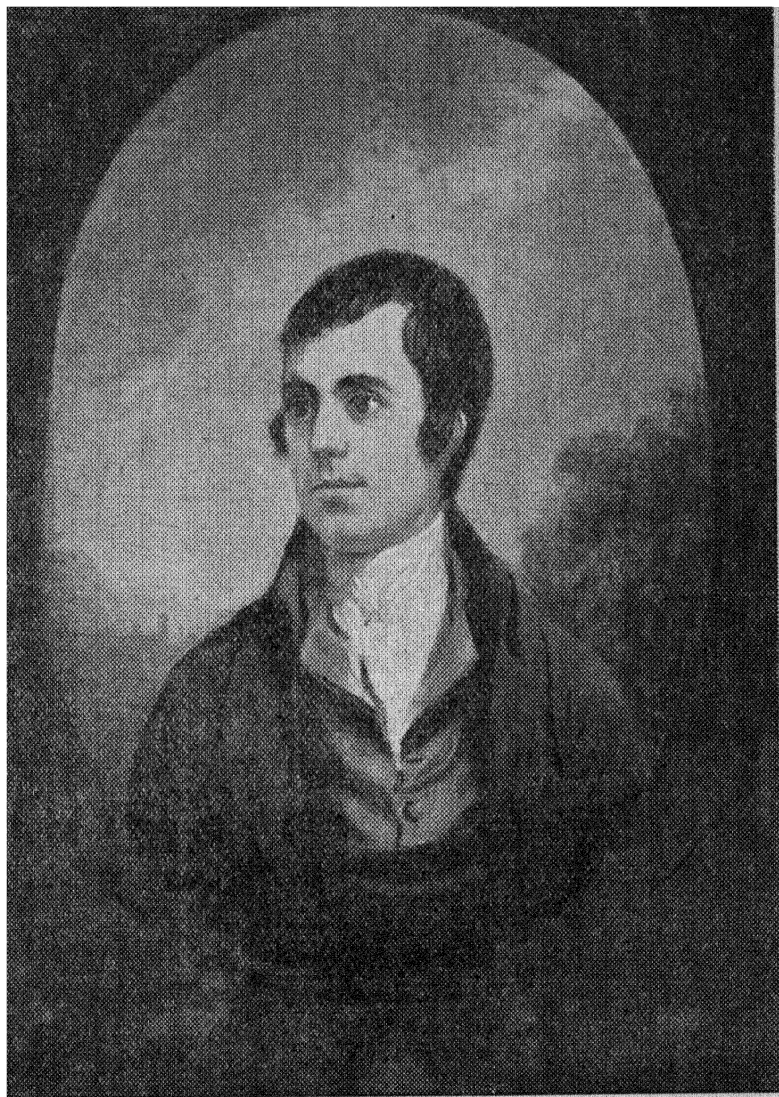
"Had we never lov'd sae kindly, "यदि हमने इतना खुल कर प्रेम न किया होता,
Had we never lov'd sae blindly, यदि हमारा प्यार इतना अंधा न होता,
Never met—or never parted, यदि हम कभी न मिलते अथवा कभी भी
We had never been broken-hearted." एक दूसरे से न बिछुड़ते—

(Robert Burns) तो हमारे हृदय इस प्रकार टूक टूक न होते।"

रॉबर्ट बर्न्स

यदि परिस्थितियों को अधिक मोड़ा-तोड़ा न जाय और प्रत्येक छोटी-मोटी स्फुट रचना अथवा कृति को साहित्यिक-परिधि में घसीटने का प्रयास न किया जाय तो यह सरलता से कहा जा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त और रॉबर्ट बर्न्स अपने अपने देश के तत्कालीन काव्य-क्षेत्र में प्रवर्तित दो धाराओं–प्राचीन और नवीन–को जोड़ने वाली बीच की कड़ी हैं। जिस समय देश में एक नवीन सामूहिक चेतना जाग्रत हो रही थी और नये युग का प्रगति-पंथी साहित्यिक प्राचीन रूढ़ियों, रीतिकालीन परम्पराओं, संकीर्ण और व्यक्तिवादी विचारों से अपने को पृथक् करके एक नये स्वर्णिम स्वप्न को स्थूल रूप दे रहा था, जब पुराने चकाचौंध उत्पन्न कर देने वाले रंग फीके पड़ रहे थे और स्वातन्त्र्य, भावयोग एवं अनेकरूपता के उपासक कवि अनंत-सौन्दर्य को अपने दृष्टि-बिन्दु में बंदी बना एक नवीन आशा एवं आकांक्षा से उल्लसित हो रहे थे, जब मनुष्यत्त्व की साधना का क्षेत्र दूरवर्त्ती, रहस्यपूर्ण, धुंधले पुरातन का मोह तोड़ नवीनता की ओर अग्रसर हो रहा था—उस समय मैथिलीशरण गुप्त और रॉबर्ट बर्न्स ने अपने स्व-निर्मित आधार की कठोर भूमि पर अपने आपको आज़माया और आगे बढ़ कर अत्यन्त उत्साह और साहस से समग्र मानव-जाति को अपनी कृतियों का अपूर्व उपहार अर्पित किया।

सामंजस्यमूलक-प्रवृत्ति

कालचक्र के फेर से हमारी प्राचीन काव्य-धारा नैसर्गिक भावधारा से विच्छिन्न होकर रूढ़-शब्दों, बंधी हुई अलंकृत पदावलि, प्रचलित वस्तु-वर्णन की प्रणाली, रस और छंदों से जकड़ी हुई इतनी निश्चेष्ट और भावशून्य हो चुकी थी कि वह जन ग की मार्मिक अंतर्भूमियों में स्वच्छंदतापूर्वक न विचर सकती थी। हिन्दी में जो कुछ लिखा जा रहा था—वह पुरातन परम्परा का पोषक था और लेखक का व्यक्तित्व उसकी रचनाओं में बहुत कम प्रस्फुटित होता था। भाषा का कोई एक निश्चित् रूप भी स्थिर न हुआ था और उसमें विविध प्रकार के भावों को व्यंजित करने की सामर्थ्य अभी न आई थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगियों ने काव्य-धारा को नये नये विषयों की ओर उन्मुख तो किया, किन्तु भाषा ब्रज ही रहने दी और व्याकरण की त्रुटियों, पद्य के ढांचों और अभिव्यंजना-पद्धति पर विशेष ध्यान न देकर शब्दों के मोड़-तोड़ और मुहावरों की भरमार करके उसकी ऊपरी सतह को इतना फेनिल बना दिया कि नीचे की गहराई स्पष्ट रूप से लक्षित न हुई। जिस समय पं० महाबीर प्रसाद द्विवेदी और उनका परिकर भाषा-संस्कार में प्रवृत्त था, उस समय मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दी-कविता को अपने गंभीर-चिंतन और नवीन विचारों से अनुप्राणित किया और अपनी सीमित परिधि में रूढ़ि-समर्थित एवं परिपाटी-विहित रसज्ञता से एकदम पिंड न छुड़ा कर एक ऐसा मध्यम मार्ग अपनाया, जिसमें आर्य्योचित भाव-सौन्दर्य-दर्शन और रहस्यात्मक-अभिव्यक्ति का एक साथ आभास हुआ। उन्हें रूढ़ि की देहरी लांघकर वृन्त-च्युत पत्र की भांति निराधार हो नवीनता की आंधी में उड़ जाने का शौक भी न था और न ही वे लकीर के फकीर बन कर आंख-कान मूंद और हाथ-पैर बांध प्राचीन काव्य-धारा में चुपचाप बह जाने को प्रस्तुत थे, अतएव उन्होंने अपनी कृतियों में सामंजस्यमूलक विवेक और कालानुसरण की क्षमता दिखाई। सामयिक परिस्थितियों और सांस्कृतिक आदर्शों के बीच खड़े वैषम्य ने कवि की वाग्धारा को क्रान्तिकारी बना दिया और उसने जीवन-जागरण का एक ऐसा अंतर्निहित अभिनव संदेश भर दिया, जिसने नये युग के नव-प्रभात के नवालोक में यथार्थ की सपाट भूमि पर उतर कर अनोखी अर्थ-व्यंजना की।

उन्नीसवीं शताब्दी में इसी प्रकार की नवजाग्रति पश्चिम में भी आई थी और गुप्तजी की भांति लगभग एक-सी परिस्थिति में जन्म धारण करने के कारण रॉबर्ट बर्न्स ने भी अपने देश की प्राचीन और अर्वाचीन दो काव्य-परम्पराओं के बीच

मध्यस्थ का कार्य किया था। कहने की आवश्यकता नहीं कि तत्कालीन अंग्रेजी-साहित्य ग्रीक, लैटिन आदि विदेशी-शब्दों और साहित्यिक-रूढ़ियों से अभिभूत होकर इतना पंगु और निर्जीव हो गया था कि उसमें मौलिक भाव-व्यंजना और व्यापकता का प्रसार बहुत कम दीख पड़ता था और नवाकांक्षा से उल्लसित स्वप्नदर्शी कवियों की स्वच्छन्द बुद्धि उसमें परितृप्ति न पाती थी। जर्मनी के 'रोमांटिक रिवाइवल' और फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के फलस्वरूप जो अमूर्त्त सौन्दर्यादर्श, शृंगारिक भावुकता और उन्मुक्त आत्माभिव्यंजना की लहर इंगलैण्ड में दौड़ गई थी—उसने बहुत से समकालीन कवियों को प्रभावित किया और उन लोगों ने वाह्य रूप-रंग और पूर्ववर्त्ती काल की प्रवृत्तियों के विरुद्ध क्रान्ति उपस्थित कर दी। पार्थिव, स्थूल बंधन तोड़ दिए गये और रहस्यमय, अज्ञात और सूक्ष्म के प्रति उनकी जिज्ञासा तीव्र हो उठी। तत्कालीन नवोदित कवि मेसन (Mason), बेट्टी (Beattie) और बाउल्स (Bowles) ने अपना भाव-सामंजस्य अंग्रेजी काव्य-धारा की प्रगति के अनुरूप तो किया, किन्तु उनमें ऐसी जागरूक-प्रतिभा और ओजस्वी अंतर्प्रवाह के दर्शन न हुए, जो प्रकृति के रम्य रूपों और जीवन की सूक्ष्मतम अंतर्वृत्तियों में पैठ पाते। बर्न्स ने प्रथम बार प्रश्नभरी मुद्रा से साहित्य के इस तथाकथित विलगाव की ओर दृष्टिपात किया और अपनी बुद्धि एवं क्षमता की सीमा के भीतर काव्य का स्वरूप निश्चित् कर दिया। उसने सांस्कृतिक काव्यादर्शों की भी अवहेलना न की और समयोचित प्रवृत्तियों को भी न भुलाया।

जिस प्रकार गुप्तजी ने साहित्य की गंगा-यमुनी दो विभिन्न धाराओं को मिलाकर एक किया, उसी प्रकार बर्न्स ने भी पृथक् पृथक् भाव-प्रवाह में बहकर अपने संतुलित दृष्टिकोण से अतीत और आगत की रंगीन-कल्पनाओं में सामंजस्य उपस्थित करके साहित्यिक-धरातल को सर्वथा व्यावहारिक बनाया। कला—उन दोनों के लिए—काव्य का एक विशेष स्तर निश्चित् करने का उपयोगी साधन बन गया और उसका प्रयोग उन्होंने व्यक्त रूप से निर्भ्रान्त होकर किया। केवल मनोरंजन अथवा आनन्द की उपलब्धि के लिए कला की साधना उन्हें रुचिकर न थी। प्रत्युत् उन्होंने आत्म-निर्मित परिधि के भीतर खड़े होकर अन्तर्चक्षुओं से बहुत कुछ देखा-समझा और अपनी अनुभूति के ताने-बाने से एक ऐसा स्वर्णिम-संसार रचा, जो संकीर्ण होने के साथ साथ प्रसारधर्मी भी था। कहना न होगा—गुप्तजी और बर्न्स जीवन और जगत् के व्यक्तक्षेत्र के कवि हैं, उनकी चेतना प्रबुद्ध है और वे मानव-मर्म के अन्वेषक हैं। उनकी वाणी के प्रत्येक शब्द में, कर्म की प्रत्येक प्रेरणा में,

हृदय के प्रत्येक स्पंदन में उनके अपने व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक और सरल जीवन के शाश्वत स्वर निनादित होते सुन पड़ते हैं। उनका व्यक्तित्व साहित्य की दो परस्पर विरोधी धाराओं के आदान-प्रदान, संगम व श्रांति का विराम स्थल है और उनकी कला साहित्य के बिखरे उपकरणों को जोड़ती और अनैक्य में ऐक्य का साक्षात्कार कराती है।

भाव–सृष्टि

गुप्तजी और बर्न्स दोनों का जन्म गांवों में मध्यम श्रेणी के परिवारों म हुआ था और दोनों ही जीवन की सत्यता एवं सरलता का अवलोकन करते हुए बड़े हुए थे। गुप्तजी की जन्मभूमि झांसी के समीप चिरगांव नाम का एक छोटा-सा कस्बा है, जहां उन्होंने खुले मैदानों और सीधे प्राकृतिक उपादानों से प्रेरणा पाई है और बर्न्स स्कॉटलैंड में आयर के समीप एलोवे ग्राम की एक हाथ से बनी झोंपड़ी में पैदा हुआ था, जो दुर्भाग्यवश उसके होने के कुछ दिन बाद एक जोर के तूफान में उड़ गई थी और माता को अपने नवजात शिशु के साथ एक पड़ौसी के मकान में शरण लेनी पड़ी थी। अत्यन्त निर्धनता के कारण बर्न्स की शिक्षा-दीक्षा भी ठीक से न हो सकी थी और एक स्थानीय ट्यूटर की देखरेख में उसने अंग्रेजी, लैटिन और फ्रेंच आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया था। बर्न्स ने लिखा है "मेरी स्मरण-शक्ति बड़ी विलक्षण थी और यद्यपि मुझे कई बार मास्टर साहब की बेंतें खानी पड़ी थीं तो भी मैं उत्तरोत्तर अंग्रेजी का विद्वान् होता जा रहा था।" पैसे के अभाव में पुस्तकें मांग कर भी बर्न्स को ज्ञानार्जन करना पड़ा, जिनमें से कुछ का प्रभाव उसके मस्तिष्क पर सदैव के लिए इस प्रकार अमिट रूप से अंकित हो गया कि अंतिम क्षणों तक उसमें प्रेरणा व प्रोत्साहन भरता रहा। अपनी तेरह वर्ष की अल्पायु में ही, जबकि अधिकांश बालक अपना समय आमोद-प्रमोद और खेल-कूद में बिता देते हैं, बर्न्स को कई घंटे अपने पिता के साथ खेती का काम करना पड़ता था और पन्द्रहवें वर्ष से तो इस प्रकार उसे मज़दूरों की भांति घोर परिश्रम और जी-तोड़ मेहनत करनी पड़ी थी कि अपनी काव्य-साधना के लिए भी उसे बहुत कम अवकाश मिल पाता था। अर्थाभाव और अभिरुचि के विपरीत कार्य करने के कारण वह निरन्तर मानसिक ऊहापोह और दुश्चिताओं से ग्रस्त रहता। सन् १७८६ में प्रथम बार उसकी कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित हुआ, जिसने एडिनबरा के फैशनेबुल साहित्यिक-क्षेत्र में उसे प्रख्यात कर दिया, किन्तु इसके कुछ दिन पश्चात्

ही उसे पुनः खेती में जुट जाना पड़ा, जिसके फलस्वरूप एक लम्बे अर्से के लिए उसकी एकान्त-साधना ठप्प पड़ गई ।

कुछ भी हो, बाल्यावस्था में ही बर्न्स के हृदय में जो खेतों और प्रकृति के खुले प्रसार एवं दृश्य-रूपों के प्रति भावुकता उद्‌भूत हुई थी–वह आजीवन उसकी दृष्टि में समस्त सृष्टि के लिए वैसी ही बनी रही। कवि खेती करता हुआ जब गोचर जगत् को आंखें फाड़कर विस्मय-विमुग्ध दृष्टि से देखता तो उसकी कल्पना-खगी उन्मुक्त पंखों से उड़कर अनन्त में लीन हो जाती और रहस्यावरण को भेद कर अदृश्य लोक में विचरती हुई ऐसी मोहक, दिव्य तान छेड़ती, जिसकी अस्पष्ट मधुर झंकार समस्त अन्तर्बाह्य को झंकृत कर जाती । बर्न्स की प्रकृत्यात्मक चेतना उसकी अपनी हृदय की अनुभूति से उद्‌भूत हुई है और उसमें प्रत्येक के हृदय की छाया एवं आत्मैक्य का बिंब झलकता है । प्रकृति का प्रत्येक कम्पन उसके हृदय को उल्लास से भर देता है, प्रत्येक लहलहाता, हरा भरा खेत उसकी आंखों में झूमता सा प्रतीत होता है, और बन्यप्रान्त की प्रत्येक सुरभित गूंज उसके प्राणों में हिलोर और अद्‌भुत सिहरन भर देती है । कवि ने अपनी अनेक कविताओं में ग्रामीणों और कृषकों के पारिवारिक-जीवन के ऐसे भव्य चित्र खींचे है, जिनके स्वाभाविक सौंदर्य और माधुर्य से हृदय गद्‌गद हो जाता है ।

"क्या हुआ यदि हम साधारण व्यक्तियों की भांति निरुद्देश्य भटकते फिरते है---हमें यह भी पता नहीं कि कहां जाना है और ऊंचे ऊंचे भवन और इमारतें क्या होती हें । तो भी हम प्राकृतिक सुषमा, पर्वत-श्रेणियां,बन्य-प्रदेश, स्वच्छ सुन्दर घाटियां, और फेनिल ज्वारभाटे आदि की शोभा को तो स्वच्छन्दरूप से देख ही सकते हैं । जब कभी रंग-बिरंगे पुष्प पृथ्वीतल पर छा जाते है और काली चिड़ियायें अपनी चहक से सारे वातावरण को उत्फुल्ल बना देती हें तो हमारे हृदय नववर्ष के स्वागत में सच्ची कृतज्ञता और खुशी से भर जाते हैं । हम जब प्रसन्न होते है तो घास पर बैठकर कोई राग अलापने लगते हें और उल्लसित क्षणों में जो संगीत फूट पड़ता है वह कार्य समाप्त होते ही झूमझूम कर आनन्दोन्मत हो गाते है ।

बड़ी बड़ी उपाधियां, पदवी, और लन्दन के बैंक का समस्त वैभव भी सच्ची सुख-शांति को खरीद नहीं सकता । यदि प्रसन्नता हमारे हृदय-सिंहासन पर विराजमान् न हो तो अधिक प्रयत्न, पुस्तकें अथवा विद्वत्ता भी हमें सच्चा सुखी बनाने में समर्थ नहीं । हम बुद्धिमान्, धनवान्, और बड़े बन सकते हैं, किन्तु कभी भी सुखी और सन्तोषी नहीं बन सकते । दुनिया के खज़ाने और आमोद-प्रमोद

हमें अधिक समय तक खुश रखने में असमर्थ हैं, वरन् हमारा अपना भीतरी प्रकाश ही हमें चिर-उल्लास से उल्लसित रख सकता है।"

('The Epistle to Davie' से उद्धृत)

कठोर परिस्थितियों से सतत संघर्ष करते हुए बर्न्स अपनी आत्मा की शांति और पेट पालने के लिए सदैव कठोर कर्मों में जुटा रहा। प्रकृति के सहज साहचर्य्य में उसने जिन प्रकृत उपकरणों को चुनकर स्वाभाविक काव्य-सृजन किया—उसमें अतीत संस्कृति की मनोरम झांकी और ठेठ जीवन का सरल ठाठ है। उसकी दृष्टि कल्पना की सघन मेघमालाओं में न रम कर लोक-जीवन की चिरंतन कठोर भूमि पर सुस्थिर होने की साधना करती रही और उसकी प्रतिभा की किरणें ऊपर अन्तरिक्ष में न अटक कर नीचे चिंताशील जगत् की धरती को ही सदैव जगमग करती रहीं।

बर्न्स की कविता में केवल अपना ही दुःख-सुख और हास्य-रुदन नहीं है, वरन् उसकी हृदय-तन्त्री में विश्व-वेदना के आकुल स्वर गूंजते रहते हैं। उसका मन-पंछी अदृश्य-लोक में ही नहीं विचरता, वह तो निर्मम विश्व के अन्धड़ में भी अपने पंख नुचवाता रहता है। कवि की कविता के प्रेरणा—स्रोत कभी कभी इतनी तुच्छ, नगण्य वस्तुओं पर आधारित हैं, कभी कभी वह क्षुद्र जीवों के स्नेह, सौहार्द्र और सहानुभूति में इतना आत्म-विभोर हो गया है कि उसके जीवनगत दृष्टिकोण अपनी समस्त यथार्थता के साथ उसके सम्मुख हाथ बांधे खड़े रहते हैं। सन् १७८५ के नवम्बर मास में एक दिन ऐसी घटना घटी कि जब बर्न्स खेत में हल चला रहा था तो उसके हल की धुरी से एक चूहे का बिल उलट-पुलट गया। चूहा भयातुर हो जोर से भागा। बर्न्स का ब्लेन नाम का एक सेवक छड़ी लेकर उसे मारने दौड़ा, किन्तु बर्न्स ने उसे यह कह कर रोक दिया, "क्या इसने तुम्हारी कोई क्षति की है ?" सन्ध्या समय वह कागज़-कलम लेकर बैठ गया और उसने चूहे पर कविता लिख डाली। बर्न्स की इस सुप्रसिद्ध कविता 'टु ए माउस' (To a Mouse) का भावार्थ नीचे दिया जाता है।

"ओ, छोटे, क्षीण, भयातुर, डरपोक प्राणी ! तेरे पेट में कैसी उथल-पुथल मची। तुझे इस प्रकार आर्त्तनाद करते हुए शीघ्रता से सरपट दौड़ने की आवश्यकता न थी। मैं अपनी हिंसक आकांक्षाओं को लेकर तेरे पीछे भागने की धृष्टता न कर सकता था।

मुझे हार्दिक क्षोभ है कि मनुष्य का शासन प्रकृति के सूक्ष्म, सामाजिक बन्धनों को क्षण भर में ध्वस्त कर देता है। मेरे जैसे तुच्छ, पृथ्वी से उत्पन्न सखा

और चिरंतन साथी के प्रति तेरी यह दुर्भावना, जिसने कि तुझे द्रुतवेग से भागने को बाध्य किया, न्यायसंगत ही है।

निःसन्देह, तू सदैव फलता-फूलता रहे। ओ छोटे जीव! तेरा अस्तित्त्व इतना अल्प है कि यदि तू हमेशा बना रहे तो हानि ही क्या है। मैं तुझे सद्भावना पूर्वक आशीर्वाद देना कभी न भूलूगा।

तेरा ज़रा सा, छोटा घर उजड़ गया। अब इस चतुर्दिक् फैली हरीतिमा में नया घर कैसे बने? दिसम्बर की तीक्ष्ण, घातक हवायें अब आरम्भ होने को ही हैं।

तूने तो सोचा था कि खेत उजाड़ और सूना पड़ा है और कड़कड़ाता, भयंकर शीत भी शीघ्र आना ही चाहता है। तूने ओ मित्र! बर्फीली, तेज़ हवा से अपनी रक्षा करने के लिए यह आश्रयस्थल खोजा था, किन्तु सर्र से तेज़, निर्मम नोक ने तेरे बिल को चीर डाला।

थोड़े से हरे पत्ते तूने कितने कष्ट और परिश्रम से एकत्रित किये होंगे। अपनी समस्त परेशानियों के बावजूद भी तू अपने मकान से बाहर शीत और ठंडी हवा में कष्ट झेलने के लिए खदेड़ दिया गया।

पर चूहे! तेरा दोष नहीं, बहुतों की भावी-कल्पनायें निरर्थक होती हैं। चूहे हों या मनुष्य, किसी की भी सोची हुई बातें कभी पूरी नहीं होतीं। जिन भावी-सुखों की हम कल्पना किया करते हैं वे प्रायः दुःखों में बदल जाया करते हैं।

तो भी तू मेरी तुलना में बड़ा सुखी है। तुझे तो केवल वर्तमान ही प्रभावित करता है, किन्तु मैं अपने अतीत दुःखों को याद करके रोता हूं और भविष्य की सही कल्पना न करके भी सम्भावित-कष्टों को सोचकर भयभीत रहता हूं।"

लगभग एक वर्ष बाद अप्रैल मास में बर्न्स के हाथों एक और दुर्घटना घटी। वह प्रतिदिन की भांति खेत में हल चला रहा था कि अकस्मात् हल की नोंक ने एक 'डेजी' पुष्प को छिन्नभिन्न कर दिया। बर्न्स ने उस जर्जरित पुष्प पर अपनी कविता रच कर उसे सदैव के लिये अमर बना दिया।

"ओ नन्हे से, संकुचित, लजीले, लाल पुष्प! तू मुझे कुसमय में मिला, क्योंकि मैंने अन्य अगणित वस्तुओं के साथ तेरे कोमल वृन्त को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। ओ सुकुमार रत्न! अब तुझे पहले जैसा बना देना मेरी शक्ति और सामर्थ्य से परे है।"

ध्वस्त पुष्प को देख कर कवि को जीवन की क्षणभंगुरता का स्मरण हो आता है और वह उत्तरोत्तर समीप आती हुई मृत्यु की कल्पना करता हुआ अपने को सम्बोधन करके कहता है।

"अरे तू भी, जो 'डेजी' की किस्मत को रो रहा है—इसी प्रकार एक दिन मर जायेगा। वह दिन दूर नहीं है जब तेरी भी यही दुर्दशा होगी। क्रूर सर्वनाश रूपी हल की धुरी तेरे यौवन पर कुठाराघात करेगी और सिकुड़ी खाल की झुर्रियों के भार से दबकर तू सीधा मृत्यु के मुंह में चला जाएगा।"

'डेजी' पर लिखी हुई बर्न्स की यह कविता लोगों के दिलों पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ गई। उसकी मृत्यु के कई वर्ष बाद जब वर्ड्सवर्थ ने बर्न्स की जन्मभूमि की यात्रा की तो उसने 'डेजी' वाले स्थान का भी निरीक्षण किया था। अपनी एक कविता में उसने इस प्रसंग का इस प्रकार उल्लेख किया है।

"मेरे साथी बालक ने बड़े गर्व के साथ एक नीची छत की ओर, जो हरे-भरे वृक्षो से आधी ढकी हुई थी, संकेत करके कहा, 'यह मॉसजेल फॉर्म है और यह वही खेत है, जहां बर्न्स ने हल की नोक से 'डेजी' पुष्प को छिन्नभिन्न कर दिया था।"

सृष्टि के जिस जिस अंश के साथ बर्न्स के हृदय का संयोग हुआ और बाह्य -जगत् में उसने जो कुछ देखा-सुना, वह अपने हृदय-नीड़ में संजो संजो कर वह रखता गया और अनुकूल अवसर पाकर अपनी कल्पना के रंग मे रँगकर उसे प्रकट कर दिया। प्राकृतिक वातावरण और दृश्यावली का सूक्ष्मावलोकन करते करते कवि की अंतश्चेतना बाह्य-चेतन-स्वप्नों की सृष्टि करती है और कभी अर्ध-विमूढ़ सी अंतर्विश्व में अंतर्हित होकर इतनी एकरस हो जाती है कि उसके अज्ञात-भाव प्राणों के रस में डूब कर बोलते है। उसके प्रशस्त हृदय में न जानें कितनी सुकुमार कल्पनायें उठती और विलीन होती है और वह न जाने किन किन संकेतों, दृश्य-रूपों और मोहक स्मृतियों में अपने दुःख-सुख को खोकर अपने अस्तित्त्व को भूल जाता है। किसी दृश्य अथवा वस्तु को देखकर कोई एक लघु भाव उसके हृदय के कोने में उमड़ता है और सजीव रूप धारण करके उसकी लेखनी से बरबस निकल पड़ता है। 'चिड़िया' पर लिखी हुई उसकी निम्नलिखित पंक्तियों में कितनी हार्दिक संवेदना और करुणा का भाव है।

"ओ छोटी, खुशदिल, असमर्थ चिड़िया! बसन्त ऋतु में तेरे मुख से जो भी गीत फूटे, उन्होंने मुझे बेसुध कर दिया। अब शीतकाल में अपने काँपते पंखों को कहां समेट कर रक्खेगी और अपनी रक्षा के लिये कौन-सा आश्रय-स्थल खोजेगी?"

बर्न्स की कविता परोक्ष की नहीं, प्रत्युत् प्रत्यक्ष की साधना है। उसमें केवल असीम और ससीम का ही द्वन्द्व नहीं है, वह न केवल हमारी बाह्य-चेतना को ही मुग्ध करती है, वरन् उसकी कल्पना सामान्य से सामान्य, चिर-परिचित दृश्यों और वस्तुओं की सघन गहराइयों एवं निबिड़ता में पैठ कर प्रकृति के क्षेत्र में निर्बन्ध विचरती है। चाहे किसी पुरुष की किसी स्त्री के प्रति गहरी प्रणय-वेदना की अभिव्यक्ति हो, चाहे टूटी-फूटी झोंपड़ी के निकट बैठे हुए कृषक-परिवार का चित्रण अथवा घायल खरगोश या जर्जरित व्याकुल व्यक्ति की मनोदशा का ही सूक्ष्म अंकन क्यों न हो--उसके हृदय के तार मर्मस्पर्शी स्वरों के साथ बज उठते हैं और काव्यगत वस्तुवादिता से एकात्मरूप हो विलक्षण काव्य-सृष्टि करते हैं।

बर्न्स की भांति मैथिलीशरण गुप्त का काव्य भी सरल भावानुभूतियों से ओतप्रोत है। उन्होंने जीवन-तथ्यों का उद्‌घाटन कर साधारण वस्तुओं में भी सौन्दर्य की खोज की है और अपनी स्वतन्त्र-चेता कलाकार की तूलिका से काव्यात्मक-पुट देकर उन्हें महत्त्वपूर्ण बनाया है। 'भारत-भारती', 'साकेत', 'यशोधरा', 'पंचवटी', 'जयद्रथवध', 'त्रिपथगा', 'अनघ', 'द्वापर' आदि उनकी प्रमुख कृतियों में आत्म-चिंतन और व्यापक लोक-निरीक्षण है। गुप्तजी का दृष्टिकोण इतना प्रकृतिस्थ और सुस्थिर है कि उनकी सामाजिक चेतना का आधार आत्मपरक मानववाद है, जिसमें जीवन के अंतर्भूत तत्त्व भी दूध-पानी की भांति मिले हुए हैं। उन्होंने जीवन से कायरतापूर्ण पलायन न करके कर्म-क्षेत्र से द्वंद्व स्वीकार किया है और यद्यपि प्रारम्भ से ही अतीत-गौरव और जीवन-दर्शन की ओर उनकी प्रवृत्ति रही है, तथापि उनके संचित अंतर्वैभव में एक निर्मल सात्त्विक-उल्लास और आत्मा की विशदता का प्रकाशन है। बर्न्स की कविता यदि व्यावहारिक अधिक है तो इनकी कविता अंतर्जगत् की साधना के भावयोग से युक्त। उसका हृदय दूसरों के दुःख-सुख का अनुभव कर एक परितृप्त विह्वलता में प्रायः मूक हो जाता है तो इनके भाव अंतरतम प्रदेश से उच्छ्वसित होकर जीवन-पुलिनों को स्पर्श करते हुए बरबस फूट पड़ते हैं। बर्न्स ने प्राकृतिक दृश्य-रूपों और लोकजीवन का चित्रण करके काव्य की सरस स्रोतस्विनी बहाई है, गुप्तजी ने काव्य के इस सूक्ष्म पार्थक्य पर विशेष ध्यान न देकर स्वाभाविकता के साथ साथ गंभीरता का भी यत्र तत्र सम्मिश्रण किया है। बर्न्स ने अपने सीमित संसार का निर्माण प्रकृति और जीवन के सरल उपकरणों को चुन चुन कर किया है, गुप्तजी ने प्राचीन आर्य्य-संस्कृति और व्यापक लोक-जीवन से भी सम्बन्ध जोड़कर उसे परिपूर्ण बनाया है। बर्न्स को भाव-उत्कर्ष के लिये

अध्यात्म-चिंतन की अपेक्षा मानव-गुणों का उत्कर्ष ही अधिक अभिप्रेत है, किन्तु गुप्तजी सद्‌गुणों के उपासक होकर भी अपनी महान् सांस्कृतिक-परम्पराओं में रमण करते हुए अनुराग और विराग, भोग एवं त्याग तथा स्थूल और सूक्ष्म म पूर्ण संतुलन उपस्थित करते हैं। बर्न्स के जीवन में परिस्थिति एवं मनःस्थिति का द्वन्द्व कभी मिटने न पाया, कभी कोई सा उभर कर प्रमुख हो गया और कभी पिछला पहले को दबाकर उसकी अवहेलना करने लगा, किन्तु गुप्तजी अपने सहज गौरव से कभी विच्युत न होकर आश्वस्त बुद्धि से अपने मूलगत सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण करते रहे। गुप्तजी राम के उपासक हैं, बर्न्स धार्मिक अभिरुचि का होते हुए भी धर्म की कट्टरता को अस्वीकार करता है। उसने कला-सृजन को आंतरिक अनुभूतियों एवं संवेदनाओं का समन्वय माना है, गुप्तजी ने अवचेतन-मन के संस्कारों को व्यक्त करके भी कला के गंभीर और मंगलकारी स्वरूप की प्रतिष्ठा की है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि गुप्तजी की कला का स्तर अपेक्षाकृत ऊंचा है और उनकी अभिव्यक्ति का क्षेत्र भी अधिक व्यापक है। उन्होंने अनेक छोटे-बड़े प्रबन्धकाव्य लिखे हैं, जिनमें काव्य की विशिष्ट पदावली, रसात्मक-चित्रण, वाग्वैदग्ध्य और जीवनगत तथ्यों का मार्मिक उद्घाटन है। विश्व की अनन्त विविधताओं से संवेष्ठित होकर भी उन्होंने प्रकृति से तादात्म्य स्थापित किया है और दृश्यजगत् की अहर्निश उपयोग में आने वाली वस्तुओं से साहचर्य जोड़कर उनसे सौन्दर्य ही नहीं, स्वर भी प्राप्त किया है। 'साकेत' में अयोध्या के समस्त वैभव की अवहेलना करके जब सीताजी राम के साथ बन में आती है तो पहले से भी अधिक सुख एवं परितृप्ति का अनुभव करती है।

> **"निज सौध सदन में उटज पिता ने छाया,**
> **मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।**
>
> * * *
>
> **क्या सुन्दर लता बितान तना है मेरा,**
> **पुंजाकृति गुंजन कुंज घना है मेरा**
> **जल निर्मल, पवन पराग सना है मेरा**
> **गढ़ चित्रकूट दृढ़ दिव्य बना है मेरा**
> **प्रहरी निर्झर, परिखा प्रवाह की काया,**
> **मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।**
>
> * * *

किसलय-कर स्वागत हेतु हिला करते हैं,
मृदु मनोभाव-सम कुसुम खिला करते हैं।
डाली में नव फल नित्य मिला करते हैं,
तृण तृण पर मुक्ता-भार झिला करते हैं।
निधि खोले दिखला रही प्रकृति निज माया।
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

* * *

फल-फूलों से हैं लदी डालियां मेरी,
वे हरी पत्तलें, भरी थालियां मेरी,
मुनि-बालाएं हैं यहां आलियां मेरी,
तटिनी की लहरें और तालियां मेरी,
क्रीड़ा-सामग्री बनी स्वयं निज छाया।
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।"

गुप्तजी ने अपने काव्य-ग्रन्थों में प्रकृति की सहायता से बिरह-वर्णन में सजीवता भर दी है और स्थान स्थान पर प्रकृति और मानव-जीवन में पूर्ण सामंजस्य दिखाया है। उर्मिला और यशोधरा अपनी विरहावस्था में पुष्पों, लताओं, वृक्षों, विहंगम के कलरव-गान, शुभ्र ज्योत्स्ना, समीर, आकाश की तारकावलि खचित नीलिमा, सन्ध्या, रात्रि, प्रभात, पशु-पक्षी, नदी-नाले, पर्वत-समुद्र और बसंत, ग्रीष्म, पावस, शीत आदि ऋतुओं तथा स्वयं अपने अस्तित्व की विविध स्थितियो में एकात्मता का अनुभव करती हैं। प्राकृतिक रूपों और व्यापारों के समक्ष जब कभी वे अपनी पृथक् सत्ता की धारणा से छूटकर अपनी चित्तवृत्तियों को उनके भीतर केन्द्रित कर देती है तो उनके व्यक्त-प्रेम की फुरहरिया छूटकर अनन्त मे एकाकार-सी दीख पड़ती है।

"सखि ! नील नभस्सर से उतरा
यह हंस अहा ! तरता तरता,
अब तारक मौक्तिक शेष नहीं,
निकला जिनको चरता चरता।
अपने हिम-बिन्दु बचे तब भी,
चलता उनको धरता धरता,
गड़ जायं न कण्टक भूतल के।
कर डाल रहा डरता डरता।"

विपन्न क्षणों में वाह्य विश्व का संघात विरहिणी के दुर्बल प्राणों को झकझोर डालता है और वह हवा के सुकोमल स्पर्श से भी अपने को बंचित रखना चाहती है ।

"अरी, सुरभि ! जा, लौट जा, अपने अंग सहेज
तू है फूलों में पली, यह कांटों की सेज ।"

दीपक और शलभ को देखकर उसे दो प्रणयियों की विफल अंतव्यथा का आभास होता है और वह उनमें सादृश्य-भावना करती हुई व्याकुल हो पुकार उठती है ।

"दोनों ओर प्रेम पलता है ।
सखि, पतंग भी जलता है हा ! दीपक भी जलता है ।
सीस हिला कर दीपक कहता —
'बन्धु, वृथा ही तू क्यों दहता ?'
पर पतंग पड़ कर ही रहता ! कितनी विह्वलता है !
दोनों ओर प्रेम पलता है ।
बच कर हाय ! पतंग मरे क्या ?
प्रणय छोड़ कर प्राण धरे क्या ?
जले नहीं तो मरा करे क्या ? क्या यह असफलता है ?
दोनों ओर प्रेम पलता है ।
कहता है पतंग मन मारे—
'तुम महान् मैं लघु, पर प्यारे,
क्या न मरण भी हाथ हमारे ? शरण किसे छलता है ?'
दोनों ओर प्रेम पलता है ।
दीपक के जलने में आली,
फिर भी है जीवन की लाली
किन्तु पतंग भाग्य-लिपि काली, किसका वश चलता है ?
दोनों ओर प्रेम पलता है ।"

व्यथित क्षणों में सुखकर वस्तुयें भी अत्यन्त कष्टदायिनी प्रतीत हुआ करती है । विरहिणी अपनी असमर्थता और उदभ्रांत चेतना के कारण अनन्त विभूति के साथ एकात्मता का अनुभव करती हुई अन्तर में छिपे सत्य की पूर्ण व्याख्या चाहती है ।

"रुदन का हंसना ही तो गान ।
गा गा कर रोती है मेरी हृत्तन्त्री तान ।
मीड़-मसक है कसक हमारी, और गमक है हूक;
चातक की हुत-हृदय-हूति जो, सो कोइल की कूक ।
राग है सब मूर्छित आह्वान ।
रुदन का हंसना ही तो गान ।
कादम्बिनी-प्रसव की पीड़ा हंसी तनिक उस ओर,
क्षिति का छोर छू गई सहसा वह बिजली की कोर !
उजलती है जलती मुसकान,
रुदन का हंसना ही तो गान ।
यदि उमंग भरता न अद्रि के ओ तू अंतर्दाह;
तो कल कल कर कहां निकलता निर्मल सलिल-प्रवाह ?
सुलभ कर सबको मज्जनपान ।
रुदन का हंसना ही तो गान ।"

बसन्त ऋतु में वृक्ष से लिपटी हुई लता विरहिणी यशोधरा को उसके अपने कपोलों की अरुणिमा मे रंजित और उसकी शारीरिक कृशता का मानों उपहास करती हुई हरी-भरी और प्रसन्न दीख पड़ती है ।

"लता प्रस्फुटित हुई ध्यान से ले कपोल की लाली ।
फूल उठी है हाय ! मान वे प्राण भरी हरियाली ।"

करुण बेबसी के समय एक हृदय दूसरे हृदय को गले लगा लेता है । लक्ष्मण के विरह में उर्मिला का हृदय इतना विशाल हो गया है कि वह चकवा-चकवी की वियुक्त स्थिति से द्रवित हो उठती है ।

"कोक, शोक मत कर हे तात,
कोकि, कष्ट में हूं मैं भी तो, सुन तू मेरी बात ।
धीरज धर अवसर आने दे, सह ले यह उत्पात ।
मेरा सुप्रभात वह तेरी सुख सुहाग की रात ।"

अंतर और बाह्य-चेतना

गुप्तजी के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने साधारण से साधारण प्रसंगों को भी अपनी कुशल कला से अभूतपूर्व बना दिया है और प्राचीन
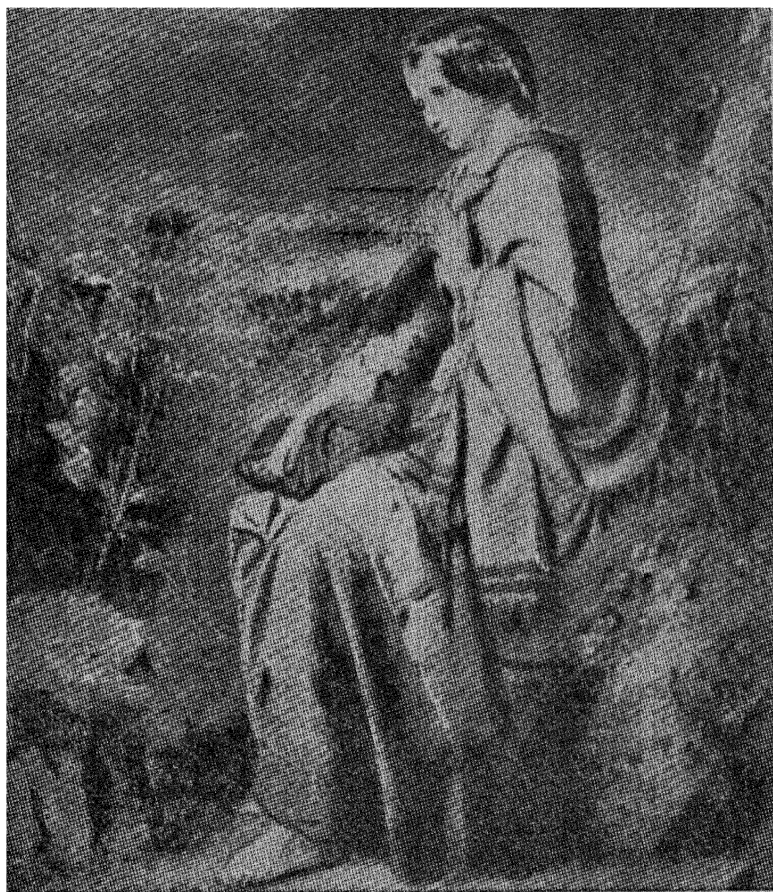
बर्न्स की 'हाइलैण्ड मेरी', जिसकी मृत्यु के पश्चात् एक उदास संध्य ो उसने ये निम्न पंक्तियां लिखी थीं :--

"ओ टिमटिमाते, धुंधले तारे जो उषा के स्वागत में अपनी आं बिछाए रहता है—तू तो पुनः दि में भी प्रकट हो जायगा, किन्तु मेर 'मेरी' तो हमेशा के लिए मुझसे छी ली गई।" --बर्न्स

'Thou lingering star, with less'ning ray,
'hat lov'st to greet the early morn
ıgain thou usher'st in the day
Лу Mary from my soul was torn."
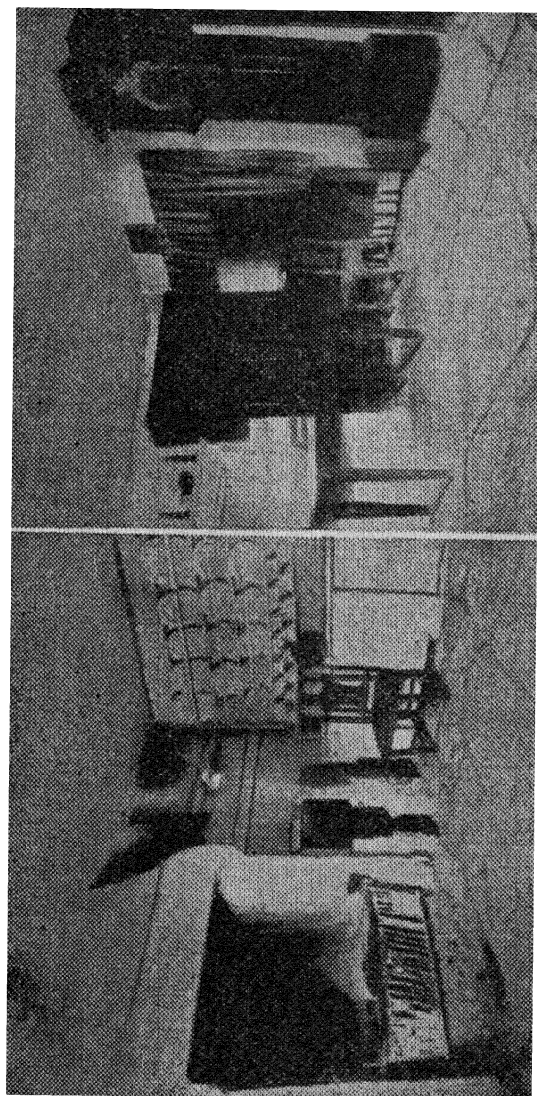
आयर नगर के समीप बर्न्स की जन्मभूमि

एलोवे घाटी में स्थित बर्न्स की कुटिया, जो अब भी सुरक्षित है और कवि के प्रशंसक यात्री नित्य ही उसके दर्शन करने जाते हैं।

पद्धति को अपनाने के बावजूद भी हिन्दी कविता को नवीन चिंतन, नवीन प्रेरणा, और नवीन विचारों से अनुप्राणित किया है। उनकी रचनाओं में सांस्कृतिक एवं सामयिक भावापन्नता विशेष है। देशकाल की प्रवृत्तियों एवं आदर्शों के अनुसार अपने काव्य का प्रसार कर उन्होंने परिस्थितियों की बहुरूपता और प्राचीन गाथाओं का सौंदर्योद्घाटन किया है।

गुप्तजी और बर्न्स दोनों ही समन्वयवादी हैं। मानव-जीवन की ओर दृष्टि-पात करते हुए दोनों के आनन्दग्राही हृदय ने जन-समुदाय की सामूहिक भावनाओं को अपनाया है। बर्न्स के मतानुसार मानव की अधिकृत आत्मा इस जग-जीवन का एक क्षुद्र, चेतन अंश है। दलित, शोषित, अधिकार-वंचित मनुष्य भी हृदय रखते हैं और उनकी भावनायें दैन्य, अनुराग व मान-अपमान का विचित्र संयोग होती हैं। बर्न्स ने बाह्य जगत् के द्वन्द्वों का जितना सफल और विस्तृत वर्णन किया है, उतना अन्तर्जगत् के द्वन्द्वों का नहीं। वह सदैव समयाश्रित परिस्थितियों से अधिक प्रभावित रहा, जीवन के शाश्वत प्रश्नों को उसने बहुत हल्के हाथों से स्पर्श किया है। उसने अपनी कविताओं में अपने व्यक्तिगत जीवन, प्रेम-प्रसंग, विवाह, मित्रता, और कतिपय छोटी-बड़ी घटनाओं का उल्लेख किया है। 'टॉम ऑ शांटर' (Tom O' Shanter), 'दि जॉली बेगर्स' (The Jolly Beggars), 'दि कॉटर्स सेटरडे नाइट' (The Cottar's Saturday Night) आदि उसकी कृतियों में सरसता के साथ साथ हृदय को आनन्दित कर देने वाली भावना है। उसकी अनेक कविताओं में यौवनोचित आवेगों की तीव्रता भी है। कहीं कहीं उसकी प्रणय-भावना इतनी प्रबल हो उठी है कि वह चौंक कर कह उठता है।

"यदि हमने इतना खुल कर प्रेम न किया होता।
यदि हमारा प्यार इतना अंधा न होता।
यदि हम कभी न मिलते अथवा कभी भी एक दूसरे से न बिछुड़ते
तो हमारे हृदय इस प्रकार टूक टूक न होते।"

गुप्तजी ने अपने काव्य में उच्छृंखलता को कहीं भी स्थान नहीं दिया है, तो भी प्रसंगानुसार उनकी कृतियों में संकोचपूर्ण गरिमा के साथ प्रेम-व्यंजना अनेक स्थलों पर मिलती है। नीचे उद्धृत पंक्तियां कितनी संयत और सुकुमार व्यंजना से युक्त हैं।

"उन्हें स्वप्न में देख रात को प्रातःकाल चली मैं।
और खोजती हुई उन्हीं को घूमी गली गली मैं।

साहस करके चली गई मैं, किन्तु कहां तक जाती।
पैर थके सूझा न पंथ भी, धड़क उठी यह छाती।
थी बयार या व्याली, मैं यों ही भटकी हे आली !
आंख मूंदकर चिल्लाई तब, 'कहां छिपे हो, बोलो।'
कर-स्पर्शयुत सुना उसी क्षण, 'तुम आंखें भी खोलो।
ओ मेरी मतवाली।' मैं यों ही भटकी हे आली।"

गुप्तजी और बर्न्स के काव्य और उनकी प्रेरक मूल-शक्तियों के इतने दिग्दर्शन से यही निष्कर्ष निकलता है कि ये दोनों सच्चे कलाकार हैं और अपने विचारों को बिना किसी अतिशयोक्ति के सरल भाषा में ज्यों का त्यों प्रकट कर देते हैं। बर्न्स की भाषा बेतरह मंजी हुई नहीं है, उसने नित्य व्यवहार के घरेलू मुहावरे और स्कॉटिश भाषा के व्यावहारिक ग्रामीण शब्दों का प्रयोग करके अंग्रेजी भाषा में अद्भुत लोच, स्वाभाविक प्रवाह और सजीवता भर दी है। भाषा की अकृत्रिमता और सजीवता ने उसके भावों को इतना सुस्पष्ट, मर्मस्पर्शी और हृदयग्राही बना दिया है कि उसकी कविताओं में कहीं कहीं कुछ पंक्तियां ऊबड़-खाबड़ और कुछ शब्द अव्यवहृत होने पर भी सौंदर्य में कमी नहीं होने पाई है। बर्न्स की सबसे बड़ी विशेषता है कि उसकी अन्तर्वात्तिनी अनुभूति उमड़कर किसानों के दुःख-सुख, हर्ष-विषाद और वैभव-अभावों में इतनी घुलमिल गई है कि पाठक कुछ क्षण के लिए उसकी दुःखानुभूति के हाहाकार में स्वयं भी खो जाता है।

गुप्तजी की भाषा अधिक सुसंस्कृत, प्रौढ़ और साहित्यिक होते हुए भी सजीव और बोधगम्य है। उन्होंने प्रसंगानुकूल अलंकारों, छंदों और रसों का भी प्रयोग किया है। जिस समय खड़ी बोली की कविता अपने शैशव काल में थी और भाषा का एक सुनिश्चित रूप स्थिर न हुआ था, उस समय उन्होंने प्रांजल और सुबोध भाषा का प्रयोग करके उसकी परिधि को व्यापक बनाया और आज की विकासोन्मुख काव्य-कला की विविध दिशाओं की ओर संकेत किया।

कहने की आवश्यकता नहीं कि गुप्तजी और बर्न्स को समझने के लिए पाठक के हृदय म गहरी काव्यानुभूति अपेक्षित है। उनकी कला में अन्तरंग की साधना और अन्तःकरण की सच्ची पुकार है। मानवीय-रूपों का दिग्दर्शन कराते हुए सार्वभौम चिरंतन सत्य के आधार पर देश एवं काल की संकीर्ण सीमाओं से उठकर उनके अन्तर्भाव विश्व-तन्त्री के स्वर में स्वर मिलाकर बज उठते हैं और भव्यता के साथ दिव्यता, सुन्दर और मांगल्य का अंतर्निहित गोपन-सन्देश सारे विश्व को दे जाते हैं।

रामचन्द्र शुक्ल और मैथ्यू आर्नल्ड

ार्य रामचन्द्र शुक्ल

ा–विक्रम संवत् १९४१ (आश्विन-पूर्णिमा)

ु–ईसवी सन् २ फरवरी, १९४१

मैथ्यू आर्नल्ड

जन्म–ईसवी सन् १८२२ (क्रिसमस ईव)

मृत्यु–ईसवी सन् १८८८ (अप्रैल)

साहित्य के मूल्यांकन की कसौटी क्या हो, समालोचक को किन किन रचना-तत्त्वों एवं साहित्यिक-उपकरणों से अवगत होना चाहिए, युग-विशेष की अप्रतिहत प्रगति को हृदयंगम रखते हुए वह किस प्रकार साहित्य-समष्टि के व्यष्टि-रूप सौंदर्य-तत्त्व में अपनी निरपेक्ष बुद्धि को केन्द्रित कर आलोच्य-सामग्री को परिपुष्ट एवं गरिमान्वित करे तथा वातावरण एवं विशेष परिस्थितियों से घिरा होकर भी वह कैसे ऊपर उठकर अपनी रचनाओं में उन तत्त्वों का संकलन करे, जो उसकी निगूढ मनःस्थली से उद्‌भूत हुए हैं—आदि प्रश्न विचारकों को सदा से अपनी ओर आकृष्ट करते आये हैं। मिडल्टन मरे के शब्दों में, "जिस प्रकार कला जीवन की चेतना है, उसी प्रकार समालोचना भी कला को अनुप्राणित करती है।" एक आदर्श समालोचक को दूसरे के प्रति ईमानदार रह कर साहित्यिक समस्याओं के समाधान में अपना योग प्रदान करना चाहिए। संकीर्ण भावनाओं से सर्वथा मुक्त होकर उसे कलात्मक रचनाओं के विशेष गुणों को पहचानना और उनकी अन्विति करना अनिवार्य है। सत्साहित्य की बन्दना के लिये उसे अपने मन-मंदिर के द्वार पर ताला न लगा लेना चाहिए और विश्व-साहित्य की धड़कन सुनने के लिये उसे अपने कान मूंदकर कहीं अन्यत्र न भाग जाना चाहिए। वस्तुतः सच्चे समालोचक के लिये युग-सत्य एवं युग-युग के सत्य में कोई विरोध नहीं। उसकी बुद्धि में वह प्रखरता, उसकी रुचि में वह सौष्ठव और उसकी दृष्टि में वह पर्यवेक्षण-शक्ति होती है, जो गहन से गहनतम स्तर को स्पर्श करती हुई वस्तु के मर्म में पैठ झांकती है।

चेखव ने एक बार चिढ़ कर लिखा था, "समालोचक तो घोड़े की वह मक्खी है जो उसे हल चलाने से रोकती है" और सिबेलियस का यह आक्षेप भी "याद रक्खो समालोचक के लिये कभी किसी ने कोई स्मारक खड़ा नहीं किया" अब बहुत कुछ अंशों में अपना महत्त्व खो चुका है। आज का साहित्य समालोचकों की कृतियों से बहुत कुछ उपकृत है और कौन जाने आने वाला युग उनकी कितनी बड़ी कीमत आंकेगा।

पं० रामचन्द्र शुक्ल और मैथ्यू आर्नल्ड के पूर्व तत्कालीन आलोचना-साहित्य जिन संकीर्ण नालियों से होकर गुज़र रहा था और अयोग्य हाथों में पड़ जिस लक्ष्यहीन मार्ग का अनुधावन कर रहा था—वह इन दोनों के द्वारा परिष्कृत और संवर्द्धित होकर एक दूसरी ही दिशा की ओर मुड़ बह चला। उन दिनों के समालोचकों में पक्षपात की प्रवृत्ति विशेष थी। वे आलोच्य-सामग्री की विशेषताओं पर ध्यान न देकर गुण ही गुण अथवा दोष ही दोष का दिग्दर्शन कराते थे जिससे साहित्यिक-समालोचना के आधारभूत तत्त्वों को समझना-समझाना और अच्छे-बुरे की पहचान करना अत्यन्त कठिन हो जाता था। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन दोनों मनीषियों ने समीक्षा-साहित्य को एक नवीन दिशा की ओर उत्प्रेरित किया, उसमें एक नवीन चेतना भरी और अपनी सत्य-वृत्ति एवं उत्कट विवेचना-शक्ति के द्वारा उसकी परिधि को व्यापक बनाया। देशकाल की परिस्थिति एवं जातीय विभेद होते हुए भी दोनों के दृष्टिकोणों में कुछ ऐसा साम्य है; उनके स्वभाव, रुचि-वैचित्र्य और विचारों में कुछ ऐसी स्पष्टता है तथा उनकी सूझ, गाम्भीर्य और मौलिक-उद्भावना में ऐसी अतल गहराई है, जो स्वस्थ समालोचना के सामूहिक तत्त्वों के समन्वय में अपनी क्रियाशीलता का परिचय देती है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता है कि वे समय के प्रवाह में हवा के रुख की तरह न बह कर स्थितप्रज्ञ दिग्दर्शक की भांति समीक्षा के कलात्मक स्वरूप के विश्लेषण और मूल्य-निर्धारण में लगे रहे और अपनी सम्पूर्ण कृतियों में अपना कलामर्मज्ञ, एकनिष्ठ एवं सूक्ष्मदर्शी समालोचक का रूप कभी न भूले।

समालोचना की पट-भूमि

समालोचक का कर्त्तव्य है कि वह सत्य को निरंतर टटोलता रहे और अपनी निस्संशय दृष्टि एवं सदाशयता से उसे उत्तरोत्तर निकट लाने की चेष्टा करे। यदि उसमें पक्षपात अथवा हीन-भावना है तो उसकी समीक्षा उसके तर्क का सत्य तो

हो सकती है, किन्तु साहित्यिक-सत्य के रूप में स्वीकार नहीं की जा सकती। सामयिकता को लांघ कर जो विषय की गहराई को नाप लेता है–उसकी कृति उतनी ही सत्य के अनुरूप होती चलती है और देश-काल की परिधियों का अतिक्रमण करती हुई वह उतनी ही स्थायी और सर्वव्यापी हो जाती है।

रामचन्द्र शुक्ल और मैथ्यू आर्नल्ड में उक्त प्रकार की निरपेक्ष बुद्धि एवं प्रौढ़ जागरूकता का प्रस्फुटन पूर्णरूपेण न हुआ, तो भी उनकी आत्मा के संस्कार और व्यक्तिगत-रुचि एक विशेष संस्कृति के दायरे में मर्यादाबद्ध थी और उन्होंने जिसे सुन्दर एवं शिवरूप समझा उसी को–सत्य का पल्ला पकड़—वे लिखते रहे। उनकी अपनी कुछ निजी धारणायें ऐसी दृढ़ थीं कि अपने प्रति सच्चे रह कर उन्होंने निर्भीक और निश्चित् बुद्धि से अपनी उच्च काव्य भावना और समीक्षा सम्बन्धी पैमानों के अनुरूप दूसरे के प्रति अपने दायित्व को प्रकट किया। वे छोटी-मोटी बातों अथवा छिछली सहानुभूति के वशीभूत न होकर एक सजग तटस्थता के साथ अपने चारों ओर पारदर्शी अन्वीक्षक की नाईं देखते और लिखते रहे। कहना न होगा पं० रामचन्द्र शुक्ल के कतिपय समालोचनात्मक निबंध और 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' उनकी अपनी अनुभूतियों का दर्पण है और मैथ्यू आर्नल्ड की 'एस्सेज़ इन क्रिटिसिज्म' (Essays in Criticism), 'कल्चर एण्ड एनार्की'(Culture and Anarchy), 'थियरी ऑफ् पॉइट्री' (Theory of Poetry) और अन्य छुटपुट रचनाओं में उसके व्यक्तित्व का वह संचित समग्र रूप प्रकट हुआ है, जो उसके व्यक्त-रूप के विविध जीवन-तत्त्वों को थामे हुए है। सन् १८६५ में जब सर्वप्रथम मैथ्यू आर्नल्ड की पुस्तक 'एस्सेज़ इन क्रिटिसिज्म' प्रकाशित हुई तो साहित्यिक-क्षेत्र में अपनी विशिष्ट शैली, नवीन दृष्टिकोण, निरंकुश विचारधारा और दिलचस्प विषयों की व्यापकता के कारण इसने तहलका मचा दिया। आजतक कोई ऐसी जोरदार समालोचनात्मक पुस्तक कम से कम इंगलैण्ड में न निकली थी, जो एकसाथ देशीय एवं बहिर्देशीय कवियों पर इतनी मर्मगत, व्यापक और वृहद् विचारधारा का दिग्दर्शन कराती। इसके प्रथम दो निबन्धों में ऐसे समस्त समकालीन समालोचकों की भर्त्सना की गई थी, जो संकीर्ण एवं व्यक्तिवादी विचारों, पक्षपातपूर्ण धारणाओं और राग-द्वेष में पड़ कर सच्चे साहित्य-शिल्पियों की अवज्ञा करते हैं और अहंकार, हीन-भावना व अपूर्ण ज्ञान के कारण दूसरों की विशेषताओं पर पानी फेर देते है। ऐसे व्यक्तियों के लिए उसने व्यंग और आक्रोश में 'फिलिस्टाइन' (Philistine) शब्द का प्रयोग किया, जो

हेन (Heine) से उधार लिया गया था। यद्यपि लेखक ने तत्कालीन साहित्यिकों पर गहरी चोट की थी और उसकी शब्द-संस्थिति भी पर्याप्त सचोट एवं अच्छे-बुरे की निषेधात्मक सीमा-रेखायें थीं, तथापि अपनी समालोचना में उसने जिन जोरदार शब्दों, मुहावरों और वाक्यांशों का प्रयोग किया था, वह बहुत कुछ फ्रेंच-गद्य की पद्धति पर था। मैथ्यू आर्नल्ड फ्रांस के समकालीन दो समालोचकों सेंट ब्यूवे (Sainte Beuve) और रेनान (Renan) से अत्यधिक प्रभावित था और उसने अपने गद्य-निर्माण में उन्हीं की प्रणाली को अपनाया था।

अंग्रेजी समालोचना की जिस प्रारम्भिक अवस्था में मैथ्यू आर्नल्ड का आगमन हुआ था--वह साहित्य-समालोचकों के अनुरूप न होकर उन्हें दुर्दान्त परिस्थितियों में जकड़े हुये था और अनेक बाधाओं, व्यवधानों के कारण उनकी प्रतिभा मुरझा कर रह जाती थी। मैथ्यू आर्नल्ड ने परिस्थितियों को लांघ कर और सदा से आती हुई साहित्यिक-परम्पराओं से सर्वथा विमुख न होकर, किन्तु कुछ पृथक् हटकर समालोचना की नूतन पद्धतियां निकालीं, जिससे तात्कालिक साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसने जिस स्पष्टता एवं पैनी निगाह से दूर की वस्तु को पास रख कर देखा और उसके मूल्य को ठीक ठीक आंकने की चेष्टा की--वह कटु सत्य होते हुए भी निर्णीत रूप में सबके समक्ष आया। उसके द्वारा समीक्षा-साहित्य ने एक नवीन चेतना और सजीवता ग्रहण की। कुछ छुटपुट रेखाओं, जोरदार मुहावरों और सुजड़ित शब्दों द्वारा लेखक ने अपने चित्रों में निज प्राणों की इतनी श्रेष्ठ पूंजी, विविधता, रंग-वैषम्य, अपने अभिमत, विधि-निषेध और मत-विश्वास भर दिये हैं कि उनका अध्ययन करते समय पाठक का ध्यान उनके औचित्य एवं अनौचित्य पर न जाकर उनकी विलक्षण नूतनता में खो जाता है। लेखक के व्यक्तिगत दृष्टिकोण और तर्कों का विश्लेषण इतना सबल है कि तर्क स्वयं सशरीर नेत्रों के समक्ष खड़े हो जाते हैं और लेखक का व्यक्तित्त्व पीछे छूट जाता है। 'एस्सेज़ इन क्रिटिसिज्म' में मैथ्यू आर्नल्ड के निजी सिद्धांतों का विवेचन अधिक है और उसके शब्दों का चुनाव, भाषा की चित्रोपमता, वर्णन की सजीवता, बारीकी और सूक्ष्मदर्शिता दर्शनीय है।

शुक्लजी ने भी इसी प्रकार साहित्यिक-द्वन्द्वावस्था और संकुचित परिस्थितियों को परख कर युगानुरूप साहित्य-सर्जन किया था और अपनी अंतर्भूत धारणाओं की दृढ़ नींव पर खड़े होकर विचित्र साहस और विद्रोहात्मक शक्ति का परिचय देते हुए स्वस्थ-समीक्षा से अपना सक्रिय सम्पर्क जोड़ा था। तत्कालीन लेखकों की

पक्षपातपूर्ण प्रवृत्ति और समुचित पथ-प्रदर्शन के बिना उन दिनों हमारा आलोचना-साहित्य सर्वथा एकांगी और उपेक्षित था। समालोचक अपने दायित्वों के प्रति जागरूक न था, वरन् यों कहें कि वह अपने कर्त्तव्य-ज्ञान से बिल्कुल अनभिज्ञ था और एकपक्षीय एवं दलगत भावनाओं में पड़ कर उसकी दृष्टि इतनी परतन्त्र हो गई थी कि वह शाब्दिक कलाबाज़ियों के अतिरिक्त कोई मौलिक उद्भावना न कर सकता था। समालोचना के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए शुक्लजी लिखते हैं :–

"समालोचना के सम्बन्ध में हमें इतना ही कहना है कि इधर शुद्ध समालोचनाएं कम और भावात्मक समालोचनाएं बहुत अधिक देखने में आती हैं, जिनमें कवियों की विशेषताएं हमारे सामने उतनी नहीं आतीं जितनी आलोचकों की अपनी भावनाओं की अलंकृत छटा। पर किसी कवि की आलोचना कोई इसी लिये पढ़ने बैठता है कि उस कवि के लक्ष्य को, उसके भाव को ठीक ठीक हृदयंगम करने में सहारा मिले, इसलिये नहीं कि आलोचक की भावभंगी और पद-विन्यास द्वारा अपना मनोरंजन करे।"

शुक्लजी ने इन शतरंजी चालों से पृथक् हटकर चतुर्दिक् वातावरण पर व्यापक दृष्टिपात करने के पश्चात् समीक्षा के मूलभूत तत्वों को पृथक् पृथक् स्पर्श किया और एक कुशल चित्रकार की भांति हल्की-गहरी सभी प्रकार की रेखाओं को अंकित करके उनमें अपनी सच्ची अनुभूतियों का रंग भरा। शुक्लजी के मैदान में आते ही समालोचना-साहित्य बड़े वेग से आगे बढ़ने लगा। कारण स्पष्ट है—वे उत्तेजक, काल्पनिक एवं क्षणिक प्रवृत्तियों में न पड़ कर हिन्दी-गद्य को परिपुष्ट करने में लगे रहे और तात्कालिक साहित्य की निर्जीव एवं भावशून्य आत्मा में अपनी जीवन्त-शक्ति, आत्मिक-सौंदर्य और दिव्य सात्विक-दीप्ति का आलोक भरने की सतत चेष्टा में संलग्न रहे। उन्हीं के शब्दों में "हम योरप में हर एक उठी हुई बात की ओर लपकना छोड़ दें, समझ-बूझ कर उन्हीं बातों को ग्रहण करें, जिनका कुछ स्थायी मूल्य हो, जो हमारी परिस्थिति के अनुकूल हो।" साहित्य-समीक्षा के लिये शुक्लजी ने सांस्कृतिक आदर्शों को अपनाया, किन्तु उस संकुचित अर्थ में नहीं, जो केवल जराजीर्ण रूढ़ियों और पुराणपंथी मनोवृत्ति को उकसाने वाला था। कहीं से भी और किसी की भी उपयोगी बातों को ग्रहण करने में वे अपनी हेठी न समझते थे—हां, ऊपरी सतह पर मंडराने की अपेक्षा वे गहराई में पैठकर कुछ पा लेने के सदैव पक्षपाती रहे। एक स्थल पर वे लिखते हैं, "भारतवर्ष का सम्पर्क संसार के

एवं अनुभूत बातों के अनुरूप उन्होंने जो रेखायें अंकित की हैं—वे अत्यन्त गहरी और अमिट हैं। तीव्र जिज्ञासा होते हुए भी उनके मन में ऐसी कट्टरता अंतर्निहित है कि उनके हृदय की सत्यता की तस्वीर हमारे मस्तिष्क पर अंकित हो जाती है। वे निरन्तर कुछ टटोलते से रहते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि वे पूरी तरह से अपने को अभिव्यक्त नहीं कर पाते। जिस किसी के प्रति उनका मन आकर्षित होता है—उसी से बुद्धि की लड़ाई ठन पड़ती है। अतीत के प्रति असंतोष, भविष्य के प्रति उत्कंठा और वर्त्तमान् की असंगत बातों से उन्हें चिढ़ है। उनके मन में उत्साह है, सत्साहित्य के प्रति अटल श्रद्धा है, वे बहुत कुछ समझने और समझाने की चेष्टा करते हैं। किन्तु दकियानूसी और उच्छृंखल बातों से उन्हें अत्यन्त घृणा है, अतएव कहीं कहीं वे दर्शक से प्रदर्शक हो गये हैं और कहीं इस प्रकार अधिकार-पूर्वक अपने विचारों को प्रकट करते हैं कि मानों जिसे वे उचित अथवा अनुचित समझते हैं—उसे दूसरे भी ठीक वैसा ही समझें।

किसी के प्रति तिरस्कार या बहिष्कार का भाव न रखते हुए भी उनके मन में बहुत सी मर्यादाहीन बातों के लिये सदैव द्वन्द्व छिड़ा रहा। शुक्लजी ने शृंगारिक भावनाओं की अपेक्षा उन पुरातन कलादर्शों पर लिखी कविता को अधिक उत्तम माना "जो मनुष्य के हृदय को स्वार्थ सम्बन्धों के संकुचित मण्डल से ऊपर उठा कर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है, जहां जाति के नाना रूपों और व्यापारों के साथ उसके प्रकृत सम्बन्ध का सौंदर्य दिखाई पड़ता है और इस अनुभूतियोग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।" शुक्लजी मानों आदर्शों के उत्तुंग हिमाचल पर खड़े होकर अपनी सहज गरिमा से नीचे दृष्टिपात तो करते रहे, किन्तु जीवन के वैभिन्न्य में श्रेय और हेय इन दो पक्षों की पृथक् सत्ता मानते हुए भी उनमें पूरी तरह समन्वय न कर पाए। उन्होंने कविता को शाश्वत सत्य तो माना, किन्तु सांस्कृतिक आदर्शों को वस्तुवादी दृष्टिकोण से न देखने के कारण उनके मन में उलझाव पैदा हो गया, जिससे आदर्श एवं यथार्थ विषयक भ्रान्ति को वे स्पष्ट न कर पाये। इसके विपरीत मैथ्यू आर्नल्ड ने "कविता को मूल में जीवन की आलोचना" स्वीकार किया। शुक्लजी ने अपनी परिभाषा में भाव-पक्ष पर बल दिया, मैथ्यू आर्नल्ड ने बुद्धि-पक्ष पर। एक ने काव्य की रसात्मकता और व्यंजना का क्षेत्र संकुचित अर्थों में प्रकट किया, दूसरे ने जीवन-अनुकृति को ही

श्रेय की प्रयरूपा अभिव्यक्ति माना, किन्तु दोनों में ही वह अभिप्रेत व्याख्या न हुई जो काव्य की अंतरंग आत्मा को स्पर्श कर पाती।

शुक्लजी के विचार लोक-भावना पर आधारित हैं। वे संकुचित व्यक्तिवाद से व्यापक लोकवाद को अधिक महत्त्व देते हैं और इसी पैमाने पर उन्होंने अपने काव्य-संबंधी सिद्धान्त और धर्म का स्वरूप स्थिर किया है। कला अथवा साहित्य में वासनाजन्य अनियन्त्रित भावुकता और भोंडी प्रचारात्मक-वृत्ति उन्हें पसन्द न थी, वरन् वे उन मानवीय संवेगात्मक अनुभूतियों का सम्मान करते थे, जो लोक-मंगल और जीवनोन्मुखी जागरूकता की संवाहक बन कर मरुभूमि में अपनी रसमयी धारा से सिंचन करती हुई जीवन की क्लान्ति को हर लेती हैं। सूर के कृष्ण की अपेक्षा तुलसी के लोक-संस्थापक राम पर वे अधिक मुग्ध थे और उस पुनीत कला की वंदना करते थे, जो सद्विचारों की प्रेरक और मन-प्राण को स्पंदित करने वाली होती है। मैथ्यू आर्नल्ड ने कलापक्ष को निखारने वाले समस्त उपकरणों का संकलन करके जीवन के अखण्ड, अटूट पट पर उन तत्त्वों को भी सम्मिलित कर लिया, जो आचार की उपेक्षा करते हुए भी सुन्दर और चित्ताकर्षक होते हैं। यद्यपि उनमें अंतःकरण को आह्लादित करने वाले नैसर्गिक गुणों का अभाव था तो भी वे कुछ देर के लिये मन-बहलाव तो कर ही सकते थे।

हठधर्मी

शुक्लजी और मैथ्यू आर्नल्ड के मूलगत सिद्धान्तों की एक और विशेषता यह है कि वे जिसे स्वीकृत सत्य मानकर चलते हैं उस पर इस प्रकार अड़ जाते हैं कि ज़रा भी टस से मस नहीं होते। वे हठीले साहित्यकार हैं और अपने प्राणवान् व्यक्तित्त्व एवं उदग्र भावनाओं के कारण अनजान में कई बार अवज्ञाशील हो जाते हैं। २२ दिसम्बर, सन् १८६४ में मैथ्यू आर्नल्ड ने अपने एक मित्र मिस्टर डाइक्स केम्पवेल को पत्र लिखते हुए तात्कालीन कवि टेनीसन के सम्बन्ध में अपनी सम्मत्ति इस प्रकार प्रकट की थी, "मैं टेनीसन को किसी भी रूप में महान् और शक्तिशाली आत्मा नहीं समझता जैसे कि आधुनिक चिंतन-क्षेत्र में गेटे को, गंभीर मनन में वर्ड्सवर्थ को और भावुकता में बायरन को समझता हूं। जब तक कोई, विशेष रूप से इस युग का कवि उक्त ढंग का नहीं है, तब तक मैं उसमें कोई दिलचस्पी नहीं लेता और मेरा दृढ़ विश्वास है कि ऐसा कवि कभी भी जीवन में स्थिरता-पूर्वक अपने पैरों पर खड़ा नहीं रह सकता।"

[" I do not think Tennyson a great and powerful spirit in any line, as Goethe was in the line of modern thought, Wordsworth in that of contemplation, Byron even in that of passion ; and unless a poet, especially a poet at this time of day, is that, my interest in him is only slight, and my conviction that he will not finally stand high is firm. "]

'इन मेमोरियम' (In Memoriam) के अमर कवि टेनीसन के सम्बन्ध में मैथ्यू आर्नल्ड की यह उक्ति हमें आश्चर्य में डाल देती है और उसकी अपेक्षा बायरन को अधिक महत्त्व देना तो और भी विलक्षण बात है। किंतु किन्हीं अज्ञात कारणों से वह अपने समकालीन अंगरेज़ कवियों की कभी प्रशंसा न करता था। इसका कारण कोई व्यक्तिगत द्वेष अथवा संकीर्ण वृत्ति न थी क्योंकि हीन-भावना अथवा मानापमान के छिछलेपन से वह ऊपर उठ चुका था, वरन् जैसा कि उसके मित्र लॉर्ड कॉलरिज ने कहा है, "वे उसकी उपस्थिति में मुरझा जाते थे।" मैथ्यू आर्नल्ड का स्वभाव ही कुछ ऐसा था कि वह अपने वर्त्तमान् से सन्तुष्ट न होता था और उसके स्वजातीय समकालीन लेखकों के व्यक्तित्त्व उसके अपने निजी व्यक्तित्त्व के ऊपर ठहर न पाते थे, जिससे सहज ही उसमें प्रतिस्पर्द्धा की भावना जाग्रत हो जाती थी। व्यक्तिगत पक्ष में वह अपनी मन की प्रतीति पर इतना आ टिका था कि सूक्ष्म अनुभूति की उपेक्षा कर बैठा। शेली के सम्बन्ध में उसने लिखा है, "वह उस सुन्दर , विफल देवदूत की भांति है, जो व्यर्थ ही शून्य में अपने चमकीले पंख फड़फड़ाता है।"

[" A beautiful and ineffectual angel beating in the void his luminous wings is vain. "]

अपनी अत्यधिक तीव्र कल्पना के कारण शेली न जाने कितने विलक्षण सपने अपनी पलकों में नित्य संवारता रहा था और उसकी आकाशचारी प्रतिभा ने यथार्थ की कठोर भूमि को कभी स्पर्श न किया था, अतएव जहां तक उसमें कोरी कल्पना का प्राधान्य है, वहां तक मैथ्यू आर्नल्ड का यह कथन आंशिक रूप से सत्य कहा जा सकता है। शृंगारिक भावुकता और अधिक रसमग्नता के कारण वह कीट्स से भी मरते दम तक समझौता न कर सका था। वस्तुतः अपनी निजी धारणाओं पर वह इतना दृढ़ था कि दूसरे के विश्वास उसे आसानी से न पकड़ पाते थे।

आयरिश कवि बर्क (Burke) के सम्बन्ध में मैथ्यू आर्नल्ड लिखता है, "इतने महान् व्यक्ति के विरुद्ध, जो राजनीति और साहित्य में धुरन्धर, देश-

प्रेम में अग्रगण्य और विचारशक्ति में अद्वितीय है—मैं कुछ कहूं इसके लिए ईश्वरादेश नहीं है। किन्तु वह अंग्रेजी-गद्य का सब से बड़ा लेखक है—इस मत से मैं विनम्रतापूर्वक असहमत हूं। अंग्रेजी का सब से महान् गद्य-लेखक शेक्सपीयर है। मेरे विचार से बर्क ने तो गोल्डस्मिथ अथवा स्विफ्ट की भांति भी कभी स्वच्छ अंग्रेजी न लिखी। वह अत्यन्त स्पष्ट और मुखर तो हो सकता था, पर मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार वह बेकन, मिल्टन, ड्राइडन अथवा सर टॉमस ब्राउन की ऊंचाई को नहीं छू सकता था।

["Heaven forbid that I should say a word against that great man—great in politics, great in literature, passionate in patriotism, fertile in ideas. But to the preposition that he was the greatest writer of English prose I respectfully demur. The greatest writer of English prose is Shakespeare. I do not think that Burke wrote as pure English as his compatriot Goldsmith, or even as Swift. Eloquent, massively eloquent, as he can be, he does not in my judgement rise to the level of Bacon, or Milton, or Dryden, or Sir Thomas Brown. "]

वस्तु को अपनी परिपार्श्विक परिस्थिति से तोड़ कर कभी कभी मैथ्यू आर्नल्ड विषय के प्रतिपादन में इतना विभोर हो जाता था कि उसे केवल तथ्य के उद्घाटन से ही संतोष न होता था, वरन् अत्युक्तिपूर्ण शब्दों में चित्र-विचित्र उपमान खड़ा करके वह उसके महत्त्व की व्यंजना करता था। ऑक्सफोर्ड की प्रशंसा में लिखे हुए उसके निम्नलिखित वाक्य विशेष उल्लेखनीय हैं।

"सुन्दर नगर! इतना सम्मान्य, इतना भव्य और हमारे युग के भीषण बौद्धिक वातावरण से सर्वथा पृथक् रह कर इतना गम्भीर। नासमझ, निर्मम युवकों की नित्य क्रीड़ास्थली होते हुए भी वह अपने सहज गांभीर्य में डूबा हुआ और अपने विस्तृत उद्यानों को चन्द्र-ज्योत्स्ना को समर्पित करता हुआ तथा अपने उच्च-शिखरों से मध्ययुग की अतीत-कथा सुनाता हुआ यह ऑक्सफोर्ड नित्य ही अपने अवर्णनीय आकर्षण से हम सब को (इससे भला कौन इन्कार कर सकता है) सच्चे लक्ष्य की ओर उन्मुख करता है—उस आदर्श, उस पूर्णता, उस सौन्दर्य-एक शब्द में—उस सत्य की ओर ले जाता है, जहां ट्यूबिंगेन का समस्त विज्ञान भी नहीं ले जाता"

(" Beautiful City ! So venerable, so lovely, so unravaged by fierce intellectual life of our century, so serene ! There are our young barbarians, all at play ! And yet, steeped in sentiment as she lies, spreading her gardens to the moonlight, and whispering her towers the last enchantment of the Middle Ages, who will deny that Oxford, by her ineffable charm, keeps ever calling us nearer to the true goal of all of us, to the ideal, to perfection—to beauty, in a word, which is only truth seen from another side ? Nearer, perhaps, than all the science of Tubingen.")

सामयिक गति-विधि का निरूपण करते हुए मैथ्यू आर्नल्ड अपने ब्यौरों की दृढ़ नींव पर अडिग रूप से स्थित था। वह किसी की महानता से आतंकित न होकर स्वयं ही उन्हें आक्रान्त कर लेता था। उसकी सबसे बड़ी खूबी थी कि वह बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से वस्तु का मूल्यांकन करता हुआ एक एक चित्र उठा कर इस प्रकार उनका विश्लेषण करता था कि रेखाओं की गहराई, रंगों की योजना एवं रूप-गठन का संतुलन सभी कुछ मानों दर्शक के नेत्रों के समक्ष सजीव रूप से समुपस्थित हो जाता था। वह अत्यन्त निर्भीक और निर्द्वन्द्व होकर प्रत्येक व्यक्ति की आलोचना करता था और उनके गुण-दोषों के प्रति वह इतना सजग, सचेष्ट था कि उनकी विशृंखलताओं अथवा सामर्थ्य के भ्रामक जाल में न फंस कर उनकी गहराई का पर्दाफाश कर देता था। अनेक बार अपने अनुदार दृष्टिकोण एवं विशिष्ट रुचि के कारण वह समकालीन साहित्यिकों की पूर्ण प्रतिष्ठा न कर पाया, किन्तु उसकी दलीलें इतनी सशक्त और ठोस होती थीं कि पाठक उसकी बात से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। इसमें संदेह नहीं कि उसकी अधिकांश समालोचना में समझौते के तत्व बहुत कम विद्यमान् हैं, तथापि पढ़ते हुए पाठक को कहीं भी ऐसा भान नहीं होता कि जानबूझ कर ज़बर्दस्ती आलोच्य पर तीखे व्यंग कसे जा रहे हैं, हां, कहीं कहीं उत्तेजना में उसके प्रहार अत्यन्त प्रखर हो गये है।

लगभग मैथ्यू आर्नल्ड की भांति शुक्लजी में भी गंभीर आत्माभिव्यक्ति और हल्के साहित्य एवं साहित्यकारों के प्रति असहिष्णुता का भाव विद्यमान् था। पाश्चात्य साहित्य और सभ्यता के सम्पर्क में आने के कारण जब हिन्दी-कविता अपने शैशव में ही सांस्कृतिक आदर्शों की अवहेलना कर उच्छृंखलता की ओर लपक रही थी—उस समय शुक्लजी ने आगे बढ़ कर उस पर नियंत्रण करना आवश्यक समझा। योरोपीय रोमांटिसिज्म के फलस्वरूप कविता में बढ़ते हुए

मानसिक-व्यभिचार को देखकर वे चौंक पड़े और उन्होंने प्राचीन काव्य-सत्य को लक्ष्य में रखते हुए अपनी धारणाओं के अनुरूप सीमा-रेखाएं निर्धारित कीं ।

शुक्लजी साहित्य का जातीयता से अभिन्न सम्बन्ध मानते थे और व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि को अधिक महत्त्व देते थे । 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में वे लिखते हैं, "जैसा सम्पूर्ण जीवन अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष का साधन है, वैसे ही उसका एक अंग काव्य भी । 'अर्थ' का स्थूल और संकुचित अर्थ द्रव्य-प्राप्ति ही नहीं लेना चाहिये, उसका व्यापक अर्थ लोक की सुख-समृद्धि लेना चाहिये । जीवन के और साधनों की अपेक्षा काव्यानुभाव में विशेषता यह होती है कि वह एक ऐसी रमणीयता के रूप में होता है, जिसमें व्यक्तित्त्व का लय हो जाता है । बाह्य-जीवन और अन्तर्जीवन की कितनी उच्च भूमियों पर इस रमणीयता का उद्घाटन हुआ है, किसी काव्य की उच्चता और उत्तमता के निर्णय में इसका विचार अवश्य होता आया है और होगा ।"

शुक्लजी के अनुसार साहित्य जीवन और जगत् के नाना रूपों और व्यापारों से असंभिन्नत्त्व के आदर्श को मूर्त्त करने का प्रयास है । तुलसी, जायसी और सूर आदि अमर कलाकारों की कृतियों में एक यही सब से बड़ा सत्य निहित है, जो सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है । किन्तु इसके विपरीत हिन्दी के आधुनिक छायावादी कवि स्थूल सौंदर्य के अन्वेषक और इस सत्य को भावों की दुरूहता एवं शब्दों की भूल-भुलैय्या में लपेट देने का प्रयत्न करते हैं, अतः शुक्लजी ने ऐसे व्यक्तियों का खुल कर विरोध किया है । 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में 'नई धारा' के प्रकरण में वे लिखते हैं कि "कलावाद के प्रसंग में बार-बार आने वाले 'सौंदर्य' शब्द के कारण बहुत से कवि बेचारी स्वर्ग की अप्सराओं को पर लगा कर कोहकाफ़ की परियों या बिहिश्त के फ़रिश्तों की तरह उड़ाते हैं; सौंदर्य-चयन के लिए इन्द्र-धनुषी बादल, उषा, विकच कलिका, पराग, सौरभ, स्मित आनन, अधर-पल्लव इत्यादि बहुत सी सुन्दर और मधुर सामग्री प्रत्येक कविता में जुटाना आवश्यक समझते हैं । स्त्री के नाना अंगों के आरोप के बिना वे प्रकृति के किसी दृश्य के सौंदर्य की भावना ही नहीं कर सकते । 'कला-कला' की पुकार के कारण योरप में प्रगीत-मुक्तकों (Lyrics) का ही अधिक चलन देख कर यहां भी उसी का ज़माना यह बताकर कहा जाने लगा कि अब ऐसी लम्बी कवितायें पढ़ने की किसी को फुरसत कहां, जिनमें कुछ इतिवृत्त भी मिला हुआ हो । अब तो विशुद्ध काव्य की सामग्री जुटाकर सामने रख देनी चाहिये, जो छोटे-छोट प्रगीत-मुक्तकों

में ही संभव है। इस प्रकार काव्य में जीवन की अनेक परिस्थितियों की ओर ले जाने वाले प्रसंगों या आख्यानों की उद्‌भावना बन्द-सी हो गई।"

प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, और अन्य कतिपय समकालीन कवियों की कविताओं में भाषा-वैचित्र्य, कोमल-पद विन्यास, भावावेश की कृत्रिम व्यंजना और मूर्त्त प्रत्यक्षीकरण से शुक्लजी सदैव असंतुष्ट रहे--हां, जब कभी उनकी काव्यानुभूतियां विस्तृत अर्थभूमि और जीवन के नित्य स्वरूप पर आ टिकीं, तब तब उन्होंने उन्हें खूब सराहा और पीठ ठोकी। 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में उन्होंने पंत के सम्बन्ध में लिखा, "श्री सुमित्रानंदन पंत ने 'गुंजन' में सौंदर्य-चयन से आगे बढ़ जीवन के नित्य स्वरूप पर दृष्टि डाली है; सुख-दुःख दोनों के साथ अपने हृदय का सामंजस्य किया है और 'जीवन की गति में भी लय' का अनुभव किया है। बहुत अच्छा होता यदि पंतजी उसी प्रकार जीवन की अनेक परिस्थितियों को नित्यरूप में लेकर अपनी सुन्दर चित्रमयी प्रतिभा को अग्रसर करते, जिस प्रकार उन्होंने 'गुंजन और 'युगांत' में किया है।"

मंगलमय आदर्शों को लक्ष्य में रखते हुए शुक्लजी ने अपनी धारणाओं के अनुरूप प्रसाद की विशेषताओं पर भी दृष्टिपात किया है, यद्यपि उन्हें उनसे कई शिकायतें भी हैं "स्व० जयशंकर प्रसाद जी अधिकतर तो विरह–वेदना के नाना सजीले शब्द-पथ निकालते तथा लौकिक और आलौकिक प्रणय का मधुगान ही करते रहे, पर इधर 'लहर' में कुछ ऐतिहासिक वृत्त लेकर छायावाद की चित्रमयी शैली को विस्तृत अर्थ-भूमि पर लेजाने का प्रयास भी उन्होंने किया और जगत् के वर्त्तमान् दुःख-द्वेषपूर्ण मानव-जीवन का अनुभव करके इस 'जले जगत् के वृन्दा-वन बन जाने' की आशा भी प्रकट की तथा 'जीवन के प्रभात' को भी जगाया।"

इसी प्रकार निराला के सम्बन्ध में भी अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए वे लिखते है, " निराला जी की रचना का क्षेत्र तो पहले से ही कुछ विस्तृत रहा। उन्होंने जिस प्रकार 'तुम' और 'मैं' में उस रहस्यमय 'नाद-वेद आकार सार' का गान किया, 'जूही की कली' और 'शेफालिका' में उन्मद प्रणय-चेष्टाओं के पुष्प-चित्र खड़े किये--उसी प्रकार 'जागरण-वीणा' बजाई; इस जगत् के बीच विधवा की विधुर और करुण-मूर्ति खड़ी की और इधर आकर 'इलाहाबाद के पथ पर' एक दीन स्त्री के माथे पर के श्रम-सीकर दिखाए।" महादेवी की काव्यानुभूतियों को लोकोत्तर स्वीकार करते हुए भी शक्लजी ने इस बात पर अपना संशय प्रकट

किया है कि "कहां तक वे वास्तविक अनुभूतियां है और कहां तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना यह नहीं कहा जा सकता ।"

शुक्लजी और मैथ्यू आर्नल्ड के विभिन्न कवियों पर दिये गये उपर्युक्त उद्धरणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उनकी तमाम बातों में नितांत असंगति न होकर बहुत कुछ सत्यांश है । सच्चा साहित्य-स्रष्टा अपने पूरे प्राणों से जीता है और अपने प्रति सगर्व एवं जागरूक रहकर साहित्यिक-विशेषताओं को प्रकट करता हुआ उसके असंयम और दोषों को भी चीन्हता है, जो वास्तव में महत्त्वपूर्ण है ।

कवि-रूप में

सर्वश्रेष्ठ समालोचक और निबन्धकार होते हुए भी मैथ्यू आर्नल्ड और शुक्लजी कविरूप में भी प्रकट हुए है । संसार के कोलाहल से दूर और एकान्त साधना में रत उनकी विश्लेषक बुद्धि जब कभी अपने आप में डूब कर सरस हो उठी है तो स्वयमेव उनके अतल से भावमय उद्‌गार बरबस फूट पड़े हैं । अपनी साहित्य-साधना के आरम्भ में ही शुक्लजी ने 'गोस्वामीजी और हिन्दूजाति', 'भारतेन्दु जयन्ती', 'हमारी हिन्दी', 'आशा और उद्योग' आदि अनेक कवितायें लिखीं, जो सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं । तत्पश्चात् 'लाइट ऑफ एशिया' (Light of Asia) का ब्रजभाषा में 'बुद्ध चरित' नाम से उन्होंने पद्यमय अनुवाद किया, जो अत्यन्त उत्कृष्ट सिद्ध हुआ ।

अपनी सभी कविताओं में शुक्लजी ने प्राकृतिक सौन्दर्य के करुणतम कोमल चित्र प्रस्तुत किये हैं और सृष्टि के खुले प्रसार एवं मनोरम दृश्यों का यथातथ्य चित्रण किया है । 'मनोहर छटा', 'आमंत्रण', 'मधुस्रोत', 'प्रकृति-प्रबोध' और 'हृदय का मधुर भार' आदि कविताओं में प्रकृति के यथार्थ और संश्लिष्ट चित्र बिखरे पड़े हैं, जिनमें यत्रतत्र रहस्यभावना के भी दर्शन होते हैं ।

"धुंधले दिगंत में बिलीन हरिदाभ रेखा
किसी दूर देश की सी झलक दिखाती है ।
जहां स्वर्ग भूतल का अन्तर मिटा है, चिर
पथिक के पथ की अवधि मिल जाती है ।
भूत औ भविष्यत् की भव्यता भी सारी छिपी
दिव्य भावना सी वही भासती भुलाती है ।

दूरता के गर्भ में जो रूपता भरी है वही
माधुरी ही जीवन की कटुता मिटाती है।"
* * *
"उछल उमड़ और झूम सी रही है सृष्टि
गुंफित हमारे साथ किसी गुप्त तार से
तोड़ा था न जिसे अभी खींच अपने को दूर।"

मैथ्यू आर्नल्ड की हृदय-वीणा के मूक-स्वर भी सर्वप्रथम कविता में ही झंकृत हुए थे, किन्तु उसकी भावनायें शृंगारिक कवियों की भांति प्रेम के पागल उन्माद से विशृंखल अथवा दुरूह अस्पष्टता में डूबी हुई नही हैं। यौवनोचित प्रणयावेगों की हड़बड़ाहट और अनुराग की अरुणिमा से ओत-प्रोत न होकर वे एक बुद्धिवादी विश्लेषक के हृदय की सबल, सशक्त अभिव्यक्ति हैं, जो जीवन के अंतर्हित सत्य को ढूंढ़ने का मानों प्रयास करती हैं। कवि की दृष्टि सुषमासिक्त भूमि पर न टिक कर चिन्तनलोक में भ्रमण करती है और वह मूक सौन्दर्य-स्रष्टा न होकर मानव-द्रष्टा है, जो चिरन्तन भाव-जगत् में पैठ कर अतृप्ति नहीं परितृप्ति की याचना करता है।

"एक पाठ, ओ प्रकृति! मुझे सीख लेने दे।
केवल एक पाठ, जो तेरी प्रत्येक हवा से ध्वनित होता है।
एकता के सूत्र में लिपटा हुआ दो कर्त्तव्यों का पाठ,
चाहे सारा विश्व ही शान्ति से अनविच्छिन्न इस परेशानी के प्रति
अपना आक्रोश क्यों न व्यक्त करे।"

(" One lesson, Nature, let me learn of thee,
One lesson that in every wind is blown,
One lesson of two duties served in one,
Though the loud world proclaim their enmity—
Of toil unsevered from tranquillity!")

जीवन की यथार्थता से टकरा कर उसे अपनी आत्मा की सत्ता पर पूर्ण आस्था हो गई है और संसार की रसज्ञता से ऊब कर वह अन्तर के क्रन्दन में विलीन होना चाहता है।

**"शान्ति अच्छी होते हुए भी जीवन की चरमोन्नति नहीं है।
मनुष्य कदाचित् उसकी आकांक्षा करता है, किन्तु हमारा यौवन
उसमें परितोष नहीं पाता।"**

(" Calm is not life's crown, though calm is well.
'Tis all perhaps that man requires,
But 'tis not what our youth desires. ")

शुक्लजी की भांति प्रकृति-चित्रण भी मैथ्यू आर्नल्ड की कृतियों की सर्वोपरि विशेषता है। उसने जीवन की प्रतिदिन की चिरपरिचित वस्तुओं का यथातथ्य चित्रण करके उन्हें इस प्रकार सजीव एवं सप्राण बना दिया है कि जिनसे उसकी सूक्ष्म दृष्टि एवं आत्मा की एकान्त प्रक्रिया का बोध होता है। 'थाइर्सिस' (Thyrsis) में लैण्डस्केप का निम्न चित्रण कितना सुन्दर और भव्य है।

"जून के आरम्भ में जब कि वर्ष भर का बासंतिक उन्माद समाप्त हो गया था और गुलाब के पुष्प विकसित न हुए थे तथा लम्बे-लम्बे दिन भी अभी शुरू न हुए थे, जब कि उद्यान की पगडंडियां और तमाम घास से बिछी पृथ्वी मई के लाल-सफेद झड़े पुष्पों और अखरोट के फूलों से आच्छन्न हो गई थी——तब एक आंधी-ग्रस्त प्रातःकाल को मैंने कोयल की विरहाकुल कूक सुनी, जो उद्यान के वृक्ष-समूह को चीरती हुई लड़खड़ाती हवा और मूसलाधार वर्षा के साथ साथ गीले खेत को पार करके आ रही थी और जिससे ध्वनित होता था——बासंतिक सौन्दर्य-श्री तो खत्म हो गई अब मैं भी जाती हूं।

(" So, some tempestuous morn in early June,
When the year's primal burst of bloom is over,
Before the roses and the longest day—
When garden-walks, and all the grassy floor,
With blossoms, red and white, of fallen May,
And chestnut-flowers are strewn—
So have I heard the cuckoo's parting cry,
From the wet field, through the vext garden trees
Come with the volleying rain and tossing breeze;
The bloom is gone, and with the bloom go I !)

ओ शीघ्र निराश हो जानेवाली ! तू किसलिये जा रही है। अब तो शीघ्र ही मध्य ग्रीष्म की बहार शुरू हुआ चाहती है। शीघ्र ही लोहित वर्ण कस्तूरी फूटेगी और

बड़ी होगी। स्वर्ण की पंखुड़ियां-सी उसकी लाल पत्तियां बिखर-बिखर कर हमें मिलेंगी। मधुर विलियम पुष्प अपनी प्रिय परिचित सुगन्ध के साथ कोमल वृन्तों की महक को हवा के साथ प्रसारित करेगा। उद्यान-पथ से दूर, जो गुलाब के पुष्प चमक रहे हैं और जालियों पर टंगी माधवी लतायें स्वप्न-विभोर बाग के वृक्षों के नीचे जमा हो जायेंगी। पूर्ण विकसित चन्द्र और श्वेत सान्ध्य-तारा भी अपना प्रकाश इतस्ततः विकीर्ण करेगा।"

("Too quick despairer, wherefore wilt thou go!
Soon will the high Midsummer pomps come on.
Soon will the musk carnations break and swell,
Soon shall we have gold-dusted snapdragon,
Sweet William with its homely cottage-smell,
And stocks in fragrant blow;
Roses that down the alleys shine afar
And open, jasmine—muffled lattices
And groups under the dreaming garden-trees,
And the full moon, and the white evening-star.")

स्थूल दृष्टि से शुक्लजी और मैथ्यू आर्नल्ड के प्रकृति-चित्रण में साम्य होते हुए भी अन्तर यह है कि शुक्लजी की सहज चेतना केवल ऊपरी सतह को ही छूकर रह जाती है, मैथ्यू आर्नल्ड उसकी तह तक पहुंच जाता है। शुक्लजी प्राकृतिक-उपादानों के आतुर प्रेक्षक हैं, मैथ्यू आर्नल्ड उसके अन्तर्भूत सौन्दर्य का सर्जक भी है। एक केवल प्रकृति से स्थूल सम्बन्ध जोड़ कर उसके मनोरम दृश्यों का अवलोकन कर संतुष्ट हो जाता है, दूसरा उसकी आत्मा की असीमता में अपने अस्तित्व को लय कर देना चाहता है। शुक्लजी का प्रकृति और उसकी प्रत्येक वस्तु से सहज साहचर्य्य-भाव है, वे सहज गरिमा से उनका सौन्दर्योद्घाटन करते हैं, किन्तु मैथ्यू आर्नल्ड अपने विषय की गहराई तक पहुंच कर भी प्रकृति की उन सुलभ, अकृत्रिम चेष्टाओं पर दृष्टिपात नहीं कर पाता, जो शुक्लजी के प्रकृति-चित्रण की विशेषता है।

मैथ्यू आर्नल्ड का काव्य-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। वह जीवन पर्यन्त कविता लिखता रहा और अनेक समीक्षात्मक पुस्तकों के साथ-साथ 'दि स्ट्रेड रिवलर' ((The Strayed Reveller),"इम्पीडोक्लीज़ ऑन् एट्ना'(Empedocles on Etna,) 'सोहराब एण्ड रुस्तम' (Sohrab and Rustam),'दि स्कॉलर

जिप्सी' ('The Scholar Gipsy) और 'मेरोप' (Merope) आदि उसके प्रमुख काव्य-ग्रन्थ भी प्रकाशित होते रहे। क्या कविता—क्या गद्य सभी में उसकी अंतरंग साधना का भव्य समारोह है और वह सदैव टटोलता हुआ-सा कुछ पाना चाहता है। वह दुनियां का प्रार्थी होकर अथवा दूसरों की मान्यताओं और मत-विश्वासों पर टिक कर जीना नहीं चाहता, वरन् अपन पैरों पर खड़ा होकर कुछ करने का इच्छुक है। कविता में जब उसके अन्तर का औत्सुक्य प्रस्फुटित होकर बहा था,—तब भी वह एक सूक्ष्मदर्शी आलोचक था और स्थूल जीवन से ऊपर उठ कर जब उसके विचार चिन्तन के भार से आक्रान्त हो ठोस होकर गद्य में व्यक्त हुए,—तब भी वह विश्लेषक बन कर बहुत कुछ समझने-समझाने की चेष्टा करता रहा। कभी कभी संसार से खिंच कर मैथ्यू आर्नल्ड अपने अन्तरतम विराग को अपनी कृतियों में प्रकट करता हुआ गहरी चोट कर बैठता है, किन्तु कभी भी अपने अहं को अखंडित रख कर वह दूसरों की अश्रद्धा का पात्र नहीं बनता।

कहने की आवश्यकता नहीं कि शुक्लजी और मैथ्यू आर्नल्ड की विलक्षण प्रतिभा जीवन के बुझते सत्य की प्रखर ज्योति को उद्भासित करने की चेष्टा में सतत संलग्न रही। कला की आत्मा की भावच्छटा में रमते हुए वे दोनों ही साहित्य के तत्पर और जाग्रत प्रहरी हैं और उनकी निर्भीक कर्मनिष्ठता एवं जिज्ञासु जाग्रति की छाप उनकी अमर कृतियों में इस प्रकार अंकित है कि परवर्त्ती समालोचकों को वे सदैव ही नवीन दिशा की ओर उत्प्रेरित करती रहेंगी।

महादेवी वर्मा और क्रिस्टिना रोज़ेटी

श्री महादेवी वर्मा

जन्म–विक्रम सम्वत् १९६४

जन्मस्थान–फर्रुखाबाद
(उत्तर प्रांत)

क्रिस्टिना रोज्जेटी

जन्म–ईसवी सन्–
५ दिसम्बर, १८३०

मृत्यु–ईसवी सन्–
२९ दिसम्बर, १८९४

जन्मस्थान–
चारलोट स्ट्रीट, **लंदन**

*

"ओरे दुयार खुले देरे--
बाजा शंख बाजा ।
गम्भीर राते एसेछ आज
आंधार घरेर राजा ।
बज्र डाके शून्य तले
विद्युतेरि झिलिक झले
छिन्न शयन टेने एने
आङिना तोर साजा ।
झड़ेर साथे हटात् ऐलो
दुःख रातेर राजा ।" (टैगोर)

"ओरे, द्वार खोल दे। शंख नाद कर। गम्भीर रात्रि में आज अंधेरे घर का राजा आया है। शून्य तल में मेघ भीषण गर्जना कर रहे हैं। विद्युत् कौंध रही है। बिछा दे अपनी टूटी खाट। आज अकस्मात् दुःख की रात का राजा आंधी-पानी के साथ आ पहुंचा है।"

जिस अज्ञात प्रियतम की अहर्निश बाट जोहती हुई ये कवयित्रियां पलक पांवड़े बिछाए—उन्मन और उदास—उसकी निदारुण विरह-व्यथा में तिल तिल कर जल रही थीं—उससे दुर्दिन में हठात् भेंट हो गई, किन्तु न जाने किस अपरिचित गन्तव्य को उद्देश्य बना वह निर्मोही प्रणय-बन्धन विच्छिन्न करके अपनी धुंधली

सी झलक दिखा चला गया और मिलन के प्रथम प्रहर में ही उससे सदैव के लिये विछोह हो गया। वे प्रिय को आंख भर देख भी तो न पाईं।

"इन ललचाई पलकों पर
पहरा जब था ब्रीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का।"

महादेवी और क्रिस्टिना रोज्जेटी की काव्य-साधना वाह्य एवं अन्तश्चेतना का एकीकरण है, जिसमें उनकी वैयक्तिक आत्मानुभूति की छाप, कल्पना की कमनीयता और ऐकान्तिक आत्म-समर्पण की भावना है। उनकी काव्यगत–आत्मा रहस्यमय अन्धकार की निबिड़ता से ओत-प्रोत, किन्तु अरूप सौंदर्य की प्रकाश-रेखाओं को यत्रतत्र छिटकाती हुई–उनकी मूक अन्तर्ध्वनि एवं विराट् भावनाओं की स्वर-लिपि से अंकित-सी जान पड़ती है, जहां प्रणय के मधुर भार से आक्रान्त विवश आकुलता और हृदय की छटपटाहट आंसुओं की राह बाहर छहर छहर पड़ती है। जीवन की समस्त सुषुप्त स्मृतियां जाग्रत होकर मानों पार्थिव अवगुंठन से झांक उस अपार्थिव सत्य को पा लेने को आकुल हैं, जो बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे सौंदर्य-श्री से जगमगा रहा है, किन्तु जिसमें आत्म-साधना और स्वानुभूत-सत्य की सात्विक-दीप्ति न होकर आन्तरिक वेदना का समावेश होने से हृदय-पक्ष से भी अधिक मानसिक-पक्ष की प्रधानता है। महादेवी और क्रिस्टिना के काव्य में जो भावों की उत्कट तीव्रता, मर्मान्तक वेदना और अन्तर का हाहाकार व्यक्त हुआ है—वह अलौकिक अथवा आध्यात्मिक विरह-गर्भित न होकर लौकिक प्रणय की सहजानुभूति से उद्भूत हुआ है और काल्पनिक आवरण में लिपट कर उत्तरोत्तर रहस्यपूर्ण और अविज्ञेय होता गया है। इन दोनों कवयित्रियों के हृदय निरन्तर किसी अभाव का अनुभव करते हैं और उस खोई हुई वस्तु की खोज में भटक रहे हैं, जिसके सामीप्य से उनके निस्तब्ध भाव संगीत के स्वर में मुखरित होकर आनन्द की सरस सृष्टि कर सकते हैं।

"जो तुम आ जाते एक बार !
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग;

गाता प्राणों का तार-तार
अनुराग-भरा उन्माद - राग;
आंसू लेते वे पद पखार ।
हंस उठते पल में आर्द्र नयन,
धुल जाता ओठों से विषाद,
छा जाता जीवन में बसन्त--
लुट जाता चिर-संचित विराग;
आंखें देती सर्वस्व वार ।"

जीवन-झांकी

महादेवी और क्रिस्टिना के जीवन पर दृष्टिपात करने से एक बात सहज ही द्रष्टव्य है कि उनका काव्य, वास्तव में, उनके व्यक्तिगत जीवन में घटित घटनाओं का प्रतिबिम्ब है । माता-पिता की स्नेहच्छाया में अबोध शैशव बिता कर जीवन की कठोर वास्तविकता जब उनकी बुद्धि के सयानेपन से आ टकराई तो अनमिल भावनाओं के कारण दो भिन्न हृदय प्रेम-सूत्र में न बंध सके और तभी से उनके मानस में नीरवता, बेचैनी और धुंधलेपन की छाया परिव्याप्त हो गई । यौवन के तूफानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत को मचल रहा था और जीवन-गगन के रक्ताभ-पट पर स्नेह ज्योत्स्ना छिटकी पड़ रही थी तभी अकस्मात् विफल प्रेम की धूप खिलखिला पड़ी और पुलकते प्राणों की धूमिलता में अस्पष्ट रेखायें सी अंकित कर गई । आत्म-संयम का व्रत लिये हुए उन्होंने जिस लौकिक प्रेम को ठुकरा कर पीड़ा को गले लगाया--वह कालान्तर में आन्तरिक शीतलता से स्नात होकर बहुत कुछ निखर तो गई, किन्तु उनके हठीले मन का उससे कभी लगाव न छूटा और वे उसे निरन्तर कलेजे से चिपटाये रखने की मानों हठ पकड़ बैठीं ।

"पर शेष नहीं होगी यह
मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूंढ़ा,
तुम में ढूंढूंगी पीड़ा ।"

जिस प्रकार महादेवी की आत्म-साधना और गम्भीर-चिन्तन की एकरसता विवाह से भंग न हुई, उसी प्रकार क्रिस्टिना की जीवन-धारा भी

प्रतिकूल परिस्थितियों की चट्टानों से टकरा कर कभी निश्चित् मर्यादा का उल्लंघन न करने पाई और उसकी अन्तर्मुखी प्रवृत्तियां अधिकाधिक व्यापक होकर अग्रसर होती रहीं। एकान्त-चिन्तनरत घर के किसी शून्य-कक्ष में बैठ कर जब वह अपनी सुन्दर, कोमल उंगलियों से कुछ बुनती होती और उसकी भोली, निरीह दृष्टि दूर कुछ खोजती हुई-सी क्षितिज के अन्तर्पट पर जा अटकती तो उसका रूप अत्यन्त आकर्षक हो जाता। इसी स्थिति में कौलिंसन ने सर्वप्रथम उसे बैठे देखा था और वह तत्क्षण ही उसकी आकर्षक भावभंगिमा पर मुग्ध हो उठा था। क्रिस्टिना उस समय अठारह वर्ष की थी और यद्यपि वह भी अपने बड़े भाई डी० जी० रोज्जेटी के मित्र जेम्स कौलिंसन से प्रभावित हुए बिना न रही थी, तथापि धार्मिक विचारों और आध्यात्मिक प्रवृत्ति की होने के कारण उसने इस स्वतन्त्र विचारों के नवयुवक से विवाह-सम्बन्ध अस्वीकार कर दिया था। इससे खिन्न होकर कौलिंसन ने अपना अधिकांश समय भगवद्-आराधना में व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया और फल-स्वरूप क्रिस्टिना को बाध्य होकर विवाह के लिये उसे अपनी स्वीकृति देनी पड़ी।

उस समय क्रिस्टिना की लिखी हुई स्फुट कविताओं में जो भाव व्यक्त हुए हैं, उनमें लौकिक प्रेम से परे किसी दूरस्थ वस्तु को पाने की अतृप्त वासना है, जो वह स्वयं बताने और समझने में असमर्थ है। कौलिंसन के मिलने से पूर्व एक और प्रणय-घटना क्रिस्टिना के जीवन में घट चुकी थी, जिसकी याद वह जीवन-पर्यन्त न भुला सकी और जो रह रह कर उसके हृदय में एक मधुर टीस सी जगा जाती थी। अपने अध्ययन काल में जब कि वह अत्यन्त छोटी थी और अपने भाई के साथ बूढ़े पिता के तत्त्वावधान में पढ़ती थी तो चार्ल्स केले नाम का एक शर्मीला, प्रतिभा-सम्पन्न युवक भी वहां पढ़ने के लिये प्रतिदिन आया करता था, जो अत्यन्त विनम्र और चिन्तनशील प्रवृत्ति का होने के कारण क्रिस्टिना का उपयुक्त जीवन-सहचर हो सकता था। क्रिस्टिना से उसकी मित्रता बढ़ती गई और वृद्ध पिता की मृत्यु के पश्चात् तो यह मित्रता प्रगाढ़ प्रेम में परिवर्तित हो गई, किन्तु धार्मिक विचारों में समानता न होने के कारण वह उसे पतिरूप में वरण न कर सकी।

कदाचित् अपने व्यथित मन को शान्त करने और हृदय के घाव को भरने के लिये ही क्रिस्टिना ने कौलिंसन से विवाह-सम्बन्ध स्वीकार किया था, किन्तु जो प्राथमिक प्रेम की असफलता का करुण क्रन्दन उसके अन्तर में समा गया था, वह कभी मिटने न पाया और निराशा की सघनता में ज्वलित व्यथा की शमा उसे प्रेम की

शीतलता प्रदान न कर सकी। मृत्यु की-सी छाया उसके समस्त जीवन को आच्छन्न किये रही और कौलिंसन से सम्बन्ध स्थापित होने के बावजूद भी जो उसने कवितायें लिखीं—वे उसके लिये न होकर प्रथम प्रणयी को लक्ष्य में रख कर ही लिखी गईं।

"मेरी अकांक्षा है कि मैं उस प्रथम दिन, प्रथम घड़ी और प्रथम क्षण को याद रख सकती जबकि तुम मुझे मिले थे। क्या ही अच्छा होता यदि मैं बता सकती कि उस समय मौसम कैसा था—सुहावना या उदास और शीत पड़ रहा था अथवा गर्मी, किन्तु वह तो अनबूझे ही विस्मृति के गर्त में समा गया। मैं तब वर्तमान् और भविष्य की ओर देखने में कैसी अंधी थी और अपने भाग्य-वृक्ष के प्रस्फुटन को लक्ष्य रखने में कैसी मन्दबुद्धि, जो न जाने कितने ही मई-मासों में भी पल्लवित न हो सकता था।"

("I wish I could remember that first day,
First hour, first moment, of your meeting me,
If bright or dim the season, it might be
Summer or Winter for aught that I can say;
So unrecorded did it slip away,
So blind was I to see and to foresee,
So dull to mark the budding of my tree
That would not blossom yet for many a May.")

कौलिंसन से सम्बन्ध स्थापित होने के बाद दो-तीन महीने तक क्रिस्टिना का पत्र-व्यवहार उससे होता रहा और वह अपने मन को किसी प्रकार बहलाती रही। अगस्त मास में वह कौलिंसन की माता और बहिन से मिलने के लिये प्लीज़ले-हिल गई, किन्तु वहां के उच्छृंखल वातावरण, आमोद-प्रमोद और छिछली हंसी-मज़ाक में उसका चित्त न रमा। प्लीज़ले से अपने चचेरे भाई विलियम माइकेल को एक पत्र में उसने लिखा, "यहां का प्रवास बहुत बुरा नहीं है, तो भी पोस्टमैन का आना यहां के जीवन में एक घटना है। कभी कभी शोर-गुल से ऊब कर मैं एकान्त में कुर्सी बिछा कर बैठ जाती हूं और उन दिवा-स्वप्नों में विभोर हो जाती हूं, जो नीरव भाषा में चुपचाप मेरे कानों में कुछ कह जाते हैं।" इंग्लैंड लौट आने पर कौलिंसन से क्रिस्टिना का पत्र-व्यवहार बिल्कुल बन्द हो गया और विलियम माइकेल को एक दिन बातों के सिलसिले में उसने बताया कि धार्मिक मामले में कौलिंसन अपने विचारों को कभी नहीं बदल सकता, अतः उससे विवाह न करने का उसने निश्चय किया है।

बहुत संभव है ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से कौलिंसन ने क्रिस्टिना के मन को आकृष्ट किया हो और उससे विवाह करने की इच्छा के मूल में मन के टूटे सपनों को पुनः साकार देखने की भावना उसके हृदय के किसी अज्ञात कोने में अन्तर्निहित हो, किन्तु इसमें किंचित् भी संदेह नहीं कि जो सांघातिक चोट उसे अपने प्रथम प्रणय के अवसर पर लग चुकी थी, उसकी पीड़ा कभी कम न हुई और जीवन के स्वर्णिम स्वप्न, जो असमय में ही दुर्भाग्य के बबण्डर से मिट्टी के घरौंदो के समान धराशायी हो चुके थे, वे उसे इतना बीरान और सूना बना गये कि वह उनकी मिथ्या कल्पना में भी विभोर न हो सकी।

११ सितम्बर, सन् १८६६ को क्रिस्टिना ने चार्ल्स केले को लिखा था, "निःसंदेह, जो कुछ हुआ है-उसके लिये मैं स्वयं पश्चाताप कर रही हूं, किन्तु मुझे यह जान कर संतोष है कि जिस स्नेह के मैं सर्वथा अयोग्य हूं—उसका प्रतिदान मुझे अनायास ही मिल रहा है।"

क्रिस्टिना के निवासस्थान अथवा विलियम माइकेल के यहां केले उससे मिलने के लिये प्रायः आया करता था और कभी कभी अत्यन्त सभीत एवं सहमा हुआ सा कोई प्रणय-उपहार अथवा उस पर लिखी हुई अपनी कोई कविता दे जाता था। क्रिस्टिना ने भी केले को सम्बोधित करके अनेक कवितायें लिखी हैं, जिनमें उसका प्रणयोन्माद उभर उभर कर व्यक्त हुआ है।

"मैं तुम्हें प्यार करती हूं और इस अपनी समस्त वेदना के बावजूद मुझे यह जान कर प्रसन्नता है कि तुम इस बात से कम से कम अवगत तो हो।

तुम इस बात को भली भांति जानते हो और इस पर कभी संदेह नहीं कर सकते।

प्रेम अपने आपका चिर भक्ष्य है।

मेरी खाई हुई शपथ अथवा धर्म-पिता का अभिनन्दन मेरे प्रेम को अधिक सुस्पष्ट या अविचल घोषित नहीं कर सकता।

ओ म्लान चन्द्र ! जो क्रमशः घटता और बढ़ता है, जीवन के क्षय का क्रम भी तो यही है और जब परिश्रांत आह्लाद की अवज्ञा कर प्रेम अपने पंख फड़फड़ा कर ऊपर उड़ जाता है तो हम उसकी ज्ञात धड़कन भी बहुत कम महसूस कर पाते हैं।

प्रिय मित्र ! हमें चिर शान्ति में सो जाना चाहिये, कुछ क्षण में ही आयु और क्लेश मिट जायेंगे और थोड़ी देर बाद ही प्रेम पुनर्जीवित होकर नष्ट हो जायेगा ।

जीवन, क्षय और मृत्यु, पुनः सब कुछ प्रेम ही प्रेम तो है ।"

(" I love you, and you know it—at least,
This comfort is mine own in all my pain ;
You know it, and can never doubt again ,
And Love's mere self is a continual feast.
No oath of mine or blessing word of priest
Could make my love more certain or more plain.
O weary moon, still rounding, still decreased ! !
Life wanes ; and when love folds his wings above
Tired joy and less we feel his conscious pulse,
Let us go fall asleep, dear friend, in peace ;
A little while, and age and sorrow cease,
A little while, and love reborn annuls
Life and decay and death, and all is love. ")

सन् १८८३ में ५ दिसम्बर की रात्रि को, जिस दिन दुर्भाग्य से क्रिस्टिना का जन्मोत्सव था, अचानक केले की मृत्यु हो गई । क्रिस्टिना ने जब यह दुःखद समाचार सुना तो वह तत्काल विलियम माइकेल को सूचित करने के लिये सोमरसेट हाउस गई । विलियम माइकेल ने लिखा है, "उसकी कातर दृष्टि और अन्तर के नीरव क्रन्दन से क्लान्त मुख का पीलापन कभी भुलाया नहीं जा सकता । उसके प्राण भीतर ही भीतर खिंचे जा रहे थे, किन्तु बाहर आह तक न निकलती थी और यह वस्तुतः उसके गम्भीर स्वभाव के अनुरूप ही था ।" इसके बाद वह केले के घर गई । अन्तिम बार उसने उसकी निश्चेष्ट मुखमुद्रा को सजल नेत्रों से देखा जिसके ओठों की मुस्कराहट क्रूर मृत्यु द्वारा अपहृत की गई थी और उसने अपने प्रणयी के उन निर्जीव हाथों पर श्वेत पुष्प रख दिये, जो उसके हाथों को पकड़ कर अब जीवन में कभी अपना न बना सकते थे ।

केले ने अपनी वसीयत में, जो सात महीने पूर्व तैयार की गई थी अपनी वृहद् लाइब्रेरी, लिखने का डेस्क और होमर, पेट्रार्क आदि के अनुवाद क्रिस्टिना को भेंट किये थे और उन सजीव स्मृति-चिन्हों को पाकर वह आनन्द-विह्वल हो उठी

थी। केले की मृत्यु के पश्चात् वह ग्यारह वर्ष तक जीवित रहीं और इसमें संदेह नहीं कि वह उसकी याद को कभी भुला न सकी। मरते हुए विलियम माइकेल से वह उसके सम्बन्ध में बहुत देर तक बातें करती रही और मृत्यु के शिथिल, उदास क्षणों में अतीत स्मृतियों के उभरने के साथ-साथ अनुताप भरी आत्म-प्रतारणा की भावना भी उसमें जगी कि क्यों पहले तो केले को उसने प्रोत्साहित किया और फिर विवाह की स्वीकृति न देकर क्यों उसके जीवन को नष्ट कर दिया। केले की मृत्यु के पश्चात् क्रिस्टिना की लिखी हुई निम्न पंक्तियां उसके अन्तर्दाह को व्यक्त करती हैं।

"पुष्पों और कांटों की बिना पर्वाह किये
एक कलान्त-मन कृषक अपने संचित अनाज के मध्य विश्राम कर रहा है।
कदाचित् प्रातःकाल तक मेरी भी यही स्थिति हो।
* * * *
दिसम्बर के ठिठुरते शीत की भांति शिथिल
गये और बीते दिनों की भांति विस्मृत,
जबकि वह केवल एक की स्मृति में बसा है।
और बाकी सब उसे भूल गये हैं।
केवल एक ही उसे अभी तक याद रखता है।"

(" Unmindful of the roses,
Unmindful of the thorn,
A reaper tired reposes
Among his gathered corn;
So might I, till the morn!
Cold as the cold Decembers,
Past as the days that set,
While only one remembers
And all the rest forget—
But one remembers yet. ")

आसक्ति और विरक्ति

कहने की आवश्यकता नहीं कि महादेवी और क्रिस्टिना के दिल के अरमान, जो परिस्थितियों के मरुस्थल में झुलस कर क्षारवत् हो गये थे—उनके हृदय में यंत्रणा की ज्वाला धधका गये और जीवन की सुख, शान्ति एवं सहज चापल्य को

अभावों की झोली में भर न जाने कहां छिप गये। निराश आशा की अन्तिम दवा वैराग्यपूर्ण निर्वेद की घूंट पीकर उनकी प्यार की मधुरिमा साधना की कठोरता में परिणत हो गई। एक ओर उनमें विरक्ति की अचिन्त्य भावना जगी और दूसरी ओर जीवन के बिखरे हुए मधुकणों को बटोर लेने की अतृप्त लालसा। उनके अन्तस्तल की अस्पष्ट स्वर-लहरी में अन्यमनस्कता व्याप्त हो गई और प्रिय-वियोग की दुस्सह व्यथा भीतर ही भीतर न समाकर बाहर भी श्वासों की राह सिहर सिहर पड़ी।

"कसक-कसक उठती सुधि किसकी
रुकती सी गति क्यों जीवन की
क्यों अभाव छाए लेता विस्मृति सरिता के कूल ?"

महादेवी की उपर्युक्त पंक्तियों में अन्तर की पीड़ा मेघाच्छन्न सघनता सी अपने में ही पुंजीभूत जान पड़ती है। जब भावों के आवेग हृदय के तारों को हिला जाते हैं तो भूले हुए स्नेह की स्मृतियां अस्पष्ट स्वरों में झंकृत होकर असह्य वेदना और व्याकुलता की निश्छल कहानी-सी कह जाती है और जब हृदय का अभाव भाव से भर कर पूर्ण होना चाहता है तो आकांक्षा, विह्वलता और अपने आपको न्योछावर कर देने की उन्मत्त भावना उनके मन में जग जाती है।

"मै पलकों में पाल रही हूं यह सपना सुकुमार किसी का।
जाने क्यों कहता है कोई,
मैं तम की उलझन में खोई,
धूममयी वीथी वीथी में
लुक-छिप कर विद्युत्-सी रोई
मैं कण कण में ढाल रही अलि आंसू के मिस प्यार किसी का!
पुतली ने आकाश चुराया,
उर ने विद्युत्-लोक छिपाया,
अंगराग सी है अंगों में
सीमाहीन उसी की छाया
अपने तन पर भाता है अलि जाने क्यों शृंगार किसी का!
मैं कैसे उलझूं इति अथ में,
गति मेरी संसृति है पथ में,

बनता है इतिहास मिलन का,
प्यास भरे अभिसार अकथ में,
मेरे प्रति पग पर बसता जाता सूना संसार किसी का !"

मन में चिर-अशान्ति और जीवन की अपूर्णता का कटु-अनुभव लेकर महादेवी और क्रिस्टिना जीवन की व्यापक चेतनाओं के प्रति सजग हैं और उनकी बुद्धि अपनी भीतरी अभिव्यक्ति को संवारने में सदैव सचेष्ट रहती है। क्रिस्टिना जिस प्रणयी के लिये इतनी पीड़ा सह रही है—वह स्वयं भी उसके प्रेम में छटपटा रहा है और ऐसे हठीले साधक का पीड़ा से सहज ही छुटकारा पाना सम्भव नहीं है। एक ओर प्रेम की साधना स्वीकार करने पर भी वह प्रेमी के हठ की अवहेलना करती है और अपने जी की जलन को नारी की निर्मम ममता में लपेट उसकी दयनीय स्थिति पर संवेदना प्रकट करती है।

"तब मैं उस पर जोर से चिल्लाई—
ठहरो, मुझे शान्ति से रहने दो,
इस बात से न डरो कि मैं तुमसे कुछ चाहूंगी,
मुझे शान्ति से रहने दो और अधिक तंग न करो—
ऐसा न हो कि मैं भाग कर तुम्हारा पीछा करूं और तुम्हें दरवाजे से बाहर कर दूं।
क्या तुम कभी मेरी जान न छोड़ोगे, जो अभी तक मुझे परेशान करते हो?

*   *   *   *

किन्तु सारी रात वह स्वर गिड़गिड़ाता रहा 'किवाड़ खोल दे।'
बार बार उसका स्वर मेरे कानों से आ टकराता था, 'उठ, मुझे अन्दर आने दे।'
अश्रुसिक्त वाणी में वह मेरी अभ्यर्थना कर रहा था—
'मेरे लिये द्वार खोल दे, जिससे मैं तेरे पास आजाऊं।'
जबकि ओसकण बिखर गये थे और मध्य-रात्रि की सघनता शीत का जामा पहने थी तब सुन पड़ा—
'मेरे पैरों से रक्त बह रहा है, मेरा मुंह देख।
देख, मेरे हाथ, जो तुझे सुख पहुंचाना चाहते हैं, खून से लथपथ हैं।

मेरा हृदय तेरे लिये खून के आंसू बहा रहा है,
द्वार खोल दे।'

* * * *

इसी प्रकार पौ फटने तक सुनाई पड़ता रहा;
फिर निस्तब्धता छा गई।
वह स्वर दुःखावेग से द्रवित हो मानों चुप हो गया,
तब उसके पदचाप की प्रतिध्वनि भी करुण उच्छ्वास-सी मेरे पास से गुज़री,
वे पदचाप ठहर ठहर कर पड़ते थे, जो उसकी मंद-गति के द्योतक थे।
प्रातःकाल होने पर
मैंने घास पर देखा कि प्रत्येक पैर का निशान खून से अंकित है।
और मेरे द्वार पर रक्त के चिन्ह अमिट रूप से चिन्हित हो गये हैं।"

"Then I cried upon him ; Cease,
Leave me in peace ;
Fear not that I should crave
Aught thou mayst have.
Leave me in peace, yea trouble me no more
Lest I arise and chase thee from my door.
What, shall I not be let
Alone, that thou dost vex me yet ?

* * * *

But all night long that voice spake urgently :
'Open to me'.
Still harping in mine ears :
'Rise, let me in ?'
Pleading with tears :
'Open to me, that I may come to thee.'
While the dew dropped, while the dark hours were cold :
'My feet bleed, see My Face,
See my hands bleed that bring thee grace,

My heart doth bleed for thee,
Open to me'

* * * *

So till the break:
Then died away
That voice in silence as of sorrow;
Then footsteps echoing like a sigh
Passed me by,
Lingering footsteps slow to pass.
On the morrow
I saw upon the grass
Each footprint marked in blood, and on my door
The mark of blood for evermore.")

अविराम साधना में लीन जीवन के दीर्घ-पथ को अपने आंसुओं से अहर्निश धोती हुई वह आसक्त होकर भी अनासक्त है और अपने 'स्व' को मिटा कर भी अपने कर्तव्य को भूली नहीं है।

"विगत रात्रि को मैंने एक स्वप्न देखा,
तब न अंधेरा था और न प्रकाश
शीतल ओसकणों ने मेरे सघन बालों को भिगो कर धूल धूसरित कर दिया था।
तुम मुझे वहां ढूंढ़ने आये ओर तुमने कहा 'क्या तुम मेरा स्वप्न देख रही हो?'
मेरा हृदय, जो तुम्हें देख कर उछल पड़ता था, अब मिट्टी हो चुका था।
मैंने उनींदे स्वर में उत्तर दिया,
'मेरा तकिया गीला है, मेरी चादर बदरंग है और मेरा बिस्तर पत्थर सा सख्त है।
तुम किसी और कृपालु साथी की खोज करो, जो तुम्हारे सिर के लिये कोमल तकिया देसके और मेरे से अधिक संवेदना मिश्रित प्रेम प्रदान कर सके।'
तुम हाथ मलते रहे, जबकि में कठोर धातु सी दलदलो ज़मीन में धंसती रही।

तुमने हाथों को बजाया, किन्तु खुशी में नहीं
तुम घिरनी की तरह घूमे, किन्तु तुम शराब के नशे में न थे।
मैं सारी रात तुम्हारा स्वप्न देखती रही;
मेरी आंखें खुल गईं और मैंने अनिच्छा पूर्वक प्रार्थना की,
जब पुनः नींद आई तो तुम्हें फिर स्वप्न में देखा—
अन्ततः मैं उठ बैठी और मैंने घुटनों के बल बैठकर भगवान् से प्रार्थना की।
जो शब्द मैंने उस समय कहे-वह मैं लिख नहीं सकती,
मेरे शब्द धीमे थे, मेरे अश्रु सूख गये थे,
किन्तु अन्धकार में मेरी नीरवता वज्र की तरह कड़क उठी।
जब प्रातःकाल हुआ तो मेरा मुंह लटक गया था,
मेरे बाल सफेद हो गये थे और द्वार के प्रस्तर-खंड पर खून जम गया था, जिसमें सनी हुई मैं लथपथ पड़ी थी।"

("I dreamed last night.
It was not dark, it was not light,
Cold dews had drenched my plenteous hair
Through clay; you came to seek me there,
And 'Do you dream of me?' you said.
My heart was dust that used to leap
To you; I answered half asleep;
'My pillow is damp, my sheets are red,
There's a leaden tester to my bed;
Find you a warmer playfellow,
A warmer pillow for your head,
A kinder love to love than mine.'
You wrung your hands; while I, like lead,
Crushed downwards through the sodden earth;
You smote your hands but not in mirth,
And reeled but were not drunk with wine.
For all night long I dreamed of you;
I woke and prayed against my will,
Then slept to dream of you again.
At length I rose and knelt and prayed.
I cannot write the words I said,

My words were slow, my tears were few;
But through the dark my silence spoke
Like thunder: When this morning broke,
My face was pinched, my hair was grey
And frozen blood was on the sill
Where stifling in my struggle I lay!")

महादेवी और क्रिस्टिना की एकान्त-साधना में आत्म-समर्पण और कर्त्तव्य का उच्च आदर्श होते हुए भी वैयक्तिक वासनाओं के दमन का दम्भ नहीं है, प्रत्युत् पूर्वानुभूत सुखों की स्मृति और उद्दाम यौवन उनके धैर्य और संयम के बांध को तोड़ कर उन्हें भ्रान्त सा बना जाता है और प्रिय के सामीप्य के लिये उनका हृदय मचल-मचल पड़ता है।

"सजनि कौन तम में परिचित सा, सुधि सा, छाया सा, आता ?
सूने से सस्मित चितवन से जीवन-दीप जला जाता !
छू स्मृतियों के बाल जगाता,
मूक वेदनायें दुलराता,
हृत्तन्त्री में स्वर भर जाता,
बन्द दृगों में; चूम सजल सपनों के चित्र बना जाता !"

जीवन का उन्मुक्त रूप अपना कर और प्रेमी के प्रति निर्मम बन कर भी क्रिस्टिना भावातिरेक में अत्यन्त दीन हो जाती है और अपनी सुध-बुध खोकर उसके दर्शन के लिये बेचैन हो उठती है।

"मेरे पास वापिस चले आओ, जो तुम्हारी प्रतीक्षा करती हुई
पथ में आंखें बिछाये है।
अथवा न आओगे? क्योंकि सब कुछ समाप्त हो जायेगा,
तुम्हारे न आने की लम्बी अवधि में कुछ भी सुख न पा सकूंगी।
जब तक कि तुम नहीं आ रहे हो जो करना है सो करूंगी
यह सोचकर कि 'वह कब आयेगा ?' मेरे प्राण ! 'कब';
क्योंकि सब व्यक्तियों में केवल एक व्यक्ति ही मेरी दुनिया है--
इस विस्तृत भूखंड में ओ प्रिय ! केवल तुम्हीं से मेरा संसार
बसा है।

जैसे तैसे तुमसे मिल कर भी मेरे हृदय में हूक सी उठती है—
क्योंकि मिलते ही तुमसे शीघ्र बिछुड़ने की व्यथा मुझे सताने लगती है।
अपने परस्पर सम्मिलन के स्वर्गीय दिनों का स्मरण कर मेरी आशा चन्द्रमा की भांति घटती और बढ़ती हुई असमंजस में अटकी है।
ओ मेरे! बताओ न? वे गीत अब कहां हैं, जो कि मैं उन दिनों गाती थी जबकि जीवन मधुर था, क्योंकि तुम स्वयं भी उन्हें मधुर कहते थे।"

("Come back to me, who wait and watch for you :—
Or come not yet, for it is over then,
And long it is before you come again,
So far between my pleasures are and few.
While, when you come not, what I do I do
Thinking 'Now when he comes,' my sweetest 'when':
For one man is my world of all the men
This wide world holds ; O love, my world is you.
Howbeit, to meet you grows almost a pang
Because the pang of parting comes so soon ;
My hope hangs waning, waxing, like a moon
Between the heavenly days on which we meet :
Ah me, but where are now the songs I sang
When life was sweet because you called them sweet ?")

भाव-जगत्

महादेवी और क्रिस्टिना के अन्तस्तल की गहराई से निस्सृत गीतों में जो निर्व्यक्त भाव व्यक्त हुए हैं—वे छाया के सदृश धुंधले और रहस्य के सदृश अदृष्ट जान पड़ते हैं। वस्तुतः उनका हृदय और जीवन स्वयं एक अबूझ पहेली है, जिससे वे अपने आपको ठीक-ठीक नहीं समझ पातीं और न अपने भाव-संकेतों को दूसरों को सरलता से समझाने में समर्थ ही हो पाती हैं। वाह्य-जीवन के घात-प्रतिघात से टकरा कर उनकी भाव-मंदाकिनी शत-शत धाराओं में उच्छल होकर दूसरों की मृदु-मधुर भावनाओं को थपकी दे दे कर गुदगुदा तो देती है, किन्तु उनके अन्तरतम प्रदेश में उतर नहीं पाती। कहना न होगा—दोनों कवयित्रियों का जीवन स्वनिर्मित

विश्वासों और भावनाओं के व्यवधान में बहता है। एक ओर वैराग्य-मिश्रित हल्की प्रतिध्वनि उठती है, दूसरी ओर क्रूर-नियति के प्रति विवशता का क्रन्दन। कहीं प्रेम-शृंखलाओं में जकड़े मनुष्य की सी बाध्यता है, कहीं दारुण दुःख और क्लेशों से विरत होकर अंतश्चेतना की विश्वासमय निर्बंध गति। उनके हृदय में व्यथा की घटाटोप सघनता है, जिसे वे अपनी आन्तरिक-स्फूर्ति और उद्दीप्त आत्म-चेतना से विच्छिन्न करके अचिन्त्य आलोक से भरना चाहती हैं। कभी दीन-हीन और खोई सी वे वेदना में डूब जाती हैं—कभी गर्वीले स्वाभिमान से सजग होकर वे लौकिक प्रेम की अवज्ञा करती हुई अलौकिक भाव-जगत् में पैठने का प्रयास करती हैं।

महादेवी की आन्तरिक अनुभूतियां सूक्ष्म और कोमल हैं। उनके अन्तर में हूक नहीं, मूक अन्तर्व्यथा है; तीव्रता और आवेश नहीं, मधुर व्यंजना है। प्रारम्भ से ही चिन्तनशील प्रवृत्ति की होने के कारण उन्होंने हृदय की कोमल भावनाओं को हल्के हाथों से स्पर्श करके सहलाना सीखा है और उनकी कल्पना का वैभव, आत्म-विश्वास एवं निर्विकार दृष्टि-निक्षेप उर्मिल-वृत्तियों को जगा कर उनकी अपरिमेय सूक्ष्म-दर्शिता का परिचय दे जाता है।

"दीप मेरे जल अकम्पित,
घुल अचंचल !
सिन्धु का उच्छ्वास घन है,
तड़ित्, तम का विकल मन है,
भीति क्या नभ है व्यथा का
आंसुओं से सिक्त अंचल !
स्वर अकम्पित कर दिशायें,
मीड़ सब भू की शिरायें,
गा रहे आंधी-प्रलय
तेरे लिये ही आज मंगल !
मोह क्या निशि के वरों का,
शलभ के झुलसे परों का
साथ अक्षय ज्वाल का
तू ले चला अनमोल सम्बल !
पथ न भूले, एक पग भी,
घर न खोये लघु विहग भी,

स्निग्ध लौ की तूलिका से
आंक सबकी छाँह उज्ज्वल !"

महादेवी की संवेदना इतनी तीव्र है कि जहां कोई भावना उनके अन्तर में जगी कि उन्होंने अपने कलामय पाश में आबद्ध कर लिया। वातायन के से सौरभश्लथ उच्छ्वास उमड़ उमड़ कर समस्त वातावरण में मधुर सिहरन-सी जगा जाते हैं। कहीं कसक अधिक गहरी है, कहीं प्रणय-प्रकम्पित हृदय की धड़कन; कहीं शिशु का सा सारल्य है और कही हठीली प्रेमिका का गर्वीला दम्भ। उनकी अन्तर्दृष्टि सूक्ष्मतम रहस्यों के अन्तर में प्रवेश कर जाती है। इन्द्रधनुष के से विविध-रंग कुछ धूमिल से घूंघट-पट से झांकते हुए तुहिन-कणों की सी आभा बिखेर जाते हैं और गीतों की छाँह से करुणा-विगलित भाव जलते हुए दीपक की मंद लौ के सदृश मुस्कराते से प्रतीत होते हैं। किन्तु इसके विपरीत क्रिस्टिना के काव्य में जो अंधड़ की सी दुर्दमनीय प्रचण्डता है—वह उसकी कोमल-भावनाओं को दबा कर उसे भी अपने वेग में मानों साथ उड़ाये ले जा रही है।

"प्राण-शक्ति और प्रकाश लुप्त होने से मेरे जीवन का मध्यान्ह बीत गया।
आनन्द-बेला समाप्त हो गई, सदैव के लिये चली गई।
जब दिन अवशेष था तभी सूर्य छिप गया और मेरे लिये रात्रि की चिर-सघतना छोड़ गया।
हे प्रभु! कब तक, कितने दिनों तक इस निराश पीड़ा को पालती रहूं?
क्या मैं रोती रहूं और प्रतीक्षा करती रहूं?
क्या चिरकाल तक आंसू बहाती हुई इसी प्रकार मर मिटूं?
क्या तेरी कृपा नष्ट हो गई? क्या तेरा प्रेम मेरे लिये विनष्ट हो गया?
कितने दिनों तक मैं व्यर्थ ही इच्छा कर करके मरूं?"

("My noon is ended, abolished from life and light,
My noon is ended, ended and done away,
My sun went down in the hours that still were day,
And my lingering day is night.

How long, O Lord, how long in my desperate pain
Shall I weep and watch, shall I weep and long for Thee?
Is Thy grace ended, Thy love cut from me?
How long shall I long in vain?")

महादेवी अपनी अभिव्यक्तियों में उस सतह पर पहुंच गई हैं, जहां मर्मघाती बेकल स्वर उन्हें प्रतिकम्पित नहीं कर पाते। उन्हें पीड़ा भी प्रिय है और विरहाग्नि भी जला कर शीतलता प्रदान करती है। प्रिय की दी हुई पीड़ा होने के कारण वे अपने मर मिटन के अधिकार को खोना नहीं चाहतीं।

"क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार !"

वे प्रणय के स्वप्निल संसार में विचरण करती हुई अतृप्ति को अधिक महत्त्व देती हैं।

"मेरे छोटे जीवन में
देना न तृप्ति का कण भर,
रहने दो प्यासी आंखें
भरती आंसू के सागर।"

किन्तु क्रिस्टिना के हृदय के सन्नाटे में जो करुणा-स्रोत कांटों से बिंध कर फूटे हैं—उनसे एकात्म-भाव स्थापित करने के लिये उसकी अन्तरात्मा मानों संघर्ष-सा करती है, किन्तु उसकी छटपटाहट और परवशता का भाव उभर-उभर कर फफोलों-सा फूल जाता है, जिसमें ज़रा सी ठेस लगते ही रक्त-स्राव होने लगता है।

"मैंने एक एकाकिनी चिड़िया देखी, जो अपने घोंसले में सूनी बैठी थी।
क्योंकि उसका साथी मर गया था या उड़ गया था।
यद्यपि अभी वसन्त का आरम्भ ही था
और समीप ही पुष्प-कलिकायें प्रस्फुटित हो रही थीं।
अनाज का खेत भी अभी बोया ही गया था,

किन्तु वह, जो कभी खुशी के गीत गाती थी, अब बैठ कर रोने के अतिरिक्त क्या करती ?
दुःख में मूर्छित सी अकेली बैठे रहना,
कितना कष्टदायक है, कितना भयावह !"

("I saw a bird alone,
In its nest it sat alone,
For its mate was dead or flown
Though it was early spring.
Hard by were buds half-blown,
With cornfields freshly sown ;
It could only perch and moan
That used to sing ;
Droop in sorrow left alone ;
A sad sad thing.")

महादेवी के काव्य में कल्पना की रंगीन बारीकियां मन को बरबस मुग्ध कर लेती हैं। उनकी रंगीन-कल्पना भावुकता के साथ ऐसी घुल-मिल गई है कि उनके स्वच्छ अन्तर-पट पर मनोज्ञ चित्र उतरते चलते हैं और वे अपनी सूक्ष्म-ग्राहिणी प्रतिभा द्वारा उनका ज्यों का त्यों चित्रण कर देती हैं। भाव मूर्त होते ही मानों रंग छलक पड़ते हैं और शब्दों में न समाकर सजल चित्रों की स्निग्धता में फैल जाते हैं। उनकी कविता में रहस्य-प्रवृत्ति का प्राधान्य है। अधिक चिन्तन शील होने के कारण उनकी भावनायें उड़ते बादलों की-सी सघनता से ओत-प्रोत हृदय के करुणतम उच्छ्वास और आंसुओं के तुहिन-कणों की धूमिलता में सहज अविज्ञेय बन गई हैं। अन्तर्मुखी अनुभूति, अशरीरी-भावना और रहस्य-चिन्तन के आवरण उनकी काव्य की आत्मा को इतना आच्छन्न कर लेते हैं कि उनके भावों में अस्पष्टता और क्लिष्ट कल्पना का अंश अधिक आ जाता है, जिससे अभीप्सित माधुर्य की व्यंजना नहीं हो पाती। 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सान्ध्यगीत', 'यामा' और 'दीपशिखा' आदि पुस्तकों में सूक्ष्म-कल्पनाओं की सघनता और स्वनिर्मित अनेक-रूपता के साथ-साथ भावात्मक प्रवृत्तियों का संघर्ष है। कहीं कल्पना-बाहुल्य होने से उनके गीतों के पद भाराक्रान्त होकर लिथड़ते-से हैं और कहीं शब्द उभर-उभर कर भावों की सहज गति में व्यवधान उत्पन्न करते हैं, किन्तु इसके विपरीत क्रिस्टिना का अन्तर्दाह सच्चा है और उसकी लगन स्वाभाविक है। उसके हृदय में जो

निर्झर की भांति भाव उमड़ते हैं—वे अनुकूल स्थल पाकर प्रकट हो जाते हैं और कहीं भी कृत्रिमता का आभास नहीं हो पाता।

"अकेली और पगली सी रोती रह,
अपने हृदय को आंसुओं से भर ले।
क्योंकि तेरी व्यथा और आंसुओं का रहस्य कोई भी नहीं जान सकता।
जब तक प्रातःकाल न हो और सुखद ओसकण दिखाई न पड़ें-
तब तक रोती रह।"

अथवा

"यह निरर्थक धारणा कि मैं क्या से क्या बन सकती थी-
जो मेरे मस्तिष्क पर रात-दिन छाई रहती है- वह ज़रा भी चैन नहीं लेने देती।
उत्तर की शीतल वायु ने मेरी सारी हरियाली उजाड़ दी,
मेरा सूर्य पश्चिम में छिप गया।"

(" Weep, sick and lonely,
Bow thy heart to tears,
For none shall guess the secret
Of thy griefs and tears,
Weep, till the day dawn,
Refreshing dew. "

Or

" The fruitless thought of what I might have been
Haunting me ever will not let me rest;
A cold north wind has withered all my green,
My sun is in the west. ")

'रिमेम्बर मी' (Remember Me), 'स्वीट डेथ' (Sweet Death), 'माई ड्रीम' (My Dream), 'साउण्ड स्लीप' (Sound Sleep) आदि कतिपय स्फुट गीतों में क्रिस्टिना के छटपटाते हृदय की निराशा और वेदना अन्तर्निहित है। सन् १८६२ में 'गोब्लिन मार्केट' और उसके तीन वर्ष पश्चात् 'दि प्रिंसेम् प्रोग्रेस' नाम की क्रिस्टिना की प्रमुख कृति सचित्र प्रकाशित हुई। 'गोब्लिन मार्केट' में दो ऐसी लड़कियों की कथा वर्णित है, जो एक सुनसान जंगल में घूमती हुई जलस्रोत

के समीप पिशाचों के झुंड से मिलती हैं और अपने सुनहरी बालों के एक लट के बदले में कुछ जादू के फल खरीद लेती हैं। उनमें से एक लड़की तो इन फलों को चखने का साहस नहीं करती, किन्तु दूसरी उन्हें खा लेती है और तत्क्षण ही जर्जरित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती है। उसकी बहिन अत्यन्त भयभीत होते हुए भी पुनः उन पिशाचों से मिलती है और कोई ऐसी विषनाशक जड़ी उनसे लेने में समर्थ होती है, जो मृत लड़की को पुनर्जीवित कर देती है।

'दि प्रिंसेस् प्रोग्रेस' में एक राजकुमार का आख्यान है, जो अकेला अपनी पत्नी से मिलने के लिये चल पड़ता है। उसकी पत्नी-राजकुमारी-बहुत दूर है और पति के विरह में पागल-सी क्षण-प्रतिक्षण पथ में आंखें बिछाये उसकी प्रतीक्षा करती रहती है। मार्ग में राजकुमार को अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं—प्रथम तो वह एक जादूगरनी द्वारा बन्दी बना लिया जाता है, पुनः वहां से किसी प्रकार छूटने पर वह एक वृद्ध द्वारा,जो एक गुफा में आयुवर्द्धक रसायन पका रहा था, भट्ठी में आग झपकने के लिये रोक लिया जाता है। वहां से विमुक्त होने के पश्चात् जब वह आगे बढ़ता है तो एक भयानक पर्वत-निर्झर में डूबते-डूबते किसी प्रकार बच जाता है और अनेक विघ्नों को पार करके अत्यन्त कठिनाई से जब वह महल के समीप पहुंचता है तो उसे अपनी पत्नी का सामने से आता हुआ शव का जलूस दीख पड़ता है, जो उसके वियोग में प्रतीक्षा करते-करते अन्त में प्राण छोड़ देती है।

कहते हैं–'प्रिंसेस् प्रोग्रेस' का कथानक क्रिस्टिना के अपने व्यक्तिगत जीवन पर घटित होता है, जिसमें प्रिय-वियोग का हाहाकार और प्यार की पीर के दंश की छटपटाहट है। राजकुमारी मरते हुए जो करुण-गीत गाती है,–वह क्रिस्टिना के अन्तर में निगूढ़ प्रणय की व्यथित अभिव्यक्ति है।

"मेरे प्रिय ! जब मैं मर जाऊं तो मेरे लिये व्यथा भरे गीत न गाना
मेरे ऊपर गुलाब के पुष्प अथवा शोकबेल न लगाना,
वरन् ओस-कण और वर्षा की फुहार से भीगी घास मेरे ऊपर उगने देना।
तुम चाहे तो मुझे याद रखना—चाहे भूल जाना।
अब मैं छाया के दर्शन न कर सकूंगी,
अब मैं वर्षा की अनुभूति से वंचित रहूंगी,
अब मैं बुलबुल का करुण गीत, जो वेदना में डूबा हुआ होता है, न सुन सकूंगी।

**सम-स्थिति वाली गोधूलि–वेला म स्वप्न-विभोर होने की बात न जाने
मैं याद रख सकूंगी अथवा भूल जाऊंगी।"**

(" When I am dead, my dearest,
Sing no sad songs for me;
Plant thou no roses at my head,
Nor shady cypress tree;
Be the green grass above me
With showers and dew-drops wet,
And if thou wilt, remember,
And if thou wilt, forget.
I shall not see the shadows,
I shall not feel the rain;
I shall not hear the nightingale
Sing on, as if in pain;
And dreaming through the twilight
That doth not rise nor set,
Haply I may remember
And haply may forget.")

कहने की आवश्यकता नहीं कि क्रिस्टिना की कृतियों में कुमारीत्व की अमल-धवल पावनता, भोली सरलता और यत्किंचित् अल्हड़पन भी है, जिसमें विराग की धूमिल अरुणिमा यत्रतत्र बिखरी हुई है। महादेवी के काव्य में नारीत्व का क्रन्दन, असफल पत्नीत्व की खीज और द्विविधाग्रस्त अभावजन्य उपराम है, जिसमें नारी-सुलभ समर्पण-भावना और जीवन की गुत्थी न सुलझने के कारण दुर्भेद्य सघनता व्याप्त हो गई है। क्रिस्टिना नियति के क्रूर थपेड़ों से मर्माहत हो वेदना, अविश्वास और अदृष्ट की आशंका में डूबी हुई विरह के दर्दीले गीत गाती है, जिनमें हृदय की तड़पन, भावों की लड़खड़ाहट, आकुल-प्राणों की कसक और आन्तरिक आवेगों का संघात है,—महादेवी के भावोद्वेगों में मीठी कचट होते हुए भी वचन-विदग्धता अमूर्त्त व्यंजना और बिखरती, मचलती भावप्रवणता है, जो हृदय की गहराई में उतरती चलती है और जिसमें उठती-गिरती विपुल तरंगावलियों की सी अविराम धड़कन सुन पड़ती है। इन सब विषमताओं के बावजूद इन दोनों के ही काव्य विषाद की हल्की, झीनी धूमिलता से आच्छन्न हैं, जो उत्तरोत्तर सघन होती जाती है और जिसके अतल में न जाने कितने अन्तःस्वर अवाक् होकर उनके अन्तर के मूक हाहाकार में एकाकार होने के लिये छटपटा रहे हैं।

एण्टन चेखव और यशपाल
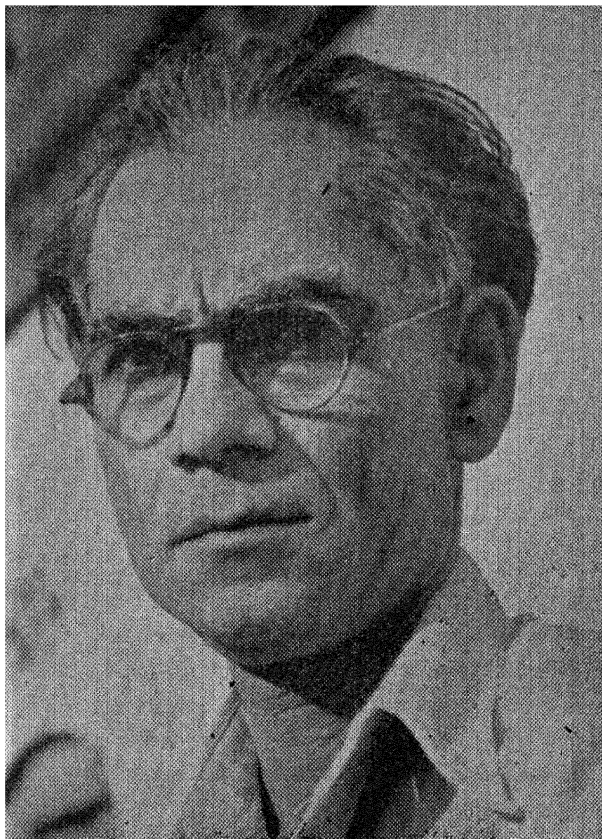
यशपाल
जन्म—३ दिसम्बर, १९०३,
जन्मस्थान—फिरोज़पुर (पंजाब)

श्रीमती प्रकाशवती पाल
यशपाल के संघर्षमय-जीवन की
प्रेरक—उन की पत्नी।

किसी भी साहित्य की परम्परा में भिन्न प्रवृत्तियों की शृंखलाएं जुड़ती आई हैं और जहां भी आत्म-सचेतन, सजग कलाकार अपने सनातन हृदयावेगों और व्यापक अंतर्नुभूतियों को मानव-समूह की सांस्कृतिक-चेतना के साथ समन्वित कर देता है; उनके दुःख-सुख, उत्थान-पतन और जीवन-मरण में अपने अस्तित्व तक को भूल जाता है—वहां साहित्य का यह ग्राह्य रूप पाठकों पर जादू का सा प्रभाव डालता है। उसकी आत्मा का इतिहास—स्वतः-स्फूर्त और जाग्रत होने के कारण—जनवर्ग की आत्मा का इतिहास बन जाता है।

उन्नीसवीं शती में रूस की क्रान्तिकारी धरती पर जिस प्रकार चेख़व ने युग-सापेक्ष आह्वान पाकर सामाजिक-एकत्वबोध की रक्षा के लिए विराट् क्रान्ति के स्वप्न देखे थे और आगे बढ़कर अपनी शक्तिशाली, प्रखर लेखनी से संकट-कालीन संघर्षमय परिस्थितियों में मिटती मानवता का प्रतिनिधित्व किया था—उसी प्रकार भारत की इस नवीन सांस्कृतिक जागरण-वेला में सभ्यता के घात-प्रतिघात ने जन-मानस में जो उत्साह और नव-चेतना जगा दी है, उसके फलस्वरूप यशपाल जैसे कलाकारों के भी प्राण स्पंदित हो उठे हैं। अनुभूति-प्रवणता एवं कला की दृष्टि से यशपाल चेख़व से कुछ निम्न-स्तर पर होते हुए भी उसी की भांति नवीन-संस्कृति के स्वप्न-द्रष्ट एवं वृहत्तर मानव-क्रान्ति के संदेशवाहक हैं। दोनों के शोधक मस्तिष्कों में एक-सी विह्वलता, प्राणों में एक सी कचट और चिंतन एवं विचारधाराओं के विकास-क्रम में अद्भुत साम्य परिलक्षित होता है।

मानवता की पृष्ठभूमि

वर्त्तमान् विश्व-क्रान्ति का निर्दिष्ट लक्ष्य मनुष्य को अविचार और दासता के बंधन से मुक्त करना है, अविकल रूप से व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्य आंककर उसके सिद्धान्त और कर्म के मध्य जो गहरी रेखाएं खिच गई हैं--उसका समाधान एक ऐसे विश्वास में खोजना है, जो उसके अंतर में कर्म की शक्ति और साहसपूर्ण जीवन-धारण करने की नूतन चेतना जगा सके। मानव की चरम-मुक्ति एक ऐसी मानसिक-अवस्था में सुनिश्चित् हो सकती है, जो उसकी आत्मा की दृढ़ता को भय के ऊपर, उसकी शालीनता को निषेधों के ऊपर और उसके व्यक्तित्व-मूलक मूल्यों को जीवन के तुच्छ उपकरणों के ऊपर विजयी बना सके। आज का मानव विषम परिस्थितियों, बहुरंगी द्वैत, जटिल-समस्याओं, भेदभाव, अनैक्य एवं दुःख-क्लेशों के कारण अशांत, उद्वेलित और असंतुष्ट हैं। वह भौतिक प्रसाधनों के प्रलोभन में पड़कर आत्मनिष्ठा खो बैठा है और उसका मस्तिष्क, उसके नियंत्रण एवं अनु-शासन से बाहर होकर, उसके अपने वक्ष पर ही निर्मम प्रहार करने को उद्यत है। एक ओर तो उसके अंतर का क्रन्दन बाहर फूटकर उसके मनोवेगों को मथना चाहता है, दूसरी ओर समाज की समष्टिगत-चेतना उसे अज्ञात दिशा की ओर उत्प्रेरित करके उसकी क्रियाशीलता पर भीषण कुठाराघात करना चाहती है। गणतंत्र में, जो इस समय एक प्रकार की अस्वस्थता मालूम हो रही है, उसका कारण है कि आज की पीड़ित और परेशान इन्सानियत विषाक्त और दमघोंटू व्यवस्था से बाहर आने को तड़प रही है। इस युग में प्रत्येक व्यक्ति एक शक्तिशाली विद्रोही है और राष्ट्र एवं समाज की परिस्थितियों से विवश वह प्रतिक्षण अपनी बेबसी और दासता पर खून के आंसू बहा रहा है।

चेखव ने प्रतिकूल परिस्थितियों में जन्म लेकर भी मानवता के निर्माण का दायित्व अपने कंधों पर लिया और व्यक्तिवाद के ऊपर समष्टिवाद को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की। उसने अपने देश के प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्रता और गौरव को विश्व-हित के साथ एक करके देखा और सार्वभौम-शांति एवं मानव-भ्रातृत्व की भावना को व्यापक बनाने के लिये अपनी क्रियात्मक शक्ति को जागृति के साथ यथार्थ के रूपायन में तत्पर किया।

चेखव की कृतियों में गहरी स्वातन्त्र्य-भावना है। वह बुझते मस्तिष्क की भाव-चेतना को कुरेदता है। उसकी रचनाओं के प्रत्येक पृष्ठ पर स्वेच्छाचारी

शासक, जमींदार और पूंजीपतियों के स्वार्थ से कुचले हुए रूसी-जनगण, महत्त्वाकांक्षी और धन-लिप्सुओं के यथेच्छाचार से असंतुष्ट तथा सामन्ती–हथकण्डों के मध्य पनपनेवाली निर्धन जनता की बेबसी की करुण गाथा है। यथार्थ के ठोस धरातल पर अपनी जागरूक-चेतना और निरपेक्ष-बुद्धि से चेखव ने उन नर-नारियों के प्रति अपनी सबसे गहरी सहानुभूति व्यक्त की है, जो उच्च-वर्ग की दमन-नीति से त्रस्त हैं और घृणित, बर्बर जीवन के दलदल में फंस गये हैं। 'थ्री सिस्टर्स' (Three Sisters) में ट्यूजेनबाख् नाम का एक पात्र कहता है।

"समय आ गया है, कोई भारी दायित्व हमें मिला ही चाहता है। एक भयंकर ज़बर्दस्त तूफ़ान के आसार नज़र आ रहे हैं, जिसकी संभावना प्रतिक्षण है और जो इतना समीप है कि शीघ्र ही वह समाज की अकर्मण्यता, प्रमाद, मज़दूरों के प्रति उपेक्षा ,उदासीनता और उसके घृणित शैथिल्य को अपने साथ उड़ाकर ले जाएगा। मैं काम करूंगा और पच्चीस-तीस वर्षों के भीतर सभी काम में जुट जाएंगे--हां, प्रत्येक ही।"

("The time has come; something enormous is descending upon all of us; a powerful, healthy storm is gathering; it is coming, it is already near, and soon it will sweep our society clean of indolence, indifference, of contempt for labour, of rotten boredom. I shall work, and some 25-30 years later every man will be working. Every one.")

मध्यबिन्दु

चेखव की पैनी दृष्टि तत्कालीन निस्सत्त्व-संस्कृति एवं समाज-व्यवस्था की ऊपरी सतह को चीर कर उसके अन्तरतम तक पैठ जाती है और उसके भीतरी खोखलेपन को नग्न-रूप में हमारे नेत्रों के समक्ष समुपस्थित कर देती है। पूंजीवाद के सबल ढांचे को जड़-मूल से नष्ट-भ्रष्ट कर देने का हिमायती चेखव इस बात को भली भांति जानता था कि जनता की आबरू का पानी उतर चुका है और स्वावलम्बन-पथ पर दृढ़तापूर्वक चलने की उनके लड़खड़ाते पैरों में सामर्थ्य नहीं है। उनका आत्म-तेज हीनता और निन्द्य दीनता के चक्रव्यूह में मानों जा छिपा है। असंख्य दलितों और पीड़ितों की आशा-निराशा एवं हर्ष-विषाद को उसने निकट से अनुभव किया और उनकी दुर्दशा देख कर उसका हृदय तड़प उठा। ये प्रश्न बार बार उसके

मस्तिष्क में कौंध जाते कि अधिकार मांगने से नहीं मिलते, वे साहस और प्राण-दान से ही बलपूर्वक प्राप्त किए जा सकते हैं। उसने आगे बढ़कर अपना हृदय खोलकर दिखा दिया। उनकी सुप्त-चेतना में आत्म-विश्वास और नवाकांक्षा की भावना जगाई और बुझते मानस में मुक्ति-कामना के ज्योतिर्मय स्फुलिंग-कणों को बिखेरा। कहने की आवश्यकता नहीं कि वह कंटकाकीर्ण मार्ग पर साहस से आगे बढ़ा और लाखों नर-नारियों के साथ जन-कल्याण की साधना में रत हो गया। अपनी लेखनी की चोट से उसने मानवात्मा को जकड़ने वाले फौलादी पींजरे की जड़ें हिला दीं और तीक्ष्ण विश्लेषणात्मक शैली से सोये राष्ट्र की मूर्च्छना को भंग कर दिया।

यशपाल भी चेखव की भांति जनवादी कलाकार हैं। भारत की दरिद्र, अभिशप्त जनता के हाहाकार और चीत्कार ने उनके प्राणों में मर्मान्तक टीस पैदा कर दी है, नित्यप्रति बढ़ते हुए असंतोष और अक्षमता ने उन्हें बेचैन बना दिया है। पीड़ा से छटपटाते प्रत्येक मानव के प्रति उनके दिल में दर्द की तड़प है, मोहब्बत का जोश है। अपनी एक पुस्तक की भूमिका में वे लिखते हैं, "हमारा जीवन कितना छिछला और संकीर्ण होता चला जा रहा है ? स्वार्थ के बावलेपन की छीना-झपटी और मारोमार हमें बदहवास किए दे रही है। मनुष्य की उस मानवता, नैतिकता और स्थिरता को हम खो चुके है, जिसका विकास हमारे आत्मद्रष्टा ऋषियों ने संकीर्ण सांसारिकता से मुक्त होकर किया था। स्वार्थ की पट्टी आंखों पर बांध हम भारत की आत्म-ज्ञान की संस्कृति के परम शांति के मार्ग को खो बैठे हैं। क्या पेट और रोटी ही सब कुछ है ? इससे परे मनुष्य की मनुष्यता, संस्कृति और नैतिकता कुछ नहीं ?"

यशपाल ने अपने देश की, समाज की उभरती हुई शक्तियों और आज की बदली हुई परिस्थितियों को पहचाना है। उन्होंने समाज के किसी एक ही पहलू पर प्रहार नहीं किया है, वरन् अपनी छलछलाती, पैनी, व्यंगपूर्ण शैली में उन अंतरंग उफनती हुई भावनाओं को बांधा है, जो दासता, सामाजिक एवं आर्थिक असमानता और जीवन की असंगतियों को देखकर घृणा और जोश से तड़प उठती हैं। उनकी अदम्य प्रतिभा-शक्ति अंधकार म टटोलती हुई राह की अवरोधक-शक्तियों पर भीषण प्रहार करती चलती है और पतनोन्मुख समाज एवं सड़ी-गली, जर्जर संस्कृति की विकृति का पर्दाफ़ाश कर देती है।

कहना न होगा—एक ईमानदार कलाकार अपने आंतरिक विश्वासों के सत्य पर जीता है। उसकी चेतना औरों से अधिक जाग्रत होती है और अपनी

विचारधारा के विरोधी तत्वों का वह डटकर मुकाबला करता है। यशपाल के शब्दों में ,"प्रतिकूल परिस्थितियों में प्रताड़ित और पीड़ित होकर भी तर्क द्वारा विवेक की जो भावना हममें जीवित रहती है—वही मनुष्यत्व का अवलम्ब है। सिसकती रहकर भी यदि वह जीवित रह सके तो आज अपना मनुष्यत्व खो रहे मनुष्य को वह कल 'मनुष्य' बना सकेगी।"

लोकायतन की ओर

यशपाल और चेखव को विदित है कि वे जनता का नेतृत्व कैसे करें—उनके मुमुर्षु-देह में पुनः प्राणों का संचार, उनकी रुधिर-विहीन नसों में नए रुधिर का प्रवेश, उनकी जीवन की टिमटिमाती लौ का फिर से प्रज्ज्वलन वे किन उपायों और अचूक प्रयोगों से कर सकते हैं। उन्होंने सच्चे क्रांतिकारी की भांति ठोस तर्कों, अकाट्य प्रमाणों एवं निष्पक्ष दृष्टिकोणों को कलापूर्ण ढंग से समुपस्थित करके न केवल पुरुषों को वरन् नारियों को भी आगे बढ़ने को प्रोत्साहित किया और आगे आगे चलकर पथ-निर्देश करते हुए परम्परागत रूढ़ियों के संकीर्ण दायरे को तोड़ कर बाहर आने का उन्हें प्रशस्त मार्ग दिखाया। यद्यपि हमारे दृष्टिकोण से यशपाल की कृतियों में कहीं कहीं अधिक शृंगारिकता का प्रश्रय लेकर भारतीय वातावरण के प्रतिकूल नारी की विकृत वासनाओं को अत्युक्तिपूर्ण ढंग से उभाड़ा गया है, तथापि इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने भारतीय नारी की सुप्त-चेतना को जगाने में पर्याप्त योग दिया है। उनकी कहानियों एवं उपन्यासों में कई स्थलों पर नग्न रोमांस होते हुए भी शालीनता का आवरण पड़ा है, जो लेखक की दृढ़ अंतर्धारणा, साहस और स्वतन्त्र-संस्कारिता का परिचायक है। 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'दिव्या' और अभी हाल में ही प्रकाशित 'मनुष्य के रूप' में नारी के अंतर्जीवन की कठोर झांकी है, जिनमें साथ ही उनकी विविध मानसिक स्थितियों का अभूतपूर्व विश्लेषण हुआ है। समाज की विषमताओं और प्रवंचनाओं के प्रति उनकी मचलती भावनाओं में विस्फोटक विद्रोह है। अविराम संघर्ष और जीवन के विद्रूप सहते सहते उनमें जो एक आत्म-निष्ठा उत्पन्न हो गई है—वह उन्हें कण्टकाकीर्ण, स्वावलम्बन-पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है और उन्हें आशा एवं उज्ज्वल भविष्य का आश्वासन देकर उनके मनोबल को ऊंचा बनाए रखने का प्रयत्न करती है। 'दादा कामरेड' में शैलबाला के ये शब्द "अपने अस्तित्व को अनुभव करने की तृप्ति .... अवरुद्ध भावना के लिए मार्ग. ... देखो तुम चाहते हो केवल शासन म क्रांति, परन्तु समाज की व्यवस्था

के बन्धन में व्यक्ति के अवरुद्ध प्राण कैसे छटपटाते हैं।" उसके आंतरिक-विश्वास के सत्य को व्यक्त करते हैं। शैलबाला, चंदा, दिव्या और सोमा सभी में जीवन की तीखी कठिनाइयों से विशेषरूप से संघर्ष करने के कारण तीव्र भावनाएं जग गई हैं, जो सब मर्यादाओं और लोक-लज्जा की मिथ्या प्राचीर को लांघ कर उन्हें बाहर कूद पड़ने को विवश करती हैं। उपन्यास के अन्त में दिव्या मारिश का आश्रय ग्रहण करके जीवन के चरम सत्य को अपनाती है और पुरुषत्त्व को नारीत्त्व की कर्मचपल, उद्बुद्ध चेतना अर्पित कर वह उससे उन अनुभूत सांसारिक सुख-दुःखों और विचारों का आदान-प्रदान चाहती है, जो हल्के सद्भाव में संभव नहीं और न जिसे सस्ती भावुकता का प्रदर्शन ही कहा जा सकता है। 'दादा कामरेड' की यशोदा, 'देशद्रोही' की चन्दा और 'मनुष्य के रूप' की सोमा गृहस्थी के महान् दायित्व को संभाले हुए विवाहित नारियां हैं; वे अपने आप में सिमटी हुई अपने कर्त्तव्य-कर्म में तत्पर हैं, किन्तु दारुण परिस्थितियां उन्हें महत्त्वाकांक्षा और स्वतन्त्र-चिंतन के अकूल सागर की तरंगों में धकेल कर छोड़ जाती हैं। वे बाहर आने के लिये छटपटा उठती हैं और कुल-मर्यादा का उल्लंघन करके अपने अभिभावकों की इच्छा के विपरीत दूसरा मार्ग अपना लेती हैं। चेखव की 'दुलहिन' (The Bride) नामक कहानी की नायिका नाद्या भी साशा की प्रेरणा से विवश परिस्थितियों एवं बर्बरतापूर्ण संकुचित वातावरण से ऊबकर बाहर निकल पड़ती है और क्रांतिकारी कार्यों में अपना जीवन अर्पित कर देती है।

चेखव और यशपाल नारी के जीवन की त्रुटियों एवं उनकी चारित्रिक कमजोरियों को दिखाते हुए भी उनके प्रति उदार और संवेदनशील हैं। रूढि-जर्जर संस्कारों में पली, समाज के अनुचित बन्धनों में जकड़ी, शरीर और मनोबल से हीन नारी में वे आत्म-चेतना जगाना चाहते हैं। 'देशद्रोही' में खन्ना चंदा से कहता है, "कुल के सम्मान के लिये तुम गल रही हो, अपने बलिदान से नारी-समाज के बन्धन दू करने के लिये। एक घर से बढ़ कर देश और मनुष्यता का ध्यान तुम्हें होना चाहिए।" चेखव की 'दुलहिन' नामक कहानी में भी ये ही भाव प्रतिध्वनित हो रहे हैं। साशा जीवन के कायाकल्प को ही श्रेयस्कर समझती है। 'माई लाइफ' (My Life) उपन्यास का एक पात्र कहता है, " हमें संघर्ष के उन तरीकों को अपनाने की आवश्यकता है,जो अचूक, साहसपूर्ण और शीघ्र कामयाब होने वाले हों। यदि

तुम वस्तुतः लाभदायक होना चाहते हो तो साधारण कार्यों की सीमित परिधियों को तोड़ कर बाहर निकलो और जनता को प्रभावित करने का प्रयत्न करो।"

("What we need here is other methods of struggle, strong, daring, swift ! If you really want to be useful, then step beyond the narrow limits of commonplace activities and try to influence the masses at once !")

'चेरी ऑरचार्ड' (Cherry Orchard) में भी जीवन के पुर्ननिर्माण का संकेत मिलता है. "आगे बढ़ो ! हम अनायास उस चमकीले तारे की ओर बढ़ रहे है, जो हमारे सिर पर दूर चमक रहा है। सारा रूस हमारा उद्यान है।"

("Forward ! We are irresistibly moving towards the bright star which glows ahead, far away. Forward !............ The whole of Russia is our orchard.")

मानसिक-धरातल

यशपाल और चेखव केवल वर्तमान् के ही साधक नहीं, प्रत्युत् अपने अतीत गौरव पर भी गर्व करते हैं। एक कुशल कलाकार की भाति वे नवीन भाव-सौंदर्य की सृष्टि के लिये उन्हीं कल्पना-चित्रों का प्रयोग करते हैं, जो जनता की चेतना का संस्कार वन चुकी हैं। युग के कटु एवं विषम संघर्षों से उद्भूत उनकी कृतियों में युग-युग की सौदर्य-रेखायें भी उभर आई हैं। पुरातन आदर्शों और अपनी सस्कृति का गला उन्होंने कहीं नहीं दबोचा है, हां—उस आदर्श के पाखण्ड का पर्दाफाश अवश्य किया है, जो उनकी समस्त चेतना और प्राणों को अवरुद्ध किए हैं। सत्य एवं यथार्थ को अपनाकर वे सदैव मानवीय-एकता के सुन्दर स्वप्न देखा करते हैं और जीवन-संघर्ष, बेचैनी और कन्धों पर रखा हुआ परतन्त्रता का असह्य भार उन्हें उज्ज्वल-भविष्य का प्रिय संदेश दे जाता है। प्रचण्ड अन्धड़ के कोलाहल के भीतर उन्हें कुछ और ही छिपा नज़र आता है—शांतिमय जीवन की खुशहाली, कलात्मक एवं साहित्यिक उन्नति। उनकी प्रखर दृष्टि गहरी पैठकर जीवन का वास्तविक अर्थ खोज रही है और अतल गह्वरों में छिपे रहस्यों का उद्घाटन चाहती है। यशपाल की लड़खड़ाती दृष्टि कई बार अनजाने में तमसाच्छन्न गड्ढों से जा टकराई है, कभी सुदूर के दुर्भेद्य धुंधलके में पलके झांप लेती है, जिसके फलस्वरूप यथार्थवाद की ओर सहज झुकाव

होते हुए भी 'दिव्या' उपन्यास और 'दास-धर्म' आदि कुछ कहानियों के कथानक, जो इतिहास पर आधारित हैं, अत्यधिक कल्पनापरक और भावच्छटा की निबिड़ सघनता से ओतप्रोत हो गए हैं। गहरी निस्तब्धता में कोई कल्पित, आकर्षक चित्र ही सहज स्फुरण से गति की अबाधता और घटना-क्रम सूचित कर जाता है। कब कब की स्मृतियों को ढके हुए विस्मरण का आवरण सामने से हटकर हृदय-पटल पर अतीत के रंगीन चित्र अंकित कर जाता है और सहसा भावनाएं उमड़कर स्निग्धता और वातावरण की तरलता में सिहर उठती है। 'दादा कामरेड' 'देशद्रोही' और 'मनुष्य के रूप' में लेखक भाषा की दुरूहता और भावों की उलझन में नहीं उलझा है, तो भी उसकी ठोस लेखनी न जाने किन भावनाओं से टकरा कर मनोवैज्ञानिक तथ्य को कोमलता से,किन्तु तेजी से, छू कर निकल जाती है। जीवन की साधारण से साधारण बातों को वह गौर से कलम की नोक पर सही आंक देता है, कहीं कहीं तो सधे हुए दो चार खरोंचो से ही चित्र सजीव हो उठता है।

"मध्यान्ह-सूर्य के प्रचण्ड ताप से भूमि की रज-धूसर ज्वालाओं के रूप में आकाश की ओर उठी आ रही थी। हू-हू करती संतप्त वायु आश्रय की खोज में बनों की ओर दौड़ी जा रही थी। उस विभीषिका में दारा अपने शाकुल को हृदय से लगाए, तवे की भांति तपे पत्थर मढ़े पथ पर पुरोहित-गृह से निकल पड़ी। सूर्य के उत्तप्त बाणों से शाकुल की कोमल त्वचा बचाने के लिये दारा ने शिशु को अपने छिन्न,जीर्ण, मलिन उत्तरीय में लपेट लिया।" (दिव्या से)

"दीमा दासियों की पंक्ति में बैठी थी। उसके मूल्यवान् वस्त्र कुचले जाकर विश्री हो गये थे। उसके नयनों की मादकता कातरता में और मुख की त्वचा का इंगुर भरा लावण्य भयार्त्त के उदासी पीलेपन में बदल गया था। दस्युओं ने उसके केशों की सुनहरी आभा दिखाने के लिये वेणी खोल लटों को कंधों पर डाल दिया। उसके वक्ष पर त्वचा की कमनीयता दिखाने के लिये उसकी कंचुकी का एक भाग फाड़ दिया गया।" (दास-धर्म से)

यद्यपि सामाजिक संघर्षों की चोट ने यशपाल की भावनाओं को आलोड़ित किया है, जिसके कारण उनकी अभिव्यक्तियों में कई स्थलों पर तीव्रता आगई है, तथापि मानस में विस्फोटक विद्रोह होते हुए भी वे अपने सृजन के प्रति तन्मय हैं, क्रांतमुख होते हुए भी निर्माणोन्मुख हैं और बुद्धिवादी होते हुए भी यथार्थ-युग

के प्रांजल कलाकार हैं। बहिर्मुख प्रवृत्ति के होते हुए भी उनमें उत्कट उद्वेगशीलता है और अपनी कृतियों में बहिर्जीवन की प्रतिच्छाया अंकित करने पर भी उन्होंने अन्तर्द्वन्द्वों को आरोपित किया है। यह सही है कि वे वर्तमान् सामाजिक-विकृतियों एवं पतनोन्मुख परम्पराओं को देख क्षुब्ध हो उठते हैं, किन्तु इसके साथ ही वे अपनी कोमल-भावनाओं के प्रति भी सतर्क हैं और स्थूल-सौंदर्य के साथ साथ सूक्ष्म-सौंदर्य के भी द्रष्टा हैं। समस्त सृष्टि को अपनी क्रीड़ास्थली बनाने वाली उनकी विलक्षण प्रतिभा देश-काल की सीमाओं से ही टकरा कर नहीं रह गई है, वरन् भारत से दूर सोवियत रूस, अफ़गानिस्तान, गज़नी, समरक़न्द तथा अन्य देशों के स्त्री-पुरुष, रीति रिवाज़, वेष-भूषा, रहन-सहन आदि के चित्र भी बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती हैं। उनकी कृतियों का टेकनीक नव्यादर्श का अनुयायी है, तथापि व्यापक समस्याओं और सामयिक शोषण, उत्पीड़न से ही उनके चित्त में संवेदना संचरित होती है, जिससे उनकी कल्पना-प्रवणता संकुचित परिधियों को तोड़ कर विशालतर अमरत्व की भूमिका में अवतीर्ण हो गई है।

वर्तमान् समाज-व्यवस्था-लब्ध अनुभूतियों पर आधारित यशपाल की छोटी छोटी कहानियां जीवन-सापेक्ष्य और समाज-सचेतन होने से कलाकार के अंतर्द्वन्द्वों और उसके अशांत मस्तिष्क की वेदना को लेकर रूपायित हुई हैं, जिनमें जीवन को बहुत पास से देखने की चेष्टा की गई है। विश्व अथवा अपने देश में फैले हुए अनाचार ढोंग, स्वेच्छाचारी-शासन और दमन-नीति के विरुद्ध उनकी सहृदयता विद्रोह करती है, जिससे कभी कभी संकुल-भावनाएं विशृंखल होकर विचारों की तन्मयता में कुछ अव्यवस्थित और उखड़ी उखड़ी सी लगती हैं तथा युग की समस्याओं से परिचित होकर भी उनकी रूप-रेखाओं को स्पष्ट नहीं कर पातीं। 'पिंजड़े की उड़ान', 'ज्ञान-दान', 'वो दुनियां', 'अभिशप्त', 'तर्क का तूफान', 'भस्मावृत्त चिन्गारी' और 'फूलों का कुर्त्ता' आदि कहानी-संग्रह में सामाजिक-विद्रूप साहित्यिक-गरिमा के साथ प्रकट हुए हैं, जिनमें संसार-चक्र के साथ साथ अनवरत घूमने वाले व्यक्तियों की विभिन्न मनः-स्थितियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है। नव-संस्कृति के नवीन जीवन-प्रयोगों को यशपाल ने प्रगतिशील मानववाद में विकसित कर दिया है।

यदि हम निर्माण-कौशल के अन्य पहलुओं पर भी विचार करें तो चेखव यशपाल से श्रेष्ठ कलाकार सिद्ध होता है। उसमें एक कुशल कहानी-लेखक के सभी गुण विद्यमान् हैं और अपनी अभिव्यक्तियों पर पूर्ण नियंत्रण रख कर वह उन्हें

अभीष्ट रूप-रेखाएं देने में समर्थ हुआ है। अपनी छोटी छोटी कहानियों में लेखक ने जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्र खींचा है और प्रत्येक चित्र इतना सुन्दर और कलापूर्ण बन पड़ा है कि अपना स्थायी प्रभाव पाठक पर छोड़ जाता है। चेख़व की प्रतिभा ने अपने युग की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हुए तत्कालीन कथा-साहित्य को नाटकीय-संघात से नवीन विक्षेप-शैली प्रदान की है और जनता की धमनियों में क्रांति का रक्त संचरित करके नवीन सामाजिक व्यूह-रचना में अपनी समस्त शक्ति व्यय कर दी है। उसकी रचनाओं में कल्पना-तत्त्व कम और वस्तु-तत्त्व अधिक है। ज्यों ज्यों बाहरी चमक-दमक की चकाचौंध मिटती जाती है, उनका अधिकाधिक प्रकृत-रूप निखरता आता है और भावों की व्यंजकता भीतरी गांभीर्य को प्रकट करती है।

जीवन के घात-प्रतिघातों ने चेख़व के हृदय को स्तब्ध बना दिया है। व्यक्ति की ईकाई में उसने त्रस्त मानवता की करुण-तस्वीर खींची है, जिसमें कभी न सांस लेने देने वाली ग़रीबी में डूबे और पूंजीवाद की अंध-शक्तियों के समक्ष सर्वथा असहाय रूसी मज़दूरों, निर्धन स्त्री-पुरुषों, किसान एवं श्रमजीवी-वर्ग का यथातथ्य चित्रण किया गया है। चेख़व ने अपने जीवन-काल में अनेकों बार यह विश्वास प्रकट किया है कि अर्वाचीन राष्ट्र किसी एक व्यक्ति एवं वर्ग-विशेष की नियामत नहीं है, प्रत्युत् प्रत्येक जाग्रत राष्ट्र में जनता ही वह क्रांतिकारी शक्ति है, जो पूंजीवादी-व्यवस्था की इमारत की ईंट-ईंट बिखेर कर ध्वंसावशेष पर शोषण-मुक्त, स्वस्थ समाज की नींव रखेगी। इस पूंजीवादी-युग में वर्ग-संघर्ष नग्न रूप में प्रकट हो गया है और चेख़व के दृष्टिकोण से मानव-समाज की रचना तभी संभव हो सकती है, जबकि व्यक्ति का सामाजिक एवं नैतिक स्तर पर्याप्त उन्नत हो और वह अपने व्यक्तिगत हर्ष-विषाद को वर्गीकृत स्वार्थों के उन्मूलन में आत्मसात् कर दे। गोर्की ने एक स्थल पर लिखा है, "अभीष्ट क्रांति लाने के लिये साहित्य ही एक प्रमुख अस्त्र है। उत्तरदायी लेखकों का कर्त्तव्य है कि वे उत्पीड़ित, शोषित-वर्ग को सावधान कर दें कि जिस गलाघोंटू-व्यवस्था के अधीन वे पीसे जाते हैं—उससे वे सख्त नफ़रत करना सीखें।"

चेख़व ने जीवन की जटिलताओं और तात्कालिक घटना-क्रम के क्रियाशील सम्पर्क को उद्घाटित किया और नित्य परिवर्तनशील राष्ट्र एवं समाज के स्वाभाविक-विकास के रूपान्तर को प्रकट करने की चेष्टा की। उसकी महान् शक्ति

का परिज्ञान हमें उसकी घटनाओं और मानव-सम्बन्धों के वर्णन, चरित्र-चित्रण, शैली की सजीवता, शब्दों की सुडौलता और प्लॉट की सुन्दर गठन में होता है। 'दि सी गल' (The Sea Gull), 'दि चेरी गार्डन' (The Cherry Garden), 'इवनोव' (Ivanov), 'थ्री सिस्टर्स' (Three Sisters). 'अंकल वन्या' (Uncle Vanya) और 'माई लाइफ' (My Life) आदि उसकी प्रमुख कृतियों के कथानक युग की झंझावातों और लेखक के एकांत-हृदय के आंदोलन का विस्फूर्जन हैं, जिनमें स्वातन्त्र्य-भावना और स्वदेश-प्रेम भी कूट कूट कर भरा हुआ है। चेखव के पात्र सीधी-सादी, सजीव, भाषा में अपने हृदय के भाव व्यक्त करते हैं और शनैः शनैः बात चीत के सिलसिले में रूस के प्रति अपने महान् दायित्व और प्रेम की घोषणा करते हैं। चेख़व के एक घनिष्ठ मित्र ने अपने 'संस्मरण' में उसके सम्बन्ध में लिखा था "उसके लेखों और समस्त कार्यों में रूसी-जनगण के युवा प्राण, कवित्त्व और हास्यपूर्ण आभा लिये, झलकते हैं। वह सरल व्यक्तियों और कला की सरलता को स्नेह करता है।"

गोर्की को स्मरण था कि किस प्रकार लियो टालस्टॉय जैसे महान् कलाकार ने भी उसकी श्रेष्ठता स्वीकार की थी, "तुम सच्चे रूसी हो। हां-हां एकदम रूसी" और एक वात्सल्य भरी मुस्कराहट से उसने चेख़व को गले लगा लिया था।

चेखव ने कहानी-कला में भी अनेक नये प्रयोग किए हैं। कथानक के पुराने सांचो को तोड़ कर उसने उनका रुख बदला है, चरित्र-चित्रण को नवीन मनो-विश्लेषण पद्धति से प्रस्तुत किया है और यथार्थ को सामाजिक व्यक्तित्त्व दिया है। चेखव के पूर्व के रूसी कलाकारों की रचनाओं में सच्चे जीवन की झलक न थी, उनकी प्रतिभा का विकास कलात्मक क्रांति में न होकर आदर्श के प्रतिष्ठान और आंतरिक-निष्ठा में मुखरित था, किन्तु चेख़व का क्या उपन्यास, क्या नाटक, क्या छोटी छोटी कहानियां सभी समाज की उचित-अनुचित रीतियों का स्वच्छ दर्पण हैं, जिनमें लेखक की अनुभूतियों की स्वर-लिपि भी अंकित है। मानव-हृदय का अंतर्द्वन्द्व और उनकी सहजात प्रवृत्तियों का मर्मभेदी विश्लेषण, जो उसकी कहानियों में मिलता है—वह अनुपम है और उसी के कारण चेख़व का नाम संसार के सर्वश्रेष्ठ कहानीकारों में लिया जाता है तथा रूस से दूर विदेशी लेखकों और कलाकारों पर भी उसका गहरा प्रभाव पड़ा है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि चेख़व और यशपाल दोनों ने ही जीवन के तल को स्पर्श किया है और उनकी सजग अभिव्यक्ति वस्तु-स्थिति में सधी-बंधी

है। नित्य-जीवन के मार्मिक चित्र और आज के ह्रासोन्मुख समाज की दयनीय-अवस्था के सजीव दृश्य विविध रूप-रंगों में कुशलता के साथ चित्रित किए गये हैं। वीभत्स मनुष्यत्व के अनाचार, अत्याचार को विष की घूंट की तरह पी कर उसे अपनी अंत:-साधना से उन्होंने अमृत बना कर प्रकट किया है। उनकी आंतरिक-आस्था जब भावनाओं के साथ उमड़ कर हृदय की कोमल स्निग्धता म फैल जाती है तो उसमें कुछ असाधारण चमक आ जाती है, हृदय की मधुर पीड़ा की कराहट सुन पड़ती है और चिरंतनता सांस लेती नज़र आती है। व्यष्टि के स्तर से ऊपर उठकर वे समष्टि की असीमता में रम गए हैं और वैयक्तिक-स्वार्थों को सामाजिक-परिणति देकर उन्होंने लोक-संघर्ष के लिये अपने अहं को विलय कर दिया है। निःसन्देह, चतुर्दिक् फैली घनी निराशा के अंधकार में वे ऐसी प्रकाश-रेखायें विकीर्ण कर रहे हैं, जो निरुपाय मानवता को एक नवीन दिशा की ओर उत्प्रेरित करती हैं। मनुष्यत्व की परिपूर्णता के लिये, उसके सम्यक् विकास और उत्थान के लिये वे प्रयत्नशील हैं और चटकीले, भड़कीले रंगों से पुती तथा कृत्रिम प्रकाश से जगमगाती आज की सभ्यता की मृग-मरीचिका की आसक्ति से वे छुटकारा पा चुके हैं।

वर्तमान् समय में मानवीय-संस्कृति अपनी सच्ची प्रगति में अवरुद्ध है और वैयक्तिक-स्वातन्त्र्य जीवन-विकास का अभिप्रेत अंग होकर भी वांच्छित समादर प्राप्त नहीं कर रहा है। जीवन के मान मिट चुके हैं और जीवन का उद्देश्य, जीवन की सार्थकता, जीवन की महानता लुप्तप्राय हो गई है। सभ्यता का वाह्य कलेवर सुसज्जित होते हुए भी उसकी आत्मा निर्जीव है और इस बनावटी सभ्यता का मिथ्या गर्व खण्डित हो चुका है। चेखव और यशपाल की साधना का ध्येय परवश और संत्रस्त मानवता को आंतरिक जागरूकता का प्राणवान् संदेश देना है। उन्होंने एक निपुण चिकित्सक की भांति अपनी अमर लेखनी से भयंकर रोग की अमोघ औषधि प्रदान की है और उसकी अमोघता के प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं। चेखव ने लिखा है, "आह ! यदि जीवन की नव्यता और सौंदर्य को शीघ्र पाया जा सके, जबकि तुम्हारी किस्मत से साहसपूर्वक और सीधे आंखें लड़ाये जाने की संभावना हो और यह अनुभव करने की सामर्थ्य उत्पन्न हो कि तुम ठीक रास्ते पर हो, खुश हो और अपने को आज़ाद समझ रहे हो। इस प्रकार का जीवन शीघ्र या कुछ दिन बाद आने ही वाला है।"

("Ah, if it would only come soon this new, clear life, when it will be possible to look square and boldly in the face of your fate and feel that you are right, feel cheerful, free! And this life will dawn sooner or later !")

चेख़व और यशपाल श्रमिक-वर्ग की शक्तिशाली आवाज को बुलन्द करने वाले निर्भीक सेनानी हैं और वे पीछे पीछे नहीं, वरन् आगे आगे ललकारते हुए जनता में आत्म-विश्वास और स्वस्थ सामाजिक-विन्यास की भावना जगा रहे हैं। यद्यपि यशपाल में वयःप्राप्त अनुभवी कलाकार चेख़व की सी परिपक्वता अभी नहीं आई है, तो भी वे क़दम से क़दम मिला कर उसी दिशा की ओर अग्रसर हो रहे हैं और संकीर्णता को लांघ कर जीवन के व्यावहारिक दृष्टिकोण को उत्तरोत्तर व्यापक बनाने का आदर्श स्थिर कर रहे हैं।

अज्ञेय और इलियट

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन
'अज्ञेय'
जन्म–ईसवी सन्–मार्च, १९११
जन्मस्थान–कुसिया (गोरखपुर)

टी.एस. इलियट (टॉमस स्टर्न्स इलियट)
जन्म–ईसवी सन् २६ सितम्बर, १८८८
जन्मस्थान–सेंट लुई, मिसौरी (अमरीका)
St. Louis, Missouri.

अज्ञेय और इलियट—इन दो एतद्देशीय एवं बहिर्देशीय कलाकारों की साधना, किंचित् असमानता को लिए, मूल में बहुत कुछ एक ही है। दोनों में शिल्पी की स्वप्नमय दृष्टि है, जिनकी अमर कल्पना के रंगीन स्वप्न उनकी अपनी रचनाओं में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं—स्वप्न—कुछ पूरे, कुछ अधूरे, जो अन्तर्मानस में घुमड़-घुमड़ कर उनकी चेतना पर छा जाते हैं और सधे हुए विश्लेषण के साथ, किन्तु कुछ अस्पष्टता के आवरण में लिपटे हुए, शब्दों में गुंथकर उभर पड़ते हैं। दोनों की भावानुभूति अत्यन्त गहरी है, जिसमें अन्तःकरण की स्वच्छता होते हुए भी वाह्य-अभिव्यक्ति की छलना है और कलात्मक-टेकनीक के साथ साथ आत्मस्थ प्रज्ञात्मकता के कारण अस्वाभाविकता की संयोजना हो गई है। दोनों की अमूर्त्त भावनाएं आत्म-केन्द्री एवं जन-जीवन से घनिष्ठ संस्पर्श के अभाव के कारण साधारण पाठकों के लिए सहज अविज्ञेय और गूढ़ बन गई हैं। उनकी सूक्ष्म, सृजनात्मक प्रतिभा लजीली नवोढ़ा सी विचारों के गुम्फन से किंचित् झांक तो जाती है, किन्तु पूरी अपनी झलक दिखाने में मानों अवगुंठन का सहारा ले लेती है।

व्यक्तित्त्व का द्वित्व

कहने की आवश्यकता नहीं कि अज्ञेय और इलियट के व्यक्तित्त्व का द्वित्व उनकी हार्दिक एवं बौद्धिक आत्म-चेतना में निहित है, जहां उनके जीवन की

संततवाही जलधारा के मूल में बहिः-प्रवाह के अक्षय्य स्रोत का पर्यवसान है। उनके व्यक्तित्त्व का एक पहलू भौतिक आकर्षण से लिपटा-चिपटा बहिर्मुख आत्म-स्वीकृति से आश्वस्त है और दूसरा जीवन की गम्भीरता, सृजन की शक्ति और उत्तरदायित्व की गहनता को सम्भाले हुए है। सस्ते रोमांस से पृथक् हटकर उन्होंने अपनी निर्दिष्ट मान्यताओं को मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से संयोजित करने का प्रयास किया है और आदर्श से यथार्थ की ओर उन्मुख होकर अपनी संघर्षरत आत्मा को वस्तु-सत्य को निकट से परखने एवं जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में उलझा दिया है। स्थूल से क्रमशः सूक्ष्म की ओर तथा वस्तुवाद से आत्मवाद की ओर अनवरत झुकाव होते रहने के कारण उनकी कृतियों में अन्त-र्वाह्य दृक्पात है और हृदय का आलोड़न मन्द-स्फूर्ति के साथ स्पन्दित हो रहा है। दोनों के काव्य-जगत् में पैठने पर इस क्रमिक दृष्टिकोण के संस्थान की पुष्टि हो जाती है। उनकी प्रारम्भ की अस्फुट प्रतिभा वयोचित गरिमा पाकर भाव-प्रवण से तत्त्व-चिन्तक हो गई है और निरन्तर गतिशील होने पर भी उसमें गति का आवेश नहीं, प्रत्युत् साधना की स्थिरता है। जीवन की परम्परागत व्याख्या को ग्रहण करके उनका लोकसंग्रही कलाकार अधिकाधिक आत्मदर्शी एवं चिन्तनशील होता जा रहा है और मानव की परस्पर-विरोधी अन्तर्वृत्तियों का उन्होंने जिस रूप में विश्ले-षण किया है—वह अधिक सुस्पष्ट न होते हुए भी परीक्षित तथ्यों के आधार पर मान्य है।

आधुनिक युग में अज्ञेय की कलम से 'शेखर' का सृजन विश्व-मानव की उन संघर्षमयी प्रवृत्तियों का द्योतक है (यद्यपि उसकी भी एक परिमिति है), जहां अवि-च्छिन्न रूप से संयोजित व्यक्तित्त्व के कतिपय विरोधी पहलू एक दूसरे से चिपटे हुए जीवन के रहस्याच्छन्न अन्तराल में झांकने का प्रयास करते हुए भी उसके वैचित्र्य में भ्रमित हैं। शेखर जितना ही अपने को टटोलने का प्रयास करता है, उतना ही उलझता जाता है और विभिन्न परिस्थितियों के चक्कर में पड़कर अपने ही लिए एक गूढ़ पहेली बन जाता है। आज का अनियंत्रित जीवन जैसे मर्यादा को तोड़ कर विशृंखल हो गया है और उसकी अखंडित धारा टूटी हुई सी लगती है, ठीक ऐसा ही कुछ शेखर के जीवन का भी स्वरूप है। मानव-जीवन की अखंड साधना को इतनी दिशाओं में उन्मुख कर पाना, मन की पूर्णता को इतने वर्गों पर बिखेर सकना और अल्पायु में ही इतनी नाजुक मंज़िलें तय कर जाना शेखर की अभूतपूर्व सफलता का परिचायक है। वह बहिर्जीवन एवं अन्तर्जीवन के समन्वित आदर्शों में बंध कर संश्लिष्ट चिन्तन-धारा को समुपस्थित करने की चेष्टा करता है। चूंकि उसकी दृष्टि

अतंर्मुखी है और वह अपने ही जीवन के इर्दगिर्द चक्कर काटता रहा है, फलतः उसकी दृष्टि की पैठ अधिक व्यापक तो नहीं कही जा सकती—हां, फांसी पाने की संभावना में मृत्यु का कल्पना द्वारा साक्षात्कार कर उसकी बुद्धि और मस्तिष्क अपनी समस्त भ्रान्तियों को समेट सशक्त हो गये हैं और उसकी सृजन-प्रक्रिया प्रखर होकर जीवन के आर-पार झांकने का प्रयास करती है। 'मैं जो सदा आगे ही देखता रहा, अपनी यात्रा के अन्तिम पड़ाव पर पहुंचकर पीछे देख रहा हूं। मैं कहां से चल कर, किधर-किधर भूल-भटकर, कैसे कैसे विचित्र अनुभव प्राप्त करके यहां तक आया हूं और तब दीखता है कि मेरी भटकन में भी एक प्रेरणा थी, जिसमें अन्तिम विजय का अंकुर था, मेरे अनुभव-वैचित्र्य में भी एक विशेष रस की उपभोगेच्छा थी, जो मेरा निर्देश कर रही थी।"

जीवन का प्रत्यालोकन करते हुए अभूतपूर्व, पारदर्शी क्षणों में शेखर की समग्र-चेतना जीवन-भर के लक्ष्य को ढूंढने का प्रयत्न करती है और अपनी प्रत्येक गति के आगे एक प्रश्न-चिन्ह लगा जाती है। लेखक के शब्दों में "मेरी स्थिति मानों भावानुभावों के घेरे से बाहर निकल कर एक समस्या रूप में मेरे सामने आई—अगर यही मेरे जीवन का अन्त है तो उस जीवन का मोल क्या है, अर्थ क्या है। सिद्धि क्या है—व्यक्ति के लिये, समाज के लिए, मानव के लिए...इस जिज्ञासा की अनासक्त निर्ममता के, और यातना की सर्वभेदी दृष्टि के आगे मेरा जीवन धीरे धीरे खुलने लगा, एक निजू और अप्रासंगिक विसंगति के रूप में, सामाजिक तथ्य के रूप में, और धीरे धीरे कार्य-कारण परम्परा के सूत्र सुलझ सुलझ कर हाथ में आने लगे ....।"

कहना न होगा—'शेखर' का स्रष्टा अज्ञेय उपन्यास का नायक बनकर अपने जीवन में इसी नियति के सूत्र को पकड़ने की चेष्टा करता है और कदाचित् पकड़ नहीं पाता। लगता है—जैसे उसका प्रत्येक कदम, प्रत्येक क्षण, प्रत्येक गति, प्रत्येक परिवर्त्तन उसके समूचे जीवन में लगे प्रश्न-चिन्हों का उत्तर बन गई है और वह निश्चित् दिशा खो बैठा है। उसके अन्तर में जो हलचल है, जो घटाटोप विचारों का बवण्डर सा उठ रहा है—वह बरबस बाहर फूट पड़ना चाहता है, किन्तु जैसे वह स्वयं नहीं जानता कि वह क्या है और कौन उसकी सहज गति को अवरुद्ध कर लेता है। आप देखें कि इस मोड़ पर आकर अज्ञेय और इलियट की विचार-धारा में पर्याप्त साम्य हो गया है। कल्पना के जिन रंगीन स्वप्न-चित्रों के सहारे इन दोनों ने मानव-मन के प्रच्छन्न-वृत्तों का उद्घाटन किया है और जीवन की जिन

साधारण परिस्थिति एवं घटनाओं को रोचक तत्त्वों से पृथक् करके उन्हें बौद्धिक पृष्ठभूमि दे दी है—उससे उनकी कृतियों में मन को अभिभूत करने वाली रस की धारा मंद सी पड़ गई है। जीवन के सरल सत्य से आलोकित होते हुए भी उनकी रचनाओं में परिस्थितिजन्य तनाव है, जो पाठकों के मन को लिप्त कर लेने के बजाय अपनी शुष्क बौद्धिकता से जकड़ लेता है। अज्ञेय की भांति इलियट की विराट्, विश्लेषक बुद्धि भी मानव-जीवन के विशृंखल अंशों के भीतर से सामंजस्य का एक सूत्र खोज लेना चाहती है। जीवन की निबिड़ता में रम कर वह बुद्धि के माध्यम द्वारा जीवन के सारगर्भित अर्थ को पा लेने का इच्छुक है, किन्तु उसका अत्यधिक आत्मपरक एवं वस्तुपरक दृष्टिकोण असम्बद्ध प्रतीकों एवं अव्यवस्थित जीवन-खण्डों से टकरा कर ही रह जाता है। वह जितनी ही दृढ़ता से अपनी चेतना को उद्बुद्ध करता है, कल्पना एवं अंतर्नुभूति के बल पर अपनी विशिष्ट मान्यताओं को व्यक्त करता है, उतनी ही उसकी अर्थ-व्यंजना उखड़ी उखड़ी सी लगती है और वह जैसे पाठकों के मन में पूरी तरह से उतर नहीं पाता। अधिक सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं अज्ञात भावों को व्यक्त करने के फेर में इन दोनों की व्यंजनाएं दुरूह हो गई हैं, जिससे हृदय का पूर्ण सामंजस्य न होने के कारण प्राणों का स्वर बोलता हुआ सा प्रतीत नहीं होता।

एक स्थल पर इलियट लिखता है "यह सब भला क्या है, जिसका नाम जि़न्दगी है"

("What is yet in this........
That bears the name of life.")

और कभी वह जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में, अंतस्थ अरूप को मूर्त्त रूप देने में स्वयं ही उलझ जाता है। वस्तुतः जीवन के प्रति इलियट और अज्ञेय का दृष्टिकोण अर्ध-चेतन है, आत्म-सचेतन नहीं; उनकी भीतरी चेतना स्वप्नों की सृष्टि करती चलती है और बाह्य-चेतना अर्थ-विमूढ सी कहीं खोई रहती है। इसका कारण कदाचित् यह है कि श्रेष्ठ कवि एवं कलाकार के व्यक्तित्व की दो धारायें होती हैं, जो उसे सामान्य धरातल से ऊपर उठा देती हैं। उसके व्यक्तित्व का अंतरंग पहलू तो चिरंतन-साहित्य के सृजन में तत्पर रहता है और दूसरा व्यक्तिगत हर्ष-विषाद, आशा-निराशा एवं जीवन-संघातों से ऊपर उठकर निरपेक्ष द्रष्टा की भांति पथ-प्रदर्शन करता है, जिसके फलस्वरूप कलाकार अमर सर्जक के आसन र आसीन होने की प्रेरणा पाता है।

सूक्ष्मांकन

यह तो हम प्रारम्भ में ही लिख आए हैं कि अज्ञेय और इलियट ने प्राय: सूक्ष्म भावों की व्यंजना की है। उनके हृदय की गहराई में जो अनंत तरंगें उठ रही हैं—वे जितनी ही अस्पष्ट भाषा में लिपट कर व्यक्त हुई हैं, उतनी ही गंभीरता की व्यंजना करती हैं और उनके भीतर अवस्थित अनिर्दिष्ट, अलक्ष्य, गम्भीर भावनाओं को रेखाओं में बांध शब्दों में रूपायित कर देती हैं। उनकी कथन-शैली बौद्धिक जकड़बन्दी में कसी हुई कुछ कुंठित सी है और उनके भीतर जो कुछ अवरुद्ध है, उसे वे सिकोड़ कर व्यक्त करना चाहते हैं, बिखेरना नहीं चाहते, जिसके फलस्वरूप कई स्थलों पर उनकी भाषा दुरूह और भाव जटिल हो गए हैं।

इलियट अपने सृजन में अधिक फैली हुई अंतर्प्रेरणाओं के संयमन का कायल है और उसने मांसल अनुभूतियों को छांह सी सूक्ष्म एवं धुंधली बनाकर प्रकट किया है, जिससे कई बार उसका कथित मन्तव्य मनोगुम्फों की तहों में घुसकर ही पकड़ा जा सकता है। 'एश वेन्सडे' (Ash Wednesday) की तृतीय कविता में आत्मिक-संघर्ष की क्रमिक स्थितियों का उल्लेख करता हुआ वह लिखता है।

"द्वितीय सोपान के प्रथम मोड़ पर जाकर
मैं मुड़ा और मैंने नीचे झांक कर देखा—
ठीक वैसी ही आकृति पतले खम्भे पर लिपटी हुई
वाष्प-मिश्रित दुर्गन्धपूर्ण वायु के साथ साथ
सीढ़ियों रूपी दानव से संघर्ष कर रही थी,
जिसके मुख पर आशा-निराशा की प्रवंचना का नर्तन था।

* * * *

द्वितीय सोपान के दूसरे मोड़ पर
मैंने उन्हें बल खाते, नीचे मुड़ते हुए छोड़ दिया।
अब वहां विभिन्न मुखाकृतियां न थीं और सीढ़ियों में अन्धकार था,
एक वृद्ध व्यक्ति के लार बहते हुए मुंह की भांति गीला, टेढ़ा-मेढ़ा,
जिसमें कुछ संशोधन न हो सकता था
अथवा एक बड़ी सी बूढ़ी मछली के दांतों भरे मुंह की तंग नली सा वह
जान पड़ता था।

* * * *

तृतीय सोपान के प्रथम मोड़ पर
बड़े बड़े झरोखों वाली एक खिड़की थी, जो घंटी सदृश अंजीर-फलों से
मण्डित थी।
और दूर कांटेदार हरे-भरे वृक्षों की शोभा और चरागाह का दृश्य—
हरे-नीले वस्त्रों से आवृत्त एक सुदीर्घ मानवाकृति,
जो पुरानी ढंग की बांसुरी से मई-मास के वातावरण को मोहक
बना रही थी—
उसकी बिखरी केश-राशि बहुत सुन्दर थी और भूरे बाल मुख के ऊपर
लहरा रहे थे।
सुगन्धित पुष्प एवं भूरे केशपाश
सर्वत्र उच्चाटन, बांसुरी का संगीत-स्वर, तीसरी सीढ़ी पर मस्तिष्क के
धमकते और रुकते क़दम डूबे हुए से निस्पन्द पड़ते जा रहे थे,
तीसरे सोपान को पार करने के लिए आशा-निराशा से परे सामर्थ्य
की अपेक्षा थी।

* * * *

प्रभु ! मैं इसके योग्य नहीं हूं,
स्वामिन् ! मुझमें इतनी पात्रता कहां है,
केवल मौखिक बातें बनाना ही जानता हूं।"

("At the first turning of the second stair
I turned and saw below
The same shape twisted on the banister
Under the vapour in the fetid air
Struggling with the devil of the stairs who wears
The deceitful face of hope and despair.

* * * * *

At the second turning of the second stair
I left them twisting, turning below;
There were no more faces and the stair was dark,
Damp, jagged, like an old man's mouth drivelling,
beyond repair,
Or the toothed gullet of an aged shark.

* * * * *

At the first turning of the third stair
Was a slotted window bellied like the fig's fruit
And beyond the hawthorn blossom and a pasture scene
The broadbacked figure drest in blue and green
Enchanted the maytime with an antique flute,
Blown hair is sweet, brown hair over the mouth blown,
Lilac and brown hair;
Distraction, music of the flute, stops and steps of the mind
over the third stair,
Fading, fading, strength beyond hope and despair
Climbing the third stair.

*   *   *   *   *

Lord, I am not worthy
Lord, I am not worthy
but speak the word only.")

उपर्युक्त उद्धरण में कवि की असामान्य चेतना पार्थिव स्थूल के तमसाच्छन्न जड़त्व की अवहेला कर आत्मा की पूर्णता के साधन में प्रवृत्त होना चाहती है। वह ज्यों-ज्यों परम सत्य के समीप पहुंचने के लिए अग्रसर होती है, त्यों-त्यों जगत् के अनिवार्य आकर्षण उसे घेर लेते हैं और पार्थक्य, अहंकार, बहुविध-बंधन एवं अपूर्ण-चेतना के दानव अबूझ कालिमा में अधिकाधिक सघन होकर और भी भयावह लगते हैं। खिड़की की गुप्त , गहरी दरारों के मध्य से हृदय को जड़ीभूत कर देने वाले भौतिक आकर्षण के संघात, साथ ही मन-बुद्धि को भ्रमित करने वाली अनंतविध संभावनाओं के स्वर उसके दिव्य-संकल्प को शिथिल बना देते हैं और वह आगे बढ़ने में अपनी असमर्थता प्रकट करता है।

यहां साधन-सोपान का रूपक देकर आत्मिक-संघर्ष की जिस अवस्था का उल्लेख किया गया है—वह जीव की साधारण स्थिति और वृहत्तर साधना के पार्थक्य का द्योतक है। साधना की प्राथमिक अवस्था से दूरस्थ उच्च उपान्त तक पहुंचने में पार्थिव अंधकार और पूर्ण ज्योति के मध्य-प्रदेश में ये भयजनित भूत सदैव मिला ही करते हैं, जो साधक के शिथिल चरणों को लड़खड़ा देने वाले होते हैं। अंतः-स्थित आत्मा के प्रयोग एवं बाह्य-जगत् के गुण-कर्म, जहां प्रमाद, स्खलन एवं अज्ञान निम्नगा-प्रकृति के साथ क्रियाशील होकर सम्मिश्रित हो जाते हैं तथा पारबौद्धिक समष्टि-चैतन्य एवं कर्म-प्रवाह के बीच जो भेद है—उसे आंतरिक आत्मानुभव से लक्ष्य करके कवि ने अत्यंत सूक्ष्मदर्शिता के साथ निरूपित किया है।

प्रथम सोपान के आरोहण के समय उसे जो नीचे झांकने पर प्रेतात्मा दीख पड़ती है, उसे 'उसी शक्ल का' (The same shape) लिखकर और भी भय की व्यंजना की गई है। क्या यह वही प्रेतात्मा तो नहीं है, जिससे वह दूर भाग रहा है और जो सीढ़ियों में भी उसका पीछा नहीं छोड़ती ? अथवा और भी वीभत्स बनकर उसकी तमसावृत्त चेतना पर—स्तब्ध वातावरण में—उसका अपना ही प्रतिबिम्ब तो नहीं कौंध जाता, जो उसके अन्तर में विप्लव और उत्पात मचाने का उपक्रम करता है और उसकी आध्यात्मिक-दीक्षा के पट को सदैव के लिए बन्द कर देना चाहता है। 'दि वेस्ट लैंड' (The Waste Land) में उसके हृदय की यह अंधकारमयी जड़ता कचोटती और कसमसाती हुई शब्दों में प्रकट होकर पहले से भी अधिक भय उपजाती है।

"द्वार में ताली घुमाने की आवाज़ मैंने एक बार सुनी,
और वह तत्क्षण एक-बारगी घूम गई।"

("heard the key
Turn in the door once and turn once only".)

कवि की बुद्धि परम सत्य की खोज में इतस्ततः भटकती फिरती है, किन्तु सम्पूर्ण क्षमता के साथ चरम की भावना करने पर भी उसका प्रयास निष्फल हो जाता है। उसकी सत्प्रेरणाएं ज्यों-ज्यों प्रबुद्ध-चैतन्य में समाविष्ट होने के लिए उद्बुद्ध होती हैं और अपनी आत्मस्थ-प्रज्ञा को जितना ही उस ओर उन्मुख करके वह स्थूल गुण-कर्मों की क्रीड़ा एवं भौतिक-आसक्तियों से अपने मन को पृथक् करने का प्रयत्न करता है, त्यों-त्यों उसकी कुत्सित और दुर्दान्त वासनाएं साकार होकर उसके मार्ग को रोक लेती हैं। वह सांसारिक-प्रलोभनों से दूर भागना चाहता है, तथापि........

"यद्यपि मैं इन वस्तुओं की इच्छा करना नहीं चाहता,
तो भी विशाल खिड़की से पथरीले समुद्री किनारे तक श्वेत वस्त्रों से आवृत्त समुद्री जहाजों के पाल अभी भी समुद्र की ओर दौड़े जा रहे हैं।
अटूट पंखों को धारण किये वे उधर ही उड़े जा रहे हैं।

*   *   *   *   *

और मेरा खोया हृदय झड़े पुष्पों और डूबते हुए से सामुद्रिक स्वरों में रम कर
कभी कुंठित होता और कभी हर्ष मनाता है।

मेरे दुर्बल प्राण झुके हुए स्वर्ण-दंड और विस्मृत समुद्री-सुगन्ध के लिए
कभी शीघ्रता से मचल उठते हैं—
और कभी लवा पक्षी एवं चक्कर काटती बुलबुल की चीख को सुनकर
सजग हो जाते हैं ।
मेरी अज्ञ दृष्टि हाथी-दांत मण्डित द्वारों के मध्य शून्य आकारों की
सृष्टि कर देती है ।
और मेरी ग्रहण-शक्ति रेतीली ज़मीन की लवणमय गन्ध को
पुनर्जीवित करके उकसा देती है ।"

("Though I do not wish to wish these things,
From the wide window towards the granite shore
The white sails still fly seaward, seaward flying
unbroken wings........
And the lost heart stiffens and rejoices
In the lost lilac and the lost sea voices
And the weak spirit quickens to rebel
For the bent golden-rod and the lost sea-smell
Quickens to recover
The cry of quail and the whirling plover
And the blind eye creates
The empty forms between the ivory gates
And smell renews the salt savor of the sandy earth.")

भगवत्सत्ता और तदन्तर्गत जीव की सद्बुद्धि आत्मोत्थान का एक छोर है और दूसरे छोर पर असद्-विवेक की प्रच्छन्न-शक्ति हमारी क्षमताओं को कुंठित कर देती है और हम विशुद्धतर अनुभूति में पैठने से पूर्व ही तामसी वृत्तियों की प्रेरणा से निम्न-स्तर पर खिच आते हैं, जो हमें भौतिक आकर्षणों की मृग-मरीचिका में उलझा लेती हैं ।

एक अन्य स्थल पर नदी के स्तब्ध, विषादमय वातावरण को वर्णित करने के लिए इलियट ने अपनी व्यंजना को इतना सूक्ष्म-रूप दे दिया है कि पाठक को अपने मस्तिष्क में पूरा ख़ाका खींचने के लिए पर्याप्त जोर लगाना पड़ता है ।

"नदी का वितान छिन्न-भिन्न हो गया है, अंतिम पत्तों की उंगलियां
गीले किनारे को जकड़े हुए उसके भीतर धंसी हुई हैं,
हवा अनसुनी ही भूरी ज़मीन में से गुज़र जाती है ।"

("The river's tent is broken; the last fingers of leaf
Clutch and sink into the wet bank. The wind
Crosses the brown land, unheard.")

उपर्युक्त पंक्तियों में नदी के वक्ष पर छाये हरे-भरे ग्रीष्म-कालीन वृक्षों के वितान, पुनः पतझड़ में पत्रहीन नग्न डंठलों का दृश्य, जो शुष्क उंगलियों के सदृश पानी को जकड़े हुए सा प्रतीत होता है और तदनन्तर हवा की निस्तब्धता, जो समस्त वातावरण को और भी मनहूस एवं उदास बना देती है—आदि कवि के मन्तव्य को कई बार पढ़ने पर ही जाना जा सकता है।

इलियट की भांति अज्ञेय की भाव-व्यंजना भी साकेतिक है, उन्होंने अपने अंतर्भावों को अधिकतर प्रतीकों एवं रूपकों द्वारा प्रकट किया है, जिससे उनके गीतों की पंक्तियां कहीं कहीं अधिक चिंतन के बोझ से दुर्बोध हो गई हैं। 'भादों की उमस' शीर्षक कविता बोधगम्य होती हुई भी पूर्णतया समझ में आने के लिए किंचित् मानसिक-श्रम की अपेक्षा रखती है।

"सहम कर थम से गये हैं बोल बुलबुल के,
मुग्ध, अनझिप रह गये हैं नेत्र पाटल के,
उमस में बेकल अचल हैं, पात चलदल के,
नियति मानों बंध गई है व्यास में पल के।
* * * * *
लास्य कर कौंधी तड़ित उर पार बादल के,
वेदना के दो उपेक्षित वारि-कण ढलके,
प्रश्न जागा निम्नतर स्तर बेध हृत्तल के—
छा गये कैसे अजाने, सहपथिक कल के ?"

और निम्नलिखित कविता में हारिल पक्षी का रूपक देकर कवि ने उससे परे किसी और ही गूढ़ अर्थ की व्यंजना की है।

"उड़ चल, हारिल, लिए हाथ में
यही अकेला ओछा तिनका—
ऊषा जाग उठी प्राची में
कैसी बाट, भरोसा किनका !
शक्ति रहे तेरे हाथों में—
छूट न जाय यह चाह सृजन की !

शक्ति रहे तेरे हाथों में—
रुक न जाय यह गति जीवन की !

ऊपर ऊपर ऊपर ऊपर
बढ़ा चीरता चल दिङ्-मंडल
अनथक पंखों की चोटों से
नभ में एक मचा दे हलचल !

तिनका ? तेरे हाथों में है
अमर एक रचना का साधन—
तिनका ? तेरे पंजे में है
विधना के प्राणों का स्पन्दन !

कांप न, यद्यपि दशों दिशा में
तुझे शून्य नभ घेर रहा है,
रुक न, यद्यपि उपहास जगत् का
तुझको पथ से हेर रहा है ।"

कवि उपर्युक्त कविता में पक्षी को संबोधन करके जीव की ऊर्ध्वगामी वृत्तियों की ओर निर्देश करता है । यद्यपि सब कुछ मिथ्या है, तो भी वह महत्त्वाकांक्षा को नहीं तजता और सिहरती इच्छाएं संजोए अनन्त-पथ में उड़ता जाता है ।

"मिट्टी निश्चय है यथार्थ, पर
क्या जीवन केवल मिट्टी है ?
तू मिट्टी, पर मिट्टी से उठने
की इच्छा किसने दी है ?

आज उसी ऊर्ध्वंगज्वाल का
तू है दुर्निवार हरकारा
दृढ़ ध्वजदंड बना यह तिनका
सूने पथ का एक सहारा ।

मिट्टी से जो छीन लिया है
वह तज देना धर्म नहीं है
जीवन साधन की अवहेला
कर्मवीर का कर्म नहीं है !

तिनका पथ की धूल, स्वयं तू
है अनन्त की पावन धूली—
किन्तु आज तूने नभ-पथ में
क्षण में बद्ध अमरता छू ली।"

ऐसा लगता है कि अज्ञेय और इलियट इन दोनों कवियों के हृदय में जो भीतर घुमड़ रहा है और घुमड़ता रहा है—वह अटकता हुआ सा प्रकट होता है। वस्तुतः उनकी कविताएं जितना व्यंजित कर पाती हैं—उससे अधिक गहरे अर्थ से वे पूर्ण हैं और एकाग्र-मन से दो-चार बार पढ़ने पर ही समझी जा सकती हैं।

'उद्धारकों से' शीर्षक के अन्तर्गत अज्ञेय ने सांसारिक-वितृष्णा एवं मिथ्या-प्रलोभनों के उन दानवों का उल्लेख किया है, जिनकी चपेट में बड़े बड़े साधकों की लालसाएं भी छटपटाती रहती हैं।

उद्धारकों से

"तुम कहते हो कि वह राक्षस है ?
अपने अन्तस्तल में तुम सभी उस सुनहले परों वाले जादू के घोड़े के आकांक्षी हो, जो राक्षस के किले के भीतर बंधा हुआ है।
तब तुम्हारे यह चिल्लाने का क्या मूल्य है कि राक्षस लोलुप और अनाचारी है ?"

अन्तःस्थित आत्मा के वे साधन, जिनसे जीव का कल्याण होता है, भौतिक-आकर्षणों से सहज ही पराभूत हो जाते हैं, जिससे इस जंजाल से निकलने का मार्ग दुर्गम और अनिर्दिष्ट हो जाता है। जीवन कितना क्षणभंगुर है और मानवीय आकांक्षाओं का दम्भ कितनी भयंकर विडम्बना !

"आज चल रे तू अकेला !
आज केंचुल-सा स्खलित हो असह माया का झमेला !
जगत् की क्रीड़ा-स्थली में
संगियों के साथ खेल—
सघन कुंजों में पड़े
तूने स्त्रियों का प्यार झेला—

आज वह आया बुलाने
जो सदा निस्संग ही है—

कूच का सामान कर अब
आ गई प्रस्थान बेला ।

दुःख कैसा ? मोह क्यों ? क्या
सोचता अपना-पराया ?
बेधड़क हो साथ ले चल
जो कभी तू साथ लाया !"

जीवन की क्षणभंगुरता का उल्लेख करते हुए इलियट ने भी अपनी एक कविता में मनुष्य-जीवन को निर्जन प्रदेश में पड़े हुए उस चट्टान की छाया बताया है, जिसकी प्रतीति मात्र तो होती है, किन्तु जो कुछ भी नहीं है और मरुस्थल में जल-विहीन सूखी नदी के सदृश है। जब मृत्यु आती है और मनुष्य अपने चिर-स्थायी घर के लिए प्रस्थान करता है तो सांसारिक-ऐश्वर्य स्वप्नवत् हो जाते हैं और यह मिट्टी का शरीर अंततः मिट्टी में ही मिल जाता है।

"केवल
वहां उस लाल चट्टान के नीचे छाया है,
(इस लाल चट्टान की छाया के भीतर आ जाओ)
और मैं तुम्हें दोनों से भिन्न कुछ और ही दिखाऊंगा
प्रातः तुम्हारी छाया तुम्हारे पीछे क़दम भरती हुई
अथवा संध्या समय तुम्हारी छाया तुमसे मिलने के लिए उठती हुई,
मुट्ठी भर धूल में किस प्रकार भय समाया हुआ है—यह मैं तुम्हें दिखाऊंगा ।"

("Only
There is shadow under this red rock,
(Come in under the shadow of this red rock),
And I will show you something different from either
Your shadow at morning striding behind you
Or your shadow at evening rising to meet you;
I will show you fear in a handful of dust.")

पलायनवाद और निर्व्यक्तिकरण

इलियट ने अपने प्रख्यात निबन्ध 'ट्रेडीशन एण्ड इनडिविड्युएल टेलेंट' (Tradition and Individual Talent) में लिखा है "काव्य व्यक्तित्व की अभिव्यंजना नहीं, वरन् व्यक्तित्व से पलायन है"। इलियट की उपर्युक्त विचारधारा से प्रभावित होकर अज्ञेय ने भी अपने निबन्ध 'परिस्थिति और साहित्यकार' में इसी प्रकार के विचार प्रकट किए हैं। इसके अतिरिक्त ये दोनों ही कलाकार के व्यक्तित्व और उसकी कृति को दो भिन्न वस्तुएं मानते हैं। उनके मत से विशिष्ट प्रतिभाशाली व्यक्ति की चेतना सदैव ही उसके चतुर्दिक् वातावरण से ऊपर उभरी रहती है और उसकी केन्द्रानुगामिनी शक्ति फैली हुई बहिर्मुखी वृत्तियों का अनवरत निरोध करती रहती है, जिसके फलस्वरूप उसके मनोवेगों में चाहे कैसी ही प्रचण्ड वात्या क्यों न हो-एक प्रकार की संयत समता के दर्शन होते हैं। अज्ञेय के शब्दों में "कलाकार निरन्तर अपने व्यक्तिगत मन को, अपने तात्कालिक, अधिक क्षणिक अस्तित्व को एक महानतर मन में और एक विशालतर अस्तित्व के ऊपर निछावर करता रहता है, अपने निजी व्यक्तित्व को एक वृहत्तर व्यक्तित्व के निर्माण के लिए मिटाता रहता है।" आगे उन्होंने इलियट के अव्यक्तिवादी सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए कलाकार की सृजन-प्रक्रिया को उसकी व्यक्तिगत अनुभूतियों से पृथक् कर दिया है और कवि-मानस को उसकी अंतर्भूत, उत्कट धारणाओं को अप्रत्याशित रीति से व्यक्त करने का माध्यम माना है। 'रूढ़ि और मौलिकता' में अज्ञेय लिखते हैं, "कलाकार का निर्माण निरी निजी अनुभूतियों से नहीं होता—कलावस्तु बनती है उन अनुभूतियों से—उन अनुभूतियों और भावों के संगम से, जिनसे कवि स्वयं अलग, तटस्थ है, जिनपर उसका मन काम कर रहा है।" इलियट ने कवि की इस मानस-प्रक्रिया की तुलना प्लेटीनम के उस तन्तु से की है, जो सल्फ़र डायोक्साइड और ऑक्सीजन गैसों को मिलाकर सल्फ्यूरस एसिड में परिवर्त्तित कर देता है, किन्तु स्वयं में कुछ भी परिवर्त्तन नहीं होता और अज्ञेय ने मानों इसी बात को अधिक सुस्पष्ट करने के लिये कवि के मन की उपमा उस भट्टी से दी है, जिसकी उष्णता से विभिन्न तत्त्वों से बनी हुई अनेक धातुएं मिलकर एकरस तो हो जाती हैं, किन्तु भट्टी का भट्टी के मालिक अथवा धातुओं से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं होने पाता।

इसमें सन्देह नहीं कि श्रेष्ठ-कला स्रष्टा की बौद्धिक शक्तियों से उद्भूत होकर उसके चिरपरिचित जगत् के लिये अपरिचित सी बन जाती है, तथापि मनोवैज्ञानिक पद्धति से विश्लेषण करने पर यह सर्वमान्य है कि प्रत्येक कला के

निर्माण में कुछ ऐसे तत्त्व सन्निहित रहते हैं, जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कलाकार के चिर-सहचर मनोवेगों से संघटित होते हैं और जिनके फलस्वरूप किसी भी कला में उसके स्रष्टा के व्यक्तित्त्व एवं अन्तर्नुभूतियों की वागात्मक अभिव्यक्ति अवश्यम्भावी है। कलाकार के मूल-भाव और उसकी अरूप संवेदनाएं अनजाने ही उसके रचना-तंतुओं में आ रमती हैं और वह अपनी प्रतिभा से उन्हें ऐसे सांचे में ढाल देता है कि उनमें पृथकत्व होते हुए भी अज्ञात रूप से उसके व्यक्तित्व का संस्पर्श तो बना ही रहता है।

अज्ञेय ने स्थान स्थान पर अपनी सृजन-प्रक्रिया में तटस्थता और स्वात्म से सम्पूर्ण पलायन की घोषणा की है। उपन्यास के नायक शेखर के जीवन-दर्शन और विचारों को उन्होंने अपने जीवन-दर्शन से भिन्न माना है। 'चिता' की भूमिका में वे लिखते हैं, "काव्य-रचना मूलत: अपने को अपनी अनूभूति से पृथक् करने का प्रयत्न है—अपने ही भावों के निर्व्यक्तीकरण (depersonalisation) की चेष्टा। बिना इसके काव्य निरा आत्म-निवेदन है और सच होकर भी इतना व्यक्तिगत है कि काव्य की अभिधा के योग्य नहीं है—सर्वजनीनता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता।" इस प्रकार उन्होंने 'विश्वप्रिया' और 'एकायन' में पुरुष और स्त्री के चिरंतन-संघर्ष और उन दोनों के दृष्टिकोण से मानवीय प्रेम के 'उद्भव, उत्थान, विकास, अन्तर्द्वन्द्व, ह्रास अंतर्मन्थन, पुनरुत्थान और चरम संतुलन' को अन्विति का प्रयास बताकर अपनी निरपेक्ष तटस्थता की दुहाई दी है। किन्तु इसके विपरीत हमें तो लगता है कि अज्ञेय की कृतियों में औरों से भी अधिक इच्छापूर्ति का अंश विद्यमान् है और पलायनवाद एवं निर्व्यक्तिकता की ओट में उन्होंने अपने आत्म-घटित एवं स्वानुभूत-तथ्यों को ही व्यक्त किया है। क्या 'चिन्ता' की अस्पष्ट, अरूप भाव-व्यंजना में लेखक के अपने व्यक्तिगत, लौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं हुई है ? क्या वह 'विश्व-प्रिया' और 'एकायन' में पुरुष एवं नारी-जीवन के किसी गूढ़-सत्य अथवा अन्तर्मन्थन की अभिव्यंजना कर पाया है ? हमारे दृष्टिकोण से 'चिन्ता' में स्वकीया की अपेक्षा परकीया-प्रेम की अधिक व्यंजना होने से ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक का हृदय किसी के द्वारा बुरी तरह से झकझोरा गया है, जिसके कारण उसे पद-पद पर कभी आशा, कभी निराशा और कभी आसक्ति अथवा घोर विरक्ति होती है। परकीया से अपनत्व का भाव न होने के कारण वह उसकी मादक रूप-माधुरी के आस्वाद के लिए कभी तड़प उठता है—

"तेरी आंखों में क्या मद है जिसको पीने आता हूं—
जिसको पीकर प्रणय-पाश में तेरे में बंध जाता हूं।"

कभी वह उस सुन्दरी नवयौवना के चरणों में लोटकर (जिससे उसकी कुछ न कुछ दूरी तो बनी ही रहती है और कदाचित् जिसकी यह दूरी ही उसके आकर्षण का कारण है) अपने अस्तित्व तक को उसमें मिटा देने की आकांक्षा रखता है।

"मैं जन्म-जन्मान्तर की अपूर्ण तृष्णा हूं, तुम उसकी असम्भव पूर्ति। इस तृष्णा और तृप्ति का कहां मिलन होगा, कहां एक दूसरे में समाहित हो जाएंगी, यह मैं नहीं जानता, न जानने की इच्छा ही रखता हूं। इस तृष्णा में ही इतना घना जीवन भरा पड़ा है कि मुझे और किसी चाह के लिये स्थान नहीं रहता।"

और कभी वह अपना छोटा सा नीड़ बसा कर उफनते हृदय से जीवन की मधुर पूर्ति चाहता है—

"तुम और मैं मिलकर एक छोटे से संसार के स्वामी हैं। तुम्हारी प्रेरणा से मैं ध्वनित हो उठता हूं, और उस ध्वनि की प्रेरणा से हमारी चिरन्तन प्रणय-कामनाएं पूरीकरण में लीन हो जाती है।

यही हमारे प्रेम का छोटा-सा, किन्तु सर्वतः सम्पूर्ण दरबार है।"

प्रेम के शिथिल क्षणों में अपनी कथित प्रेयसी के लिए लेखक के हृदय में कभी कभी परकीया-भाव इतना उत्कट होकर जाग्रत होता है कि वह तीव्र घृणा से बौखला जाता है—

"तुम में यह क्या है जिसे मैं डरता हूं और घृणा करता हूं ? यह संहत छाया क्या है जिसको भेद कर मेरी दृष्टि पार तक नहीं देख सकती ?

क्या यह तुम्हारे गत जीवन की ही छाया है, केवल तुम्हारे जीवन का एक अंग, जिस पर मेरे जीवन की छाप नहीं पड़ी—एक अंग जिस पर दूसरों का अधिकार रहा है और जिसमें तुमने दूसरों का प्यार पाया है। क्या यह तुम्हारी स्वतन्त्र और विशिष्ट आत्मा के प्रति ईर्ष्या है, केवल ईर्ष्या ?"

और यह ईर्ष्या कभी कभी इतनी भभक उठती है कि वह उससे पृथक् रहने और उसे दूर भगाने को उद्यत हो जाता है—

"मैं तुम्हें किसी भी वस्तु की असूया नहीं करता—किन्तु तुम सब कुछ लेकर चली भर जाओ, मेरे जीवन में से सदा के लिए लुप्त हो जाओ !

तुमने मुझे वेदना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिया; मुझ में वही वेदना जमकर और वर्द्धमान होकर पुष्पित हो गई है।

तुम चाहो, तो उन पुष्पों को तोड़ ले जाओ—जो वस्तु मैंने अपने जीवन को अग्नि में तपाकर और भस्म करके सिद्ध की है, उसे अभिमानपूर्वक, सदर्प ले

जाओ, जैसे कोई साम्राज्ञी किसी दास का तुच्छ उपहार ग्रहण करती है—किन्तु लेकर फिर बस चली भर जाओ, मेरे जीवन के क्षितिज से परे, जहां तुम्हारे उत्ताप का आलोक भी मेरे दृष्टिगोचर न हो ।"

किन्तु न जाने परकीया-प्रेम में क्या जादू होता है, जो प्रेमी को दूर ढकेलता हुआ भी अपनी ओर बरबस खींचता है और यदि कभी मन में विलगाव हो भी जाता है तो आकर्षण की क्रिया तत्क्षण प्रारम्भ हो जाती है । निम्नलिखित उद्धरण में लेखक के प्रेम की मानों सम्पूर्ण कहानी अंकित हो गई है ।

"मैं केवल एक सखा चाहता था ।

मेरे हृदय में अनेकों के लिए पर्याप्त स्थान था । संसार मेरे मित्रों से भरा पड़ा था । किन्तु यही तो विडम्बना थी—मैं असंख्य मित्र नहीं चाहता था, मैं चाहता था केवल एक सखा ।

नियति ने मुझे वंचित रखा । इसलिए नहीं कि मैंने कामना नहीं की, या खोज में यत्नशील नहीं हुआ । कितनी उग्र कामना की थी । और प्रयत्न ? मैंने इसी खोज में विश्व छान डाला और आज यहां हूं . . . . .

नहीं, नियति को दोष क्यों दू ? कारण कुछ और था ।

मेरे ही हृदय में कुछ ऐसा कठोर, ऐसा अस्पृश्य, ऐसा प्रतारणपूर्ण विकर्षण था—वह कठोर था, किन्तु सूक्ष्म, निराकार था, किन्तु अभेद्य . . . . मेरे समीप आकर भी कोई मुझ से अभिन्न नहीं हो सकता था । उस अज्ञेय तत्त्व पर किसी का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता था . . . . .

वह था क्या ? अहंकार ?

नहीं, वह था अपने बल का अदम्य अभिमान . . . . कि मैं केवल पुरुष नहीं, केवल मानव नहीं, एक स्वतन्त्र और सक्रिय शक्ति हूं ।

पता नहीं कैसे, तुम मेरे बहुत समीप आ पाई थीं . . . . और उस अस्थायी अत्यन्त सान्निध्य में मैं कांप गया था ।"

'एकायन' में जिस नारी-हृदय के आलोड़न को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है—वह भी पुरुष के अहं के शालीन आवरण में लिपट कर खोगया है । स्त्री की समग्र इच्छाओं को उसने अपने अहं में समेट कर पुरुषत्त्व का दम्भ और नारी की करुणा तथा एक की गौरव-भावना में दूसरे की आत्म-प्रणति का निदर्शन किया है, जिसमें नारी के आत्यन्तिक मनोभावों की उपेक्षा की गई है । आरम्भ से अन्त तक उस में नारी का आत्मिक-संघर्ष नहीं, वरन् किसी निर्मम प्रणयी के विरह-व्यथा की छटपटाहट है और यह निर्मम प्रणयी बहुत कुछ लेखक से मिलता-जुलता है ।

"दया से आंख मूंद लो देव !
नहीं मांगूंगी मैं बरदान,
तुम्हें अनदेखे देकर भेंट--
तिमिर में हूंगी अंतर्धान ।
ध्यान मत दो तुम मेरी ओर--
न पूछो क्या लाई हूं साथ !
गान से भरा हुआ यह हृदय--
अर्घ्य को चिर-तत्पर ये हाथ !
पूजारिन कैसी हू मैं नाथ ।"

इसके अतिरिक्त 'शेखर' उपन्यास और 'विपथगा' एवं 'परम्परा' की अधिकांश कहानियों में भी रचयिता के अपने जीवन की गहरी छाप है और समष्टि की धुरी पर खड़ा हुआ भी वह व्यष्टि के इर्दगिर्द चक्कर काट रहा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इलियट अपनी कृतियों में अज्ञेय की अपेक्षा अधिक तटस्थ रह सका है। उसकी उद्भावना में समुचित आत्म-निर्देश के साथ साथ निर्मल दृष्टि और क्षिप्रतम संवेदनशीलता है, जो उसे परखने की अचूक प्रतिभा प्रदान करती है। उसकी कथन-शैली ठोस और संयमित, व्यंजना अस्पष्ट और दुरूह, कथानक पहेली से गूढ़ और रहस्याच्छन्न, जिसमें जोर लगाकर ही धंसा जा सकता है, उसके चरित्रों में द्वन्द्व एवं दृढ़ता तथा भाषा में एक ऐसा तनाव और स्थिरता है, जो उसके आंतरिक विश्वासों और मनोवेगों के अनुरूप गंभीरता लिए हुए है। अज्ञेय की कृतियों में आत्म-विश्लेषण की प्रवृत्ति अधिक दृष्टिगत होती है और इलियट की रचनाओं में नैतिक प्रतिमानों के संस्थापन का आग्रह, किन्तु इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि दोनों ने ही मानवीय-भावनाओं को अपनी सापेक्षता में रखकर जांचा और अंकित किया है।

कवि और आलोचक

अनवरत काव्य-साधना के बावजूद अज्ञेय और इलियट की प्रतिभा की जागरुकता आलोचना में भी द्रष्टव्य है। कविता में जो उनके सूक्ष्म-स्पंदन अपने तक ही सीमित न रहकर दूसरों तक पहुंचने के लिए पथ में बिछ गए हैं--वे आलोचना में अधिक व्यावहारिक और घनीभूत बनकर गंभीर रूप में प्रकट हुए हैं, जिससे उनकी सृजन-प्रक्रिया की परिपक्वता का आभास मिलता है। इलियट अपनी प्रारम्भिक कृति 'प्रुफ्रॉक एण्ड अदर आब्जर्वेशन्स' (Prufrock and Other Observations) में विश्व के तामसी-स्वरूप से खिन्न होकर जीवन के पूर्णत्व

के लिए एक नवीन मार्ग का अनुसंधान करने को तत्पर होता है। मानव-जीवन को अत्यंत निकट से देखने पर वह उन भ्रामक, मिथ्या स्वप्नों से जग जाता है, जो अब तक उसके विवेक को अंधा किए थे। यथार्थ के विकृत रूप को देखकर वह सहसा कांप उठता है और उसकी चेतना डूबने सी लगती है।

"हम देर तक जल-कक्षों में
लाल और भूरे रंग की समुद्री-घास की मालाओं से सुसज्जित जलकन्याओं
के साथ विचरते रहे—
जब तक कि हमें मानवीय-स्वरों ने सजग न कर दिया और हम डूबने लगे।"

("We have lingered in the chambers of the sea
By sea-girls wreathed with sea-weed red and brown
Till human voices wake us, and we drown.")

'जेरोन्शन' (Gerontion) और 'दि वेस्ट लैण्ड' (The Waste Land) में जर्जर संस्कृति के खोखलेपन और विश्वासहीन जीवन की शून्यता का गम्भीर स्वर सुन पड़ता है, जो 'हॉलो मेन' (Hollow Men) और 'एश वेन्सडे' (Ash Wednesday) में और भी भयानक हो गया है। लगता है—जैसे कवि भौतिक विरूपता से घबराकर मानव-जीवन के शाश्वत-सौन्दर्य में रमना चाहता है और लौकिक विषमताओं का नैतिक समाधान ढूंढ़ रहा है।

"भाग्यवान् बहिन, पवित्र मां, निर्झर एवं उद्यान की देवि !
हमें मिथ्यात्व की विडम्बना से क्षुब्ध न करो।
हमें चिन्ता करना और चिन्ता से विनिर्मुक्त
तथा इन चट्टानों के मध्य चुपचाप बैठना सिखा दो।
इन चट्टानों के मध्य भी
हमारी शान्ति प्रभु की इच्छा में ही निहित है।
भगिनी, मां और नदी एवं समुद्र की देवि !
हमें प्रभु से पृथक् होने की व्यथा न सहनी पड़े,
और हमारे आर्त्त-स्वर को उस तक पहुंचा दो।"

("Blessed sister, holy mother, spirit of the fountain, spirit of the garden,
Suffer us not to mock ourselves with falsehood
Teach us to care and not to care
Teach us to sit still
Even among these rocks,
Our peace in His will

And even among these rocks
Sister, mother
And spirit of the river, spirit of the sea
Suffer me not to be separated
And let my cry come unto Thee.")

जीवन के अपराह्न में कवि अन्ततः गहरा आत्मद्रष्टा हो गया है। 'फायर सरमन' (Fire Sermon) और 'फोर क्वार्टेट्स' (Four Quartets) में वह आध्यात्मिक रहस्यवादी के रूप में प्रकट हुआ है और उसके सत्यान्वेषण में दार्शनिक गहराई है । बाह्य-चेतना से निकलकर प्रत्यक्ष अन्तश्चैतन्य को प्राप्त होना, लौकिक अभीप्सा से आत्मतत्त्व की ओर अनवरत उन्मुख होते रहना तथा आन्तर-संकल्प एवं आत्म-दान द्वारा आध्यात्मिक पूर्णता और परासिद्धि की उपलब्धि करना—यही सांसारिक पचड़ों से निकलने का बना-बनाया निर्दिष्ट पथ है, जो निरपेक्ष ज्योति-स्वरूप से साक्षात्कार कराता है । इलियट के अनुभव की एक लीक यहीं आकर समाप्त हो जाती है । कुछ लोगों ने उसके इस परिवर्त्तित दृष्टिकोण को 'पलायनवादी-वृत्ति' कहा है, किन्तु वह इसके विपरीत बाह्य से आभ्यन्तर की ओर लौटकर बाहरी और भीतरी परिस्थितियों के मध्य सामंजस्य उपस्थित करना चाहता है और इसी जीवन को कला में भी मूर्त्त देखना चाहता है ।

इलियट ने अपनी प्रमुख समीक्षा-पुस्तकों 'सिलेक्टेड एस्सेज्' (Selected Essays) और 'दि यूस ऑफ पॉयट्री' (The Use of Poetry) में पूर्ववर्त्ती एवं सम-सामयिक कवियों की मतालोचना करने के पश्चात् अपने ठोस सिद्धांतों की पुष्टि की है, जिनके द्वारा काव्य-क्षेत्र में कुछ नवीन मतवादों की स्थापना की गई है।

साधारणतः अज्ञेय की प्रवृत्ति भी काव्य-सृजन से साहित्य के गम्भीर विवेचन की ओर रही है । उन्होंने 'त्रिशंकु' में आलोचना के खरे प्रतिमानों के सहारे अनेक सामयिक कवियों की विशेषताओं का आनुपातिक विश्लेषण किया है, जिसमें उनकी अन्तर्दर्शी एवं स्थितप्रज्ञ बुद्धि की पारदर्शिता निहित है, किन्तु यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि उनका स्रष्टा का रूप समीक्षक से अधिक उपादेय और महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है । इलियट आस्तिक मनस्वी है, अज्ञेय नास्तिक आत्मार्थी, दोनों ही समाज की वर्त्तमान् श्वासावरोधी विषमताओं से परिचित होकर भी रूढ़िवादी विचार-धारा के पोषक हैं । दोनों ही व्यष्टि से समष्टि और पुनः समष्टि से व्यष्टि की ओर उन्मुख हैं, दोनों में आत्मवृत्त के प्रक्षेपण की वृत्ति है । अज्ञेय के जीवन-दर्शन का दृष्टिकोण इलियट से अधिक प्रगतिशील है, किन्तु इलियट वस्तु-तथ्य के मर्म में गहरा पैठ सका है और उसने जीवन की मार्मिक, सांश्लिष्ट व्याख्या अधिक सफलतापूर्वक की है ।

जैनेन्द्र और मेरीडिथ

*

जैनेन्द्र और मेरीडिथ की साहित्य-साधना और रचनाकाल में लगभग अर्द्ध-शताब्दी का अन्तर है, तो भी दोनों अपने अपने युग में एक नवीन जीवन-दिशा के अन्वेषी और तत्त्व-जिज्ञासु के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। कथा-साहित्य की रूढ़िवादी शृंखलाओं को विच्छिन्न करके जीवन के निष्क्रिय-पक्ष में झांकने वाले जैनेन्द्र एक नवीन प्रयोगी हैं और मेरीडिथ विक्टोरियन-युग की चिर-प्रयोग-शील साहित्यिक-मान्यताओं से ऊब कर अन्तर्वैयक्तिक तथ्य-जगत् का गम्भीर विश्लेषक, जहां नैतिक जीवन के अर्द्ध-व्यक्त अनुभव-खण्डों से टकराकर वह आंतरिक-कुण्ठाओं के सूक्ष्म नियोजन में व्यस्त है और मानव-मन की पेचीदा गुत्थियों को यथावत् सुलझाने के प्रयास में उसी अनुपात से उलझता गया है। यद्यपि मेरीडिथ की सी उदात्त कल्पना जैनेन्द्र में नहीं है, तथापि दोनों की स्वभावज-विशेषताएं और शोधक-वृत्तियां उन्हें समानता के एक सूत्र में बांधती हैं, प्रत्युत् यों कहें कि दोनों ही किसी एक स्कूल अथवा गुट्ट के न होकर नई मंजिल तय करने वाले राही हैं, जो जीवन के वस्तुगत-सत्य को आग्रहपूर्वक पकड़ने के चिर-आकांक्षी हैं और व्यष्टि के वृत्त से निकल कर समष्टि-चेतना के दायित्व को जागरूक-बुद्धि से स्वीकार करते हैं।

जैनेन्द्र की कृतियों में उनकी मानसिक कुण्ठाएं अत्यन्त अनुशासित होकर व्यक्त हुई हैं। लेखक प्रायः मानव-जीवन की विरूपता का क्षीण सूत्र हमारे हाथों में थमाकर मनोभावनाओं की सतह पर ऐसे धमकते क़दमों से चलता है कि कभी

अपनी आहत अहंशून्यता की कुहेलिका म छिप जाता है और कभी रुद्ध आत्मा की छटपटाहट और घुमड़न को दार्शनिक आवरण में लपेट उसके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में बहक जाता है। एक प्रखर बुद्धिवादी होने के नाते वह व्यक्ति की प्रच्छन्न दुर्बलताओं पर घातक, किन्तु निःशब्द चोट करता है और सामाजिक-स्वीकृति की ओट में जो निरपवाद रूप से मानसिक-अतृप्ति और अस्पष्ट-चाहनाएं छिपी हैं, उन्हें अत्यन्त तीव्रता से अनुभव करके तर्क-पद्धति पर उघाड़ उघाड़ कर दर्शाता है। मानव-जीवन ज्यों ज्यों विकसित हो रहा है, त्यों त्यों उसकी जटिलता और उलझनें बढ़ती जा रही है और जैनेन्द्र मानों उसकी आत्मगत सतह पर पड़ी सलवटों को पकड़ने के आयास में स्वयं ही मानसिक संतुलन खो बैठते है। व्यक्ति की सम्भाव्य और अर्द्ध-व्यक्त कुण्ठाएं उनके समक्ष सदैव एक समस्या बनी रहती हैं, तीखी अनुभूति और अविश्वास की मात्रा अधिक होने के कारण उनका जीवन से पूर्ण लगाव नहीं हो पाता, जिससे कई स्थलों पर उनका चिंतन एकांगी हो गया है और उनके द्वारा उतारे गए जीवन के चित्र भी अधूरे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उनके कतिपय चित्रों में अप्रतिम निखार और वाह्यान्तर का विवरणपूर्ण मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है, किन्तु 'क्लाइमेक्स' लाने के प्रयास में वे लड़खड़ा जाते है और अंतर्द्वन्द्वों से प्रपीड़ित व्यक्ति की भांति बिना मुखातिब हुए बीच में ही विषय से नाता तोड़ पीछा छुड़ा लेते है।

जैनेन्द्र की अधिकांश कहानियों और उपन्यासों को पढ़ कर हमें लगता है जैसे वे जीवन के मर्म में अभी पूर्णतया पैठ नहीं पाए हैं। वे अपने अनुभूत तथ्यों को कहना तो चाहते है, किन्तु क्या कहें और कैसे कहें—इसे वे मानों भली प्रकार नहीं जानते। जीवन को केवल बुद्धि के पैमाने से जांचने के कारण उनमें अनुभूति की कमी है और उनकी दृष्टि मानव-हृदय के कोमल-वृत्तों में न रमकर भीतरी संघर्षों की ऊपरी सतह को ही छूकर रह गई है।

इसके विपरीत मेरीडिथ की वृत्ति अंतर्मुखी है। बहिरंग जीवन से सिमटकर उसकी आत्मपरक दृष्टि अंतरंग आधेय पर आ टिकी है, जहां उसकी बहिर्निष्ठ एवं अंतर्निष्ठ चिंताधाराओं का स्रोत दोमुखी होगया है और उसकी हल्की से हल्की अनुभूति जीवन के खण्ड खण्ड पर बिखरकर उसके शाश्वत रूपों की प्रतिरूप बन गई है। जीवन-दर्शन की गहरी मुद्रा में उसके नेत्र प्रायः मुंद जाते हैं। वह जीवन को सीधे न देख कर अंधेरे में भटकते हुए की भांति टटोलता है, जिससे कल्पनातिरेक में अपनी उलझी हुई जटिल अभिव्यक्तियों को अभीष्ट रूपरेखा न दे सकने के

कारण वह अपने साध्य की अतिशयता का विधायक न होकर उसकी प्रभविष्णुता को क्षति पहुंचाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि तत्कालीन उपन्यासकारों में मेरीडिथ अपनी उच्च-मनोभूमि के कारण सामान्य धरातल से ऊपर उठ गया है और मानव-जीवन के यथातथ्य ग्राह्य को इतने वर्गों पर बिखेर सका है कि उसके द्वारा अंकित टेढ़ी मेढ़ी लकीरें असीम का स्पर्श करने लगी हैं।

जैनेन्द्र में वस्तु-अंकन की प्रवृत्ति अधिक होने के कारण जीवन के सूक्ष्म और मार्मिक पहलुओं को दर्शाने की क्षमता कम है, मेरीडिथ की सूक्ष्म-दृष्टि निगूढ़ मनोगतियों एवं मानसिक तथ्यवाद की टोह में रहने के कारण उन प्रच्छन्न स्तरों को भी भेद सकी है, जहां मानव-स्वभाव की अनास्थाओं एवं चारित्रिक त्रुटियों का निरापद अवस्थान है। जैनेन्द्र ने व्यक्ति की गुप्त, किन्तु दुर्दान्त वासनाओं के ऊपर औपचारिक आवरण चढ़ाया है, मेरीडिथ ने सूक्ष्म-द्रष्टा की भांति परिस्थितियों से खिलवाड़ न करते हुए मानवीय-विकृतियों को निरावरण किया है। जैनेन्द्र के खण्ड-चित्रों में उद्बुद्ध-मन की विपुल प्रेरणा और आन्तरिक कर्म-निष्ठा की गहरी छाप है, उन्होंने सधी रेखाओं से कल्पना को बलिष्ठ और गतिशील बनाया है, मूल्य आंकने की पुरानी दृष्टि बदली है, तर्कमूलक पद्धति पर नवीन जीवन-तथ्यों का उद्घाटन किया है, किन्तु मेरीडिथ में जो आत्म-प्रत्यय का ओज, व्यापक अंतर्नुभूति और कथा-शिल्पी की सप्राण चेष्टा है—वह जैनेन्द्र में नहीं। मेरीडिथ की कृतियों में मानव-जीवन के केवल खण्ड-चित्र ही नहीं हैं, प्रत्युत् उसकी वृहत्तम पट-भूमि में जीवन को एक विशेष दृष्टि से देखने की साध , उसके मार्मिक एवं विविध पहलुओं का पारिपार्श्विक चित्रण, मनोवैज्ञानिक बारीकियों से विश्लेषण-वृत्ति का अतिशय्य और प्रत्यक्ष अनुभव की स्फूर्ति के बावजूद आंतरिक विश्वास को मूर्त्त करने का प्रयास है। जैनेन्द्र अपने वैयक्तिक दृष्टिकोणों को तूल देकर कई बार कृत्रिम वातावरण की सृष्टि करते हैं। उनकी कल्पना का बारीक सूत्र बहुधा टूट गया है, वे कल्पना और तर्क के सहारे मानव-मस्तिष्क की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु उनका शब्दांकन कभी कभी इतना तर्ककर्कश और अस्वाभाविक हो जाता है कि घटनाओं और पात्रों के साथ ठीक सामंजस्य नहीं हो पाता। जैनेन्द्र के कृतित्व में दार्शनिकता का पुट भले ही हो, उनके भीतर का कलाकार जिन्दगी से मुंह चुरा कर आंखें मूंद लेना चाहता है, अतएव उनकी बुद्धिलब्ध स्थापनाओं में दुरूह जटिलता तो मिल सकती है, किन्तु जीवन का वैचित्र्य नहीं, लगता है जैसे जीवन के कठोर तल पर टकराकर उनका बंधा चिंतन बिखर जाता है और वे अपनी अपर्याप्तता से संत्रस्त हो बीच में ही घुटने टेक देते हैं।

इसके विपरीत मेरीडिथ का सक्रिय अभिमान कभी दीन नहीं होता। यद्यपि उसकी रचनाओं में जीवन के प्रच्छन्न-वृत्तों के उद्घाटन का प्रयास नही है, तो भी वह उनके अणु-परमाणुओं तक को संवारने की कला जानता है और इसमें अत्युक्ति नहीं कि उसकी उत्कृष्ट कलाकृतियों में जीवन-दर्शन की व्यापकता और मन को बरबस पकड़ने वाली सघन व्यंजना है।

टेकनीक

उपर्युक्त विभिन्नताओं के बावजूद जैनेन्द्र और मेरीडिथ की कलात्मक टेकनीक में पर्याप्त साम्य है। इन दोनों की साहित्यिक विशेषताओं पर दृष्टिपात करने से दो निराले व्यक्तित्वों के बिम्ब हमारी आंखों में तैरने लगते हैं। उनका सुस्थिर मनोलोक असाधारण रूप से अन्तर्भिमुख होने के कारण बाह्य-सन्दर्भों से दूर जा पड़ा है और उन्होंने जीवन-सम्बन्धों को भिन्न कसौटी पर रखकर देखा-जांचा है, फलतः उनके कला के उपादान भावपरक न होकर अधिक मूर्त्त, ऐकांतिक और मानवीय हो गए हैं। उनके उपन्यासों के विषय चाहे जो हो, वस्तु-अंकन की प्रणाली भी कैसी ही हो, उनकी कथन-शैली जीवन-प्रसंगों की भूमिका पर आश्रित और हृदय की गहराई को छू लेने वाली है। जीवन की संकुचित परिधि में पनपने वाली उनकी अंतश्चेतना जिस रूप में विकसित हुई है, जिस पारिवारिक एवं सामाजिक वातावरण और परिस्थितियों में उनके भाव-विचार बने हैं, वे अपने विषय के लिए मूल-आलम्बन की ओर न जाकर एक विशेष परिधि में आबद्ध हो गए हैं और उनकी अपनी निर्मित धारणाओं पर केन्द्रित है।

जैनेन्द्र हिन्दी के प्रथम उपन्यासकार है, जिन्होंने मानव-सम्बन्धों को विभिन्न दृष्टिकोण से देखा है, उन्होने आगे बढ़ कर उन प्रसंगों का आकलन किया है, जो अछूते थे और जिन पर किसी की दृष्टि न गई थी। 'सुनीता' में हरिप्रसन्न के अंतर में घुमड़ता कुत्सित मोह और संकल्पबद्ध काठिन्य का विश्लेषण करते हुए वे लिखते हैं, "कर्त्तव्य कठोर है, राह दीर्घ। उसका अंत कहां है? बहुत कुछ है,जो होना मांगता है, जो होना होगा। जो भवितव्य है, उसको भी अपने ही हाथों से खींच कर लाना होगा। नही तो वह भी अनायास आजाने वाला नहीं है। तब कैसा प्रमाद? कैसी जड़ता? कैसा मोह? चले चलो, चले चलो। न मुड़ना कहीं है, न रुकना कहीं है? अरे, चलते ही चलना है।

किन्तु भीतर से क्या कुछ काला-काला फन सा घुमड़ता उठ रहा है? उसी को खींचकर बाहर निकाल देना होगा। उसी को चीर कर अपने से अलग

करके इस तस्वीर में कील देना होगा। यह हो जाएगा तब कहेगा,—ओ तू! —वहीं रह! और ओरे, नग्न प्रार्थी मनुष्य! उस अंधेरे स्तूप को छोड़। वहां अंधेरा है, वहां उत्तर नहीं है। मुड़ आ कठोर पृथ्वी की ओर, उसे उर्बरा कर, उसे हरियाली कर, शस्यदा कर। उस अंधेरे गह्वर में थाह नहीं है, तल नहीं है। अरे अभागे, मुड़ आ! यहां कर्म के बीच तेरी प्रतीक्षा है। वहां क्यों भक्ष्य बनने को खड़ा है? यहां आ और जयी बन, ऊर्जस्वी बन।"

जैनेन्द्र की कृतियों में प्रेम के विविध भावों की व्यंजना नहीं है, किन्तु कचोटते प्रेम की व्याख्या है। वहां जीवन के अपूर्व चित्र बिखरे नहीं पड़े हैं, किन्तु जीवन की परिभाषा मिलती है। लेखक जीवन के रूप को देखना चाहता है, उसकी आत्मा को पकड़ने की चेष्टा करता है, किन्तु उसकी विस्तृत भूमिका में जैसे पैठ नहीं पाता। उसके द्वारा अंकित रेखाएं पैनी हैं, उनमें अनिवार्य तीखापन और वक्रता है, सीधी-तिरछी लकीरों और अधूरे वाक्यों में उसने विषण्ण हृदय के आर्त्तनाद, भीतरी दंशन और उलझी हुई संवेदनाओ को व्यक्त किया है। अकारण व्यथा सी जो मानव-मन में कभी कभी जग जाती है, विचित्र स्वभाव वाले कुछ विशिष्ट व्यक्तियों में जो उलझनें होती हैं; उनके आहत मर्म में जो टीस, संघर्षों से कुण्ठित मानस में जो रिक्तता, अभुक्त वासनाओं और जाल सा बुनती हुई अपनी ही भ्रमशील, लयमान् इच्छा-आकांक्षाओं के भीतर जो मिथ्या गौरव-भावना, जीवन से विमुख होकर भी पूर्णतया सम्बन्ध न तोड़ सकने के कारण जो एक अलक्ष्य भाव, धूमिल असंतोष और दौर्हृद पैदा हो जाता है, उससे जैनेन्द्र के अधिकांश पात्र पीड़ित है। सुनीता, हरिप्रसन्न, मृणाल, कल्याणी आदि सभी तो विचित्र है, अस्वाभाविक, अस्वस्थ, जीवन की अतृप्ति से पीड़ित जिनकी बातो में असंगति है, विचारों में उलझन, जैसे भीतर ही भीतर उनमें कुछ घुमड़ रहा हो, टीस रहा हो और जिनकी व्यथाएं न जाने कितने काल से पकती पकती फोड़ा बन कर फूटने की राह तक रही हों। व्यक्तिगत जीवन की क्लेशमयी कठोर परिस्थितियों एवं मन के सुकोमल प्रेरणा-तन्तुओं के बीच जो उलझाव है—उसने जैनेन्द्र के नारी-पात्रों को क्षितिज के उस पार की भावमयी जिज्ञासा से भर दिया है। उनमें अनुभूति की तरलता एवं नारी-स्वभाव की कोमल करुणा के बावजूद अपने से जूझने की कांक्षा है, आत्म-संघर्ष उनके जीवन का सत्य है, गहरी दुश्चिन्ताओं और अतृप्त काम की पीड़ा ने उन्हें उद्विग्न और उच्छृंखल बना दिया है। उनके भीतर की दुराग्रही वृत्ति कुछ ऐसी अचल-अटल है कि उनके सरल भाव को आत्मसात् किए है, वे भीतर से कुछ और हैं और बाहर से कुछ और, जिन्हें आसानी से समझा नहीं जा सकता, पाया नहीं जा सकता।

सुनीता, कल्याणी, मृणाल नारी-जाति की सामान्य सतह से ऊपर उठकर साहसी और कृत-निश्चय नारियां हैं, जिनमें बौद्धिक तर्क-वितर्क उनके नारी होने के महान् गौरव का द्योतक है और जो पुरुषत्व के अहं को, उसके मिथ्याभिमान की विडम्बना को अपने आदर्शों में विलय कर लेने की शक्ति रखती हैं। संघर्षों की रगड़ खाकर उनके मन में इतनी गहराई व्याप्त हो गई है कि वे रोमैण्टिक स्वप्नों में डूबती-उतराती हुई भी आदर्श की तलैय्या पर बिछ जाना चाहती हैं और नारी की अदम्य वासनाओं को लिए हुए भी आदर्श पत्नी बनने की इच्छा रखती हैं। सुनीता के अंतर्द्वन्द्व का एक चित्र देखिए :—

"वह पत्नी है, पर नारी है। वह पति में ही नहीं, स्वयं भी है। तभी तो यह आग्रहपूर्वक श्रीकान्त के स्मरण और प्रतिस्मरण की उसमें अदम्य, हठीली चेष्टा है। वह जिसका निमंत्रण हरिप्रसन्न के द्वारा उसे मिल रहा है, क्या रहस्यमय नहीं है? इतने ही से नारी-हृदय उस ओर बिना खिंचे कैसे रहे? स्वयं यह हरिप्रसन्न ही क्या रहस्यमय नहीं है?—तब उस भेद को भी क्यों न नारी-हृदय घुसकर पा लेना चाहे?

इन सब निमंत्रणों के उत्तर में स्वीकृति देती हुई वह उनकी ओर चल ही पड़ेगी। जब नैया की कील उसने संभाल ली है, तब वह कहीं भी जाय, भटकेगी नहीं। निरन्तर जागरूक अचूक घड़ी का कांटा जब उसके अभ्यंतर में है, सतत स्नेहपूरित एकोन्मुखी दीप-शिखा जब उसने अपने हृदय के भीतर जला ली है, तब क्यों उसे शंका हो? किसकी आशंका हो? तब क्यों वह साथ निषेध लिये फिरे? इससे वह क्यों न जायगी? जरूर जायगी।"

कहना न होगा कि इस संघर्ष के माध्यम से आंतरिक-निष्ठा प्राप्त कर लेने के कारण उनका वासनागत द्वन्द्व अधिक स्वस्थ और अनासक्त हो गया है और यथार्थोन्मुख वाह्यापेक्षी तटस्थ मनोवृत्ति के कारण उनकी आंतरिक कुण्ठाएं भव्य बन कर प्रकट हुई हैं। उनमें आत्म-विश्लेषण का औदार्य, अपनी अंतरंगता की स्वीकृति और जीवन के विविध प्रसंगों को समझने की शक्ति है और इसी वैविध्य के प्रति अपनी संघर्षात्मक प्रसरणशील अनुरक्ति के कारण वे निर्माण की ओर न जाकर आत्मध्वंस की ओर प्रवृत्त हुई हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों की नारियां अपनी प्रकृत और अंतर्भूत यौवन-विकृतियों की उपेक्षा करके जिस चरित्र-भूमि पर अपने मन की समस्त शक्तियों को समेट आगे बढ़ती हैं—वह अद्भुत है और

इस प्रकार पाठक को उन अंतस्तम प्रवृत्तियों एवं उच्च-स्तरों में झांकने का अवकाश भी मिल जाता है, जो मानव-जीवन की शाश्वत अनुभूति के प्रतिरूप हैं।

मेरीडिथ में नारी-जीवन का और भी सफल सूक्ष्मांकन हुआ है। यद्यपि उनमें जीवन का प्राण-पक्ष गौण है—तो भी उनमें स्वाभाविकता और सरलता, व्यापक अंतर्नुभूतियों की मार्मिक मीमांसा और चरित्रों के द्वन्द्व-संघर्ष का ऐसा स्वस्थ विश्लेषण मिलता है कि लगता है जैसे मेरीडिथ एक कुशल स्रष्टा की भांति अपने भाव-सौन्दर्य की सृष्टि में अद्भुत अनुभव-कणों को संजोकर नारी की नई नई भव्य-आकृतियां प्रस्तुत करता है। वह उनकी कोमल भावनाओं में अपनी बौद्धिक-चेतना प्रक्षेपित कर उन्हें उस असामान्य धरातल पर प्रतिष्ठित कर देता है, जहां कि वे जीवन की स्थूलता से उठ कर मानस-जगत् में पैठ जाती हैं और वहां पहुंचकर उत्तरोत्तर कठिन पड़ती हुई दार्शनिक-चिंतन के अप्रिय भार से दब जाती हैं।

"फिलॉस्फी हमें यह बताती है कि हम गुलाबी पुष्प की भांति सुन्दरी नहीं हैं, न ही दुष्ट व्यभिचारिणी स्त्री की भांति उपेक्षणीय और उन निरर्थक पहलुओं पर अनवरत जाने की अपेक्षा हमारा दर्शन सुखद, सह्य, फलदायक, प्रत्युत् यों कहें कि हर्षप्रद है। मिथ्याडम्बर के स्थान पर आप पवित्र गरिमा की दिव्याभा की कल्पना कीजिये, प्रकृत रूप और उस आत्मा की, जो जन्मजात क्रियाशील, सांसारिक थपेड़ों से ग्रस्त, किन्तु उत्कर्षशील हो। कथाकृति भी उनसे सम्मानित होगी और हमारे रक्त के साथ जीवन का सहाय्य, जीवन का सच्चा स्रोत गतिशील होगा।" ('डियना ऑफ् दि क्रॉसवेज़' Diana of the Cross-ways **से)**

("Philosophy bids us to see that we are not so pretty as rose-pink. not so repulsive as dirty drab; and that instead of everlastingly shifting those barren aspects, the sight of ourselves is wholesome, bearable, fructifying, finally a delight..........And imagine the celestial refreshment of having a pure decency in the place of sham; real flesh; a soul born active, wind-beaten, but ascending. Honourable will fiction then appear; honourable, a fount of life, an aid to life, quick with our blood.")

मेरीडिथ नारी के हृत्तल को स्पर्श करता है, उसकी सच्ची मनःस्थिति, अंतर्द्वन्द्व एवं भाव-आवेगों के संघर्षों को पकड़ने की क्षमता रखता है। कभी कभी उसके चित्र इतने सजीव होते हैं कि उनकी विविधता, उनका रंग-वैषम्य हमें

आच्छन्न कर लेता है और यद्यपि अनविच्छिन्न भाव से बहता चला आता हुआ नारी-जीवन की धारा का नाजुक छोर हमारी पकड़ में नहीं आ पाता, तो भी उसने जिस करुणा-विगलित स्नेह, कौशल और सहजपन के साथ चित्रों को आंका है—वह बरबस मन को आकृष्ट करता हुआ ममत्व-बुद्धि और विश्वास की भावना जगाता है।

"उसकी मुखाकृति सुन्दर थी, जिसके कोनों पर मुस्कराहट नित्य बिखरी रहती थी अथवा ऐसा पहले था जब तक कि मेटे ने उसे इसका परिज्ञान न कराया था कि वह उसकी लक्ष्य है। अब वह अपने मुख को बन्द रखती है और नेत्रों को आधा झुकाये हुए। अपने पास से गुजरने के क्षण तक, जब कि लड़की ने उस पर दृष्टि उन्मुक्त की, मानों अपनी पलकों को उठाते हुए उसने निद्रा से जाग कर खिड़की में से झांका, एक स्वस्थ कटाक्ष, प्रकम्पवत्, जिसमें कुछ दुराव न था, कोई दुर्विनीतता अथवा दुस्साहस न था और शैथिल्य का भी किंचित् लेश न था। तुम ऐसा सोच सकते थे जैसे उसका हृदय चुपके से निकल कर बाहर आना चाहता हो।

उसकी दृष्टि प्रभातकालीन प्रकाश-रश्मियों सी थी, जो पहाड़ियों पर फैल जाती है। यह आधी मिनट तक टिकी रही और आधे घंटे तक उद्विग्न बना गई।" ('लॉर्ड आरमॉण्ट एण्ड हिज़ आमिण्टा' Lord Ormont and his Aminta से)

("She had a nice mouth, ready for a smile at the corners; or so it was before Matey let her see that she was his mark. Now she kept her mouth asleep and her eyes half-down, up to the moment of her nearing to pass, when the girl opened on him, as if lifting her eyelids from sleep to the window, a full side-look, like a throb, and no disguise—no slyness or boldness either, not a bit of languishing. You might think her heart came quietly out.

The look was like the fall of light on the hills from the first of morning. It lasted half a minute, and left a ruffle for a good half hour.")

जैनेन्द्र के उपन्यास में सुनीता भी रेशमी साड़ी में आवृत्त अपनी सद्यो-न्मिषित गरिमा से हरिप्रसन्न के मन को अभिसिंचित कर जाती है।

"और वह तो कमरे से बाहर तैर गई। उस समय उसकी रेशमी साड़ी की धानी आभा ही कांपती हुई झलमल [illegible] हरिप्रसन्न की आंखों में रह गई। और उसके कानों में साड़ी की तरह पत्तों को छूकर जाती हुई समीर की सरसराहट भरने लगी। मानों कुछ हौले हौले बज रहा हो, कुछ भीना भीना बरस रहा हो और भीतर से उसे भिजो रहा हो ......"

मेरीडिथ के उपन्यास 'दि ऑरडियल ऑफ् रिचर्ड फेवरल' (The Ordeal of Richard Feverel) का निम्न प्रख्यात दृश्य भी हमारी सौन्दर्य-बोध-वृत्ति का आह्वान करता हुआ कल्पना में मूर्त्त हो कर भावात्मक तरलता और लयात्मक संवेदनीयता छोड़ जाता है।

"लूसी मौसम और शिष्टता के अनुसार बहुत सादे वस्त्र धारण किये थी। उसका उभरता यौवनोच्छल व्यक्तित्व 'ड्यूबेरी' फलों का आस्वाद ले रहा था। वे पानी और किनारे के बीच में उगे हुए थे। छोटा लवा पक्षी उसके सिर पर से गुज़र गया, संगीत से भरा, नीलिमा के साथ चिकने दक्षिणी मेघ की ओर—उसके हिलते हैट के ऊपर ओस से भीगी सघन झाड़ी से काली चिड़िया तीन बार कूकी—अपने संगीतात्मक स्वर से उसे पुकारती हुई। हरी जलबेंत में से रामचिरैया झांक कर मरकत-मणि की सी आभा बिखेर गई, एक झुके पंखों वाले बाज़ ने एकान्त स्थल खोजने के लिए बहुत ऊपर उड़ान भरी और कश्चित् नौका एक स्वप्नशील युवक को लिए थिरकती हुई उसके समीप बढ़ती रही, किन्तु वह अभी भी फल तोड़ रही थी, खा रही थी, सोच रही थी—मानों कोई भी परी-देश का राजकुमार उसकी विचरण-भूमि में आक्रमण नहीं कर सकता था और मानों उसे किसी की चाहना भी न थी अथवा वह अपनी इच्छाओं को ही नहीं समझ पाती थी।....प्रकृति क्रमशः शान्त-प्रशान्त होती गई—जैसे दो विद्युत्मय मेघों के विलय पर हो जाती है।.. कल यह स्थान अमर स्मृति को संजोयेगा, यह नदी, यह चरागाह और यह श्वेत फैला नदी का बांध—उसका हृदय यहां मन्दिर का निर्माण करेगा, लवा-पक्षी प्रमुख पादरी होगा, बूढ़ी काली चिड़िया चमकता गाउन पहने गानेवाली सदस्या होगी और 'ड्यूबेरी' फल पावन आहार समझा जाएगा।"

("Lucy was simply dressed, befitting decency and the season. This blooming young person was regaling on dewberries. They grew between the bank and the water........The little skylark

went up above her, all song, to the smooth southern cloud lying along the blue: from a dewy copse standing dark over her nodding hat the *black-bird fluted, calling to her with thrice mellow note:* The kingfisher flashed emerald out of green osiers; a bow-winged heron travelled aloft, seeking solitude, a boat slipped towards her, containing a dreamy youth : and still she plucked the fruit, and ate, and mused, as if no fairy prince were invading her territories, and as if she wished not for one, or knew not her wishes. . . . Stiller and stiller grew nature, as at the meeting of two electric clouds. . . . Tomorrow this place will have a memory—the river and the meadow, and the white falling weir; his heart will build a temple here; and the skylark will be its high-priest, and the old black-bird its glossy-gowned chorister, and there will be a sacred repast of dewberries.")

मेरीडिथ कभी कभी भाव-प्रवणता में नारी को उसके प्रकृत मानवीय-स्तर से उठाकर असाधारण रूप दे देता है और उसमें उन विचित्र संभावनाओं की संयोजना करता है, जो उसे धरती के तल से ऊपर गगन-प्रान्तर अथवा एक वृहत्तर अज्ञेय में खींच ले जाती हैं।

"वह स्थान के सौंदर्य से लबालब स्फटिक के सुमनोहर प्याले सी थी। जिस प्रकार क्षुद्र लहरियां प्रकाश को झकझोर देती हैं, उसी प्रकार उसको भंगिमाओं में वे हल्की अस्वाभाविकताएं थीं, जो उसके सौंदर्य की असाधारणता की द्योतक थीं; मुख, नेत्र, भौं, नासिका-रन्ध्र और विकसित कपोल परस्पर अठखेलियां करते हुए तरलता बिखेर जाते थे। उसके विचार उड़ते थे, जिह्वा अनुधावन करती थी और भावार्थ रात्रि में कौंधती विद्युत् की भांति कांपता हुआ उन पर अपनी झलमलाहट छोड़ जाता था।" ('ब्यूशेम्प्स केरियर' Beauchamp's Career **से)**

("She was like a delicate cup of crystal brimming with the beauty of the place. . . . . . . .Her features had the soft irregularities which run to rarities of beauty, as the ripple rocks the light; mouth, eyes, brow, nostrils, and blooming cheek played into one another liquidly; thought flew, tongue followed, and the flash of meaning quivered over them like night-lightening.")

जैनेन्द्र के 'परख' की कट्टो और 'त्यागपत्र' की मृणाल का भी कुछ कुछ ऐसा ही विचित्र वर्णन मिलता है, किन्तु उनके अधिकांश पात्रों में संयम और शिल्प

होते हुए भी एकांगीपन और चारित्र्य की अलौकिकता का पुट है, जिससे कहीं कहीं स्वभावगत वैचित्र्य आ गया है। मेरीडिथ के नारी-चित्र रोचक, व्यवस्थित और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से संतुलित और पूर्ण हैं। डियना, नेस्टा, आमिण्टा, कारिन्थिया और लूसी उस अमर तूलिका से चित्रित की गई हैं कि एक बार झांकी पा लेने पर उन्हें कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

जैनेन्द्र के पुरुष-पात्रों में स्त्रैणता है, उनके अणु-अणु में नारी व्याप्त है और वे सिर से पैर तक उसके नारीपन से अभिभूत हैं, जिससे कदाचित् अपनी अक्षमता के कारण वे उसके हृदय को पूर्णतया जीत नहीं पाते। इसके ठीक विपरीत मेरीडिथ के पुरुष-पात्र दुराग्रही, अहंकारी और अदम्य पौरुष से पूर्ण हैं, जो अपनी निर्ममता के कारण नारी के भीतर रम नहीं पाते और इस प्रकार इन दोनों कलाकारों में पुरुष और नारी में पृथकत्व एवं दूरी बनी ही रहती है।

'दि ऑरडियल ऑफ् रिचर्ड फेवरल' में रिचर्ड आकर्षक नवयुवक है, किन्तु स्वार्थी और ज़िद्दी है, वह दूसरों के दुःख-सुख की पर्वाह नहीं करता, परिणामस्वरूप लूसी की आत्मा को गहरी ठेस लगती है, क्योंकि विश्व में अनेकों ऐसी लूसी हैं, जिन्हें पुरुषत्व का दम्भ कुचल डालता है। मेरीडिथ के दूसरे प्रख्यात उपन्यास 'इगोइस्ट' (Egoist) का नायक सर बिलोबी पेटर्न तो उससे भी भयंकर अहंवादी और उद्धत स्वभाव का है। उसमें आत्म-रति की प्रबल भावना है और उसके हृदय की विषमयी ग्रन्थियां भीतर ही भीतर ज़हर उगलती हैं, जो बाहर दृष्टव्य नहीं। वह स्त्रियों पर अविश्वास करता है, उसे दुःख है कि उसकी पत्नी क्लारा सांसारिक-ज्ञान से अछूती क्यों नहीं है और क्यों वह सीधे स्वर्ग से उसके पास नहीं आई। क्लारा पति की ममत्व-भावना में भी उसके दुर्द्धर्ष स्वभाव से परिचित है और उसका हृदय कांपता रहता है।

"मेरी प्रिय ! तुम निष्ठुर हो।"

"मैं निष्ठुर नहीं हूं," क्लारा ने कहा—"मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे मेरी कब्र पर कोई चल रहा हो।" उसके आलिंगन की शून्यता एक बड़ी समुद्री लहर की भांति कहर उठी, सिकुड़ती तरंग को और भी समेटती हुई। जैसे ही वह 'बटर-कप' पुष्प की ओर झुकी, राक्षस उस पर झपट पड़ा।"

("You are cold, my love."

" I am not cold," said Clara. "Someone, I suppose, was walking over my grave." The gulf of a caress hove in view like an

enormous billow, hollowing under the curled wave. She stooped to a butter-cup, the monster swept by.)

उपर्युक्त उद्धरण में सर विल्लोबी के दम्भ का कैसा वीभत्स चित्रण हुआ है, किन्तु क्रमशः अन्य उपन्यासों 'डियना ऑफ् दि क्रासवेज' (Diana of the Crossways), 'वन ऑफ् अवर कोंकरर्स' (One of our Conquerors), 'लॉर्ड ऑरमाण्ट एण्ड हिज एमिण्टा' (Lord Ormont and his Aminta) और 'दि एमेजिंग मेरिज' (The Amazing Marriage) में मेरीडिथ पुरुष और नारी को समान स्तर पर ले आया है और दोनों की द्वन्द्वात्मक-शक्तियों का संतुलन दिखाया गया है।

इसके अतिरिक्त एक और बात जो जैनेन्द्र और मेरीडिथ में समान रूप से मिलती है—वह यह कि उनके उपन्यासों के कथानक अधूरे और सामंजस्यहीन हैं। ऑस्कर वाइल्ड ने मेरीडिथ के सम्बन्ध में लिखा था, "एक औपन्यासिक होने के नाते वह सब कुछ कर सकता है सिवाय कहानी कहने के।" और यही उक्ति जैनेन्द्र पर भी लागू हो सकती है। दोनों ही किसी एक केन्द्रीय घटना अथवा दृश्य से जुड़कर कथानक के विविध मोड़-तोड़ भूल जाते हैं और दो चार पात्रों की जिन्दगी के दोहरेपन और चरित्र-विश्लेषण में इतना उलझ जाते हैं कि जीवन के घात-प्रतिघात, द्वन्द्व, संघर्ष उनकी दृष्टि से ओझल हो जाते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन दोनों की औपन्यासिक कृतियों के कथानक खींचातानी से लगते हैं, जिन्हें धक्के के साथ आगे ठेला जाता है और जिनकी एकरूपता के सूत्र कई बार विच्छिन्न से ज्ञात होते हैं। 'परख' से 'कल्याणी' तक आते आते जैनेन्द्र की कथा-शैली अत्यन्त शिथिल हो गई है। लेखक कल्याणी की असंतुलित चेष्टायें, मनोभाव और विवाद-विचार के मोह में पड़ कर इतना अतिरंजन कर बैठा है कि समूची कृति जीवन-सूत्रों की व्याख्या और गढ़ंत-घटनाओं की तालिका सी लगती है।

बौद्धिक-चेतना

यद्यपि जैनेन्द्र और मेरीडिथ में साहित्यिक अवयव ढीले हैं, तथापि उनके मूलाधार की चिन्तना ठोस धरातल पर हुई है। दोनों ही सुलझे हुए विचारक हैं और जीवन को परखना जानते हैं। जीवन की विभीषिकाओं ने उन्हें भावुक कम, बौद्धिक अधिक बना दिया है। उनका प्राण-प्रवाह धीमा, विचार बोझिल और मनोवृत्ति चलित से अधिक स्थिर, सवेग से अधिक संयत और शासित है। दोनों में जो मानसिक द्वन्द्व और विचित्र समस्याओं से उलझते रहने की प्रवृत्ति है—

इसका कारण है कि उनकी उद्बुद्ध-चेतना विरोधी-तत्त्वों को परास्त करने में लगी है। मेरीडिथ में यह अंधकार-तत्त्व इतना अधिक है कि उसकी तमसावृत्त-चेतना जीवन से तद्गत हो अस्पृश्य तम का आह्वान करती है, केवल जब उसके प्रेरणा-तन्तुओं में स्फुरण होता है तो वह सघनता को चीरकर बाहर झांकती है। कभी कभी तथ्य की खोज में अंधकार-पथ का अनुधावन करता हुआ मेरीडिथ दूर तक भटक जाता है और जैसे कुछ शून्य हो, कुछ खो सा गया हो वह अपने मानस की प्रतिच्छाया को आरोपित करता हुआ एक कुशल मनोविश्लेषक की भांति मानव-मन की बारीक बारीक हलचलों को कथा के सूत्र में बांध कर दर्शाता है। अपनी टेकनीक का मास्टर होता हुआ भी वह उसके प्रति अचैतन्य है और कहीं कहीं आवश्यकता से अधिक जटिल और दुरूह हो गया है। अपनी विश्लेषण-वृत्ति और विषयगत अस्पष्टता के कारण उसकी कृतियां अनेक स्थलों पर शुष्क और नीरस हैं।

जैनेन्द्र की कृतियों में भी मेरीडिथ की भांति उत्साह ठण्डा है, किन्तु उनकी अपने को व्यक्त करने की एक निराली शैली है, वे अपने ढंग के विरल कलाकार हैं, जो दो चार खरौंचों से ही घटना को सजीव और विषय को रंगीन व जानदार बना देते हैं। उनकी खूबी है कि वे अपने विचारों के तारतम्य को एक खास शैली में बांध कर अपने विषय की बहुरूपता को वर्णन की विभिन्न प्रणाली में बदल देते हैं और कलात्मक ढंग से उसमें उभार लाकर उद्देश्य की अभिव्यंजना करते हैं।

चूंकि जैनेन्द्र और मेरीडिथ की ग्रहण-शक्ति बड़ी तीव्र है—उन्होंने अपने युग की मूल-भावनाओं को सजग-बुद्धि से स्वीकार करके उनका मनोवैज्ञानिक विवेचन किया है। वे अपनी सहज-चेतना से जो जीवन में पा सके हैं, समझ सके हैं, उसे अत्यन्त मार्मिकता के साथ बहिर्गत किया है और मानविक गहनतम अनुभूतियों में पैठकर एक निरपेक्ष द्रष्टा की भांति उसके अनुभावित सत्य को व्यक्त किया है।

जीवन-दर्शन

कहने की आवश्यकता नहीं कि जैनेन्द्र और मेरीडिथ अपने अपने साहित्य में एक नई प्रवृत्ति के पोषक हैं। जैनेन्द्र का दृष्टिकोण व्यावहारिक है, मेरीडिथ का आभ्यन्तरिक। एक का व्यक्तिगत-पक्ष दूसरे का आंतरिक-पक्ष बन गया है। दार्शनिक चिंतन की प्रेरक-शक्ति ने जहां एक में जिज्ञासा-वृत्ति जगाई है—दूसरे में अंतर्मुखता और दोनों ही जीवन की अंतस्संज्ञा को पकड़ने के लिये अधीर हो उठे हैं।

मेरीडिथ में दार्शनिक और कवि सदैव सजग रहा है। यद्यपि उसका औपन्यासिक का रूप चरम सीमा पर स्थित है, तो भी उसमें कवि की कल्पना रंग भरती रही है और चिंतन की सीमा पर आकर अनेक स्थलों पर उसकी दार्शनिकता और कवित्व का एक में समाहार हो गया है। प्रकृति मेरीडिथ के लिए मानव-भावनाओं को संजोने वाली क्रीड़ास्थली है——वह उसके मन में रम नहीं गई है। एक जिज्ञासु के मस्तिष्क में जो कौतूहल और तटस्थ-वृत्ति होती है——उसी से सम्बद्ध संस्कारों को आरोपित करता हुआ वह उसके चित्रात्मक रूप पर मुग्ध है, अतएव उसमें तात्त्विक-चितन अधिक और प्राणों की धड़कन कम है।

जैनेन्द्र और मेरीडिथ में जो मनोरागों की क्लान्ति दृष्टव्य है, वह गंभीर आत्म-चितन का परिणाम है। विपरीत परिस्थितियों से आहत और अतिशय स्वचिंतन से श्रांत वांछित अभिव्यक्ति के अभाव में उनका तीव्र-राग मानसिक विक्षोभ में परिणत हो गया है; जिसमें कभी कभी व्यंग का भीषण अट्टहास बज उठता है।

जैनेन्द्र के कुछ निश्चित् सिद्धान्त हैं और वे तदनुरूप उनका अंतर्गठन करने के लिए तात्कालिक परिस्थितियों से आगे बढ़ कर अपने आदर्शों को हमारे सम्मुख रखते है। जीवन की अनेक समस्याओं को उन्होंने केवल समझौते के रूप में ही सामने रखा है और इधर तो वे कथाकार से दार्शनिक-चिन्तक का रूप लेते जा रहे हैं। उनकी कलात्मक प्रवृत्ति ने आरम्भ में उन्हें उपन्यासों की ओर आकृष्ट किया था, जिनमें उन्होने चितन के सूक्ष्मत्व का सहारा ले मानवीय भावनाओं को, प्रमुख रूप से नारी-हृदय के कोमल से कोमल भागों को, सफलता और सुन्दरता के साथ स्पर्श किया था और कहीं कहीं कुछ अश्लीलता का हल्का पुट होते हुए भी उन्होंने नारी को अपने महत् आदर्श से गिराया नहीं, वरन् और भी ऊपर उठा दिया था। आज उनकी विचारात्मक और तत्त्वान्वेषी वृत्ति ने उन्हें निबंधकार बना दिया है; किन्तु इस वयः-सन्धि की परिपक्वावस्था में जो उनमें त्रुटि है—वह यह कि वे कलाकार से तत्त्वदर्शी बनना चाहते हैं, जो उनके विकास की अवरोधक हो सकती है। उनके औपन्यासिक का रूप निबन्धकार के रूप से कहीं औचित्य का पूरक, अपेक्षाकृत अधिक सबल और बलिष्ठ है। चाहें वे कितना ही प्रयत्न क्यों न करें उनका दार्शनिक-रूप कलाकार के रूप के ऊपर नहीं आ पाता और उन की दो अंतरंग-वृत्तियों में जो टकराहट, जो सैद्धान्तिक मतभेद उठ खड़ा हुआ है और इस प्रकार अभिव्यक्ति के माध्यम में जो ऊहापोह और खींचातानी सी चल रही है—उसके कारण वे कोई निर्णयात्मक कार्य नहीं कर पा रहे हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासकार

विक्टर ह्यूगो, एलेक्जेण्डर ड्यूमा, सर वाल्टर स्कॉट,

बंकिम चन्द्र, राखालदास बन्द्योपाध्याय, हरिनारायण आप्टे,

चिलक मर्ति श्री लक्ष्मीनरसिंहम्, कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, राहुलसांकृत्यायन,

वृन्दावनलाल वर्मा
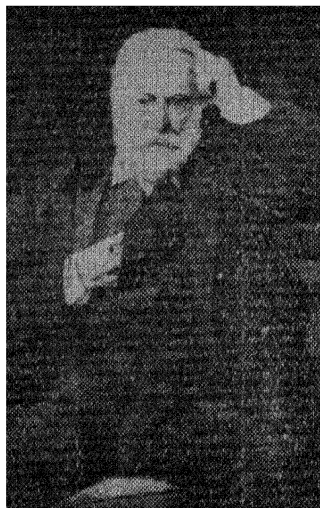
विक्टर ह्यूगो
जन्म—ईसवी सन्-१८०२
मृत्यु—ईसवी सन्-१८८५
जन्मस्थान-पेरिस (फ्रांस)

सर वाल्टर स्काट
जन्म—ईसवी सन्-१५ अगस्त, १७७१
मृत्यु—ईसवी सन्-१८३२
जन्मस्थान—एडिनबरा (स्कॉटलैण्ड)

एलेक्ज़ेण्डर ड्यूमा
जन्म—ईसवी सन्-१८०२
मृत्यु—ईसवी सन्-१८७०
न्मस्थान—सेण्ट डोमिंगो (फ्रांस)
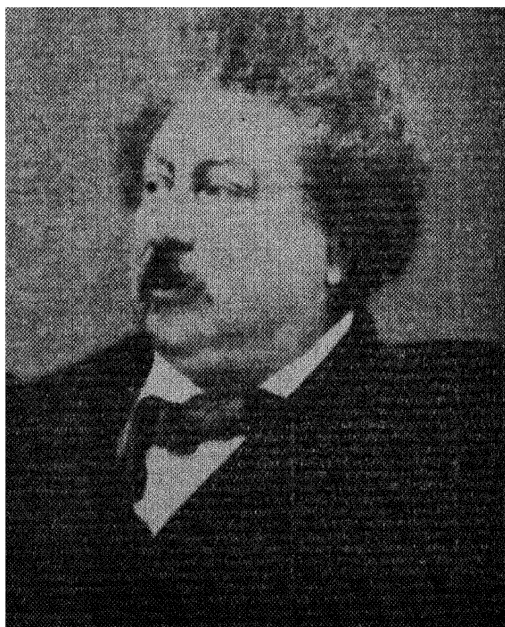
बंकिमचन्द्र

जन्म—ईसवी सन्–२६ जून, १८३८

मृत्यु—ईसवी सन्–१८९४

जन्मस्थान—कांटालपाड़ा ग्राम (बंगाल)
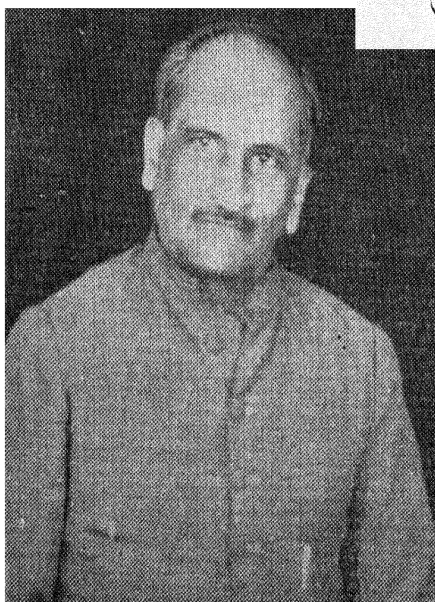
वृन्दावनलाल वर्मा

जन्म—ईसवी सन्–२४ दिसम्बर, १८८९

जन्मस्थान—मऊरानीपुर (झांसी)

हरिनारायण आप्टे
जन्म—ईसवी सन्-१८६४
मृत्यु—ईसवी सन्-१९१९
जन्मस्थान—ब्हाॅड (महाराष्ट्र)
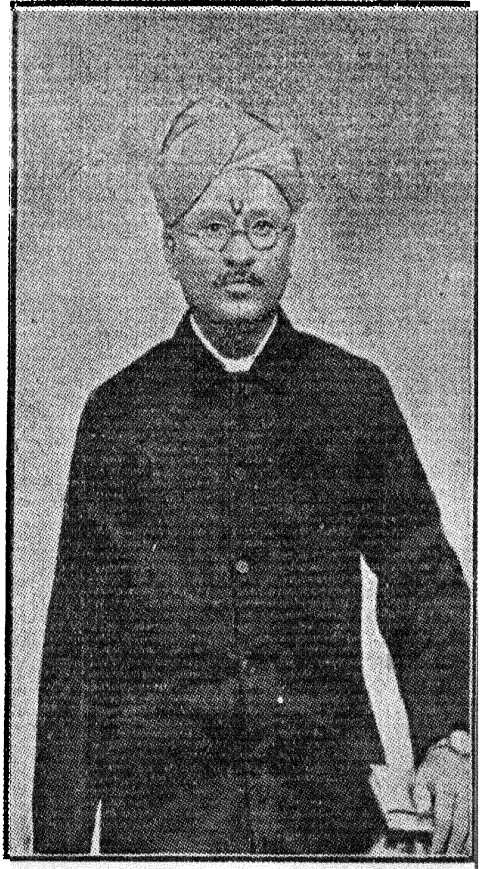
राखालदास बन्द्योपाध्याय
जन्म—ईसवी सन्-१२ अप्रेल, १८८६
मृत्यु—ईसवी सन्-१९३०
जन्मस्थान—बरहामपुर, (मुर्शिदाबाद, बंगाल)
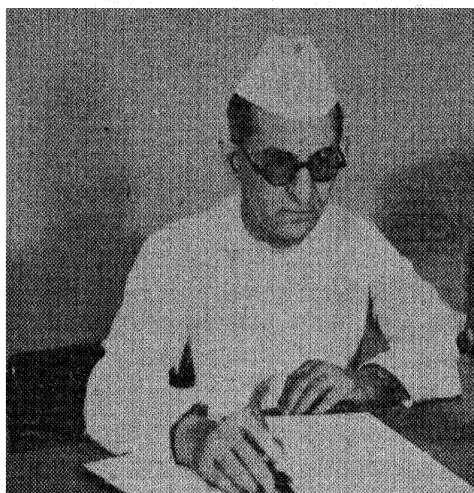
कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी
न्म–ईसवी सन्–३० दिसम्बर,१८८
न्मस्थान—भड़ौंच कच्छ, (गुजरात,
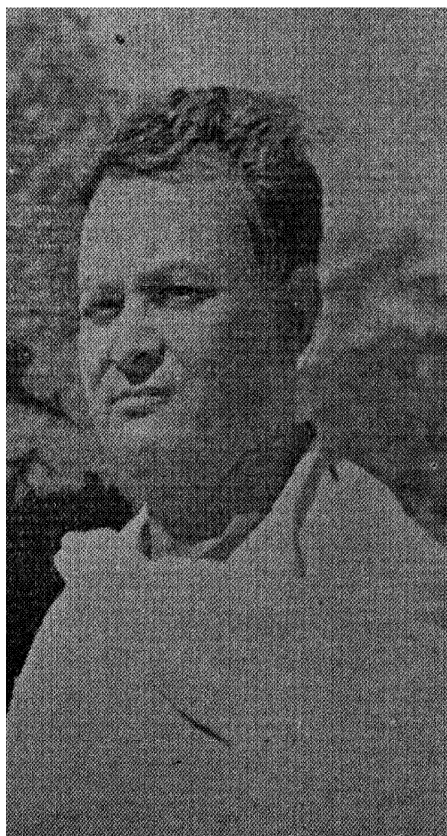
राहुल साकृत्यायन
जन्म—ईसवी सन्–९ अप्रेल, १८९२
न्मस्थान—जिला आजमगढ़ (यू. पी.)

समय के दूरन्त छोर से टकराकर जब साहित्यकार की भाव-चेतना अतीत की कल्पना को स्मृति की सजीवता में परिणत कर देती है तो न जाने कितने युगों का इतिहास जीवन-तथ्यों को उद्घाटित करता हुआ शाश्वत स्वरों में बोल उठता है। सुदूर अतीत के अंतर्भूत रूप-व्यापार उसकी कल्पना में मूर्त्त होकर नवीन परिस्थिति में नवीन स्वर छेड़ते हुए उस काल की गाथा हमें सुनाते हैं और उसकी सृजनात्मक प्रतिभा जीवन के संततवाही स्रोत को अनेक धाराओं में उंडेलती हुई उस अंतहीन जल मे जा झांकती है, जहां भूत, वर्त्तमान् और भविष्य के अंतः-प्रवाह का एक में पर्य्यवसान हो जाता है। गंभीर-चिंतन से उपलब्ध ऐतिहासिक-सामग्री की पर्य्यालोचना के साथ साथ मानव-हृदय में उठनेवाली तरंगों का योग और उसकी विशेष परिधि के भीतर जीवनगत उपयोगों का प्रश्न तथा अतीत के गह्वर में छिपे हुए रहस्यमय कणों को बटोर कर रखने की संचय-वृत्ति उसकी प्रखर चेतना को उद्बुद्ध और अनुभूति को अधिकाधिक तीव्र बना देती है। विस्मृति का धुंधला आवरण उसके नेत्रों के सामने से खिसकने लगता है और जीवन के तथ्य उभर उभर कर सजीव हो उठते हैं।

वस्तुतः इतिहास जीवन के चिरंतन स्वरूप को प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण है। अतीत को वर्त्तमान् से पृथक् करने वाला कुहरा जब विच्छिन्न होता है तो समय के निस्सीम प्रवाह में डूबते-उतराते जीवन के अगणित बिम्ब दृष्टिगत होने लगते हैं और जगत् के व्यक्त सत्य उसके दृष्टिपथ के सम्मुख

बिछकर अतीत के धुंधले दृश्यों, मानवीय-आकांक्षाओं के करुण अवशेषों, न जाने कितनी मचलती कामनाओं, उमड़ते अश्रुओ, दहकती आहों और उत्थान-पतन के हर्ष-विषाद तथा आनन्द-बेबसी और जीवन के आलोक-तिमिर की धूप-छाया खिलती-मुंदती नज़र आती है । पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, "जैसे अपने व्यक्तिगत अतीत जीवन की मधुर स्मृति मनुष्य में होती है, वैसे ही समष्टि-रूप में अतीत नर-जीवन की भी एक प्रकार की स्मृत्याभास कल्पना होती है, जो इतिहास के संकेत पर जगती है । इसकी मार्मिकता भी निज के अतीत-जीवन की स्मृति की मार्मिकता के समान ही होती है और नर-जीवन की चिरकाल से चली आती हुई अखंड परम्परा के साथ तादात्म्य की यह भावना आत्मा के शुद्ध स्वरूप की नित्यता और असीमता का आभास देती है ।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि इतिहास की आत्मा और अनुभूति के सम्बन्धों की अनेकरूपता का आभास हमें विश्व की विभिन्न चिताधाराओं से प्राप्त होता है । जिन्होंने इतिहास के अंतर्जीवन का प्रतिपादन किया है, वे ही उसके रूप-वैचित्र्य को उपलब्ध करने में समर्थ हुए है और अपनी कला के द्वारा समय का व्यवधान मिटाकर सीम में निस्सीम को तथा एक विशिष्ट काल की परिमिति के भीतर अनंत सत्य का साक्षात्कार करा सके हैं । फ्रांस का विलक्षण प्रतिभा-संपन्न कवि, नाट्यकार और उपन्यास-रचयिता **विक्टर ह्यूगो** मानव-जीवन के जागृति-काल की इसी महान् परम्परा को स्पर्श करता है । उसकी सर्वतोमुखी चेतना ने ऐतिहासिक-थाती से जो कुछ ग्रहण किया, वह अपनी रचनाओं में स्थायी, सर्वकालीन और अमर बना दिया । 'नॉत्रे दाम द पेरी' (Notre Dame de Paris), 'लॉ मिज़रेबुल' (Les Miserables), 'लाहोम क्वि रित' (L' Homme Qui Rit) और 'त्रैवेलियर द ला मेर' (Travailleurs de la Mer) आदि उसके प्रख्यात उपन्यासों का एक विशेष ऐतिहासिक पृष्ठाधार हैं, जिनमें मध्ययुग की अचेतन जनता के राग-तंतु झंकृत हो उठे है । उसकी पारदर्शी दृष्टि ने जीवन के नैतिक पहलुओं का नवीन मूल्यांकन किया है और विश्व की सत्ता को अखण्ड रूप में ग्रहण करके मानव-चरित्र की सापेक्षता में अंतस्तत्त्वों को दर्शाते हुए आर्ष आत्मा की चेतना को जगाया है । अकेला 'लॉ मिज़रेबुल' ही स्रष्टा के अद्भुत कला-कौशल का असंदिग्ध प्रमाण है, जिसके समकक्ष विश्व के बहुत कम उपन्यास रक्खे जा सकते हैं और जिसने उसे फ्रांस से दूर अन्य सभी देश-विदेशों में सार्वभौम लेखक के रूप में ख्यात कर दिया है । इस उपन्यास की कथावस्तु का विश्लेषण करने से द्रष्टव्य है कि इसमें आत्म-तत्त्व की प्रमुखता है और लेखक अपनी उत्कृष्ट कल्पना-

शक्ति एवं अनुभूति-प्रवणता के कारण मानव-हृदय की गंभीर से गंभीर गहराइयों और उसके मस्तिष्क की विराट् से विराट् शक्तियों का अवलोकन कर सका है। जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म सीमा -रेखाओं को छेंक कर देखने वाली उसकी पैनी दृष्टि और मानव-मनोविकृतियों के अंतर्गत बारीक सूत्र को पकड़कर उसके मूलतत्त्वों को सामान्य रूप में स्थिर करने वाली उसकी संश्लेषण-शक्ति विलक्षण है। यथार्थों की रगड़ और मनोरागों की अवांच्छित क्लान्ति ने ह्यूगो की दृष्टि को वह स्थिरता प्रदान की है, जिससे उसने जीवन के चरम-सत्य को अत्यन्त दृढ़ता से पकड़ लिया है।

यहां यह लिखना अप्रासंगिक न होगा कि ह्यूगो ने तत्कालीन फ्रांस की राजनीति में बहुत दिनों तक भाग लिया था और उसके फलस्वरूप नेपोलियन तृतीय का घोर विरोध करने के कारण उसे अठ्ठाईस वर्ष तक अपनी प्रिय जन्मभूमि से निर्वासित होकर दूर चेनल द्वीप में रहना पड़ा था। 'लॉ मिज़रेबुल' इन्हीं दिनों की रचना होने के कारण उसके मानसिक-संक्लेशों और नैराश्य को व्यंजित करता है। राजनीतिक और आर्थिक पराभव तथा दुर्दान्त परिस्थितियों के भीषण झटकों ने उसे बौखला दिया था और उसका अतिशय राग स्वात्म-चिंतन में परिणत होकर इसमें प्रस्फुटित हुआ। 'लॉ मिज़रेबुल' उपन्यास के नायक जीन वेल्जियन (Jean Valjean) में जीव की उन दो मूल सद् एवं असद् वृत्तियों का समाहार दिखाया गया है, जो उसे उत्थान एवं पतन की ओर उन्मुख करती हैं। मनुष्य के अधःपतन की पराकाष्ठा, जो जीवन की निम्नतम अवस्था की द्योतक है, सत्य की पूर्ण स्थिति को अपना कर सर्वथा ग्राह्य हो जाती है। ह्यूगो का विश्वास है कि कोई मनुष्य कितना ही पतित क्यों न हो उसमें अच्छाइयों के बीज वर्तमान् रहते हैं, जो कालान्तर में उभर कर उसके जीवन की काया पलट कर सकते हैं। मनुष्य अपनी क्षमता का उपयोग करके जब सत्य के विशुद्ध रूप से अवगत होता है तो उसकी आत्मा घृणित संस्कारों से मुक्त होकर अपनी ही नियामक और अपना ही परिणाम बन जाती है। निकृष्ट से निकृष्ट जीवन के मूल में भी ऐसे ज्ञानमय तत्त्व विद्यमान् रहते हैं, जो अपनी अदृष्ट शक्ति द्वारा प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थितियों पर भी सफलता से विजय प्राप्त कर सकते हैं। जीन वेल्जियन की पतित आत्मा अनुताप और अत्मार्पण द्वारा उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त होती है और उसे मनुष्य से देवता की कोटि में अधिष्ठित कर देती है।

ह्यूगो का दूसरा प्रख्यात उपन्यास 'नॉत्रे दाम द पेरी' 'लॉ मिज़रेबुल' से लगभग तीस वर्ष पूर्व लिखा गया। इसमें मध्ययुगीन घटनाओं के आधार पर कुछ

काल्पनिक प्रसंगो की अवतारणा करके उस समय की धर्म-निष्ठा और प्रमुख रूप से चर्च के महत्त्व का दिग्दर्शन कराया गया, जबकि चर्च नगर की आत्मा और फ्रांस की उच्च आत्मा का प्रतीक समझी जाती थी। इसमें 'लॉ मिज़रेबुल' की अपेक्षा औपन्यासिक-कला की न्यूनता होते हुए भी मध्ययुग की वस्तुस्थिति का सर्वांगीण चित्रण है और उपन्यासकार की लेखनी में तत्कालीन धुंधले और अस्पष्ट चित्र पुनः सजीव हो उठे है। उपन्यास का नायक क्वासीमोडो (Quasimodo) एक कुबड़ा व्यक्ति है, जिसका शरीर विकृत, किन्तु मन स्वस्थ है। उसकी भावनाओं में फ्रांस की जनता का चर्च के प्रति गहरा अनुराग व्यंजित किया गया है।

ह्यूगो का तीसरा उपन्यास 'त्रैवेलियर द ला मेर' भी निर्वासन काल में ही लिखा गया। इसमें मानवात्मा और प्राकृतिक शक्तियों का द्वंद्व है और लेखक स्वयं कथा की आत्मा में प्रविष्ट होकर उसके सूखे कंकाल में नव-जीवन का संचार, नाटकीय परिस्थियों की सृष्टि और चारित्रिक-द्वंद्वों की उद्भावना करता है। यद्यपि ह्यूगो के उपन्यासों में ऐतिहासिक-सत्य विकृत है, तथापि उसने मानव-जीवन की समष्टि को एक गतिशील सौंदर्य-तत्त्व में केन्द्रित करके ऐतिहासिक-वातावरण का संरक्षण और कथा-साहित्य की रमणीयता की अभिवृद्धि की है। अपनी विकसित चेतना की शक्तिमत्ता से अर्द्धजाग्रत स्वप्नों में विभोर वह दूरस्थ अतीत की मनोरम झांकी प्रस्तुत करता है और उपन्यासों में कथा-बाहुल्य होते हुए भी उन्हें एक सूत्र में पिरोकर उनका उत्थान, विकास और परिसमाप्ति कलात्मक पद्धति से निभाता है तथा आचार संबंधी सौंदर्य का उद्भावन करता हुआ उस उत्कृष्ट शिल्प-निर्माण की ओर अग्रसर होता है, जहां कला का रुचिरतम रूप निखर कर तत्क्षण पाठकों के सम्मुख आजाता है।

इसके विपरीत फ्रांस का दूसरा ऐतिहासिक उपन्यासकार **एलेक्जेण्डर ड्यूमा** अपनी कलाकृतियों द्वारा एक दूसरे प्रकार के सौंदर्य की सृष्टि करता है। ह्यूगो ने अपने उपन्यासों द्वारा यदि अंतर्जगत् का विशद विश्लेषण किया है तो पेट के लिये आठों पहर परिश्रम करने वाले अनाथ ड्यूमा ने कला-स्वातंत्र्य और व्यक्ति के प्रति उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यंजना की है, जिसमें मध्यवित्त वर्ग के अन्तर्वाह्य का मर्मस्पर्शी चित्रण है।

ड्यूमा अपने युग का सबसे अलमस्त और जागरूक कलाकार है। उसकी एक दृष्टि लौकिक है, जो साधारण जीवन से सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं कर पाती और दूसरी दृष्टि, जो असामान्य है, उसमें आजीवन कला-चेतना जगाती रही है।

एडमंड डी गॉनकोर्ट ने वृद्ध ड्यूमा का एक बहुत ही सजीव चित्र खींचा है, जिसमें इस कलाकार के जीवन का अन्तर्हित सत्य और निर्व्यक्त भाव व्यक्त हो उठे हैं :–

"विशाल डीलडौल, जिसके कारण वह विशालकाय दानव सा ज्ञात होता है, सिर के बाल नीग्रो के बाल से रूखे, जो अब वृद्धावस्था में श्वेत फुंगियों से हो गये हैं, दरियाई घोड़े की सी छोटी-छोटी आंखें, जो दीप्त और पैनी हैं और बंद सी लगने पर भी तीक्ष्ण निरीक्षण करती हैं तथा उसकी लंबी-चौड़ी मुखाकृति, जिसकी उभरी हुई नसें व्यंग-चित्रकारों द्वारा चित्रित चन्द्रमा के अर्द्धाकार की अस्पष्ट रेखायें सी प्रतीत होती हैं–मैं नहीं कह सकता कि वह कैसा 'दि थाउजेण्ड एण्ड वन नाइट्स' (The Thousand and One Nights) **का विचित्र यात्री सा लगता है। वह बोलता बहुत अधिक है, किन्तु उसकी बातों में कोई चमत्कार, कोई प्रतिभा, कोई विशिष्ट गुण द्रष्टव्य नहीं। अपनी स्मृतियों के अक्षय भंडार से भड़भड़ाये स्वर में वह कोरे तथ्यों को, रोचक, लोक-विरुद्ध और दिल दहला देने वाले तथ्यों को व्यक्त करता है और प्रायः अपने ही विषय में वह कहता रहता है, अधिकतर अपने—अपने ही संबंध में, जिसमें ऐसी बालकों की सी सरलता होती है कि मन में कोई उलझन अथवा खिजलाहट नहीं हो पाती। वह न शराब पीता है, न कॉफी, न सिगरेट आदि पीने का ही अभ्यस्त है, वह निरंतर लेखों और अखबारों से ही कुश्ती लड़ता रहता है।"**

ड्यूमा स्कॉट से भी अधिक परिश्रमी था। उसने कठोर आत्म-विश्वास को लेकर सदैव विरुद्ध परिस्थितियों से संघर्ष किया। कभी कभी अपने भीतरी काठिन्य की सीमा पर टकराकर वह इतना दीन हीन हो जाता था कि साधारण से साधारण व्यक्ति भी उसे चकमा दे जाता था। उसके मकान का दरवाजा सदैव खुला पड़ा रहता था और प्रतिदिन उसके यहां इतने लोग खाना खाते थे, जिनके नामों से भी वह परिचित न होता था।

ड्यूमा ने १२०० पुस्तकें लिखने का दावा किया है। उसकी अधिकांश कहानियां सहयोगियों के साथ मिलकर लिखी गईं। ऑगस्ट मेकट उसका प्रमुख सहयोगी था। उसके जीवन-काल में कई बार यह प्रश्न उठा कि पुस्तकों में उसका लिखा हुआ कितना है और उसके सहयोगी का कितना, किन्तु उसने यह सब जतलाने का कभी प्रयत्न नहीं किया। मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी उसकी ओट में एक प्रतिभाशाली लेखक के रूप में ख्यात हो गया।

ड्यूमा को साहित्यिक-चोरी का अपराधी भी करार किया गया, किन्तु इसके विषय में भी वह तटस्थ बना रहा और उसने इसके विरुद्ध अपनी सफाई देने का कभी कष्ट न किया। दूसरों की बद्धमूल धारणाओं पर आघात करके उनकी खिजलाहट और औत्सुक्य को कम करने की बात उसे पसन्द न थी। अपने बचाव के प्रयत्न को वह निरी कायरता समझता था। प्रारब्ध के थपेड़ों से क्लांत, मन में खिन्न, समाज द्वारा त्याज्य एवं उपेक्षित उसे जीवन की पीड़ा सताती रही, अभाव बेचैन करते रहे, अतृप्ति सालती रही, किन्तु न वह कभी दुनियां की गति के साथ समझौता करने के लिये रुका और न कभी त्रस्त हुआ। उसका स्वभावगत सारल्य उसके जीवन की रिक्तता को एक अजीब मस्ती से सतत भरता रहा।

ड्यूमा के अधिकांश उपन्यासों के कथानक उखड़े-पुखड़े और सामन्जस्य-हीन हैं, किन्तु उसने युग-चेतना को ग्रहण कर कला के शाश्वत तत्त्वों को निरंतर प्रज्जवलित रक्खा है। उसके पात्रों का सहज चित्रण, कथावस्तु की पृष्ठभूमि के वर्णन में प्रदर्शित औचित्य और सजीव कथोपकथन उसकी चिन्तनशक्ति की उर्बरता और कल्पना की ऊंची उड़ान व्यक्त करते हैं। नाटकीय परिस्थितियों के निर्वाह, वातावरण और विविध प्रसंगों की सृष्टि करने में वह अद्वितीय है और उसकी औपन्यासिक कृतियों का निर्माण कुछ ऐसे असाधारण उपकरणों से हुआ है जो पाठक के मनस्तत्त्व पर एक नूतन प्रक्रिया जगाते हैं।

ड्यूमा का 'दि त्री मस्केत्तियर्स' (The Three Musketeers), 'त्वंती इयर्स आफ्तर' (Twenty Years After) और 'दि विकाम्ते द ब्रेलां' (The Vicomte de Bragelonne) उपन्यास-त्रिक् विशेष प्रसिद्ध है, जिसमें डार्टेग्नन (D'Artagnan) की रोचक यात्राओं का वर्णन है और फ्रांस के लुई तेरहवें और लुई चौदहवें के समय का यथातथ्य चित्रण हुआ है। डार्टेग्नन को चित्रित करने वाली रेखायें कुछ ऐसी उभरी हुई, स्पष्ट और सजीवता लिये है कि उसका व्यक्तित्त्व सर्वथा पृथक् और महान् सिद्ध होता है। अंग्रेजी समीक्षक स्टीवेन्सन ने डार्टेग्नन की प्रशंसा में लिखा है—

"यहां अथवा अन्यत्र कहीं भी यदि मैं अपने और अपने मित्रों के लिये कुछ सद्गुणों को एकत्र करना चाहूं तो मुझे निःसंकोच डार्टेग्नन के गुण चुन लेने पड़ेंगे। मैं यह नहीं कहता कि शेक्सपीयर के यहां ऐसा कोई पात्र नहीं है, मेरा यह दावा भी नहीं कि किसी अन्य पात्र को मैं महत्त्व ही नहीं देता। अनेकों अनुपस्थित और मृत व्यक्तियों की महान् आत्मायें अपनी रहस्यमयी, सूक्ष्म दृष्टि से हमारे कार्यों का

नित्य अवलोकन करती रहती हैं, जिनसे कि हम एकान्त-स्थल में भी सत्त्ववान रहते हैं और इन अपने सम्मान्य निर्णायकों और निरीक्षकों को असंतुष्ट न करने का सदा ध्यान रखते हैं। यदि आप इसे मेरा छिछोरापन न समझें तो मैं कहूंगा कि ऐसा ही एक महान् निरीक्षक डार्टेग्नन भी है, इतिहास का डार्टेग्नन नहीं, जिसे थैकरे ने प्रमुखता दी थी और जिसके लिये मैं स्वच्छन्दतापूर्वक कह सकता हूं कि वह उसकी अपनी व्यक्तिगत सम्मति थी, न ही मैं उस डार्टेग्नन के विषय में कह रहा हूं, जो सचमुच हाड़-मांस का कभी हुआ होगा, वरन् मैं स्याही और कागज़ पर अंकित डार्टेग्नन को, प्रकृति द्वारा निर्मित नहीं, वरन् ड्यूमा द्वारा चित्रित डार्टेग्नन को स्नेह करता हूं। यह इस कलाकार की असाधारण विजय है कि उसने इस पात्र को सच्चा नहीं, प्रत्युत् सजीव और हमारे स्नेह का भाजन बनाया है। वह इतना विश्वस्त नहीं है, किन्तु आकर्षक है।"

इसके अतिरिक्त 'क्वीन मारगात' (Queen Margot), 'दि दाम द मांतमॉर्यां' (The Dame de Montsorean), 'दि फॉत्ती फाइव' (The Forty Five) उपन्यास-त्रिक् और 'मॉन्ते क्रिस्तो' (Monte Cristo) भी ड्यूमा की विलक्षण कृतियां हैं, जो तत्कालीन परिस्थितियों को स्पष्टतया हमारे नेत्रों के समक्ष रख देती हैं।

निःसंदेह, ड्यूमा अपने समय का सबसे विचित्र कलाकार है। यद्यपि उसके उपन्यासों के कथानक और पात्र बहुत कुछ दूसरों के अनुकरण पर हैं, तथापि उसकी चित्रण-पद्धति और कलात्मक-टेकनीक निजी और मौलिक है। उसके लिखने का कुछ ऐसा अनोखा ढंग है, जो साधारण से साधारण बात को चन्द उभरी हुई रेखाओं में बड़ी ही सशक्त अभिव्यक्ति दे देता है।

ठीक इसी प्रकार अंग्रेजी-साहित्य के ऐतिहासिक उपन्यासकारों की परम्परा में **सर वाल्टर स्काट** भी वह अमर सर्जक है, जो युगों के व्यवधान के बाद साहित्यिक-रूढ़ता की लौह-कारा तोड़कर अपनी निराली प्रतिभा के उन्मुक्त स्रोतों से आगे बढ़ा और अतीत-वैभव से भाव एवं भावना ग्रहण कर उसमें निज कवित्त्व एवं कल्पना का रंग भर दिया। अपनी जन्मभूमि के क्षेत्र की परिधि में घिरी हुई स्कॉटिश-भूमि से उसे इतना गहरा अनुराग और आकर्षण था कि वह अपनी सृजन-सामर्थ्य को साहित्यिक सांचे में ढालने के लिये इतिहास से सामग्री संजोने लगा। जब वह तीन वर्ष का था तभी ट्वीड घाटी में अपने दादा के घर उसे स्वास्थ्य सुधारने के लिये भेज दिया गया था। यहां प्रकृति की रम्य क्रोड़ में बालक स्कॉट की

आत्मा चतुर्दिक् फैली हरियाली , मैदान, खेत, विस्तृत आकाश और पृथ्वी, साथ ही प्राचीन गीतों और कथाओं में अभिभूत होकर अनुप्राणित हुई। घास पर लेट कर वह अत्यन्त उत्सुकता से गडरियों द्वारा अतीत जीवन से सम्बन्धित कहानियां सुनता और अपनी दादी से सुनी गीतों की कड़ियों और कहानियों को पूर्णतया हृदय में उतारता जाता।

अध्ययन के लिये एडिनबरा आने पर उसने अवकाश के क्षणों में टैसो (Tasso) के उपन्यास, पर्सी (Percy) के 'प्राचीन-अवशेष' और स्पेन्सर (Spenser) की 'फेरीक्वीन' पढ़ डाली। कोई भी पुराना लोक-गीत यदि उसकी दृष्टि से गुजरता तो वह सिंह की तरह उस पर झपट्टा मारकर हथिया लेता और कंठस्थ कर डालता। वह अत्यन्त बाल्यावस्था से ही कहानी सुनने और सुनाने का इतना शौकीन था कि किसी प्रकार साथियों का पीछा न छोड़ता और उन्हें थका डालता।

अन्ततः उसके भीतर का बोझ मुखर होता गया और अतीत-सौंदर्य के साथ साथ आंतरिक-रंग भी घनीभूत होकर कलात्मक-भावों की निर्बंध धारा में बह उठा। स्कॉट की औपन्यासिक-कृतियों में गंभीर-अनुभूति के साथ साथ सक्रिय चितन और उदात्त कल्पना है, मस्तिष्क की जागरूकता के साथ साथ भावों की सूक्ष्मता और भाषा का जीवन्त रूप मूर्त्त हो उठा है तथा कला की असाधारण परिपक्वता के साथ साथ अतीत का सजीव चित्रण, नया संयम और शिल्प भी है।

स्कॉट के लिये अतीत साधन भी है और साध्य भी। अतीत के रंगीन चित्रों ने ही उसके कृतित्व को शाश्वत रूप प्रदान किया है। अतीत के मोह ने ही उसे उपन्यासकार बनने की प्रेरणा दी है और अतीत-निधि से ही उसने अपने कथा-साहित्य के उपकरण एकत्रित किये हैं। उसने लिखा है, "मुझे किसी प्राचीन गढ़ अथवा रणभूमि को दिखा दो, बस मेरी समस्त श्रांति और उद्विग्नता मिट जायगी। स्कॉट ने किसी भी ऐतिहासिक स्तूप अथवा बहती नदी को शिथिल बुद्धि से नहीं आंका , वरन् उनके साथ आत्म-चेतना का अनुभव करके अपनी आन्तरिक भावनाओं को समन्वित किया। प्रत्येक छोटी से छोटी झाड़ी भी उसे रोमांस की चिनगारियों से सुलगती नज़र आती थी। उसने किसी एक विशिष्ट शताब्दी अथवा सामाजिक जीवन की चलती घटनाओं का ही इतिवृत्त लिख कर संतोष नहीं किया, वरन् अतीत उसके लिये मानों एक मोहक भुलावा बन गया। अतीत के खुले पृष्ठों

में उसने जीवन की परिभाषा को ढूंढ़ा और उसके धुंधले, किन्तु आकर्षक चित्रों से अपनी कला को सवांरने की शाश्वत सजगता प्राप्त की।

स्कॉट द्वारा लिखित उसके सभी बत्तीस उपन्यासों में स्कॉटलैंड के अतीत-कालीन चित्र सजीव हो उठे हैं। उसका प्रख्यात 'वेवर्ली'(Waverley)उपन्यास सन् १७४५ के जेकोबाइट आन्दोलन से सम्बन्धित है, जो स्कॉटिश जनता पर अपनी अमिट छाप छोड़ गया था और जिससे स्कॉट भी विशेष रूप से प्रभावित हुआ था। 'दि फॉरट्यून्ज ऑफ नाइजल' (The Fortunes of Nigel), 'क्वेण्टिन डरवार्ड' (Quentin Durward) और 'दि टेलिसमेन' (The Talisman) में स्कॉटिश योद्धाओं की रोचक कथायें हैं। 'गाइ मेनरिंग'(Guy Mannering), 'दि एण्टीक्वेरी' (The Antiquary), 'रॉब रॉय' (Rob Roy), 'दि हॉर्ट ऑफ मिडलोथियन' (The Heart of Midlothian) और 'रेड गाण्टलेट' (Red Gauntlet) में अठारहवीं शताब्दी के चित्र; 'ओल्ड मॉर्टे-लिटी' (Old Mortality), 'ए लीजेण्ड ऑफ् माण्टरोज' (A Legend of Montrose), 'दि पाइरेट' (The Pirate), 'वुडस्टॉक' (Woodstock), 'दि ब्राइड ऑफ् लेमरमूर' (The Bride of Lammermoor) और 'पीव-रिल ऑफ् दि पीक' (Peveril of the Peak) में सत्रहवीं शताब्दी; 'दि मॉनेस्ट्री' (The Monastery), 'दि एबट' (The Abbot) और 'केनिल-वर्थ' (Kenilworth) में सोलहवीं शताब्दी; 'दि फेयर मेड ऑफ् पर्थ' (The Fair Maid of Perth)और 'क्वेण्टिन डरवार्ड' में पन्द्रहवीं शताब्दी; 'कासल डेंजरस' (Castle Dangerous) में चौदहवीं शताब्दी; 'आइवन हो' (Ivanhoe), 'दि टेलिसमेन' (The Talisman) और 'दि बिट्रोथ्ड' (The Betrothed) में बारहवीं शताब्दी तथा 'काउन्ट रॉबर्ट ऑफ पेरिस' (Count Robert of Paris) में ग्यारहवीं शताब्दी इस प्रकार स्कॉट के उपन्यासों में आठ शताब्दियों का चित्रण हुआ है। स्कॉटलैंड के अतीत इतिहास के सम्पूर्ण शक्तिशाली तत्त्व उनमें सन्निहित हैं और घटनायें विभिन्न स्रोतों से संकलित की गई हैं। टॉमस कार्लाइल ने उपन्यासों की समीक्षा करते हुए लिखा है—

"इन ऐतिहासिक उपन्यासों ने समस्त मानवता को वास्तविक स्थिति से अवगत कराया है, जो नितान्त सत्य सा प्रतिभासित होता है और जिससे अभी तक इतिहासवेत्ता और अन्य व्यक्ति अपरिचित थे कि विश्व की बीती शताब्दियां केवल रियासती कागजों, लड़ाई-झगड़ों और कोरे नामों से ही भरी हुई न थीं,

वरन् उनमें चलते-फिरते जीवित मनुष्य भी रहते थे। स्कॉट ने ऐसा करके एक महान् कार्य संपन्न किया, जो परिणाम में उर्बर है। उसने एक बहुत बड़े सत्य का उद्घाटन करके दिखाया है।"

स्कॉट की उपन्यास-कला विभिन्न युगों की मूल भावनाओं को व्यक्त करने का अथक प्रयास है। यद्यपि उसने समय की विषमताओं और जीवन-जटिलताओं से विवश होकर इसे अपनाया था, तथापि बाद में वह उससे एकरूप हो गया था और उसके प्रिय देश स्कॉटलैंड का गरिमामय इतिहास उसके प्राणों का अंग बन गया था। पुरातन सभ्यता की पार्श्वभूमि पर चरित्रों की उद्भावना, ऐतिहासिक-वृत्तों का उपयुक्त चयन और अत्यन्त सूक्ष्म एवं गहरी रेखाओं से पात्रों का चित्रांकन उसके उपन्यासों की अनोखी विशेषतायें हैं, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से उसकी कृतियां सदोष हैं और अनेक स्थलों पर अप्रामाणिक हो गई हैं। 'केनिलवर्थ' में वह अपने उन पात्रों के मुख से शेक्सपीयर के उद्बोधन-वाक्य कहलाता है, जो उससे पूर्व के हैं। उपन्यास की नायिका एमी रोब्रजार्ट को वह केनिलवर्थ ले जाता है, जहां कि वह कभी नहीं गई थी और क्युलोडेन के पश्चात् वह यंग प्रिटेण्डर को स्कॉटलैंड पहुंचा देता है। अनावश्यक लम्बे वर्णनों, घटना-बाहुल्य और परिस्थितियों को चरित्रों के अनुकूल दर्शाने में तथा अपने वृहत्तर प्रयत्न को सुघर रूप देने में उसे कथावस्तु की ऐतिहासिकता में यत्र-तत्र उलट-फेर करने पड़े हैं। वह अपने उद्देश्य की सतह पर इतना उभर आता है कि ऐतिहासिक-तथ्य गौण हो जाते हैं।

विक्टर ह्यूगो, ड्यूमा, स्कॉट तीनों ही इतिहास-प्रेमी हैं और अतीत-वैभव की चित्र-विचित्र वीथियों में विचरते हैं। ह्यूगो के उपन्यासों में महाकाव्य की सी गरिमा है और उनके विस्तृत प्लान में अचिन्त्य जीवन-दर्शन द्रष्टव्य है। ड्यूमा उतनी गहराई में तो न जा सका, किन्तु उसकी अन्तर्मुखीन चेतना, मौलिक-सत्य और मस्तिष्कीय-सजगता अक्षुण्ण है, जो उसकी अद्भुत चित्रण-शक्ति और स्वतंत्र-कलाभिव्यक्ति की परिचायक है। इन दोनों से पृथक् स्कॉट ऐतिहासिकता में इतना ओतप्रोत है कि उसका संपूर्ण कृतित्व अतीत की भव्य कल्पना बन गया है। उसके उपन्यासों में पुरातन-काल के सामूहिक-जीवन के ऐसे अभूतपूर्व चित्र मिलते हैं, जो कभी भुलाये नहीं जा सकते। इतिहास की सत्यता को उसकी रंगीन कल्पना आसानी से ग्रहण नहीं कर पाई, तो भी वस्तु-चयन, औपन्यासिक घटना-विधान और चारित्रिक द्वंद्वों की उद्भावना करने में उसने असाधारण

रुचि का परिचय दिया है। एक स्थल पर वह लिखता है, **"बिना अधिक परिश्रम और शीघ्रता में गुम्फित मेरे उपन्यासों के दृश्य यदि शरीर के किसी भी अवयव की पीड़ा का अपहरण कर सके, मस्तिष्क की चिंता कम कर सके, प्रतिदिन के कार्य-भार से पड़ी माथे की सिकुड़न मिटा सके, गन्दे और अस्वस्थ विचारों के बदले कोई नया सुझाव पेश कर सके अथवा किसी आलसी को अपने देश के इतिहास का अध्ययन करने की प्रेरणा दे सके या इतना ही कि उसके मन को हानिरहित आमोद-प्रमोद प्रदान कर सके तो मैं अपना प्रयत्न काफी सफल मानूंगा।"**

कहना न होगा कि पश्चिम के औपन्यासिक-जगत् में जैसे ये उपर्युक्त तीनों कलाविद् एक नया पथ बना कर चले, उसी प्रकार भारतवर्ष के बंगाल प्रान्त में **बंकिम बाबू** ने सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यासों का मार्ग प्रशस्त किया। इनसे पूर्व भूदेव मुखोपाध्याय ने 'अंगुरीय विनिमय' ऐतिहासिक उपन्यास की रचना की थी। इसके अतिरिक्त भवानी चरण वन्द्योपाध्याय का 'नव बाबू विलास', टेकचांद ठाकुर का 'आलालेर घरेर दुलाल' और कालीप्रसन्न सिंह का 'हुतोम प्यांचार नकशा' भी कथा-साहित्य के विकास में सहायक सिद्ध हुए, किंतु उनमें स्थूल घटनाओं पर आश्रित उच्छृंखल प्रेम की अभिव्यंजना थी और आकर्षक-विधान होते हुए भी व्यंजना की प्रगल्भता और जीवन की धूप-छांह के दर्शन न हुए थे। बंकिम बाबू ने साहित्य-क्षेत्र में सहसा अवतीर्ण होकर अपनी मंगलमयी परम्परा के अनुकूल मौलिक उपन्यासों की सृष्टि की और तत्कालीन कथा-साहित्य को सस्ते प्रेम की स्थूल प्रक्रिया से ऊपर उठा दिया। जीवन के उन्मुक्त स्वरूप को हृदयंगम कर लेने के पश्चात् उन्होंने अपरिपक्व गद्य-शैली को निजी मौलिकता प्रदान की और मध्ययुग की अवरुद्ध सांस्कृतिक चेतना को उद्बुद्ध किया।

बंकिम बाबू के 'दुर्गेशनन्दिनी', 'कपाल कुंडला', 'मृणालिनी', 'राजसिंह', 'देवी चौधुरानी' और 'आनन्दमठ' आदि उपन्यासों में युग-मानव की कोमल भावनाएं, आशा-निराशा, प्रेम-घृणा और विश्वास भरे आदर्शों के मोहक चित्र हैं। 'राजसिंह' में विशुद्ध ऐतिहासिक ढांचा है और अन्य उपन्यासों में इतिहास एवं कल्पना के मिश्रण से कथावस्तु की उद्भावना हुई है। ऐतिहासिक-चरित्रों के साथ साथ कुछ कल्पित पात्र भी इस प्रकार गुम्फित कर दिये गये हैं, जो लेखक की असाधारण दक्षता और अद्वितीय सृजन-शक्ति के परिचायक हैं।

जिन दिनों बंकिम बाबू ने उपन्यास लिखना आरम्भ किया था, उन दिनों बंगाल की उपन्यास कला अत्यन्त संकीर्ण परिधि में पनप रही थी। प्रायः विस्मयो-

द्बोधक एवं अनुरंजक कथानकों को लेकर बिना किसी अनुभव अथवा बहुज्ञता के तत्कालीन लेखक मन-गढ़ंत किस्सा-कहानियां लिखा करते थे। वास्तविक जीवन से उनका कोई लगाव न था और कथा-पद्धति भी घटना-वैचित्र्य, प्रवाह, नाटकीयता, चरित्र-चित्रण एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से रहित थी। बंकिमबाबू एक नूतन अभिव्यक्ति का तकाजा लेकर आए और बंगला-कथा-साहित्य को उनके व्यक्तित्व से अभूतपूर्व प्रेरणा मिली। उनके उपन्यास अंग्रेजी रोमांस से पोषित और ह्यूगो, ड्यूमा, स्कॉट आदि पाश्चात्य कलाकारों से प्रभावित होते हुए भी पूर्णतया मौलिक हैं और बंगला वाङ्मय के विविधांगीय विकास-विस्तार के साथ अन्तर्भावों की लोल लहरों और कल्पना के रंगीन स्वप्न-चित्रों के स्वतः अनुभूत सत्य को व्यक्त करते हैं।

बंकिमचन्द्र ने अपने युग की अर्थपूर्ण प्रवृत्तियों एवं मनोभावों को सही आंक कर अतीत जीवन की प्रक्रियाओं को नूतन सामाजिक-चेतना प्रदान की है और पुरातन-सभ्यता, जातीय-जीवन और मानव-विकास के इतिहास की अन्तर्भुक्त धारा को अपने अपन्यासों में अक्षुण्ण रक्खा है। चेतना की सतह पर रोमांटिक और कला में प्रवर्तक होने हुए भी उनके उपन्यासों में जीवन का कुतूहल, औत्सुक्य और हृदय को अभिभूत करने वाली निरीहता है, अभिव्यक्ति में ओज, स्वकेन्द्रित सजग चेतना और विश्वास की अदम्य शक्ति है तथा उनकी भाषा में एक विशिष्ट नाटकीय आवेश, प्रवाह और भावानुकूल उतार-चढाव का लचीलापन है। यद्यपि उनके उपन्यासों में ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक प्रामाणिक सामग्री नहीं है, तथापि उन्होंने बंगाल के जातीय एवं सांस्कृतिक-जीवन की जो प्रथम रूप-रेखा प्रस्तुत की, वह कम महत्त्वपूर्ण नहीं। इसके अतिरिक्त बंकिमबाबू का जीवन-दर्शन और आंतरिक-समाधान आदर्शवाद का पोषक है। तीव्र अंतर्द्वन्द्व एवं मानव-मन की गहराइयों में वे अधिक नहीं उतरे, हां अंतः-प्रकाश के सात्त्विक संबल पर टिक कर उन्होंने देश की राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं को छुआ और उनका समाधान भी बताया।

इतिहास की अब तक की वाह्य एवं अंतःप्रगतियों के समाश्रित बंकिमबाबू की औपन्यासिक-कला में जो न्यूनता रह गई थी, उसकी पूर्ति बंगाल के दूसरे ऐतिहासिक उपन्यासकार **राखालदास बन्द्योपाध्याय** ने की। ऐतिहासिक गरिमा, युग की भावनाओं और सांस्कृतिक-परम्परा का विचित्र समन्वय तथा देश के अतीत-गौरव की प्रेरणामूलक झांकी इनके उपन्यासों में द्रष्टव्य है। थोड़े आयोजन से

सजीव चित्रण और सूक्ष्म रेखाओं को उभार उभार कर दर्शाया गया है। 'शशांक', 'धर्मपाल', 'करुणा', 'मयूख', 'असीम', 'देवी चन्द्रगुप्त' और 'लुतफुल्ला' आदि इनके अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यासों में गुप्त, पाल और मुग़ल युग की भावधारायें मिलती हैं और पाठक को ऐसा भान होता है मानों वह उसी युग के रहन-सहन, रीति-रिवाज और अच्छी बुरी प्रथाओं में श्वास ले रहा हो। ऐतिहासिक पार्श्व-भूमि पर चरित्रों की उद्भावना करके तथा बीसवीं शताब्दी की पाश्चात्य सभ्यता के घात-प्रतिघात में भी वे भारतीय-संस्कृति को जीवित रख सके हैं और उन्होंने वस्तुस्थिति को लक्ष्य में रखकर ऐतिहासिक प्रसंगों और अतीत जीवन के कितने ही कोमल और मनोहारी चित्र अंकित किए हैं।

राखालबाबू समसामयिक इतिहास की अंतः–स्थितियों के अंकन में भी बड़े दक्ष हैं। आधुनिक संस्कारों से प्रभावित और पुरातन परम्पराओं की विशेषताओ से चिर-परिचित उन्होंने अपने चतुर्दिक् जीवन में जो देखा, जो संकलित किया, वह उदात्त बंगला-संस्कृति की वास्तविकता के प्रतीक रूप में अपने चित्रों में उतार दिया। मुख्य चरित्रों का उत्कर्ष ही लेखक का ध्येय है और उसके पात्र न केवल इतिहास की संकुचित परिधि में पोषित मानव हैं, वरन् वे वर्त्तमान् में उपस्थित होकर अतीत की आधुनिकता से अभिसंधि कराने में भी योगदान करते हैं। वे अपने युग के प्रतिनिधि मात्र ही नहीं हैं, प्रत्युत् उनके व्यक्तित्त्व में उनका वांच्छित युग सजीव हो उठा है। अच्छे और बुरे चरित्रों की उद्भावना, विविध घटनाओं का चुनाव और उनका यथास्थान विभाजन, वर्णन में रोचकता और वेग, साथ ही इस कलाकार की चित्रण-शैली इतनी सरल और स्वाभाविक है कि पाठक उसकी कल्पना के साथ उड़ सकता है। उसका दृश्य-वर्णन भी इतना सजीव और स्पष्ट होता है, जो वर्णित दृश्य अथवा घटना को नेत्रों के समक्ष समुपस्थित कर देता है। किन्तु राखालबाबू के पात्रो मे उनके आंतरिक अथवा सूक्ष्म-मनोगतियों को चित्रित करने का प्रयास कही भी नही है। देश और जाति के व्यावहारिक आदर्शों को संस्कृति के अनुकूल ढालने में भी उनको औपन्यासिक-साधना अधिक व्यापक नहीं होने पाई। वे मूलतः इतिहासकार हैं और अपने साध्य-पथ का अनुसरण करने में ही उन्होंने अपनी कला की साधना को विशेष रूप से गरिमान्वित समझा है।

महाराष्ट्र प्रांत में इसी ऐतिहासिक-आदर्श का प्रवर्त्तन **हरिनारायण आप्टे** ने किया। यों तो आधुनिक-मराठा-साहित्य में गुंजाकर ने अपना सबसे पहला ऐतिहासिक उपन्यास 'मांचनगढ़' स्कॉट के अनुकरण पर शिवाजीकालीन घटनाओं

के आधार पर लिखा था, तथापि आर्य्य-संस्कृति के महान् एवं स्थायी उपकरण आप्टे की कृतियों में ही सर्वप्रथम द्रष्टव्य हुए, जिन्होंने अपनी सृजनशील कला के द्वारा देश को पुनरुत्थान-पथ पर अग्रसर किया। उसकी अपनी एक विशेष औपन्यासिक टेकनीक है, जिसमें निष्प्राण रूढ़ परम्परा को एक भीषण झटके के साथ तीक्ष्ण अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। लेखक की अनुभूति एवं जागरूक प्रतिभा अतीत संस्कारों में पोषित मानव-प्रकृति के वास्तविक स्वरूप से परिचित है, अतः वह इतिहास का प्रतिनिधित्व करता हुआ विभिन्न परिस्थितियों को लेकर आगे बढ़ता है और उसमें जीवन के आदर्शों का भी उचित समन्वय करता जाता है। उसकी प्रत्येक कृति में इतिहास की आत्मा बोलती है और प्राचीन युग की ऊर्ध्वमुखी वृत्तियों एवं तत्कालीन मानव-समाज की अन्तर्वाह्य परिस्थितियों का गत्यात्मक चित्रण है।

आप्टे के उपन्यासों में भारत के अतीत का वृहत्तर स्वरूप, संस्कृति के विविध अंगों और जीवन सम्बंधी दृष्टिकोणों का उत्तरोत्तर विकास तथा अपनी महान् परम्परा के अनुसार अनेक प्रसंगों की अवतारणा और उनका उचित संतुलन, इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक-गरिमा के साथ साथ निर्बाध चित्रण और कलात्मक गांभीर्य भी समाविष्ट है। जिस प्रकार अंग्रेजी-साहित्य में सर वाल्टर स्कॉट और बंगला में बंकिमचन्द्र को अतीतकालीन सामग्री प्रस्तुत करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है, उसी प्रकार मराठी-साहित्य में हरिनारायण आप्टे द्वारा किए गए अथक प्रयत्न भी वहां की ऐतिहासिक संस्कृति के लिये महान् देन हैं। उनके उपन्यासों को पढ़ते हुए पाठक को वस्तुतः यह अनुभूति होती है मानों वह अतीतकालीन वातावरण में विचरण कर रहा हो।

आप्टे जिस समय उपन्यास-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए, उस समय लोगों की यह धारणा थी कि उपन्यास पढ़ने से समाज पथभ्रष्ट हो जाता है और उसका नैतिक मानदंड गिर जाता है। आप्टे ने मराठी-कथा-साहित्य में अपने उपन्यासों द्वारा एक नूतन परिवर्तन, एक क्रांति की सूचना दी और यह प्रमाणित कर दिया कि उपन्यासों से जीवन की काया पलट हो सकती है तथा निश्चेष्ट मानव-मन में राष्ट्रीय-चेतना एवं अतीत गौरव-भावना भरी जा सकती है। उन्होंने भाषा का संस्कार किया, उपन्यास को एक महान् दायित्व मानकर भाव-प्रेषणीयता और आत्माभिव्यंजना का साधन बनाया, जीवन के विभिन्न अंगों को अधिक सजीवता के साथ स्पर्श किया और कल्पना-शक्ति को जाग्रत करते हुए सांस्कृतिक-अतरंगता

का दिग्दर्शन कराया। आप्टे ने अपना सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'उषःकाल' मराठी साहित्य को भेंट किया, जिसमें शिवाजीकालीन घटनाओं का चित्रण किया गया था। इसके पश्चात् उन्होंने दस वर्षों के भीतर 'सूर्योदय', 'गड़ आलापण सिंह गेला', 'सूर्यग्रहण', 'स्वराज्या साठीं', 'रूपनगर ची राजकन्या', 'म्हैसूर चा बाघ' और 'मध्याह्न' आदि ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की।

यद्यपि आप्टे ने ऐतिहासिक गुत्थियों और उसकी सूक्ष्म जटिलताओं को चीरते हुए अपने निरूपण को अंतिम स्तर तक पहुंचाने का प्रयत्न नहीं किया, तथापि अनेक परिवर्तित धाराओं में बहते हुए भी उन्होंने उपन्यास-साहित्य को अबाध गति से आगे बढ़ाया और ऐतिहासिक कथावस्तु में कल्पना एवं तथ्य को सम्मिश्रित किया। 'राष्ट्रपतन' और 'प्रणवीर' में क्रमशः यवन-आक्रमण के पूर्व और पश्चात् के भारत की आंतरिक-दशा का दिग्दर्शन कराया गया है। 'प्रणवीर' में मराठी-इतिहास की वह प्रसिद्ध घटना वर्णित है, जिसमें शिवाजी के सेनापति तानाजी द्वारा सिंहगढ़ विजय का उल्लेख है। 'वज्राघात' आप्टे का अंतिम उपन्यास है, जो उनकी लाड़ली इकलौती पुत्री की मृत्यु के पश्चात् लिखा गया था और जिसमें हृदय के अत्यन्त विह्वल भाव व्यक्त हुए हैं। इसमें दक्षिण के अत्यन्त शक्तिशाली, वृहद् हिन्दू-साम्राज्य विजयनगर के शासक रामराजा के पतन की गाथा है, जिसे बहमनी के चार मुसलमान शासकों ने मिलकर पराजित किया और नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। इस उपन्यास में हृदय के उद्गार अत्यंत करुणा-विगलित शैली में सुन्दरता के साथ प्रस्फुटित हुए हैं। इसमें कोरी ऐतिहासिकता ही नहीं, प्रत्युत् युग की पुकार का स्वर प्रत्यक्ष सुन पड़ता है। उपन्यास का मूल वेदना है जिसे केन्द्र मानकर प्रमुख घटनाये आवर्तित होती रहती हैं।

तेलुगु-साहित्य की महान् विभूति **चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम्** श्री कंदकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु के समकालीन थे, जो आधुनिक तेलुगु-गद्य के जनक और आन्ध्र के असाधारण प्रतिभासंपन्न और युग-प्रवर्त्तक लेखक माने जाते हैं। श्री पंतुलु ने सर्वप्रथम अंग्रेजी लेखक गोल्डस्मिथ की प्रख्यात रचना 'दि वीकर ऑफ् दि वेकफील्ड' (The Vicar of the Wakefield) के अनुकरण पर अपने ऐतिहासिक उपन्यास 'राजशेखर चरित्रमु' की रचना की थी, जिसने अंतर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की और जो अनेक भाषाओं में अनुवादित होकर पढ़ा गया। श्री पंतुलु ब्रह्म-समाजी थे और पुरातन रूढ़-परम्पराओं के कट्टर विरोधी, उन्हें तत्कालीन तेलुगु-साहित्य के गौरव -वर्द्धन का श्रेय प्राप्त है।

चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम् ने उन्हीं के पदचिन्हों पर चलकर अपनी अप्रतिम कल्पना-शक्ति और आकर्षक रचना-पद्धति के द्वारा तेलुगु-कथा-साहित्य की अभिनंदनीय सेवा की है। युवावस्था में ही नेत्र-ज्योति विलुप्त होने पर उनकी अंतस्साधना कलात्मक अभिव्यक्ति में परिणत होती गई और एक दिव्य-दर्शी साधक की भांति उन्होंने अचेतन में चेतना का संचार किया। उन्होंने अपने कतिपय रेखांकनों में मानवीय पहलुओं को मूर्त्त करके इतिहास के प्रमुख व्यक्तित्वों की विशेषताओं को उभार कर दर्शाया और एक कलाकार की हैसियत से उनके चित्र बहुत ही सशक्त, यथार्थ और भावपूर्ण बन पड़े। 'अहल्याबाई', 'सौंदर्य तिलक' और 'रामचन्द्र विजयम्' आदि उनके ऐतिहासिक उपन्यास विशेष उल्लेखनीय हैं, जिनमें मध्यवर्गीय आन्ध्र-जनता के जीवन का कलापूर्ण चित्रण है और जो भाषा की सजीवता एवं सुन्दरता की दृष्टि से अभूतपूर्व बन पड़े हैं। श्री नरसिंहम् संस्कृत, तेलुगु, अंग्रेजी आदि कई भाषाओं के पूर्ण ज्ञाता होने के कारण राजमहेन्द्रपुरम् के 'मिल्टन' और आन्ध्र प्रदेश के 'सूरदास' कहलाए। जिस वृक्ष की छाया के नीचे बैठकर ये अपनी विलक्षण वक्तृत्व-शक्ति से नवयुवकों को प्रोत्साहित किया करते थे, वह भी आज इस कलाकार की पुण्य-स्मृति को समेटे उनकी शाश्वत अमरता का प्रतीक बन गया है।

श्री नरसिंहम् के कृतित्व की सबसे बड़ी खूबी है कि उसमें अतीत जीवन की बड़ी गहरी झांकी मिलती है और वर्त्तमान् आन्ध्र-जीवन में जो कुछ नवीन और प्रगतिशील है—उससे इनकी कला का विचित्र समन्वय हुआ है। इनके उपन्यासों की कथावस्तु, सुसंगत कल्पना, पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण, आकर्षक वातावरण और भाषा की मार्मिकता दर्शनीय है। आकस्मिक घटनाओं की संयोजना भी इन्होंने अत्यन्त आकर्षक ढंग से की है। 'रामचन्द्र-विजयम्' इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है, जिसमें इनकी भावाभिव्यंजना सरल, किन्तु प्रभावोत्पादक है। लगता है जैसे इतिहास और कल्पना के समावेश से रंग की कूची फेरकर इन्होंने रेखाओं को उभाड़ा है। यद्यपि कहीं कहीं ऐतिहासिक सत्य विकृत है, तो भी इनका जीवन-दर्शन सटीक और मनोग्राही है और इनके व्यक्तिगत अनुभव की एक विचित्र दीप्ति समस्त कृतियों में द्रष्टव्य है।

इधर गुजराती साहित्य में **कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी** की ऐतिहासिक कृतियों ने युगान्तर ला दिया है। उन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृति का विशेष प्रतिनिधित्व किया है और अतीत के गरिमामय इतिहास में कलामय औपन्यासिक अवयवों की संयोजना करके एक विशेष साहित्यिक आन्दोलन का सूत्रपात किया है।

जनवादी सांस्कृतिक-भावना वर्त्तमान् गुजराती-साहित्य की दिशा-निर्धारक शक्ति है और मुंशीजी ने अपनी असाधारण लेखनी द्वारा भारत की पुरातन गाथाओं के आधार पर नया रूप-विधान, सशक्त कल्पना, उन्नत-कथा और विशेष दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करके इस अवरुद्ध दिशा में प्रगति की है। उनकी प्रत्येक कृति एक युग की अतीत पृष्ठभूमि से बंधी है और उन्होंने तत्कालीन प्रयोगों और अनुभवों को नवीन कलात्मक अभिव्यक्ति देकर अपने उच्च बौद्धिक स्तर से परखा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि उन्होंने प्राचीन ऐतिहासिक परम्पराओं और जनश्रुतियों को किंचित् उलट-फेर करके अर्वाचीन जन-वृत्तियों के अनुरूप बनाया है, प्रत्येक युग की आंतरिक परिस्थितियों और चारित्रिक विशेषताओं का विश्लेषण करके अतीतकालीन जीवन के प्रति एक नवीन सम्मोहन पैदा किया है तथा इतिहास के साथ साथ मनुष्य की आदिम चेष्टाओं एवं संभव-असंभव, किन्तु वांच्छित आकांक्षाओं में कलात्मक-सृष्टि के साधनों से और मानसिक-प्रक्रियाओं के मूक आदान-प्रदान द्वारा हृदय का सौंदर्य उंडेलकर अपने मस्तिष्क की सजीवता प्रदान की है। इनके सदृश प्रतिभाशाली लेखक गुजराती-साहित्य में कम हैं, वरन् ये ही प्रमुख रूप से आधुनिक-साहित्य के सिरमौर गिने जाते हैं।

यों तो मुंशीजी की प्रतिभा ने कहानी, उपन्यास, निबंध, जीवनी, आलोचना आदि साहित्य के विविधांगों को स्पर्श किया है, तथापि उपन्यास-क्षेत्र में इनका प्रयास अद्वितीय है और अंग्रेजी के सर वाल्टर स्कॉट से इनकी तुलना की जाती है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता है कि उन्होंने अपनी अनुरंजक कल्पना और कला-सौंदर्य को विस्तार देकर प्राचीन और अर्वाचीन असमानता की विभाजक रेखाओं को पाट दिया है और अपने एकाकी नेतृत्व में पुरातन भारतीय संस्कृति की उत्कृष्टता की उद्घोषणा की है। आर्यावर्त्त के अतीत इतिहास की प्रगति-धारा जिन जिन दिशाओं में प्रवाहित हुई, सामाजिक-संघर्ष एवं घात-प्रतिघात-जन्य अन्तर्द्वन्द्वों में वह जहां जहां टकराई, वहीं वहीं उन्होंने उसके बहुमुख स्रोतों को नियंत्रित किया और आंतरिक विश्वास के सहारे स्वप्निल आभा से आलोकित उस सत्य पर आ टिके, जहां उन्होंने अपनत्व में एक नवीन सृष्टि का बीज अंकुरित किया।

•

सन् १९१६ में मुंशीजी के सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'पाटण नी प्रभुता' के प्रकाशन के साथ गुजराती-गद्य में एक नूतन युग का प्रवर्त्तन हुआ। तदनन्तर सन् १९१८-१९ में 'गुजरात नो नाथ' और सन् १९२२-२३ में इस उपन्यास-त्रिक (Trilogy) का तृतीय खंड 'राजाधिराज' प्रकाशित हुआ,

जिसमें मुंशीजी ने सिद्धराज जयसिंह के साम्राज्य और तत्कालीन राजनीतिक, एवं सांस्कृतिक उन्नति की रूप-रेखा का विवेचन प्रस्तुत किया । इसके अतिरिक्त 'भगवान् कौटिल्य', 'पृथ्वी वल्लभ', 'जय सोमनाथ', लोमहर्षिणी', 'भगवान् परशुराम' आदि इनके प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासों में भारत की अतीत गरिमामयी अखंड परम्परा को परोक्ष रूप से अक्षुण्ण रक्खा गया । 'पृथ्वी वल्लभ' में मालवा नरेश मुंज का आख्यान है और 'जय सोमनाथ' में महमूद गज़नवी द्वारा सोमनाथ पर किये गये आक्रमण का रोमांचकारी वर्णन, जिसमें मनुष्य की बर्बरता के छिछले, स्वार्थपूर्ण और नाशकारी पहलुओं का निदर्शन है ।

औपन्यासिक-कला की दृष्टि से मुंशीजी के उपन्यास बहुत ही सफल बन पड़े हैं । उनकी लेखन-शैली और भाषा-प्रवाह में अद्भुत ऐक्य है । उनके विषय देशकाल के अनुकूल हैं और रचना-कौशल मार्मिक, गठा हुआ और चुस्त है। मुंशीजी की पैनी दृष्टि युग-युग के अंतराल को भेदकर इतिहास के गंभीरतम तथ्य को उघाड़ उघाड़कर दर्शा देती है और वे एक कुशल कलाकार की भांति तत्कालीन-जीवन के गहरे-धुंधले रंगों और स्पष्ट-अस्पष्ट रेखाओं को कल्पना के योग से आकर्षक-चित्रों में परिणत कर देते हैं । युग-जीवन के यथार्थ से उपन्यास के विधायक तत्वों को ग्रहण कर मुंशीजी ने गुजराती-साहित्य-क्षेत्र में अपनी कृतियों द्वारा एक उथल-पुथल सी मचा दी है और यथार्थ के आह्वान एवं अतीत-चिन्तन से जो समय समय पर उन्हें प्रेरणा मिलती रही है, उसके फलस्वरूप एक विचित्र सा गरिमामय द्वंद्व हमें उनकी ऐतिहासिक कृतियों में दृष्टिगत होता है, जिससे उनकी नैसर्गिक रस-ग्राहिता जितनी गतिशील प्रतीत होती है उतनी ही स्थायी । वस्तुतः उनका जीवन-दर्शन युग की तहों में सिमटा हुआ कल और आज के व्यापक एवं श्लाघ्य मर्यादावाद का समन्वयात्मक प्रतीक है । वे अचिन्त्य मानव-मन के व्यंजक संकेतों और उसकी प्रेरक भावनाओं को हृदयंगम करके इतिहास की शुष्कता को सरसता में परिणत कर देते हैं ।

कहना न होगा कि मुंशीजी की भांति हिन्दी औपन्यासिक-जगत् में महा-पंडित राहुल सांकृत्यायन और वृन्दावनलाल वर्मा ने भी इसी प्रकार ऐतिहासिक-निधि और भारतीय-संस्कृति के अनेक अवयवों को अपने उपन्यासों में सुरक्षित रक्खा है । यद्यपि राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों की संस्कृति का रूप-निर्माण वर्त्तमान् युग की समन्वित संस्कृति से संपन्न हुआ है, तथापि उन्होंने इतिहास के जिस विशिष्ट युग में झांककर जीवन की भाव-भूमि में प्रवेश किया है, उसका

सर्वांगीण, प्रत्युत् यों कहें कि उससे भी व्यापक चित्रण उनके उपन्यासों में मिलता है। उनकी सूक्ष्म-चेता आत्मा स्थूल, भौतिक मान्यताओं में लिप्त जीवन के सूक्ष्म-सत्यों की अवहेलना करके स्थूल-तथ्यों के उन्नयन में व्यस्त रही। ज्यों-ज्यों उनका वस्तु-वादी दृष्टिकोण दृढ़तर होता गया और बहिर्देशीय संस्कृतियों के प्रति उनकी जिज्ञासा बढ़ती गई, त्यों त्यों वे अपने सहज मार्ग से विचलित होकर आत्म-सत्य की अपेक्षा भौतिक-सत्य पर बल देते गये और जीवन में गहरे न पैठकर परिस्थितियों के विश्लेषण में प्रवृत्त हुए। उनकी कला-सृजन की चरम परिणति जीवनगत यथार्थ के अंकन और मौर्य एवं गुप्तकालीन भारत के सामाजिक अवस्थाओं के सजीव चित्र प्रस्तुत करने में हुई। तात्कालिक पारिवारिक जीवन, उसकी जटिल समस्यायें और मधुर, रम्य प्रसंग, लोगों की संकीर्ण मनोवृत्ति एवं आदर्शवादिता आदि को राहुलजी ने अपने उपन्यासों में अतुल क्षमता और आत्म-प्रतीति के साथ अंकित किया है। प्राच्य और पाश्चात्य इतिहास का गंभीरतम अध्ययन होने के कारण देश-विदेशों के प्रमुख प्रमुख आदर्शों और बौद्ध-संस्कृति का प्रभाव भी इनके ऐतिहासिक निरूपण में द्रष्टव्य है, जिससे उनकी उपन्यास-कला वृहत्तर एशियन वातावरण म पोषित होकर भीतर से प्राचीन भारतीय मान्यताओं को थामे हुए विरल रूप धारण कर गई है।

इसके अतिरिक्त वाह्य-आवेष्ठन के साथ साथ अतीत-सौंदर्य, हृदय की सहज अनुभूति और रागात्मक-द्रवण भी अविभाज्य रूप से इनकी कृतियों में सम्मिश्र हैं। सामयिक जन-जीवन के प्रति न केवल जागरूकता हो, प्रत्युत् एक मीमांसक का दृष्टिकोण उनमें दीख पड़ता है। एक ओर तो वे भावनाओं के स्रोत में बहकर चित्र-विचित्र अनुभवों में कल्पना का रंग भरते जाते हैं, दूसरी ओर एक स्वस्थ जीवन उपभोक्ता की भांति आध्यात्मिक-तत्त्वों की अवहेलना करके बुद्ध द्वारा प्रतिपादित 'अनात्मवाद' एवं 'परिवर्त्तनवाद' से खिंचे रहते हैं। इनके उपन्यासों की विस्तृत पट-भूमि में प्रदर्शित विभिन्न जीवन-दृष्टियों एवं विचारधाराओं का क्रम भी कुछ विश्रृंखल सा है, जिनमें ऐतिहासिक मान्यताओं को अपेक्षा स्वतंत्र-चिन्तन और अपने मंतव्यों को प्रमुख रूप से सुस्थिर करने को प्रवृति अधिक लक्षित होती है। कहीं कहीं शब्द-वैचित्र्य में लेखक स्वयं खोजाता है, समुचित पथ-प्रदर्शन के विना उनके पात्र दिशाहीन से लगते हैं और नायिका का अभाव वाता-वरण की तरल स्निग्धता में उभार नहीं ला पाता। इनके शैली-शिल्प में बौद्धिक-रूढ़ता न होकर विस्तृत-जीवन की मूर्त्त, सघन व्यंजना है और इनके उपन्यासों का ऐतिह्य नितान्त सत्य तो नही, हां—कला की नूतनता को अपने तल में सहेजे हुए है।

राहुलजी के प्रख्यात 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' उपन्यास उनकी समृद्ध कल्पना की सहज उद्भूति हैं, जिनमें लिच्छवी और यौधेयों के गण-जीवन की अनेकरूपता, उनके विरोधी राजकुलों का वर्णन और समकालीन परिस्थितियों के विभिन्न पहलुओं का समर्थ चित्रण हुआ है। राहुलजी का अभी हाल में ही प्रकाशित 'मधुर-स्वप्न' इतिहास के स्तरों में झांकता हुआ आज से लगभग डेढ़ हज़ार वर्ष पूर्व के सासानी वंशज पीरोज़ा-पुत्र क्वात् के शासन-काल का सामंतोदर्प, धर्माचार्यों का अत्यधिक जोर और अनाचार, मज़दक और उनके अनुयायियों का प्राणदंड, शासित-वर्ग की उद्दंड-नीति के साथ साथ दलित-वर्ग की दयनीय स्थिति आदि का दिग्दर्शन कराता है। पात्रों के व्यक्तित्त्व की रेखायें ऐसी स्पष्ट उभर आई हैं, जो युग युग की शाश्वत अमरता की प्रतीक बन गई हैं।

राहुलजी की उपन्यास-कला पर बहिर्देशीय संस्कृति की छाप तो है ही, अपने देश के भीतरी विषम चित्रों की विकृति का भी प्रभाव पड़ा है। आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करने वाली उनकी ऐतिहासिक कृतियां व्यापक जीवन-खंडों पर टकराकर अचिन्त्य रूप-कल्पना और इनकी सबल सृजन-सामर्थ्य को व्यंजित करती हैं।

इन्हीं के समकालीन हिन्दी के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकार **वृन्दावन लाल वर्मा** ने भी अपने उपन्यासों द्वारा साहित्य-क्षेत्र में एक नवीनतम अध्याय खोला है, जिसमें अपने विशाल ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं वातावरण को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है। इनके उपन्यासों में जो सत्य-दृष्टि, चित्रण-क्षमता और पुरातन आदर्शों के निरीक्षण की प्रवृत्ति है, वह हिन्दी-कथा-साहित्य में एक नूतन देन बन गई है। निःसंदेह, वर्माजी ने इतिहास के सत्य को अधिक निकट से परखा है और उनके पात्र उधार लिये हुए नहीं, वरन् चिर-परिचित ऐतिहासिक मानव हैं, जो परिस्थितियों के अनुकूल जीवन के सतत संघर्ष को वहन करते हैं। इनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'गढ़कुंडार' और 'विराटा की पद्मिनी' में क्रमशः राजपूताना और बुन्देलखंड के मध्ययुगीन राजघरानों के सामूहिक जीवन-संघर्ष का चित्रण है, जिनमें इतिहास के मूल को कल्पना के योग से संग्रहणीय बना दिया गया है। इसके अतिरिक्त 'झांसी की रानी' में रानी लक्ष्मीबाई के शौर्य का आख्यान, 'मृगनयनी' में गूजर-कुल की सुन्दरी कन्या मृगनयनी और ग्वालियर के शासक मानसिंह तोमर (१४८६–१५१६) की प्रणय-कथा और 'कचनार' में धामोनी के राजगौंडों का इतिहास और कचनार

के प्राणवान् व्यक्तित्व का दिग्दर्शन है, जिनमें गंभीर-चिंतन एवं आभ्यंतरिक तथ्य-निरूपण के साथ साथ ऐतिहासिकता का सुन्दर समावेश हुआ है। इनकी 'मुसाहिब जू', 'छत्रसाल', 'माधवजी सिंधिया', 'टूटे कांटे', 'शाहगफूर', 'सत्तरह सो बत्तीस', 'आनन्दघन', 'ललितादित्य' आदि अन्य ऐतिहासिक कृतियां भी हैं, जिनमें से कुछ अभी अप्रकाशित हैं।

वर्माजी की उत्पादक-शक्ति सराहनीय होते हुए भी उनकी कला विवरणात्मक है, सृजनात्मक नहीं। ऐतिहासिक-थाती के संरक्षण की दृष्टि से उनके उपन्यास महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु युग-धर्म के साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित करते हुए वे जीवन की सर्वांगता को नहीं अपना सके हैं। उनकी दूसरी प्रमुख विशेषता है कि उन्होंने भारतीय इतिहास पर सर्वप्रथम दृष्टि उन्मेष करके प्राचीन संस्कारों को जगाया है , उनके हृदय की विशालता में अतीत-गौरव का सरल-सत्य समाया हुआ है, भाषा-सौष्ठव और भाव-व्यंजना के साथ साथ कथा का निर्वाह और पात्रों का चरित्र-चित्रण भी सम्यक् रूपेण हुआ है, लेखक का दृष्टिकोण स्वस्थ, सरल और स्पष्ट है तथा उसने अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को व्यापक-जीवन की समग्रता में समाहित कर दिया है, तथापि वह सामयिक विषय की गहराई में कहीं नहीं उतरा है और सामाजिक-द्वन्द्वों की अंतः-प्रकृति में पैठने की भी उसकी अभिरुचि नहीं है। यह सही है कि वर्माजी ने उपन्यास की बहुमुखी धाराओं को एक नई दिशा में मोड़ा है, किन्तु वे उन स्वप्नदर्शियों में नहीं, जो जीवन की चित्र-विचित्र रंगीनियों की भरी हाट में पहुंचकर असंख्य जीवन-कणों को बटोरने को लालायित हों। निर्माण-कौशल में उदात्त-कल्पना का परिचय उन्होंने कहीं भी नहीं दिया है, कथानक का गठन भी साधारण कोटि का है, इसके अतिरिक्त उनकी लेखन-शैली और भाव-प्रदर्शन की पद्धति सरल और आकर्षक होते हुए भी वर्णन के बोझिलपन को लिए हुए है, जिससे भाषा का सहज प्रवाह विशृंखलित सा होता हुआ बहता है, किन्तु इन सब त्रुटियों के बावजूद भी उनकी ऐतिहासिक-कृतियां हिन्दी-जगत् को एक शानदार देन हैं। उनके अतीत कथानकों के झरोखों से जो पुरातन भारतीय-संस्कृति की शाश्वत झांकी मिलती है, वह प्रत्येक जिज्ञासु को इतिहास का मर्म समझने और अतीत की महानता से पुलकित होने का अवसर प्रदान करती है।

ऊपर निर्दिष्ट दस कलाकारों के उच्च सृजन के अतिरिक्त समय समय पर अनेक उपन्यासकारों ने ऐतिहासिक-चित्रांकन की उपादेयता को समझा है और

अपनी एक-दो कृतियों द्वारा इस व्यापक क्षेत्र में प्रगति की है।

रूसी-साहित्य में सबसे पहला ऐतिहासिक उपन्यास ओल्गा फोर्श का 'क्लैड इन स्टोन' (Clad in Stone) है, जिसमें उन्नीसवीं शताब्दी के क्रांतिकारियों का साहित्यिक निरूपण हुआ है, किन्तु युग-विशेष की नैतिक-सांस्कृतिक मान्यताओं का उद्घाटन सर्वप्रथम एलेक्से टालस्टॉय के 'पीटर दि ग्रेट (Peter the Great) उपन्यास में हुआ, जो पीटर-युग के सामयिक-वातावरण को चित्रित करता हुआ दो खंडों में प्रकाशित हुआ है। युद्ध से पूर्व के ऐतिहासिक उपन्यासों में चापिगिन का 'स्तेंका राज़िन' (Stenka Razin) और कास्तीलेव का 'मिनिन एण्ड पैजारस्की' (Minin and Pajarsky) उपन्यास भी उल्लेखनीय हैं।

तेरहवीं शताब्दी के टार्टर-आक्रमणों से सम्बंधित वी. यान द्वारा लिखित 'चंगेज़ खां' (Chengiz Khan) 'बाटू खां' (Batu Khan) और 'एलेक्जेण्डर दि अनइजी' (Alexander the Uneasy) उपन्यास-त्रिक् एक क्रांतिकारी प्रयोग के रूप में अवतीर्ण हुआ, जिसमें अतीतोन्मुख रूसी-लोगों की मनोवृत्तियों को सम्यक्रूपेण ग्रथित किया गया। यान के दृष्टिकोण से ऐतिहासिक उपन्यास आकर्षक और स्थायी रसोद्रेक करता हुआ भी सत्यता, शौर्य और मनोवैज्ञानिक गूढ़ता को व्यक्त करने वाला होना चाहिए। ऐतिहासिक पात्रों के साथ साथ आवश्यकतानुसार कल्पित पात्रों के सृजन में भी लेखक पूर्ण स्वतंत्र और निश्चिन्त है।

एस. वोरोडिन के 'दिमित्री दान्सक्वा' उपन्यास में मध्ययुगीन-रूस की घटनाओं को लेकर कुलीकोवो युद्ध-भूमि में टार्टर खां मेमाय पर प्रिंस द्वारा किए गए आक्रमण का उल्लेख है, जिसने तत्कालीन रूसी-साहित्य को प्रभावित किया था। 'चंगेज़ खां', 'दिमित्री दान्सक्वा' और एंतोनोवस्का का 'दि ग्रेट मॉरावी' (The Great Mauravy) उपन्यास भी विशेष ख्यात हुए और उन पर स्तालिन-पुरस्कार प्रदान किया गया। परवर्त्ती औपन्यासिक कृतियों में लियो टालस्टॉय का 'वार एण्ड पीस' (War and Peace), सरगीयेव सेन्स्की का 'सेवस्टोपोल ऑरडियल' (Sebastopol Ordeal) और वी० शिश्कोव का 'एमेलिन पुजाकेव' (Emelyan Pugachev) ने इतिहास की आत्मा को नया संस्कार दिया, जिनमें तत्कालीन प्रवृत्तियों का औरों से अधिक सुन्दर चित्रण हुआ।

अंग्रेजी-साहित्य में चार्ल्स डिकेंस का 'ए टेल ऑफ टू सिटीज़' (A Tale of Two Cities), जॉर्ज इलियट का 'रोमोला' (Romola), टॉमस कार्लाइल का 'फ्रेंच रेवोल्यूशन' (French Revolution) और मेरिया एज्जवर्थ के 'कासल रैक्रेंट' (Castle Rackrent) और 'बेलिण्डा' (Belinda) आदि ऐतिहासिक उपन्यासों ने तत्कालीन साहित्य को प्रभावित किया है। हिंदी में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'वाणभट्ट की आत्मकथा', यशपाल का 'दिव्या' और आचार्य चतुरसेन शास्त्री का 'वैशाली की नगर-बधू' आदि ऐतिहासिक उपन्यास विशेष उल्लेखनीय हैं। यशपाल ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से रूढ़-कल्पनाओं पर आघात करने वाली अपनी वृत्ति के कारण अभिव्यक्ति की नूतन पद्धति अपनाई है। उनके उपन्यास में सामाजिक-विकृति के वे नग्न रेखा-चित्र भी उभर आये हैं, जो भारतीय मनोवृत्ति की संकीर्णता का दिग्दर्शन कराते हैं। बंगला-साहित्य में बंकिमचन्द्र के समसामयिक लेखकों में रमेशचन्द्र दत्त का 'बंग विजेता', हरप्रसाद शास्त्री का 'बेनेरमेये' (बनिये की बेटी) और योगेंद्रनाथ विद्याभूषण का 'आर्य-दर्शन' ऐतिहासिक उपन्यास विशेष उपादेय समझे गये। 'बेनेरमेये' में मध्ययुगीन बंगाल के एक अन्धकारमय अंश पर प्रकाश डाला गया है। मराठी-साहित्य में गुंजीकर और हरिनारायण आप्टे के ऐतिहासिक उपन्यासों के अतिरिक्त नागेश विनायक वापट ने 'बाजीराव साहेब', 'संभाजी', 'चितुरगढ़ चा बेढ़ा' और 'पानीपत ची मोहीम', विष्णु जनार्दन परवर्धन ने 'हंवीर राव व पुतलाबाई', श्री पंडित ने 'सुशीला यमुना' और चिंतामन मोरेश्वर आप्टे ने 'पुतलाबाई' उपन्यास लिखे। गुजराती-साहित्य में के. एम. मुन्शी के पश्चात् नरमद आर्य-संस्कृति के पोषक हैं और तेलुगु-साहित्य में श्री कंदुकूरी वीरेशलिंगम् पंतुलु और चिलकर्माति लक्ष्मीनरसिंहम् के पश्चात् बेलाल सुब्बाराव का 'रानी संयुक्ता', केतवरपु बेंकट शास्त्री का 'रायचूरु युद्धम्' तथा मोगराजु नारायणमूर्त्ति की प्रसिद्ध कृति 'विमलादेवी' ने उपन्यास-क्षेत्र में प्रशंसनीय ख्याति अर्जित की है। केतवरपु बेंकट शास्त्री का 'रायचूरु युद्धम्' आन्ध्र-देश के अतीत इतिहास का दिग्दर्शक और तत्कालीन घटनाओं एवं जन-जीवन जागृति को कलात्मक स्फूर्ति प्रदान करने वाला है।

तेलुगु की भगिनी भाषा मलयालम में ऐतिहासिक उपन्यासों के जनक केरल बर्मा हैं, जिन्होंने एक डच पुस्तक के अनुकरण पर अपना सबसे पहला उपन्यास 'अकबर' लिखा था। तत्पश्चात् चंतु मेनोन के दो मौलिक उपन्यास 'इन्दुलेखा' और 'शारदा' ने इस दिशा में पथ-प्रदर्शन किया, जिससे अनेक लेखकों का ध्यान

इस ओर आकृष्ट हुआ। मलयालम में सबसे प्रतिभाशाली उपन्यास लेखक सी. वी. रमन पिल्ले हैं, जिनके उपन्यास स्कॉट के ऐतिहासिक उपन्यासों के समकक्ष रखे जाते हैं। इन्होंने नवयुग की मांग के अनुसार केरल-संस्कृति की आत्मा को जगाया और उसके शुष्क कंकाल में प्राणों का संचार किया। 'मार्तण्ड वर्मा', 'धर्मराजा' और 'रामजबहादुर' इनके तीन प्रख्यात उपन्यास हैं, जो जन-रुचि को अपने कलादर्शों द्वारा परिप्लावित करते हैं। इनके पश्चात् राजा अप्पनतम् पुरान का ऐतिहासिक-उपन्यास 'भूतरायर' भी मलयालम-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

कन्नड़ भाषा में श्री वेंकटाचार्य के पश्चात् मौलिक ऐतिहासिक-उपन्यासकारों में गलकनाथ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'माधव करुण विलास' में विजयनगर साम्राज्य के आदि काल का चित्रण है, जिसमें युगानुरूप बौद्धिक-चेतना और कथावस्तु का निर्वाह आद्योपांत रोचक और कुतूहलवर्द्धक है। उपन्यासकार पुटन्णा के 'माडिद ने महाराया' और 'मायांगना' नामक दो ऐतिहासिक उपन्यास भी सुन्दर हैं, किंतु कन्नड़-भाषा में गलकनाथ ही ऐतिहासिक-उपन्यासकारों के प्रमुख स्तम्भ माने जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि विश्व-साहित्य में विभिन्न उपन्यासकारों द्वारा अब तक अनेक ऐतिहासिक प्रयोग हुए हैं, जो युगों की संस्कृति से किसी न किसी रूप में सम्बद्ध होकर उसकी धारा को आगे बढ़ाते रहे हैं। बहुधा इतिहास की आत्मा में बिना प्रविष्ट हुए ही कलाकार सद्यःस्थितियों एवं भावना के अनुकूल कल्पना-सापेक्ष्य लावण्य में अपने कृतित्व को द्योतित करते रहे हैं। अतीत की उभरी स्थूल सौंदर्य-रेखाओं ने उन्हें इतना आकर्षित किया है कि उनकी भाव-प्रवणता प्रमुख हो गई है और इतिहास गौण। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी कृतियां भी लिखी गयी हैं, जिनकी पृष्ठभूमि में अनुभूति की निविड़ता होते हुए भी व्यापकत्त्व नहीं और वे इतिहास की ओट में कल्पित चित्रों की अनुप्रेरणा मात्र बनकर ही रह गई हैं।

वस्तुतः इतिहास, संस्कृति और साहित्य का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रहा है, वे एक दूसरे के पूरक हैं और एक के सौंदर्य का विकास दूसरे में साकार हो उठता है। कला के प्रत्येक उपकरण में ऐसे तत्त्व सन्निहित होते हैं, जो मनुष्य के चिर-पुरातन संस्कारों और देश-काल की निर्दिष्ट परिधि में आबद्ध होते हैं।

चिरन्तन-काल से ही मानव की अन्तश्चेतना आनुक्रमिक सभ्यताओं और जीवन-समष्टि में झांक कर अनमोल रत्न चुनती आई है। उपन्यासकार में वह शक्ति है, जो अपने निरीक्षण द्वारा अतीत की विधायक-रेखाओं को सत्साहित्य में प्रतिफलित करता हुआ कलात्मक-सजीवता प्रदान कर सकता है और अपने ऐतिहासिक-निदर्शनों को अधिक से अधिक दृष्टिकोणों से, उसके गहन से गहन स्तर तक पहुंचाकर विशदता, भव्यता एवं उत्कृष्ट-कल्पना से अनुरंजित करके उसे अपनी रस-सिक्त भावना से आप्लावित कर सकता है।

शरच्चन्द्र
श्रौर
डॉस्टॉइवस्की

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

जन्म–१५ सितम्बर, सन् १८७६

मृत्यु–१६ जनवरी, सन् १९३८

जन्मस्थान–देवानन्दपुर, जिला हुगली (बंगाल)
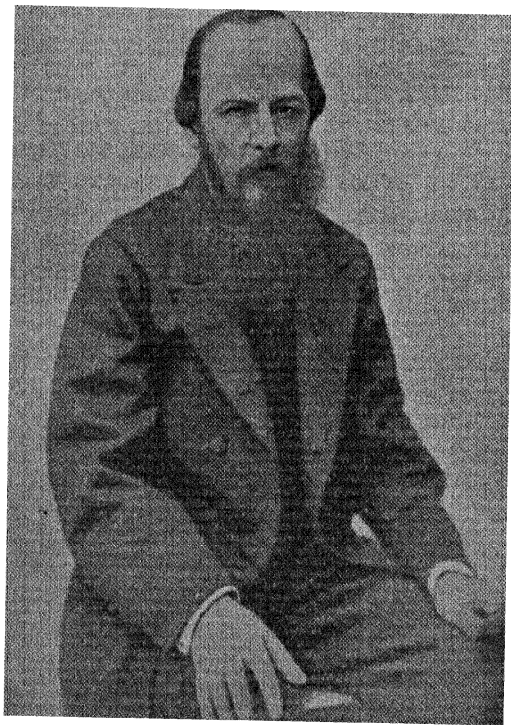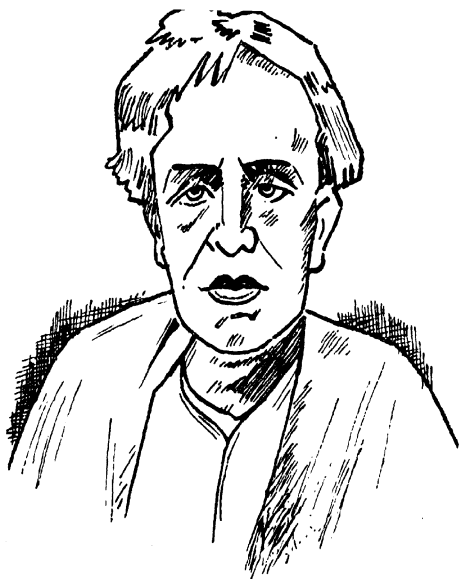
थियोडोर मिखेलोविच डॉस्टॉवस्की

न्म–३० अक्टूबर, सन् १८२१

ृत्यु–३० जनवरी, सन् १८८१

न्मस्थान–मॉस्को (रूस)

शरच्चन्द्र और डॉस्टॉवस्की की कला युग-युग की जिज्ञासा को लिये मानव की अन्तर्मुखीन चेतना और जीवन के गहन, गम्भीर प्रश्नों की विराट् झांकी है, जिसमें सन्निविष्ट चिंतन मनस्ताविक गतिभंगियों का उद्‌घाटन करता हुआ सामाजिक वातावरण के सक्रिय, अन्तरंग स्वरूपों का निदर्शन कराता है। वाह्य-जीवन के घात-प्रतिघात मानव की चेतनामूलक अन्तः-प्रक्रियाओं को जन्म देते हैं और मनुष्य का अवचेतन मन जीवन की असीम निखिलता में सत्य का अनुष्ठान चाहता है। कलाकार की सफलता मन के गूढ़तम स्तरों, मूक अनुभूतियों और अन्तर्भावनात्मक प्रक्रिया को जगाने एवं तीव्र बनाने में है। वह व्यक्ति के संपूर्ण अस्तित्व को बौद्धिक-दीप्ति से भरकर व्यष्टि-अनुभूति को समष्टि-अनुभूति में परिणत कर सकता है।

रूस में डॉस्टॉवस्की और बंगाल में शरच्चन्द्र के पूर्व जो उपन्यास लिखे गये उन में मनोवैज्ञानिक-अंकन एवं सूक्ष्म मनस्तत्त्वों को उघाड़ कर दर्शाने का प्रयास न था। इन दोनों के समकालीन रूस और भारत के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार टालस्टॉय और टैगोर की मौलिक और नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा ने अपने उपन्यासों में मानव-हृदय के वाह्य एवं अन्तरंग पहलुओं को स्पर्श तो किया, किंतु उनके लिये जीवन इतना व्यक्त और व्यापक बन गया कि उनकी दृष्टि उन्हीं उपकरणों और स्थलों पर टिकी, जहां व्यापक चेतन की प्रतिष्ठा एवं सूक्ष्म संवेदनों को विराट् शरीरत्त्व का आकार प्रदान किया गया। डॉस्टॉवस्की और शरच्चन्द्र ने ही सर्वप्रथम जीवन

के गहरे स्तरों में झांक कर मानसिक शक्तियों का पता लगाया और मनोवैज्ञानिक पर्यवेक्षण के बल पर अविज्ञेय रहस्यों का उद्घाटन करते हुए मानव-मनोवृत्तियों, भीतरी जटिल गुत्थियों, हृदय के सूक्ष्म स्पंदनों और अन्तरात्मा के आलोड़न को कलामय भाषा में मुखरित किया ।

मानसिक धरातल

मानव के अन्तर्लोक में जो अज्ञात एषणाएं और सूक्ष्म ग्रंथियां छिपी हैं–वे हमारे शुभ-अशुभ व्यापारों की दिशा-निर्देश करती हैं । साहित्य-स्रष्टा मानव-मन की अनेक परिकल्पनाओं में रमकर जीवन की विभिन्न स्थितियों का मार्मिक, मनोवैज्ञानिक एवं तथ्यपूर्ण विश्लेषण करके उसका यथार्थ स्वरूप देखने में समर्थ होता है । उसकी एकाग्र सजगता अभ्यन्तर में प्रतिपल उठते हुए विचारों, उद्वेगों और भावनाओं को भांप लेती है, जिससे मानव के निगूढ़तम तल में छिपे रहस्य उसकी अद्भुत पर्यवेक्षण क्षमता के कारण दृष्टिपथ के सम्मुख बिछ जाते हैं । डॉस्टॉवस्की के लिये किसी आलोचक ने कहा है कि मन की सूक्ष्म प्रक्रियाओं को वह गर्मी और शीत अथवा भूख और प्यास की तरह महसूस करता है । मानवीय अन्तर्व्यापारों का परिचालन करने वाली वे अदृश्य शक्तियां उसके लिये साकार होकर उसके उपन्यासों को आच्छन्न किये हैं, वरन् वे ही उसके उपन्यासों की नायक बन गई हैं, जो वाह्य से अधिक अन्तर्जीवन का दर्शन कराती हैं । मिडल्टन मरे ने डॉस्टॉवस्की पर लिखे अपने समीक्षात्मक ग्रंथ में उसे केवल उपन्यासकार अथवा कथा-शिल्पी ही नहीं माना, वरन् प्रमुख रूप से गूढ़ अन्तर्वृत्तियों का सर्जक और गम्भीर मनोविश्लेषक स्वीकार किया है ।

सन् १९४६ में गोगोल की पुस्तक 'दि क्लोक' (The Cloak) से प्रभावित डॉस्टॉवस्की की सर्वप्रथम कृति 'पुअर फॉक' (Poor Folk) जब प्रकाशित हुई तो साहित्य-क्षेत्र में हलचल सी मच गई । उसके समकालीन लेखक बेलिंस्की और नेक्रोसोव ने पुस्तक पढ़ते ही घोषणा की 'एक नया गोगोल हमारे यहां पैदा हो गया ।' एक अकिंचन, तुच्छ जनता-सेवी व्यक्ति का आत्म-संघर्ष, जो अभावों और परेशानियों से त्रस्त हो कर अपनी सी ही किसी निर्धन लड़की से पत्र-व्यवहार करके आश्वस्त होता है, किंतु जो अन्त में एक धनिक से विवाह करके उसे धोखा देती है–आदि इस पुस्तक का विषय मोहकता, गहराई और सजग अनुभूति-शीलता से चित्रित हुआ है । यद्यपि इस प्रारम्भिक कृति में अधिक परिपक्वता नहीं है, तो भी लेखक ने जिस विषय को उठाया–वह अपनी समस्त अनुभूति एवं तत्परता

से प्रस्तुत किया। डॉस्टॉवस्की की विलक्षण प्रतिभा की अकस्मात् धूम सी मच गई, किंतु उसके पश्चात् ही जब उसका दूसरा उपन्यास 'दि डबल' (The Double) प्रकाशित हुआ तो उसकी ख्याति पर सांघातिक चोट हुई। इस पुस्तक में मानव-मस्तिष्क की असामान्य चिन्तनाओं और आन्तरिक ऊहापोहों की सुन्दर व्यंजना की गई थी और गोगोल की कलाभिव्यक्ति को नवीन मानवीय संदर्भों से परख कर गंभीरतम रूप दे दिया गया था। अशांत मस्तिष्क की अचेतन स्थिति एवं मूल ग्रंथियां, जो ज्ञान-तन्तुओं के दूषित होने से विकृत हो जाती हैं, भयंकर मानसिक रोगों अथवा विक्षिप्तावस्था को जन्म देती हैं। उक्त उपन्यास में इसी प्रकार के अरूप मानसिक-द्वंद्वों का निदर्शन है, जो शनैः शनैः पागलपन की स्थिति पर आ रहा है। डॉस्टॉवस्की की भाव-प्रवण आत्मा एवं बौद्धिक-चेतना ने अपने नायक की अन्तरंग भावनाओं में आत्मसात् होकर उसके मस्तिष्क की पेंचीदा और रहस्यमयी गुत्थियों को खोलने का प्रयास किया, किंतु तत्कालीन समालोचक और पाठक-वर्ग के क्रूर व्यंगों ने, जिन्होंने कि उसकी अत्यन्त साधारण सी पहली कृति को प्रशंसा के पुल बांध कर आसमान में चढ़ा दिया था, उसे मर्मघाती ठेस पहुंचाई और वह उनसे असहयोग कर बैठा। इस बीच उसने और भी अनेक मनोवैज्ञानिक कहानियां और आख्यान लिखे, जो किसी प्रकार भी साहित्यिकों को अपनी ओर आकृष्ट न कर सके।

सन् १८८८ में रूस में जो क्रांति के बादल मंडरा रहे थे—उससे तत्कालीन सम्राट् निकोलस प्रथम इतना भयभीत हुआ कि पेट्राशेवस्की के तत्त्वावधान में पनपने वाले समाजवादी दल को, जिसका कि एक सदस्य डॉस्टॉवस्की भी था, बन्दी बना लिया गया और एक लम्बे कोर्ट-मार्शल के पश्चात् उनमें से कई को मृत्यु-दण्ड दिया गया। २१ दिसम्बर, सन् १८४९ के प्रातः उन्हें बध-यंत्र के पास लाया गया, फांसी देने की सभी तैयारी हो गयी थी, ऐन मौके पर उन्हें छोड़ने का हुक्म आया। डॉस्टॉवस्की को प्राणदण्ड के बदले साइबेरिया में चार वर्ष तक निर्वासन और कठोर परिश्रम का दण्ड मिला। ओमस्क की जेल में, जिसका कि उसने 'हाउस ऑफ डेथ' में सजीव चित्र खींचा है, इन चार वर्षों को उसने व्यतीत किया, किंतु इन दुर्दम्य क्लेशों और यन्त्रणाओं ने उसके स्वास्थ्य पर असर करते हुए भी उसके मस्तिष्क को कुंठित और एकान्त-साधना को नष्ट नहीं किया। जीवन की भीषण परिस्थितियों ने उसे मानव-विकास के सौंदर्यमूलक पथ पर अग्रसर किया और उसकी परवर्त्ती रचनाएं आन्तरिक सौंदर्य-बोध से दीप्त हो उठीं।

सन् १८५४ में उस पर से कठोर नियंत्रण तो हटा लिया गया, किंतु नौ वर्ष तक उसे साइबेरिया में ही रहना पड़ा और वहां से सन् १८५९ में उसे विनिर्मुक्त किया गया। सभ्य जीवन में प्रवेश करते ही उसने अपनी महान् कृति 'दि हाउस ऑफ डेथ' (The House of Death) लिखी, जिसमें जेल-जीवन के कटु-सत्यों का उद्‌घाटन किया गया। इसका कथानक हृदय और मस्तिष्क को चीरता हुआ आगे बढ़ता है और लेखक की अन्तर्भेदी दृष्टि तथ्यों के भीतर, बहुत भीतर रमकर मस्तिष्क के अज्ञात स्थलों और जीवन-संघर्ष के असंख्य पहलुओं के रहस्यात्मक सत्य का पर्दाफ़ाश करती है, जहां अन्धकार-तत्त्व विच्छिन्न होकर जीवन के आर-पार झांक लेने की सामर्थ्य प्रदान करता है। आन्तरिक-संघर्ष के हेय-उपादेय एवं ग्राह्य-अग्राह्य रूपों की सामूहिक व्याख्या करके आत्म-यंत्रणा के कठोर संघातों को अतिवादी छोर तक पहुंचाया गया है। कहना न होगा कि इस ग्रंथ में डॉस्टॉवस्की की मानसिक-शक्तियों का पूर्ण विकास हुआ है, जिससे वह शीघ्र ही साहित्य-क्षेत्र में बहुत ऊंचा उठ गया।

सन् १८६६ में प्रकाशित डॉस्टॉवस्की की सर्वश्रेष्ठ कृति 'क्राइम एंड पनिशमेंट' (Crime and Punishment) में उसकी विराट् सृजन-सामर्थ्य के दर्शन हुए, जिसमें मानवीय गुप्त-शक्तियों और उसके व्यक्त-अव्यक्त मूलाधारों का मनोवैज्ञानिक निरूपण किया गया। रूसी-साहित्य में मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से लिखा हुआ आज तक ऐसा अन्यतम ग्रंथ कभी प्रकाशित न हुआ था। इस उपन्यास में एक ऐसे निर्धन व्यक्ति रास्कोलनिकोव के अन्तर्द्वन्द्वों एवं मानसिक ऊहापोहों का चित्रण है, जो घोर मस्तिष्कीय अव्यवस्था, अशान्ति और अज्ञात दानवी-शक्ति की प्रेरणा से एक धनी विधवा का वध कर देता है और इस दुष्कृत्य के पश्चात् उसके अन्तर को मथने वाला आशा-निराशा, भय-दुस्साहस और सुख-दुःख का प्रबल विस्फूर्जन, जो न केवल उसके अनुभूत तथ्यों को अमर तूलिका से अंकित गहरी रेखाओं द्वारा व्यक्त करता है, वरन् अन्त में असह्य यंत्रणा और भीतरी छटपटाहट को कम करने के लिये पुलिस के सामने उसका आत्म-समर्पण, साथ ही अन्य गौण पात्र—जैसे मार्मेलादोव परिवार और ईमानदार पुलिस इन्सेपेक्टर राजुमिखिन तथा सेंट पीटर्सबर्ग नगर में उठता हुआ ज़हरीला धुआं—सभी मानों अत्यन्त सजीवता से चित्रित हुआ है और अपने मेधावी शिल्पी की विदग्धता एवं उन्मुख-चेतना का परिचायक है। रास्कोलनिकोव का सोनिया वेश्या के सम्मुख घुटने टेक देना और यह कहना **"मैं तुम्हारे सामने नहीं झुक रहा हूं, वरन् मनुष्य के संघर्षों और कष्टों के समक्ष नत हूं"** और भी लेखक की उद्‌बुद्ध बौद्धिक-

अभिधा का सामाधान कराता है। डॉस्टॉवस्की के स्वभाव की यह सहज सीमा है कि मनोभाव-ज्ञापन के व्यावहारिक-प्रयोगों एवं मानव-प्रकृति के अस्वस्थ, अस्वाभाविक तन्तुओं में घुसने की उसने असाधारण चेष्टा की है और उसका यह विश्लेषणात्मक प्रयास विश्व-साहित्य में बेजोड़ है।

उसकी परिवर्त्ती कृतियों में यह बौद्धिक-वार्द्धक्य और भी सघन होकर छाता गया है और उसकी आन्तरिक कचोट अनुभूत-तीक्ष्णता में परिणत होकर अधिकाधिक तीव्र होकर व्यक्त हुई है। उसके दूसरे प्रसिद्ध उपन्यास 'दि ईडियट' (The Idiot) में स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार के मानसिक-द्वंद्व, विद्रूप और भीषण अहं के विस्फोट के सबल, क्रांतिमय अंकुर प्रस्फुटित हुए हैं, जिसमें एक मिश्किन नामक पढ़े-लिखे मूर्ख के मानसिक-असंतुलन, मति-विभ्रम और स्नावयिक-विकृतियों का विभिन्न दृष्टिकोणों से विश्लेषण किया गया है। इस व्यक्ति में मानसिक-शैथिल्य और आत्मिक-दुर्बलता होने के कारण सरलता और सद्भावना की मात्रा इतनी बढ़ गई है कि वह चोर, बदमाश, गुंडों और दुश्चरित्र व्यक्तियों के गिरोह से साफ़ बच निकलता है, यहां तक कि वे सभी उसके ओजस्वी व्यक्तित्त्व से प्रभावित हो उठते हैं। वह सब से दिल खोल कर मिलता है और उसकी उच्चाशयता एवं सद्व्यवहार, जो मस्तिष्क की विरुद्ध प्रक्रियाओं के साथ साथ उसमें आत्म-प्रतीति और समष्टि-चेतना जगाते हैं, उसे मानव-मस्तिष्क का अन्वेषक बना देते हैं। किसी भी क्रम का निर्णय करने के लिये जो मस्तिष्क की प्रच्छन्न क्रियाएं हैं, वे पहले स्थूल-संस्कारों को भीतर ले जाती हैं और पुनः भीतर से बाहर। उनमें ग्राह्य कौन है और अग्राह्य कौन—इसका निर्णय सूक्ष्म बौद्धिक-क्रियाओं से होता है, जिसको इस व्यक्ति ने अपनी पूर्ण पकड़ में कर लिया है। डॉस्टॉवस्की ने इस चरित्र को अद्भुत क्षमता से चित्रित किया है, जिसमें उसने अपनी अतिशय कोमलता और सौंदर्य-चेता आत्मा की तरल स्निग्धता के मार्दव से ऊबकर अनगढ़ और परुष का समावेश भी किया है। उसके अपने 'स्व' की वह वास्तविक तस्वीर नहीं है, वरन् कल्पित प्रतिरूप है, जो वह बनने की इच्छा रखता है। डॉस्टॉवस्की की स्वभावगत त्रुटियों के बावजूद जितनी अच्छाइयां हैं, वह इस पात्र में विचित्र रूप से गुम्फित हो गयी हैं।

मिश्किन के ठीक विपरीत रोगोज़िन व्यापारी है, जो उच्छृंखलता और दुर्दम्य वासनाओं का आगार है और अपनी प्रेयसी नास्टासिया का इस आधार पर बध कर देता है, क्योंकि वह उसके प्रेम को पूर्णतया जीतने में अक्षम है। इस दुर्दान्त घटना के पश्चात् वह मनहूस रात्रि, जो नास्टासिया को मारने के बाद बीतती है,

बड़ी ही करुण और वीभत्स लगती है। रात्रि की नीरव सघनता और दिल को दहला देने वाली निस्तब्धता में आत्मा की दर्दनाक चीत्कार और मस्तिष्क में उठने वाले तूफान का भीषण अट्टहास सुन पड़ता है। अन्य गौण पात्र भी लेखक के उच्छ्वसित आवेगों एवं मनोवैज्ञानिक गूढ़ता के फलस्वरूप अत्यन्त रोचक बन पड़े हैं—जैसे जनरल की पत्नी मैडेम एपेंचिन का चित्र, जो दो चार खरौंचों से ही सजीव होकर उसके आन्तरिक कुहुक और पुलक को व्यक्त करता है।

'दि ईडियट' के पश्चात् डॉस्टॉवस्की के चौथे उपन्यास 'दि डेविल्स' (The Devils) में स्वच्छन्द मनोवृत्ति के उदण्ड नवयुवकों का सन्मार्ग से विचलित होकर कुपथ के अनुसरण करने की प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराया गया है। आतंकवाद (Nihilism) का बढ़ता हुआ प्रभाव किस प्रकार वैयक्तिक स्वतन्त्रता और निरीह-आत्माओं को रौंदता हुआ आगे बढ़ता है तथा प्रतिगामी लोगों में किस प्रकार की आत्मघाती पराजय-भावना को उकसाता है—यह अत्यन्त सजीवता से वर्णित है। पुस्तक में आरम्भ से अन्त तक मानव की कुत्साओ, उसके बलिष्ट दर्प का नग्न रूप, उग्र मानसिक विकार, उसके वीभत्स कृत्यों ओर दूषित मनोवृत्तियों का चित्रण है, जो शोषण, उत्पीड़न और निर्बल आत्माओं को कुचल कर पनपने वाली विरुद्ध शक्तियां हैं और अमानुषिकता से पुष्ट हो कर डंडे के जोर पर अपना आतंक प्रसारित करती हैं। इन उद्दंड व्यक्तियों के गिरोह में एक ऐसा व्यक्ति भी है, जिसमें सहसा उग्र भावनाएं प्रबल हो उठती हैं और वह अपनी प्रचंड शक्ति से सभी को दमित करना चाहता है। उनमें से एक दूसरा व्यक्ति मानव-जीवन को नगण्य समझता हुआ उन अमानुषिक तत्वों को अपने में जगाना चाहता है, जिनसे वह अपनी हत्या के लिये भी न केवल भय-ग्रस्त होकर, प्रत्युत् भय के उपशमन के लिये सन्नद्ध रहता है। इस गिरोह का नायक वेर्खोविन्स्की अनाचार और दुर्व्यवस्था फैलाकर अपने समस्त साथियों को यह सीख देता है कि सारे रूस मे इसी प्रकार के अनेक गुट्ट हैं, जिनसे बड़ी से बड़ी शक्तियां भी आतंकित रहती हैं।

इस उपन्यास में कुटिल और विनाशकारी शक्तियों का सशक्त चित्रण होते हुए भी लेखक की कल्पना-शक्ति में कुछ शैथिल्य दृष्टिगत होता है। निहिलिज्म की पाशविक लिप्साओं को दर्शाने के मोह मे लेखक मानव-मस्तिष्क के निकृष्ट पहलुओं को अत्युक्तिपूर्ण ढंग से उभाड़ कर सामने रखता है और जीवन के स्वाभाविक-क्रम को उलटकर मानवीय-पशुता को इस ढंग से निरावरण करता है कि सत्यता का अंश कम, असंतोष की प्रचण्ड अग्नि अधिक धधकती नज़र आती है। इस

उपन्यास का कथानक हल्का, वाक्य असम्बद्ध और चरित्र-चित्रण अस्वाभाविक एवं एकांगी है। घटना-चक्रों का आयोजन आवश्यकता से अधिक है और पात्रों की इतनी भीड़-भाड़ इकट्ठी हो गई है कि लेखक की प्रतिभा दब सी गई है और उसकी असाधारण सूझ-बूझ, जिसका परिचय उसने अपनी पूर्ववर्त्ती कृतियों में दिया है, कुंठित सी जान पड़ती है।

'दि डेविल्स' के पश्चात् डॉस्टॉवस्की ने अपनी शक्तियों की दिशा बदल दी और लगभग सात-आठ वर्षों तक उसका झुकाव पत्रकारिता की ओर रहा। उसने 'एक लेखक की डायरी' (Diary of a Writer) पुस्तकाकार लिखी है, जिसमें सामयिक घटनाओं की समीक्षा की गई है। तत्पश्चात् वह अपने एक अधूरे उपन्यास 'दि ब्रदर्स कार्माजोव' (The Brothers Karamazov) को, जो कि आकार में उसकी सबसे बड़ी कृति है, लिखने में व्यस्त हुआ, किन्तु पूर्ण न कर सका और बीच में ही उसकी मृत्यु हो गई। इस उपन्यास में दिमित्री, इवान और आल्योश नामक तीन भाइयों की कथा है, जिनका पिता दुरात्मा, व्यभिचारी और कुटिल-हृदय का है। पिता के प्रच्छन्न संस्कार तीनों भाइयों में होने के कारण उनमें दुष्प्रवृत्ति एवं सद्वृत्तियो का विचित्र समन्वय है। सबसे बड़ा भाई झक्की, असंयमी और दुश्चरित्र है, जो अपनी काम-वासनाओं को आपत्तियों में भुला देने की चेष्टा करता है; दूसरा भाई घोर भौतिकवादी है, जिसकी आत्म-यंत्रणाएं इस उपन्यास में खूब विस्तार से वर्णित की गई है और तीसरा भाई आल्योश मानवता का प्रेमी , साथ ही ईश्वर और मनुष्य की शक्ति में पूर्ण आस्था रखने वाला है। वह किसी मठ में प्रश्रय पाने का इच्छुक है, किन्तु उसका पिता उसे संसार के सुख-दुःखों के आस्वाद की प्रेरणा देता है। फलस्वरूप आल्योश भौतिक आकर्षणों की मृगमरीचिका से लुब्ध दुनियां की रंगीनियों और ऐश्वर्योपभोग में लिप्त हो जाता है, क्योंकि अपने जन्मजात संस्कारों के कारण वह भी भयानक कामी है और इस प्रकार शनैः शनैः वह पतनोन्मुख हो जाता है। इस पुस्तक का नाम 'एक महान् पापी का इतिहास' (The History of a Great Sinner) रखा जाने वाला था और इस महान् पाप का नायक आल्योश को ही होना था, किन्तु इस अन्तिम स्थिति पर आने के पूर्व ही डॉस्टॉवस्की की मृत्यु हो गई और उसका मन्तव्य अधूरा रह गया।

डॉस्टॉवस्की ने अचेतन अथवा अवचेतन मन की स्थापना करके मानव-मस्तिष्क के गूढ़ स्तरों में झांकने का प्रयास किया और आंतरिक विकृतियों एवं

विरुद्ध प्रक्रियाओं की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करके उन्हें स्थूल प्रतीकों द्वारा स्पष्ट किया। शरच्चन्द्र में डॉस्टॉवस्की की सी गहरी पैठ नहीं है, तो भी उन्होंने मानसिक द्वंद्वों और आंतरिक सूक्ष्म-स्पन्दनों को परीक्षणात्मक प्रयोगों से सिद्ध किया है और स्थूल-सूक्ष्म एवं विकसित-अविकसित मनोभावों को अद्‌भुत क्षमता से दर्शाया है।

जीवन विराट् है और मनुष्य अपने चारों ओर के बिखरे-अनुभव-कणों को बटोर कर रखने का इच्छुक। उसमें जिज्ञासा है और आत्माभिव्यक्ति की प्रबल कांक्षा। सच्चा साहित्यकार घटना-संकुल में झांककर जीवन-रहस्यों को आसानी से पकड़ लेता है। डॉस्टॉवस्की ने जिस प्रकार अर्द्ध-विक्षिप्त, असंतुलित और विकारी मस्तिष्कों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया, ठीक उसी प्रकार शरच्चन्द्र ने भी जागरूक रहकर जीवन की गहराई को आंका और तत्कालीन बंगाल की प्राचीन परिपाटियों के विरुद्ध अपनी क्रियात्मक लेखनी और निजी अनुभवों के बल पर विशेष टाइप के स्त्री-पुरुषों के अन्तर्भाव, राग-द्वेष के विविध मर्मस्पर्शी पहलू, आंतरिक-वैषम्य, विरोध, छलना, पतन आदि का अंतर्दर्शन कराया। उन्हीं के शब्दों में, **"मनुष्य को यदि भली-भांति खोजा जाय तो उसके प्रच्छन्न प्रभेदों को प्रत्यक्ष किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में उसकी स्वभावज त्रुटियों से समवेदना प्रकट किए बिना भला कोई कैसे रह सकता है।"**

दुनियां से कुछ ऊपर जहां आदर्श जीवन से वास्तविक जीवन का अभिनय अधिक यथार्थ है, रहस्यमय, विराट् और विशिष्ट घटनाओं के अगणित दृश्य अंधकार में जुगनुओं से कौंध जाते हैं और मानवीय-कुण्ठाओं, अतृप्त आकांक्षाओं और वैयक्तिक-अवैयक्तिक दिवा-स्वप्नों को साकार कर जाते हैं। प्रेम और वासना का द्वन्द्व ठीक ठीक समझा तो नहीं जा सकता, किन्तु अनवरत डूबा हुआ अविश्वास, भीतरी दंश, अकथ्य, घृणित, अचिन्त्य मनोव्यापार, उत्तेजनाएं, अस्पष्ट संकेत, अंतरतम में गुंथ गए अभिन्नतम निगूढ़ तत्त्व कभी कभी एक विचित्र कंपकंपी अथवा विवश और अनियंत्रित दबाव से उभर पड़ते हैं। स्त्री-प्रकृति और पुरुष-प्रकृति में जो वैषम्य और वैपरीत्य है, उसके फलस्वरूप अनेक चेष्टित व्यापारों की व्यक्ति होती है और न जाने उनके अंतर में छिपे कितने आग्रह, कितने निषेध, कितने श्लील-अश्लील भाव व्यक्त हो उठते हैं। शरच्चन्द्र के उपन्यासों के अधिकांश नारी और पुरुष-पात्रों का चित्रण इन्हीं अतृप्त मानवीय वासनाओं को दर्शाने के लिये हुआ है। 'श्रीकांत' की अभया, 'चरित्रहीन' की किरणमयी और 'शेष-प्रश्न' की कमल जीवन की असीमित लिप्साओं को लिये हुए मन की सहज अविजेय गति को बांधकर रखने में असमर्थ हैं।

निराशा मस्तिष्कीय विकृति को जन्म देती है और यौवन का अंधा उन्माद वाह्य एवं आंतरिक जीवन में विसंवादी स्वरों के प्रलाप से अंतः-शक्ति का ह्रास करता चलता है। विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष, सामाजिक व्यवस्था के कारण पुरातन आदर्शों के प्रति विस्फोटक विद्रोह और प्राणघातक लिप्साओं के दमन की चाह शरच्चन्द्र की नारियों को उच्छृंखल बना देती हैं और उनकी दुर्दम्य वासनायें विस्तार से सिमट कर कभी उफन पड़ती हैं और कभी भीतर दब जाती हैं। 'चरित्र-हीन' की किरणमयी का विवाह यद्यपि हारान से हुआ है, तथापि उसकी असंगत इच्छाएं इतनी उदंड हो गई हैं कि वह अपने पति की रुग्णावस्था में ही डॉक्टर अनंग के प्रेम में फंसकर अपने को पतित कर लेती है। तत्पश्चात् वह दिवाकर को लेकर वर्मा भाग जाती है और उसे अपनी ऐन्द्रिय-वासनाओं का शिकार बनाती है, किन्तु अन्त में उपेन्द्र के सान्निध्य में आकर उसकी समस्त वासनाएं उसी ओर खिच जाती हैं और एक विचित्र से ऊहापोह एवं भीतरी कचोट को सहते सहते वह विक्षिप्त हो जाती है।

'श्रीकान्त' उपन्यास में राजलक्ष्मी, अभया और कमलता सभी श्रीकान्त को प्रेम करती हैं और उनमें आसक्ति-अनासक्ति एवं वासनात्मक-द्वंद्व दृष्टिगत होता है। 'शेष-प्रश्न' की कमल कुछ ऐसे असाधारण तत्वों से निर्मित हुई है कि उसमें विचित्र प्रेमोन्माद होते हुए भी उपरामता है और जीवन की एकाग्र-अनेकाग्र वृत्तियों के मध्य भी उसमें अविचलित साहसिकता के दर्शन होते हैं। सामाजिक-विलगाव, रूढ़ि-बद्धता एवं आचार-विचार के बोझिल नियमों से दबी उसकी बहिर्मुखी भावुकता क्रान्ति करती चलती है और भीतर की प्रवहमान प्रेरणा अंतः-शक्ति के सहारे जीवन के अप्रतिहत वेग के साथ डूबती-उतराती क्षण-प्रतिक्षण उठती गिरती वासनात्मक-ऊर्मियों पर थिरकती है। अपने आंतरिक-विश्वासों और अकाट्य-तर्कों से कमल यह सिद्ध कर देना चाहती है कि रूढ़ियां जो किसी ज़माने में बुद्धिसंगत थीं—अब नवीन परिस्थितियों में असंगत हो गई हैं। अतीत अन्ध विश्वासों और आज के मानव की सहजात वृत्तियों के बीच जो दुर्भेद्य प्राचीर खड़ी हो गई है—उसे सुदृढ़ बनाने के लिये आत्म-सजगता और निर्भीक बुद्धि अपेक्षित है, यही कारण है कि वह अपने ईसाई पति की मृत्यु के पश्चात् पुनर्विवाह के निषेधमूलक नियमों को विच्छिन्न करती हुई शिवनाथ को पतिरूप में वरण कर लेती है और विवाहित जीवन में ही अपनी घनिष्ठता विलायत से लौटे हुए अजित नाम के एक नवयुवक से बढ़ा लेती है, जिसका विवाह-संबंध आशु बाबू की एकमात्र पुत्री मनोरमा से निश्चित् हो चुका है। अन्त में घटनाओं का रुख कुछ ऐसा होता है कि कमल के पति शिवनाथ

का मनोरमा से अनुचित संबंध हो जाता है और कमल कदाचित् प्रतिकार-भावना से प्रेरित होकर अथवा अपनी ही उच्छंखलता के वशीभूत अजित की जीवन-संगिनी बनना स्वीकार कर लेती है। कर्म के कंटीले-पथ पर वह जिस प्रशस्त दिशा की ओर उन्मुख होती है, वहां बंधनों का अन्त और निर्बाध, विस्तृत जीवन फैला है। विस्मय की पुलक, उत्सर्गमयी प्रेरणा और दुस्सह उल्लास को लिए वह दुहरी सजगता से आगे बढ़ती है और अपना जीवन दूसरों को देकर भी वह उसमें रमती नहीं, वरन् पृथक् रहती है। न जाने कितने मनोव्यापारों और द्विधाओं से वह घिरी है, किन्तु उसकी सतेज अनुभूतियां भीतर ही भीतर सिमटी हुई रागतत्त्व से पृथक् होकर स्वयमेव तटस्थ हो गई है और उपन्यास के अंत में तो उसका औत्सुक्य और कौतूहल निर्वेद-चिंतन की कटुता में परिणत होकर और भी विचित्र रूप धारण कर गया है।

न केवल शरच्चन्द्र के उपर्युक्त प्रमुख नारी पात्र ही असाधारण हैं, प्रत्युत् 'पथेर दावी' की सुमित्रा, 'वामुनेर मेये' (ब्राह्मण की बेटी) की संध्या, 'देवदास' की पार्वती, 'श्रीकान्त' की राजलक्ष्मी और 'शेष-प्रश्न' की मनोरमा आदि भी सबल व्यक्तित्व की विचित्र नारियां हैं, जिनके अणु-परमाणुओं में निरन्तर अविश्वास की चिनगारियां सुलगा करती हैं। 'वामुनेर मेये' में संध्या के अपने विवाह का आकुल आग्रह एक बार ठुकरा देने पर जब पुनः अरुण उसे अपनी स्वीकृति देना चाहता है तो उसके मर्म पर चोट करती हुई वह उसकी उपेक्षा करती है और अपने पिता के साथ वृन्दाबन चली जाती है। निम्न वार्त्तालाप का तीखा व्यंग देखिये——

अरुण अवाक् होकर बोला, "संध्या ! तुम भी जा रही हो ? मैं उस दिन अपना चित्त स्थिर न कर पाया था, किन्तु मैंने निश्चय किया है कि तुम्हारी बात में ही राजी हो जाऊंगा।"

संध्या बोली, "उस दिन मेरा भी चित्त स्थिर न था अरुण जी, किन्तु आज मेरा चित्त स्थिर हो गया है। मैं पिताजी के साथ यही बात जानने जा रही हूं कि औरत के लिये शादी करने के अतिरिक्त कोई काम है भी कि नहीं ? इसलिये क्षमा करना, हमें देर हो रही है, हम चलें।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि शरच्चन्द्र ने नारी के भीतर के उपद्रव को पढ़ा है, उसके अंतर में छिपे सत्य को अवगत कर लिया है। जीवन की एकस्वरता से ऊबकर जो अकथ्य, अवर्णनीय खिचाव, विलोड़न और द्वन्द्व कमजोर मस्तिष्कों को मथा करता है—वही इनके नारी-पात्रों की सबल प्रेरणा और दर्दभरी हूक में परिणत होकर फूट पड़ा है।

इनके उपन्यासों के अधिकांश पुरुष-पात्र पर-स्त्री-कातर, उच्छृंखल, लक्ष्यहीन और सामाजिक विधि-निषेधों से निर्लिप्त होते हैं। श्रीकान्त, देवदास, सतीश, इन्द्रनाथ, सव्यसाची, अरुण और शिवनाथ सभी प्रणय के मूक विस्फोट को थामे अजीब उलझन और परेशानी में पड़े हैं। प्रेम उनके लिये महज़ भुलावा और प्रवंचना है, भीतर की तड़प, जो विद्युत् की कौंध सी चिलक कर छिप जाती है। वे हरवक्त हल्का सा दर्द लिये एक सुखमय जुगुप्सा का अनुभव करते हैं। उनके अंतरतम में जो हलचल, जो संघर्ष और कचोटन सी होती है, वह निरन्तर चोट करती हुई उन्हें क्रांति की सतह पर खींचती है, किन्तु अनेक बार जीवन की ऊब और दुराग्रह उन्हें आसपास छाए कोलाहल से ऊपर उठाकर पौरुषहीन बना देती है। प्रारंभ म उनके प्राणों में जोश है, अदम्य उत्साह , जो उनमें प्रणय-कौतूहल जगाता है, किन्तु अन्त में वही गहरी खड्ड। नारी को अत्यन्त निकट पाकर उनका उत्साह मानों शिथिल पड़ जाता है और उसकी सहज उच्छृंखलता और अलंघ्य दूरी उनके हृदयों में एक अनिश्चित् आशंका और झिझक भर देती है।

शरच्चन्द्र के उपन्यासों में नारी और पुरुष का परस्पर प्रेम मूलतः एक समस्या है, जिसमें न जाने कितने सूत्र, सूक्ष्म-तरल तार इस समस्या में गुंथे हुए हैं। मूल समस्या सामञ्जस्य की है—दोनों के पारस्परिक आकर्षण में जो खिचाव की बेबसी है, वही उन्हें छोटी छोटी तात्कालिक उलझनों की ओर ढकेलती है। प्रायः उनके सभी उपन्यासों में नारी और पुरुष का रागात्मक द्रवण मनोलोक के सुस्थिर व्यामोह में परिणत हो गया है और अन्त में उनका आकर्षण ही विकर्षण बनकर निराकार आक्रोश और अन्तर्वियोग की धूमिल छाया बन छा गया है, जहां विस्मरण की चिरन्तन प्रेरणा और अन्तर का करुण क्रन्दन छिपा है।

दुरभिसन्धि

यहां यह लिखना अप्रासंगिक न होगा कि शरच्चन्द्र और डॉस्टॉवस्की दोनों ने ही मानव-विकृतियों का पर्दाफाश करके सामाजिक रूढ़ियों में बंधी चिंताधारा को गहरी ठोकर दी, जिससे चिंतन का रुख ही बदल गया। डॉस्टॉवस्की के उपन्यासों के पात्र प्रायः अस्वस्थ, अशरीरी, विक्षिप्त, मानसिक रोगी, पापी, कामुक और पागल होते हैं। अव्यस्थित मस्तिष्क और अतृप्त ऐन्द्रिय वासनाओं का विश्लेषण करके उसने मानव की प्रच्छन्न वृत्तियों को अपने उपन्यासों में इस ढंग से उद्घाटित करके दर्शाया कि तत्कालीन रूसी-साहित्य में एक क्रांति सी मच गई। कुत्सित यथार्थ को चित्रित करने के लिये उसने जीवन-समष्टि में झांक कर अपनी सबसे अधिक हमदर्दी पतितों और आत्म-प्रपीड़ितों के साथ व्यक्त की और उन्हें

ही अपने उपन्यासों का विषय बनाया। जीवन की विभीषिकाओं को झेलकर, चतुर्दिक् हहराते वैफल्य, कुण्ठा और निराशाओं का शिकार बनकर, भयंकर परिस्थितियों और घृणित परवशता में पड़कर उसने अपने संशय, ग्लानि और दलित मानसिक भावों को उसी वर्ग के लोगों की कुण्ठाओं और मस्तिष्कीय-विकृतियों के रूप में दर्शित किया है।

मनुष्य की विविध मनोवृत्तिया घृणा, क्रोध, पागलपन, हिंसा और उन्माद मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उस असंतुलित मस्तिष्क की विकृत चेष्टाएं हैं, जिसका अंतरतम उद्वेलित होकर अपने चेतना-तंतुओं पर नियंत्रण खो चुका होता है अथवा अपने भीतरी उद्दण्ड उद्वेगों के समक्ष नतमुख हो जाता है। ये उलझी हुई वक्र चेष्टाएं और जागरूक, प्रतिशोधक मनोभाव किस प्रकार मनुष्य की स्वाभाविक-वृत्तियों और जीवन-व्यापारों का प्रत्यावर्तन करते है—इसका डॉस्टॉवस्की ने अपनी आंतरिक शक्तियों से संश्लेषण करके प्रयोग सुझाया है।

इस प्रकार मानव-चरित्र के गुप्ततम रहस्यों और अधःपतित समाज का चित्रण करने से डॉस्टॉवस्की पर साहित्य में गन्दगी फैलाने का आक्षेप लगाया गया। शरच्चन्द्र के उपन्यासों में भी अधिकतर वेश्याओं, दुश्चरित्र विधवाओं और निर्लज्ज स्त्रियों के अंतर्द्वन्द्व के सूक्ष्मांकन का ही प्रयास है। उनके पुरुष-पात्र भी प्रायः आवारा, लफंगे, बिगड़े हुए रईस और चंचल मनोवृत्ति के व्यक्ति होते है। कहना न होगा कि जिस प्रकार रूस में डॉस्टॉवस्की पर परम्परागत साहित्यिक-रूढ़ियों को छिन्न-भिन्न करके अपना एक नया पथ बनाकर चलने का लांच्छन लगाया गया, उसी प्रकार भारत में तात्कालिक बंगाली समाज ने भी शरच्चन्द्र को उनकी कृतियों के लिए बुरा-भला कहा तथा एकनिष्ठ प्रेम की मर्यादा को भंग करके असती नारियों को गरिमान्वित करने का दोष लगाया। किन्तु उनके मत से महान् से महान् पापी और हिंसक के जीवनगत सत्य को पकड़ना और भी कठिन एवं दायित्त्वपूर्ण है। अल्प दृष्टि वाले मनुष्य के लिये जो हेय है, वही कलाकार की व्यापक दृष्टि में उपादेय हो जाता है। शरच्चन्द्र लिखते हैं :—

"समाज नामक वस्तु को मैं मानता हूं, किन्तु देवता करके नहीं। पुरुष तथा स्त्रियों के बहुत दिनों के पुंजीभूत मिथ्या कुसंस्कार तथा उपद्रव इसमें सम्मिलित हैं।...... पुरुष के लिये उतनी कठिनाइयां नहीं है। उसके लिए धोखा देने का मार्ग खुला हुआ है, किन्तु जिसके लिये किसी भी तरह छुटकारे का मार्ग खुला नहीं है—वह है स्त्री। एकनिष्ठ प्रेम की मर्यादा को इस युग का साहित्यिक भी मानता है, इसके प्रति उसकी श्रद्धा तथा सम्मान की कोई सीमा नहीं है, किन्तु जिस बात को वह सह नहीं सकता—वह है उसके नाम से धोखा। उसे ऐसा प्रतीत होता

हूं कि इसी धोखे के रास्ते से भावी संतानों की आत्मा में असत्य संक्रामित होता है और इसी के फलस्वरूप वे कायर, ढोंगी, निष्ठुर होकर उत्पन्न होते हैं। सुविधा तथा प्रयोजन के तकाजे को मानकर कदाचित् लोग अनेकों असत्य को सत्य करके चलाते हैं, किन्तु केवल इसी बहाने से जातीय साहित्य को कलुषित करने की तरह पाप बहुत कम है। सामयिक आवश्यकता चाहे कुछ भी हो साहित्य को इस संकुचित दायरे से मुक्ति देनी ही पड़ेगी।"

वस्तुतः कलाकार मानव के गुण-दोषों का प्रतिनिधित्व करता हुआ विश्व-जीवन का समाधान लेकर चलता है। कल्याण की साधना में प्रवृत्त होने पर सद्-असद् की परिभाषा भी बदल जाती है। जिनका अंतरंग जीवन साधन-संपन्न और विशाल है—वह अखंड विश्वास में बंधा सम्भाव्य सीमा से पार झांकने की क्षमता रखता है। शारलोट ब्रोण्टे के 'जेन आयर' (Jane Eyre) उपन्यास में कथित निम्न उद्गार शरच्चन्द्र और डॉस्टॉवस्की की मूल-भावनाओं को सुन्दर ढंग से व्यक्त करते हैं :—

"मैं अब आपसे आचार-विचार, परम्परागत-रूढ़ियों अथवा हाड़-मांस के शरीर के माध्यम से नहीं बोल रही हूं, वरन् मेरी आत्मा आपकी आत्मा को संबोधन कर रही है, ठीक इस प्रकार मानों दोनों की आत्माएं समाधिस्थ होकर प्रभु के चरणों में खड़ी हैं, दोनों समान—जैसे कि हम हैं।"

("I am not talking to you now through the medium of custom, conventionalities, or even of mortal flesh; it is my spirit that addresses your spirit, just as if both had passed through the grave, and we stood at God's feet, equal—as we are!")

सच्चे साहित्यकार के लिये आदर्श-अनादर्श का विभेद वांच्छनीय नहीं है। यथार्थ की साधना के लिये उसे स्थूल प्रतीक चाहिए। वह अपने जीवन की समूची सिद्धि वृहत्तर मानव-प्रतीकों में प्रतिफलित करता हुआ व्यापक सामंजस्य चाहता है। उसकी आत्मा हमारी आत्मा से मानों पुकार पुकार कर कहती है, "मनुष्य के प्रेक्षक मत बनो। विनत प्रेम वह दुर्दम्य शक्ति है, जो हिंसक-भावनाओं से कहीं अधिक बढ़ कर है। सक्रिय सद्भाव ही परस्पर विश्वास जगाता है। मानव से प्रेम करो और उनके कुकृत्यों से मत डरो, वरन् पापी मनुष्य से भी घृणा मत करो। प्रभु के सभी जीवों से स्नेह करो और यह प्रार्थना करो कि वह तुम में सदाशयता की बृद्धि करे। सरल बालकों और उन्मुक्त पंछियों से सदैव चहकते रहो।"

वाह्य और अंतश्चेतना

शरच्चन्द्र और डॉस्टॉवस्की की संपूर्ण साधना स्वानुभूत तथ्यों के समुचित परिपाक के अनन्तर पार्थिव जीवन के मौलिक परख की वैज्ञानिक परिणति में है।

डॉस्टॉवस्की अपनी कला द्वारा व्यष्टि-व्यक्तित्व में समष्टि का सामंजस्य दर्शाता है और शरच्चन्द्र की कलामय स्वर-लहरी उच्छिष्ट जीवन-प्रयोगों को आत्मसात् करके उसके मूर्त्त-अमूर्त्त सत्य को झंकृत कर देने की क्षमता रखती है। इसमें संदेह नहीं कि दोनों ही कलाविद् यथार्थ जीवन की विरूपता को कला के प्राण-रूप में प्रतिष्ठित करके परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार आज के क्रियाशील, कर्मरत जीवन के विशिष्ट पहलुओं का निदर्शन कराते हैं।

डॉस्टॉवस्की ने अपने जीवन में जो कुछ देखा-सुना अथवा जो कुछ उस पर बीती, उसके हृदय में जो टीस और क्रांति की लहरें लहराईं, वह अनुपम शक्ति से अपने उपन्यासों में उभारकर उसने एक नए युग का निर्माण किया। उसके द्वारा गढ़े गए प्लॉट, चरित्र-चित्रण, संलाप एवं छोटे छोटे दृश्यों में जीवनगत यथार्थ का अंकन हुआ है। उसके उपन्यासों में जागरूक-चेतना और कभी न बुझ सकने वाली अग्नि धधक रही है, जो मानव की कुत्साओं और अंतर्भावों पर अपनी चिनगारियां छिटकाती है। उसके जीवन की कटु अनुभूतियां, आंतरिक महती प्रेरणाओं का ध्वंस, आत्म-व्यामोह–जनित भावनाएं, आकारहीन, असंबद्ध स्मृतियों के मनश्चित्र जो उसके मस्तिष्क पर भार बन कर लद गए थे–वे उसकी प्रगूढ़ अंतः-शक्ति की रगड़ से उपन्यासों में सजीव होकर व्यक्त हो गए। उसके सदृश मानव-अन्तर्लोक के सूक्ष्म रहस्यों का उद्घाटन करनेवाले कलाकार बहुत कम हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि शरच्चन्द्र में भी डॉस्टॉवस्की की भांति मनोवैज्ञानिक-निगूढ़ता के साथ साथ चारित्र्य की अलौकिकता एवं मानव-संघर्ष के द्वैत-द्वन्द्व के वैयक्तिक तथ्य-दर्शन का भव्य प्रयास है। उन्होंने व्यापक दृष्टिकोण को लेकर काल-विशेष के पात्र, भीतरी परिस्थितियों और तत्कालीन एवं सुदूर भविष्य के सामाजिक-आचार और मानवोचित सद्-असद् विकारों का विश्लेषण किया है। 'चरित्रहीन' में किरणमयी का चित्रण नारी की असद् वृत्तियों पर एक कटु, तीव्र व्यंग है। उच्छृंखल, वासनामयी, लक्ष्यहीन और निर्बल चरित्र वाली स्त्रियों को शायद ही इतनी गहराई से किसी ने आंका हो।

जिस प्रकार डॉस्टॉवस्की रूस का युग-निर्देशक कलाकार है, उसी प्रकार शरच्चन्द्र भी भारतीय-साहित्य की निर्बंध परम्परा के सजग प्रहरी हैं। दोनों ने ही जीवन-स्वरों के उतार-चढ़ाव का अनुभव किया है और वे स्वर उनकी आत्मा में प्रविष्ट होकर युगोच्छ्वास की मूर्त्त-अमूर्त्त जिज्ञासाओं और सूक्ष्म-मर्मस्पन्दनों के रूप में उनके महान् कृतित्व में मुखर हो उठे हैं।

चीन का महाकवि लीपो

लिपो

जन्म—ईसवी सन्-७०१

मृत्यु—ईसवी सन्-७६२

न्मस्थान—प्हासी (Pa-hsi), चीन
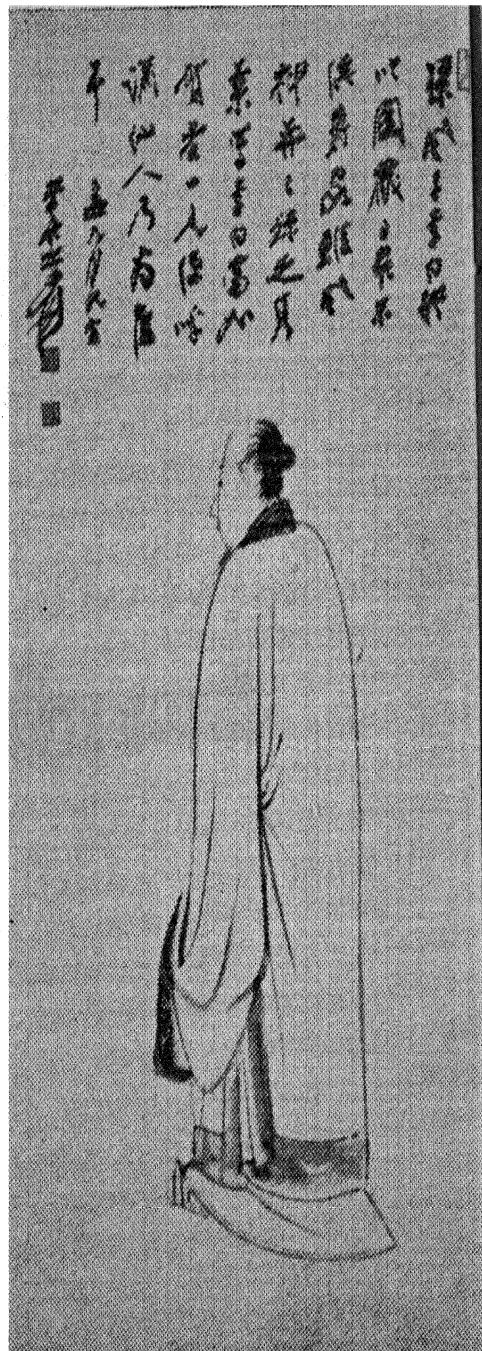
चीन का अतीत बहुत ही गौरवपूर्ण रहा है। कला और साहित्य सभी क्षेत्रों में प्राचीन काल के चीन ने प्रशंसनीय प्रगति की थी। यद्यपि चीनी-साहित्य संस्कृत-साहित्य की भांति तो पुराना नहीं है, तथापि विश्व के वर्तमान जीवित साहित्यों में प्राचीनता की दृष्टि से इसका स्थान सर्वोपरि है। ईसा के ६०० वर्ष पूर्व से ही इसकी धारा अटूट और अक्षुण्ण चली आ रही है।

महाकवि लिपो चीन के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इनके प्रादुर्भाव को तो चीनी काव्यक्षेत्र में एक चमत्कार ही समझना चाहिए। १२०० वर्ष पश्चात् भी इस महाकवि की महत्ता असंदिग्ध और बेजोड़ है।

तांगवंश के शासन काल में, जो चीनी साहित्य एवं सभ्यता का स्वर्णयुग माना जाता है, लिपो का प्रादुर्भाव हुआ था। निःसन्देह यह युग कला एवं साहित्य की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस समय तक चीन में बौद्ध धर्म सर्वत्र फैल चुका था। चीन निवासियों की संस्कृति में बौद्ध आदर्श एवं भावनाएं समाविष्ट हो चुकी थीं, अतएव तांगवंश के समय का साहित्य बौद्ध-आदर्शों के प्रभाव से ओत-प्रोत है। प्रख्यात हान-लिन एकेडमी, जिसमें केवल विद्वान् लोग ही प्रविष्ट हो सकते थे, साहित्यिक प्रगति का मुख्य साधन थी और उसका प्रभाव साहित्य तक ही सीमित नहीं था, वरन् राज्य—व्यवस्था और अनुशासन में भी वह सहयोग देती थी।

तांग शासन काल में काव्य–कला का अत्यधिक विकास हुआ । इस युग का साहित्य और काव्य–कला इतनी उत्कृष्ट थी कि उसका प्रभाव परवर्ती युगों के साहित्य पर भी स्थायी सिद्ध हुआ। तत्कालीन रचनाओं में कितनी सजीवता, कितना भावावेश, कितना रस था—यह इस समय के साहित्य को पढ़ने से ज्ञात होता है । इस युग में लगभग दो हज़ार कवि हुए, जिनकी रचनाओं में काव्यात्मक कला का समावेश प्रचुरता से हुआ। किन्तु इस युग के सबसे प्रमुख कवि लिपो हैं, जिन्होंने अपनी असाधारण बुद्धि एवं विलक्षण प्रतिभा के प्रकाश से समस्त चीनी साहित्य को आलोकित कर दिया । अभी तक चीनी साहित्य के इतिहास में कोई भी ऐसा कवि नहीं हुआ, जो प्रसिद्धि में लिपो की समानता कर सके ।

उच्च-वंशीय होने पर भी लिपो का जन्म एक साधारण परिवार में हुआ था। स्वयं कवि ने तो अपना विस्तृत परिचय कहीं नहीं दिया, किन्तु इनके द्वारा रचित ग्रन्थों में इनके जीवन-वृत्त का विवरण यत्र–तत्र बिखरा हुआ मिलता है । इनकी जन्मतिथि अभी तक अनिश्चित एवं संदिग्ध है । कुछ विद्वानों का मत है कि उनका जन्म सन् ६९९ में हुआ था और कुछ उनकी जन्म तिथि ७०१ मानते हैं । इनकी मृत्यु तिथि ईसवी सन् ७६२ मानी जाती है ।

बाल्यावस्था में ही लिपो में महाकवि के लक्षण परिलक्षित हो गए थे। कहते हैं कि १० वर्ष की आयु में ही उन्होंने अपनी पहली कविता लिखी थी, जिससे इनकी पर्याप्त प्रसिद्धि हुई । किन्तु न जाने क्यों सांसारिक व्यवहारों से इन्हें अरुचि हो गई और १८ वर्ष की आयु में ही पर्वतीय प्रदेश में स्थित एक स्थान में रहकर ये एकान्त साधना में रत हुए । प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में विभिन्न पशु-पक्षियों के साथ खेलने में इन्हें अत्यन्त सुख होता था और प्राकृतिक–सौंदर्य इनके जीवन में नवीन स्फूर्ति एवं प्रेरणा का सञ्चार करता था । स्थानीय गवर्नर ने इनकी प्रशंसा सुनकर इन्हें सरकारी नौकरी के लिए आमंत्रित किया, किन्तु प्रकृति उपासक लिपो ने इसे तुच्छ समझ कर ठुकरा दिया ।

कहना न होगा कि ज़िन्दादिली और मस्ती उनके समस्त जीवन में ओत-प्रोत थी । जितने भी प्रतिबन्ध, नियम, कानून, शृंखलाएं थीं—उन्हें रौंद कर कवि ने अपने प्राणवान् व्यक्तित्त्व की तेजस्विता को अपने कृतित्त्व में ढाला और हृदय के विह्वल आनन्द-कणों से जीवन की शुष्कता को सिक्त किया ।

"बिना कमीज़ पहने एक हरे-भरे जंगल में बैठा हुआ मैं अत्यन्त धीरे धीरे
श्वेत परों का पंखा झल रहा हूं।
मैंने अपनी टोपी को उतार कर एक उभरे हुए पत्थर पर लटका दिया है।
वायु अनानास के वृक्ष को छू कर आती हुई मेरे नग्न मस्तक को चर्चित कर
रही है।"

वातावरण जब अवरुद्ध होता है और उसमें कुछ आकर्षण नहीं दीखता अथवा कवि की उन्मुक्त आत्मा जब घुटती हुई सी जान पड़ती है–तो वह मस्ती के तराने गाता है। मूक प्रणय के रहस्य साकार होकर उसके गीतों में फूट पड़ते हैं।

"मेरा मस्तक मेरे बालों से अनावृत्त था।
द्वार के समीप खेलती हुई मैं पुष्प तोड़ रही थी —
जबकि मेरे प्रिय! तुम बांस के घोड़े पर 'टाप-टाप' की ध्वनि करते हुए
थिरकते आये थे और मुझ पर कच्चे बेर फेंक रहे थे।
चांग-कान की एक गली में हम दोनों साथ साथ रहते थे, दोनों जवान और
खुशदिल।

चौदह वर्ष की आयु में मैं तुम्हारी पत्नी बन गई।
तब मैं इतनी लजीली थी कि मुस्कराने तक का दुस्साहस न कर सकती थी
और तुम्हारी हज़ारों आवाजों पर भी मुड़ कर न देखती थी।
किन्तु पन्द्रह वर्ष की आयु में मैंने भ्रू-भंगिमा सीखी और हंसी,
यह सोचकर कि कोई भी हमारे विशुद्ध प्रेम पर कीचड़ नहीं उछाल सकता
और अपने खम्भे से चिपकी मैं तुम्हारी बाट जोहती रहूंगी
तथा चिर-प्रतीक्षित शिखर पर भी मेरी हिम्मत कभी पस्त न होगी।
तब जबकि मैं सोलह वर्ष की हुई, तुम एक लम्बी यात्रा पर चल दिये।
तुम्हारे चरणों के चिन्ह हमारे दरवाजे पर, जहां मैंने तुम्हें जाते देखा
था अंकित थे, उनमें से प्रत्येक हरी काई में समाया हुआ और वे उसमें
इतनी गहराई से गड़ गये थे कि उन्हें मिटाया नहीं जा सकता था।
प्रारंभिक पतझड़ की हवा के झोंकों ने गिरे हुए पत्तों को बिछा दिया।
और अब, आठवें महीने में, गुनगुन करती तितलियां दो-दो मिल कर,
हमारे पश्चिमी उद्यान की घास पर मंडराती हैं।
इन सभी कारणों से मेरा दिल टूट रहा है और मुझे भय है कि
मेरे गुलाबी कपोल, ऐसा न हो, मुरझा जायें।
ओह! जब तुम अन्ततः तीन 'पा' जिलों को पार करके वापिस आओ
तो मुझे यहां घर पर खबर कर देना।

मैं आऊंगी और तुम से मिलूंगी, चांग-फेंग-शा का जितना भी
मार्ग या फ़ासला होगा, उसकी कुछ भी परवाह न करूंगी।"

उन्मुक्त जीवन की ओर

बीस वर्ष की आयु में कवि के जीवन में आकस्मिक परिवर्तन हुआ। शराब और वाद्य की ओर उनका विशेष झुकाव हो गया और अनेक दुष्प्रवृत्तियां उनके जीवन में आ गईं। उसी समय लिपो का परिचय महाकवि ट्यू-फ्यू से हुआ, जिनकी गणना उस समय उच्च कोटि के कवियों में थी। कवि ट्यू-फ्यू लिपो का गुरुवत् सम्मान करते थे और इन दोनों महाकवियों में सहोदर भ्राताओं का सा सच्चा स्नेह और अनुराग था।

सन् ७४२ तक कवि की ख्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी। तांग वंश के तत्कालीन शासक ह्यांन-सांग अत्यन्त रसिक,काव्य-प्रेमी, विद्वान, संगीतज्ञ, सौन्दर्य एवं कला के उपासक थे। उनके शासन-काल में चीनी साहित्य प्रौढ़ता को पहुंच गया था। सम्राट् ने लिपो की प्रसिद्धि सुनकर उन्हें दरबार में आमन्त्रित किया और बहुत ही स्नेह एवं सम्मान से अपने यहां रखा तथा उन्हें हान-लिन एकेडेमी का सदस्य भी नियुक्त किया, किन्तु लिपो की स्वतन्त्र और निर्भीक प्रकृति ने कोई भी बन्धन स्वीकार नहीं किया। सोने के पिंजड़े में बंद मानों उनकी स्वच्छन्द आत्मा तड़प रही थी। दरबार के कड़े अनुशासन में भी कवि ने शराब का मादक मोह और उच्छृंखल जीवन का परित्याग नहीं किया। लिपो के मित्र और सहयोगी कवि ट्यू-फ्यू ने अपनी एक कविता में लिपो के जीवन का मार्मिक चित्रण करते हुए लिखा है कि यदि लिपो को एक शराब का प्याला पीने के लिए दे दिया जाय तो वह सैंकड़ों कविताएं लिख डालेगा। मदिरा ही उसके मन और प्राण में समाई हुई है और वह मदिरा में ही सोता और विश्राम करता है। वह सम्राट् के अनुशासन को भी ठुकरा देता है और स्पष्ट कहता है कि मैं शराब का देवता हूं।

एक स्थल पर लिपो ने लिखा है—

"देखो, पीले दरिया का पानी आकाश से उतर कर समुद्र में
समाहित हो रहा है, पुनः कभी न लौटने के लिए।
उच्च-कक्ष में लगे चमकीले दर्पण में—देखो, किस प्रकार सुन्दर अलकें,
जो प्रातः रेशमी सिल्क की भांति काली थीं, रात्रि में बर्फ की
श्वेतिमा में परिणत हो गई हैं।
ओरे, आत्म-सचेतन व्यक्ति को जो चाहे करने दो,
और उसके स्वर्गिम मद्य-पात्र को चन्द्रमा की ओर कभी रिक्त न छोड़ो।
प्रभु ने जो गुण दिये हैं—उनका सदुपयोग करना चाहिये।
शराब से परिचय प्राप्त करो।

अपने प्यालों को कभी विश्राम न करने दो।
मैं तुम्हारे लिए जो गीत गाऊं--उसे ध्यान से सुनो।
वाद्य और संगीत कहां है, स्वादिष्ट भोजन और खज़ाना,
मुझे तो निरन्तर शराब की मादकता में विभोर होना ही रुचिकर है,
मुझे कभी सजग न होने दो।
मेरे आतिथेय ! तुम क्यों कहते हो कि धन चुक गया,
जाओ, मेरे लिए शराब ले आओ, हम साथ साथ पीयेंगे।
मेरा पुष्पों से सुसज्जित घोड़ा
और फर के बने वस्त्र, जो एक सहस्र की कीमत के होंगे, ले आओ
और उन्हें अच्छी शराब के बदले में लड़के को दे दो।
बस, दस हज़ार पीढ़ियों तक के दुःख-क्लेशों को हम उसमें डुबा देंगे।"

काव्य प्रेमी सम्राट् लिपो की सभी त्रुटियों को उदारतापूर्वक क्षमा करते रहे। उन्हें उसकी कविताओं से अनुराग था। कवि की विलक्षण प्रतिभा और रचना चातुर्य्य ने सम्राट् को विमुग्ध कर लिया था। एक बार एक ऐसे ही अवसर पर जब कि सम्राट अपनी प्रेयसी के साथ भोजन कर रहे थे तो अपने चतुर्दिक् दृश्यों की मनमोहकता से आकृष्ट होकर कवि को बुलाया और कविता करने का आदेश दिया। लिपो ने सुन्दर कविताओं की तो रचना की, किन्तु अपने तीक्ष्ण व्यंगों से सम्राट् की प्रेयसी को कुपित कर दिया। वह उनसे अत्यन्त शत्रुता करने लगी और जानी दुश्मन हो गई। लिपो को अपनी आत्म-रक्षा के लिये इधर उधर छिपना पड़ा। इस अर्से में कवि को अनेक विषम परिस्थितियों एवं कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, किन्तु उनकी प्रसिद्धि चारों तरफ़ हो चुकी थी। लोग दिल खोल कर उनका स्वागत करते थे। जहां कहीं भी वे जाते जनता उनके अभिनन्दन के लिये उत्सुक रहती और अधिकाधिक सम्मान एवं प्रेम प्रदर्शित करती। सरकारी अफसरों और प्रांतीय गवर्नरों में उनके स्वागत के लिये परस्पर होड़ रहती थी। एक बार विद्रोही प्रिंसयंग के साथ ये संन्देह में गिरफ्तार भी कर लिए गये थे और उन्हें मृत्यु दण्ड भी दिया गया था किन्तु न्यायाधीशों की कृपा से इन्हें छोड़ दिया गया। इस प्रकार लिपो का समस्त जीवन संघर्ष और विषम परिस्थितियों में गुज़रा था।

निम्न पंक्तियों में कवि की निर्वासित, घायल आत्मा और दर्दीली आहें तड़प उठी हैं—

"मेरी आत्मा चांगकान में जाने के लिये सदा छटपटाती रहती है।
जलकूप की सुनहली परिधि पर वर्षाती कीड़े गुनगुना रहे हैं।

मेरी ठण्डी चटाई पर कुहरे का झीना आवरण दर्पण की भांति चमक रहा है।
ऊंचे पर स्थित लैम्प की बत्ती हिल रही है और मेरी व्यथा भी बढ़ती जा
रही है।
मैं शोड उठा कर अनेक निःश्वासों के साथ चन्द्रमा की ओर, जो मेघों के
मध्य में एक पुष्प की भांति एकाकी टंगा है, आंखें गड़ाये हूं।
ऊपर आकाश में गरिमामयी नीलिमा दृष्टिगत होती है,
और नीचे किंचित् हरीतिमा की झलमलाहट के साथ अस्तव्यस्त जल दीख
रहा है।
आकाश ऊंचा है और पृथ्वी विस्तृत, दोनों के मध्य में मेरी आहें उड़ रही हैं।
पर्वत-शिखर पर चढ़ा हुआ क्या मैं नीचे उतरने का स्वप्न देख सकता हूं?
आह! चिर-आकांक्षाएं मेरे हृदय को विदीर्ण कर रही हैं।"

साहित्य में लिपो का स्थान

चीनी-साहित्य में महाकवि लिपो का महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी समस्त रचनायें यूरोप की प्रमुख भाषाओं म अनुदित हो चुकी हैं। चीन में इनकी मुख्य मुख्य कविताओं को संग्रहीत करके बहुत सुन्दर ढंग से सम्पादित और प्रकाशित किया गया है। सन् १७५६ में इनके सभी ग्रंथों का गम्भीर अध्ययन किया गया और इनकी सविस्तार व्याख्या और समीक्षा हुई। कवि के मृत्यु के एक वर्ष पश्चात् ही इनकी कविताओं का एक बहुत बड़ा संग्रह निकाला गया, जिसमें इनकी एक हज़ार उत्कृष्ट कवितायें और स्फुट गद्य भी था। अंग्रेजी में जोसेफ़ राडकिन्स ने सर्वप्रथम इनकी रचनाओं का अनुवाद किया, जो सन् १८८८ में 'जरनल ऑफ पेकिंग ऑरियन्टल सोसाइटी' से प्रकाशित हुआ किन्तु अभी हाल ही में आॅर्थर बेली द्वारा किया हुआ अनुवाद अधिक सुन्दर और साहित्यिक है।

कई शताब्दियां बीत जाने पर भी लिपो की ख्याति ज्यों की त्यों अक्षुण्ण बनी हुई है। चीन-वासियों को आज भी यह कवि उतना ही प्रिय है जितना कि तांग वंश और उसके परवर्ती समय म यह जनता को था। चित्रकार अब भी उसकी मस्तानी भाव भंगियों का चित्रण करने में अपना गौरव समझते हैं। उसके विषय में अनेक किम्बदन्तियां प्रसिद्ध हैं और वे विश्वास बनकर लोगों के दिलों में समा गई हैं। यह ही चीनी साहित्य में एक ऐसा कवि है, जिसकी रचनाओं में रचना-कौशल, प्रबन्ध पटुता और सहृदयता आदि सभी गुणों का समाहार मिलता है। जगत् के अकृत्रिम स्वरूपों में अपनी लोकोत्तर कल्पना को समाविष्ट करके जीवन के विराट्-वैभव में झांक कर देखने की उसमें विलक्षण क्षमता थी।
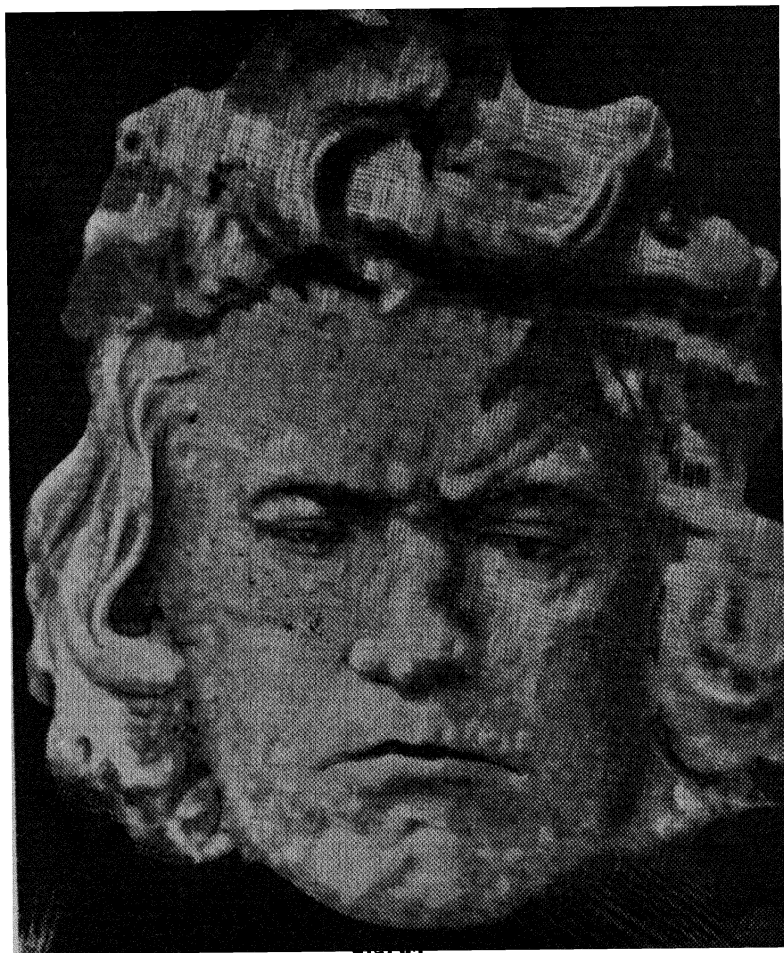
कलाकार बीटोफ़ेन

जन्म---ईसवी सन् १७७०

मृत्यु---ईसवी सन् १८२७

जन्मस्थान---बॉन (Bonn), जर्मनी

"जो कोई भी मुसीबत का मारा भाग्यहीन व्यक्ति हो, उसे यह सोचकर धैर्य धारण करना चाहिए कि मैं भी उसका सा ही अभागा और विपत्ति में सहायता करने वाला उसका प्रिय बन्धु और सखा हूं।"—ये शब्द विश्व के महान् कलाकार बीटोफेन ने अपनी अन्तिम वसीयत में लिखे थे।

वस्तुत: बीटोफेन की मृत्यु उसके जीवन काल की दु:खद घटनाओं का एक दर्दनाक चित्र प्रस्तुत करती है।

मृत्यु के समय बीटोफेन सत्तावन वर्ष का था और एकाकी जीवन व्यतीत कर रहा था। रोग ने उसके अंग-प्रत्यंग को जर्जरित कर दिया था। रूखे और घने बाल बिल्कुल सफेद हो गये थे, और उसके माथे पर गहरी झुर्रियां थीं। ऊपर का मोटा ओंठ नीचे के ओंठ को ढके रहता था, बेढंगी ठोढ़ी और उभरी हुई गाल की हड्डियों ने मुखाकृति को विकृत कर दिया था। दुर्बल और क्षीण होने के कारण उसका मुख और भी भयानक और कुरूप लगता था। हां, उसकी आंखों में अभी खुशहाल जीवन की चमक शेष थी, जो हृदय को स्पर्श करती थी।

वह अत्यन्त निर्धन, एकाकी और कानों से बहरा था। अस्वस्थ हुआ तो उसने अपने भतीजे कार्ल को, जिसे वह अत्यन्त प्यार करता था और जो उसका गोद लिया हुआ पुत्र था, डॉक्टर लाने के लिये भेजा। पर वह दूसरे कमरे में जाकर ताश खेलता रहा और अपने बीमार चाचा को भूल गया। दो दिन पश्चात् उसे डॉक्टर को बुलाने का ध्यान आया। अब भी वह स्वयं नहीं गया, एक नौकर से कह दिया कि डॉक्टर को बुला लाय। नौकर ने आज्ञा तो शिरोधार्य की, किंतु उसका पालन करना भूल गया। तीन दिन पश्चात् जब वह स्वयं बीमार पड़ा तो अस्पताल में उसे अपने रुग्ण, असमर्थ स्वामी की याद आई, जो दीन-हीन, परित्यक्त, उपेक्षित वियना के एक सड़े हुए मकान में पड़ा हुआ डॉक्टर की प्रतीक्षा कर रहा था। नौकर ने नर्सों और वहां के दो डॉक्टरों से उस अर्ध-विक्षिप्त, बधिर संगीतकार को देख आने के लिये कहा। सर्दी के दिन थे। जोरों की ठंडी तेज़ हवा चल रही थी। अंधेरी और कीचड़ से लथपथ गलियों को पार करना कठिन था। डॉक्टरों ने वहां जाने से इन्कार कर दिया। यह भी सौभाग्य समझिए कि एक डॉक्टर पड़ौस के किसी बीमार को देखने गया और उसने बीटोफेन को भुलाना भी उचित न समझा। पर उस समय तक रोगी की स्थिति काबू से बाहर हो चुकी थी।

जिस कमरे में बीटोफेन लेटा हुआ था वह नितान्त अस्तव्यस्त और गन्दा था। उसका शरीर कीड़ों से संतप्त और मन दुश्चिन्ताओं से त्रस्त था। वियना के संगीत-प्रिय वर्ग ने उसकी आर्थिक सहायता की, उसके कुछ प्रशंसकों ने भी उसका हाथ बंटाया। जीवन के अन्तिम सप्ताहों में वह इन्हीं पर निर्वाह करता रहा।

उसके तीन ऑपरेशन हुए, तीनों ही असफल रहे। २४ मार्च को उसने अपने दो साथियों से कहा, "तालियां बजाओ। शीघ्र ही इस दुःखांत नाटक का पटाक्षेप होने जा रहा है।"

फिर उसने अपना वसीयतनामा मांगा और सब कुछ अपने भतीजे कार्ल के नाम कर दिया, जिसकी उपेक्षा और मूर्खता ने उसे मौत के मुंह तक पहुंचाया था। अब तो ईश्वर को आत्म-समर्पण शेष रह गया था। उसने प्रायश्चित किया और पवित्र जल एवं अभिमंत्रित द्रव्य ग्रहण किये और पादरी से कहा—"धन्य-वाद पिता! तुमने मेरी आत्मा को परम शान्ति प्रदान की।"

२६ मार्च को ग्राज़ से हित्तन ब्रीनर नाम का एक नवयुवक संगीतज्ञ आया। बीटोफेन के दो मित्र शिण्डलर और ब्राउनिंग ने हित्तन ब्रीनर को रोगी की देखभाल

करने को छोड़ दिया और स्वयं उसकी समाधि का प्रबन्ध करने के लिये चले गये। पांच बजे अचानक घंटाघर की घड़ी रुक गई। साढ़े पांच बजे बिजली की गड़-गड़ाहट हुई और जोरों की आंधी से आकाश भर गया। मरणासन्न बीटोफेन ने अपने जलते हुए नेत्र पुनः खोले और आकाश की ओर देखा। ६ बजे कौंधती हुई बिजली की चमचमाहट में एन्सलम हित्तन ब्रीनर ने देखा कि बीटोफेन ऊपर हाथ उठाकर आकाश की ओर इंगित कर रहा है। शीघ्र ही उसका हाथ नीचे गिर पड़ा। श्वास रुक गया और वह उस परम धाम को सिधार गया, जहां चिर-विश्रान्ति का साम्राज्य है।

मरते समय बीटोफेन के पास न स्त्री थी, न बालक था, न सखा, न कोई सम्बन्धी, न मित्र, न कोई परिचित स्नेही। वह उपेक्षित, एकाकी, निर्धन, बधिर और जीवन की एक बहुत बड़ी अशान्ति को लेकर संसार से बिदा हुआ। उसकी मृत्यु के पश्चात् एक अपरिचित व्यक्ति ने उसकी खुली हुई आंखें बन्द कीं।

बीटोफेन विश्व का महान् संगीतकार था। हृदय के एकान्त, निर्जन कोण में; जीवन के शून्य, मौन तारों में; घटाटोप असीम दुःखों की घोर विभावरी से व्याप्त दुर्भाग्य के विडम्बनापूर्ण नैराश्य में उसे नित्य ही अन्तर्वीणा की झंकार सुनाई पड़ती थी और उसके मधुर रव से दिशाएं झंकृत हो उठी थीं। वह दुःख में भी सुख की कल्पना करता था, निराशा के अन्धकार में भी उसे आशा की ज्योति दृष्टिगोचर होती थी, उसके भाव, उसके विचार अत्यन्त उच्च भावना-लोक में विचरण करते थे। वह साधारण जीवन स्तर से बहुत ऊपर उठ गया था। संगीत के इतिहास में बीटोफेन का नाम चिर-स्मरणीय रहेगा। प्रखर बुद्धि एवं विलक्षण प्रतिभा से उसने संसार को चकित कर दिया था।

बीटोफेन ने अपने हृदयंगत भावों को, अपनी अन्तरात्मा की अन्तर्चेतना को बड़ी कुशलता से संगीत में व्यक्त किया। उसने अपने भाव, विचार, अनुभव स्वरों में साधे और एक अनुभवी पारदर्शी की भांति एक नवीन संगीत स्रोत का अजस्र प्रवाह प्रवाहित किया। उसके गाये हुए गीत उसके मनोगत भावों की सच्ची कहानी हैं। उनमें आध्यात्मिक तत्त्व की व्यथा सन्निहित है। व्यर्थ के मिथ्याडम्बर में उसके भाव नहीं उलझे, वे तो निरभ्र हृदयाकाश से बरस पड़े। हृदय की भावना मन्दाकिनी की भांति कलकल करती हुई आई और संगीत के सरस स्रोत में बह निकली।

जो तन्मयता, जो अनन्यता, जो सच्चाई, जो अन्तस्तल की करुण पुकार हमें इस गायक के गीतों में मिली, वह अन्यत्र कम ही मिलेगी। उसे बाह्य शृंगार, अलंकार तथा सजावट की पर्वाह न थी। उसकी वाणी की प्रवृत्ति अन्तर्वृत्ति निरूपण की ओर थी। जो कुछ उसने सोचा, जो कुछ उसने समझा वह गीतों में प्रकट कर दिया। उसने भाषा का मार्ग प्रशस्त किया और एक नवीन संगीतात्मक शैली का आविष्कार किया। अपने जीवन के अन्त तक वह भाषा को ठीक करने में लगा रहा और उसे पर्याप्त सफलता मिली। उसने नई राग-रागनियों की भी रचना की और संगीत क्षेत्र में विशिष्ट अनुसंधानपूर्ण प्रगति की। वह एक संगीतकार ही नहीं, बल्कि एक महान् दार्शनिक, आत्म-जिज्ञासु और जीवन-द्रष्टा था। दार्शनिक कांत (Kant) का वह भक्त था, शेक्सपीयर की आत्मा के दर्शन उसने किये थे, गेटे को वह स्नेह करता था और प्रसिद्ध कवि शिलर (Schiller) उसकी श्रद्धा एवं सम्मान का पात्र था। संगीत रचना में वह बेश (Bach) और मोज़ार्ट (Mozart) के आदर्शों का अनुयायी था।

बीटोफेन की जीवन-गाथा और उसकी संगीतमयी थाती इस बात की प्रतीक है कि न्याय अमर है और उसकी विजय होती है। मनुष्य और प्रारब्ध का संघर्ष अवश्यम्भावी है, पर इस संघर्ष में, इस प्रतिद्वंद्विता में सदैव मनुष्य ही विजयी रहा है। जीवन के अन्तिम पहर में, जब कि दुःखों की चोट ने बीटोफेन को मर्माहत कर दिया था, उसने अपनी 'नाइन्थ सिम्फोनी' (Ninth Symphony) में आनन्द का गान प्रस्तुत किया था।

बीटोफेन को जीवन भर पत्नी की चाह रही। उसे कभी किसी का प्रेम न मिल सका। बाल्यावस्था में ही, जब वह बहुत छोटा था, उसकी स्नेहमयी माता का देहान्त हो गया। पिता को तो घर का ज़रा भी ध्यान न रहता था। भाई उसे घृणा करते थे, उन्होंने कभी उसे समझने का यत्न नहीं किया। देखने में वह सुन्दर न था। उसका शरीर छोटा और स्थूल था। जो उसे नहीं जानते थे, वे उसे देख कर हंसते थे। बीमारी उसे छोड़ती न थी। जिस रोग ने उसे सुनने से वंचित किया, वह २६ वर्ष की आयु में भी उसे हो चुका था। अन्य शारीरिक व्याधियां भी उसे होती रहती थीं। स्वभाव उसका अत्यन्त चिड़चिड़ा और रूखा था। अपने रूखे और अशिष्ट व्यवहार के कारण वह लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने में सदैव ही असफल रहा। उसे अपनी रचनाशक्ति एवं अन्तर्चेतना का ज्ञान था। इसीलिये उसे अपनी

मानवता ने उसकी मृत्यु के एक शताब्दी बाद उसे समझा, उसे पहचाना और अब तो वह विश्व-विश्रुत ख्याति प्राप्त कर चुका है तथा संगीत-क्षेत्र में उसकी महत्ता बेजोड़ है ।

वर्ड्सवर्थ और प्रकृति

विलियम वर्ड्‌सवर्थ

जन्म—७ अप्रेल, सन् १७७०

मृत्यु—२३ अप्रेल, सन् १८५०

जन्मस्थान—ग्राम-कॉकेरमाउथ,
इंग्लैण्ड.
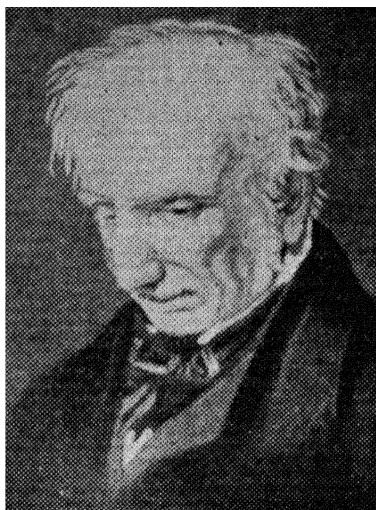
प्रकृति की गोद में वर्ड्‌सवर्थ की कुटिया

अनादि काल से प्रकृति की मनोरम क्रोड़ में मानव की सहज अन्तर्वृत्तियां प्रश्रय लेती आई हैं। मानव के चारों ओर प्रकृति फैली हुई है। प्रकृति का रूपात्मक सौन्दर्य मनुष्य के मानस पर प्रतिबिम्बित हो रहा है, और प्रकृति की गति मानस-चेतना को ग्रहण कर रही है।

प्रकृति-उपासक महाकवि विलियम वर्ड्सवर्थ की कृतियों में प्रकृति मानों सजीव हो उठी है। उनकी कविता में न तो कल्पना की क्रीड़ा है, न कला की विचित्रता। वह है प्रकृति को ही एक मनोहर झांकी और उसी के स्वरूप का मधुर ध्यान। प्रारंभ से ही कवि का बाल-हृदय प्रकृति के विभिन्न रूपों के प्रति प्रश्नशील है और वह प्रकृति की गति और विभिन्नता में किसी व्यापक रहस्यात्मक शक्ति का संकेत पाना चाहता है। वह समझना चाहता है और प्रकृति के समस्त प्रसाधनों एवं अलंकारों पर मुग्ध हो अपने से ही प्रश्न करता है—ये वस्तुयें कैसे उत्पन्न हो गईं? ये गुलाब, चमेली, बेला इत्यादि पुष्प क्यों खिलते हैं? अगणित पुष्पों एवं श्यामल द्रुम-लताओं से मंडित सघन बन, अनन्त लहरियों से विलोड़ित गहन गम्भीर समुद्र, मन्द-मन्द गरजते मेघों का मेरु-रंजित शृंगों से लगा दिखाई देना और फिर उस पर्वत के नीचे स्वच्छ शिलाओं पर फैले हुए जल में आकाश और हरीतिमा के बिम्ब, लहलहाते हुए खेतों और जंगलों, हरी घास के मध्य इठलाते नालों, विशाल चट्टानों पर चांदी की भांति ढलते हुए झरनों, मंजरियों से लदी हुई अमराइयों, झाड़ियों, चहचहाते पक्षियों, ओस-कणों और जल-निर्झर के संघात से उठे हुए श्वेत जलकण के मनोहर

दृश्यों को वह मनोमुग्ध दृष्टि से देखता है। उसे जलसिक्त धरती तथा भोली चितवनवाली ग्राम-वनिताओं, बाल्यावस्था के साथी वृक्षों, रंग-विरंगे मधु-मदिर सुगन्धिवाही पुष्पों, नीलम-सदृश हरित, कंटीले कटावदार पौधों, रसमय कच्चे या पक्के फलों, प्रियतम अम्बुधि की आकुल चाह में दौड़ी जाने वाली सरिताओं एवं समस्त प्राकृतिक उपादानों में असाधारणत्व की प्रतीति तथा चिर-परिचित साहचर्य-सम्भूत-रस की अनुभूति होती है :—

"स्मरणीय सौन्दर्य से दीप्त प्रातः का पुष्प सदैव की भांति देदीप्यमान, जैसा कि मैंने देखा था।

सामने ही कुछ दूरी पर हंसते हुए समुद्र का व्यापक प्रसार,

पास ही वृहदाकार पर्वत, जो धूमिल रंग और दिव्य आभा की तरलता से सिक्त मेघों सा चमक रहा था।

चरागाहों और नीची सतह वाली जमीन पर उषःकालीन सहज मधुरिमा का आच्छादन ;

ओस, कुहरा और पक्षियों का संगीतमय स्वर तथा खेत बोने के लिये श्रमिकों का प्रस्थान आदि सब कुछ शानदार था।"

("Magnificent
The morning rose in memorable pomp
Glorious as ever I had beheld—in front
The sea lay laughing as a distance; near
The solid mountain shone, bright at the clouds,
Grain-tinctured, drenched in empyrean light;
And in the meadows and the lower grounds
Was all the sweetness of the common dawn
Dew, vapours, and the melody of birds
And labourers going forth to till the fields.")

ज्यों-ज्यों कवि की बुद्धि का विकास होता है, उसकी सहज भावना की सौन्दर्यानुभूति में प्रकृति सचेतन और सप्राण हो उठती है, पुनः उसीके साथ सम होकर आनन्द से उल्लसित होती है। शनैः-शनैः इस आत्म-चेतना के प्रसार में प्रकृति सर्वचेतन हो उठती है और उस क्षण प्रकृति उसे अपनी ही चेतना का एक-रूप और गति प्रतीत होती है।

"पृथ्वी और समुद्र, समस्त दृश्य-जगत् और उसके समक्ष फैला हुआ अम्बुधि का निस्सीम जल-समूह एक विचित्र आनन्दानुभूति से ओतप्रोत हैं। इतस्ततः जल को स्पर्श करते हुए मेघ अव्यक्त प्रेम की सृष्टि करते हैं। आनन्द की अभिव्यक्ति में वाणी मूक है और शब्द मौन; उसकी आत्मा इस दृश्य के सौन्दर्य-रस का आस्वादन कर रही है। मन, शरीर, प्राण सभी तो उसमें विलय हो गए हैं, उसका पार्थिव शरीर ही मानो उसमें जा समाया है। उन दृश्यों में ही वह खोया-सा खड़ा है, उन्हीं में उसकी चेतना और प्राण केन्द्रित हैं। ईश्वर-प्रदत्त सुखों में विभोर वह अपने अन्तर्मानस को विचारों से नितांत शून्य पाता है, इनमें ही मानों वे खो गये हैं। धन्यवाद वह नहीं दे सकता। शोक प्रकट करने में भी वह असमर्थ है। अपनी मूक अन्तर्वेतना से एकरूप हो वह उस परम शक्ति की अभ्यर्थना में संलग्न है, जिसने उसका सृजन किया और जो उस दिव्य-प्रेम एवं ब्रह्मानन्द की अनुभूति कर रहा है, जो प्रशंसा और अनुनय से परे है।"

"(Ocean and earth, the solid frame of earth
And ocean's liquid mass in gladness lay
Beneath him.—Far and wide the clouds were touched
And in their silent faces could be read
Unutterable love. Sound needed none,
Nor any voice of joy; his spirit drank
The spectacle; sensation, soul and form
All melted into him; they swallowed up
His animal being; in them did he live,
And by them did he live; they were his life.
In such access of mind, in such high hour
Of visitation from the living God,
Thought was not, in enjoyment it expired,
No thanks he breathed, he professed no regret;
Rapt into still communion that transcends
The imperfect offices of prayer and praise
His mind was a thanksgiving to power
That made him; it was blessedness and love.")

प्रकृति के इस सर्वचेतनवादी दृष्टिकोण में कवि की अनुभूति प्रकृति से ऐसी समन्वित हो जाती है कि उसे प्रकृति के प्रति आश्चर्य-चकित और प्रश्नशील होने का अवसर ही नहीं मिलता। यही कारण है कि वह सर्वचेतनवादी सृष्टि के स्रष्टा और

सृजन के सूत्रधार के प्रति अपना आग्रह प्रकट नहीं करता। वह अपनी सीमाओं में अनीश्वरवादी ही रहता है। प्रकृति ही उसके जीवन का आधार, प्रेम की साधना है। उसके प्रत्येक संकेत में, जिज्ञासा में, प्रार्थना में, ध्वनि में प्रकृति का अनुग्रह निहित है। वही उसकी प्राणाधिका सखी, जीवन-सहचरी, संरक्षिका, पथ-प्रदर्शिका, आनन्द-दायिका, पवित्र भावों को वहन करने वाली जीवन-ज्योति है :–

("Well-pleased to recognize
in Nature and the language of the sense
The anchor of my purest thoughts,
The guide, the guardian of my heart,
And soul of all my moral being.")

प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों ने कवि की भावनाओं को विलोड़ित किया है। अलंकारों से विभूषित हो वह बहुरंगिनी उसकी भावनाओं को हंसाती-रुलाती है और कभी चेतन-मानव के अगाध-प्रेम एवं समादर की भावना पर मुग्ध हो उसपर अपना वरदान बिखेरती है। कभी वह सरल साधिका की भांति ज्ञानोपदेश द्वारा उचित मार्ग-निर्देश करती है और कभी रहस्यमयी चुंदरी ओढ़ कर उसके लिए गूढ़-चिन्तन का विषय बन जाती है। यही नही, वह कभी चंचला स्वयं मानवीय रूप धारण करके छायावादी अवगुण्ठन से झांक उसे विमोहित करती है और कभी आकर्षक, मनोहारी, अल्हड़ भाव से अतीत की मधुर स्मृतियों को गुदगुदा देती है। प्रेम की अभिव्यक्ति के रूप में कवि अपने भावों को प्रकृति में प्रतिबिम्बित देखता है। प्रेम की वेदना का रूप यदि प्रकृति में है, तो प्रेम की तृप्ति भी उसी में दिखाई देती है। कभी-कभी प्रकृति की विराट् झोली में वह अपने भावों को भर सामने से हट जाता है :

**"प्रशांत
निश्चल, नीरव जल मेरे मस्तिष्क पर उल्लास का भार बनकर
छा गया है ; और आकाश, जो पहले कभी इतना सुन्दर न लगा
था, मेरे हृदय में धंसकर मुझे स्वप्न-विभोर सा बना रहा है।"**

("The calm
And dead still water lay upon my mind
Even with a weight of pleasure, and the sky,
Never before so beautiful, sank down
Into my heart, and held me like a dream.")

सच तो यह है कि प्राकृतिक सौन्दर्य एवं सौकुमार्य की उपासना में अहर्निश निरत वर्ड्सवर्थ ने सुन्दर एवं सरस भावों की लड़ियां पिरो कर अपने काव्य को सजाया है। उसकी अन्तर्हित भावनाएं मानों साकार हो उठी हैं।

"अप्रैल का सुन्दर, स्वच्छ प्रभात है। क्षुद्र नदी अपनी पूर्णता से गर्वित हो यौवन की मदमाती चाल से प्रवाहित हो रही है। नदी के बहते जल की प्रतिध्वनि वासन्तिक वायु में जा विलीन होती है। सभी सजीव वस्तुओं से आनन्द और आकांक्षा, आशाएं और इच्छाएं विभिन्न ध्वनियों की भांति फूटी पड़ रही हैं।"

("It was on April morning; fresh and clear,
The rivulet, delighting in its strength,
Ran with a youngman's speed; and yet the voice
Of waters which the river had supplied
Was softened down into a vernal tone
The spirit of enjoyment and desire
And hopes and wishes from all living things
Went circling, like a multitude of sounds".)

ग्रीष्म-जैसी मनहूस ऋतु का वर्णन करते हुए कोई भी कवि प्रकृति के उन नाना रूपों एवं दृश्यों तक नहीं पहुंच पाया है, जिसका वर्णन वर्ड्सवर्थ की कविताओं में अनायास ही मिलता है:

"उत्तरी मैदान स्वच्छ हवा में तैरता हुआ दूर तक नज़र आ रहा है। घुमड़ते बादलों की फिसलती छाया पृथ्वी की सतह को चितकबरा सा बना रही है।"

("The northern downs
In clearest air ascending, showed far off
A surface dappled over with shadows fleecy
From brooding clouds.")

यहां देखिए—गर्मी की प्रचण्डता को भी वह छन्दोबद्ध कर सकता है:

"प्रचण्ड ग्रीष्म जबकि वह अपनी आत्मा को कांटेदार गुलाब-पुष्प में केन्द्रित कर देता है।"

("Flaunting summer when he throws
His soul into the briar rose.")

प्रारम्भ में फ्रांस की राज्य-क्रांति में वर्ड्सवर्थ ने मानवता, विश्व-बन्धुत्त्व और जीवन का अभिनव संदेश पाया था, किन्तु शीघ्र ही क्रान्तिवादियों की हिंसक मनोवृत्ति और घातक चेष्टाओं ने उन्हें पुनः प्रकृति की ओर उन्मुख कर दिया। उनकी प्रारंभिक कृतियों 'दि प्रिल्यूड' (The Prelude) और 'दि एक्सकर्शन' (The Excursion) में उनकी अंतरंग भावनाओं की मनोहर झांकी मिलती है।

अन्ततः उनकी कलात्मक चेतना विकसित होते होते प्रकृति की अन्तरात्मा में इतनी पैठ गई कि उसके प्रत्येक स्वरूप का स्पष्ट चित्र उनके हृदय-पटल पर अंकित हो गया और प्राकृतिक-अनुभूति का अन्तर्वाह्य सूक्ष्म रेखाओं में उभर पड़ा।

उनकी प्रख्यात कविता 'बाल्यावस्था की स्मृति द्वारा अमरत्व का संकेत' (Ode on Intimations of Immortality from Recollections of Early Childhood) में प्रकृति की व्यापक चेतना के साथ उनकी अपनी अन्तर्वृत्तियों का तादात्म्य होकर अद्भुत ज्योतिर्मय कणों में छिटक पड़ा है।

"हमारा उद्भव एक प्रकार की निद्रा और चिर-विस्मृति है।
आत्मा, जिसका प्राकट्य हमारे साथ होता है और जो जीवन की नक्षत्र है,
कहीं अन्यत्र से आती और दूर ही जाकर छिपती है।
हम पूर्ण विस्मृति और एकदम निरावरण होकर नहीं आते, वरन्
ऐश्वर्य के घन-खण्डों पर थिरकते हुए अपने चिर-आश्रय-स्थल प्रभु के यहां से आते हैं।
बाल्यावस्था में स्वर्ग सामने बिछा रहता है, किन्तु ज्यों-ज्यों बालक बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों कारागार की सघनता उसे आच्छन्न करती जाती है।
वह प्रकाश से साक्षात्कार करता है और उल्लास में भरा हुआ सोचता है—
यह प्रकाश कहां से बह कर आता है।
युवावस्था की ओर बढ़ता हुआ वह अपनी उद्भव -दिशा से दूर भटकता जाता है, किन्तु प्रकृति का उपासक तब भी बना रहता है।
अपने मार्ग में दिव्य-सौन्दर्य से दीप्त वह ज्यों-ज्यों मनुष्य बनता जाता है,
साधारण जीवन की चकाचौंध में वह उसे निरोहित होते देखता है।"

('Our birth is but a sleep and a forgetting;
The soul that rises with us, our life's Star,

Hath had elsewhere its setting,
And cometh from afar;
Not in entire forgetfulness,
And not in utter nakedness,
But trailing clouds of glory do we come
From God, who is our home;
Heaven lies about us in our infancy!
Shades of the prison house begin to close
Upon the growing Boy,
But He beholds the light, and whence it flows
He sees it in his joy;
The youth, who daily farther from the East
Must travel, still is Nature's Priest,
And by the vision splendid
Is on his way attended;
At length the Man perceives it die away,
And fade into the light of common day.")

अनन्त और शाश्वत अंतः-प्रकृति में रमकर वर्ड्सवर्थ की कल्पना का सार इतना व्यापक हो गया है कि तुच्छ से तुच्छ उपकरणों में भी उन्हें विराट् शया छटपटाती नज़र आती है। 'लूसी ग्रे' (Lucy Gray) की निम्न पंक्तियों में कवि के कोमल हृदय की धड़कन सुन पड़ती है।

"सम -विषम पथों पर भटकती हुई वह बिना पीछे मुड़े एकाकी गीत गाती है, जो वायु के स्तरों में ध्वनित होता रहता है।"

("Over rough and smooth she trips along
And never looks behind;
And sings a solitary song
That whistles in the wind.")

कवि के लिए व्यक्त सत्य है—प्रकृति और मानव। इन्ही के आध्यात्मिक प्रणय का रूप उसे सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। इन्ही से अन्तर्भूत रूप-व्यापार उसके हृदय पर मार्मिक प्रभाव डाल कर उसके भावों का प्रवर्तन करते है। इन्हीं रूप-व्यापारों के भीतर उसे भगवदीय कला का साक्षात्कार होता है, इन्हीं का सूत्र पकड़ कर उसकी भावना अव्यक्त सत्ता का आभास पाती है। प्रकृति के रोम-रोम में, कण-कण में एक दिव्य अलौकिक शक्ति सन्निहित है। उसकी दृष्टि में प्रकृति निर्जीव

नहीं, प्रत्युत् सजीव एवं सप्राण है। वह मनुष्य के दुःख-सुख में योग देती है। वह उसके साथ रोती है, हंसती है। वह उसकी महत्त्वाकांक्षाओं, दुर्बलताओं, इच्छाओं, वेदनाओं तथा सुखों में सदैव साथ रहती है। एक स्थल पर वह कहता है :

"मेरा विश्वास है कि प्रत्येक पुष्प वायु के श्वास-प्रश्वास का अनुभव करता है।"

("And it is my faith that every flower enjoys
the air it breathes.")

प्रकृति ही उनके जीवन की क्रीड़ा एवं मधुर मुस्कान है —

("It is her privilege through all the years of
this our life to lead from joy to joy.")

प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में उसे निरंतर अव्यक्त सत्ता का आभास होता है:

"सूक्ष्म गति और अव्यक्त सत्ता,
जो चिन्त्य वस्तुओं की प्रेरक है, समस्त मंतव्यों का सार और
सभी वस्तुओं की संवाहिका-शक्ति।"

("A motion and a spirit that impels
All thinking things
All objects of all thoughts
And rolls through all things.")

कवि के कानों में निरंतर यह प्रश्न गूंजता रहता है—वह कौन शक्ति है, जो यह सब चुपचाप करती है ? अन्त में इस जिज्ञासा का समाधान होता है—प्रश्न का उत्तर भी कवि को स्वयं ही मिल जाता है कि निस्सन्देह इस अनुपम सृष्टि की स्रष्टा कोई अव्यक्त शक्ति है, जिसने मनुष्य-मात्र की रक्षा के लिये केवल अपनी इच्छा-शक्ति द्वारा इसका सृजन किया है। तो क्या मानव-जीवन में ज्योति का अन्तर्साक्ष्य करानेवाली प्रकृति ही है? कवि की वाणी मूक हो जाती है, भाव स्तब्ध हो जाते हैं। उसे प्रकृति के गर्भ में, सृष्टि के अन्तराल में अद्भुत, अलौकिक, दिव्य प्रकाश का आभास होता है, जो उसके रोम-रोम में परिव्याप्त होकर कविता द्वारा व्यक्त होता है।

———

रवीन्द्र, पन्त और कीट्स का सौन्दर्यवाद

श्री रवीन्द्रनाथ टाकुर
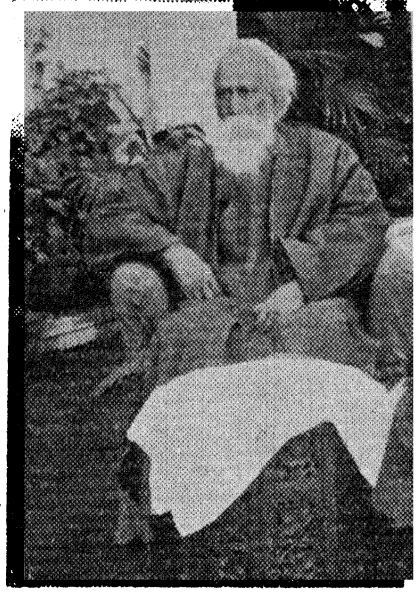
जॉन कीट्स

जन्म—२९ अक्टूबर, सन् १७९५

मृत्यु—२३ फरवरी, सन् १८२१

जन्मस्थान—लंदन (इण्लैंड)

निस्सीम सुषमा के संधान में कवि का अल्हड़ मन अस्पष्टता में टंगा जब भावना के छाया-पथ में रंगीन-रेखाएं खींच देता है तो न जाने कब के और कहां के देख दृश्य और सौंदर्य-चित्र उसकी कल्पना में उभर कर सजीव हो उठते हैं। उसके प्राणों की धड़कन में, भीतर ही भीतर घुमड़ते आवेगों और श्वासों की पुलक में मादक-सौंदर्य बिखर कर उसकी भावना की पार्श्वभूमि को रंजित कर देता है। दिव्य-सौंदर्य की सत्ता आनन्दमयी प्रेरणा बनकर निर्विशेष साधना में परिणत हो जाती है और तब असीम और ससीम का द्वंद्व एवं परोक्ष-अपरोक्ष का विभेद मिटकर सुन्दर को सत्य में तदाकार कर देता है।

कीट्स के शब्दों में "सौंदर्य ही सत्य है और सत्य ही सौंदर्य।" (Beauty is truth, truth Beauty) अर्थात् सौंदर्य वह शाश्वत चेतना है, जो सत्य और श्रेय-ज्ञान की चरम परिणति है। सौंदर्य का प्रसरणशील अस्तित्व सत्य की आत्मा और ज्ञान का आदि-मूल है, तीनों ने एक दूसरे की परिधि में अपने स्वरूप का निर्माण किया है।

कवि की सौंदर्य-भावना सत्य की जिज्ञासा बनकर जब भीतर के अरूप सौंदर्य को यत्र-तत्र छलकाती है तो अपने उमड़ते हृदय को संयत करके कोमल स्वर में वह गा उठता है—

"एइ चित्त आभार वृन्त केवल,
तारि 'परे विश्व-कमल........" (टैगोर)

"मेरे चित्त के वृन्त पर विश्व का यह प्रकाशमय कमल खिल उठा है।" उसके इस आत्म-मुग्ध गीत में सौंदर्य का वैभव और कला की पूर्ण-सिद्धि है। वह विश्व-व्यापी सौंदर्य के मंगलमय रूप में मानवता का नया अर्थ और अपने विश्वासों की मूक परिभाषा खोजता है। देह की वासना से मुक्त एक हल्की सी प्रणयाकांक्षा और प्रकृति की अलौकिक दृश्य-योजना में आत्मानन्द की झलक, साथ ही मर्म को भेदती हुई कोमल अन्तर्व्यथा, जो आत्म-रस से भीगी ऐन्द्रिय-लिप्सा के योग से सौंदर्यानुभूति जगाती है, किस प्रकार कवि के भावुक प्राणों को झकझोरती हुई उसके उत्फुल्ल हृदय को गुदगुदा देती है—यह पंत की निम्न पंक्तियों में देखिए:—

"यह विदेह प्राणों का बंधन,
अंतर्ज्वाला में तपता मन
मुग्ध हृदय सौन्दर्य-ज्योति को,
दग्ध कामना करता अर्पण।"

सौन्दर्य और अन्तर्मुखी-साधना

रवींद्र, कीट्स और पन्त तीनों ही सिद्धांततः अन्तर्मुखी सौंदर्य के उपासक हैं। अज्ञात रूप से अन्तर्जगत् की कल्पना को साकार करने वाले दृश्यलोक के प्रत्येक कम्पन में उन्हें सौंदर्य की छाया छटपटाती नज़र आती है। उनकी दृष्टि केवल वाह्य रूप-रंग पर ही नहीं टिकी, वरन् उन्होंने निसर्ग और चिरन्तन सौंदर्य को स्थूल प्रक्रियाओं से उठाकर आध्यात्मिक-दीप्ति प्रदान की है। रवींद्र लिखते हैं, "केवल आंखों के द्वारा नहीं, उसके पीछे यदि मन की दृष्टि मिली हुई न हो तो सौंदर्य को अच्छी तरह परखा नहीं जा सकता।" एक और स्थल पर उन्होंने लिखा है, "जिस प्रकार ज्ञान क्रमशः समस्त सत्य को हमारी बुद्धि-शक्ति की अधीनता के भीतर लाने के लिये सदैव प्रयत्नशील है, उसी प्रकार सौंदर्य-बोध भी समस्त सत्य को क्रमशः हमारे आनन्द के अधिकार में लायेगा। उसकी एकमात्र सार्थकता इसी में है।..................जहां हमें सत्य की उपलब्धि होती है, वहीं हम आनन्द को देख पाते हैं। जब द्वंद्व मिट जाता है तो सब कुछ सुन्दर हो जाता है अर्थात् सत्य और सुन्दर एक हो जाते हैं। हम समझ सकते हैं कि सत्य की यथार्थ प्राप्ति आनन्द है और वही चरम सौंदर्य भी है।"

रवींद्र का सम्पूर्ण साहित्य सौंदर्य की साधना है। उनके अन्तस में सौंदर्य-दीप्ति जब प्रखर हो उठती है तो असुन्दर मानों पर्दे की ओट में होकर उनकी दृष्टि से ओझल हो जाता है और सौंदर्य उद्भासित होकर उनके अन्तर्वाह्य को दिव्य

आलोक से इस प्रकार भर देता है कि विश्व का कण-कण उन्हें एक विचित्र आभा से ओत-प्रोत दीख पड़ता है।

"जगतेर मर्म ह'ते मोर मर्मस्थले
आनितेछे जीवन-लहरी—
विश्वेर निःश्वास लागि जीवन-कुहरे
मंगल आनंद—ध्वनि बाजे।"

"जगत् के मर्म से मेरे मर्मस्थल में जीवन-लहरी खिंची आ रही है। जीवन-कुहर में विश्व का निःश्वास संलग्न होने से मंगल और आनन्द की ध्वनि बज रही है।"

कवि बन्धनों से परे अनन्त सौंदर्य में व्याप्त होना चाहता है। उसकी अन्तर्मुखी चेतना विराट् छाया से तादात्म्य कर लेती है। प्रकृति के स्पन्दनों में मुखरित सौंदर्य उसकी उन्मन लहरियों में थिरकता हुआ अनिर्वचनीय भाव-परिधि में निर्बाध रूप मे छलक पड़ता है।

"जे आमार शरीरेर शिराय शिराय,
जे प्राण तरंगमाला रात्रि-दिन—
सेइ प्राण छूटियाछे विश्व दिग्विजये
से प्राण अपरूप छन्दे ताले लये
नाचिछे भुवने।
सेइ जुग-जुगान्तेर विराट् स्पन्दन
आमार नाड़ीते आज करिछे नर्त्तन।"

"हमारे शरीर की प्रत्येक शिरा में जो अहर्निश प्राण तरंगित होते रहते हैं— वे ही प्राण आज छूटकर विश्व-दिग्विजय के लिये निकल पड़े हैं। वे ही प्राण अपरूप छन्द, ताल और लय में भरकर त्रिभुवन में नर्त्तन कर रहे हैं और वे ही युग-युगांतर का विराट् स्पन्दन बनकर आज हमारी नस नस में थिरक रहे हैं।"

सृष्टि की प्रत्येक वस्तु अपनी निर्धारित सीमा के भीतर अपरिमेय एकत्त्वबोध के फलस्वरूप अभौतिक सौंदर्य के ध्येय तक पहुंचने का प्रयत्न कर रही है। कवि के हृदय में स्निग्ध आलोक और सौंदर्य की आध्यात्मिक-दीप्ति मन्द मन्द संचरण करती हुई अमर सौंदर्य-रेखाओं में खचित हो जाती है।

"एइ क्षणे
मोर हृदयेर प्रान्ते, आमार नयन-वातायने

ये तुमि रयेच चेये प्रभात-आलोके
से तोमार दृष्टि येन नाना दिन नाना रात्रि हते
रहिया रहिया,
चित्ते मोर आनिछे बहिया,
नीलिमार अपार संगीत
निःशब्देर उदार इंगित
आजि मने हय बारे-बारे
येन मोर स्मरणेर दूर परपारे
देखियाछ कत देखा
कत युगे, कत लोके, कत चोखे, कत जनताय,
कत एका।
सेइ सब देखा आजि शिहरिछे दिके दिके
घासे घासे निमिखे निमिखे,
बेनुबने झिलमिल पातार झलक-झिकमिके।"

"इस क्षण मेरे हृदय-प्रान्त और नयन वातायन में तुम प्रभात-आलोक झिलमिलाता देख रहे हो। तुम्हारी यह दृष्टि अनेक दिन और अनेक रात्रियों में से गुज़रती हुई नीलिमा का अपार संगीत और निःशब्द उदार संकेत मेरे हृदय में उतार रही है। आज मेरे मन में बार बार यही आ रहा है कि अपनी अतीत स्मृतियों के दूरंत छोर पर मैंने कितने दृश्य, कितने युग, कितने मनुष्य, कितनी आंखें, कितनी जनता और कितने ही एकान्त देखे हैं। जो कुछ मैंने देखा है—वह सब आज दिशा-दिशा में, तृण तृण में, बेणु-बन में, और पत्तों की चमक में प्रतिक्षण सिहर रहा है।"

यों तो सुन्दर-असुन्दर एक दूसरे के पूरक और ईश्वरीय-सत्ता के दो अभिन्नतम अंग हैं, किंतु सत्सौंदर्य कला-प्रवण आत्मा की चेतना और उसके कोमल भावों की अमूर्त्त माधुरी है। सौंदर्य-सत्ता का अजस्र स्रोत उसके अन्तर में प्रविष्ट होकर उसके चारों ओर इतना आनन्द, इतना उल्लास और आकांक्षा बिखेर देता है कि वह विस्मय-विमुग्ध हो विश्वात्मा के विराट् सर्जक से प्रश्न कर बैठता है—

"यदि प्रेम दिले ना प्राणे
केन भोरेर आकाश भरे दिले
एमन गाने गाने।

केन तारार माला गांथा
केन फूलेर शयन पाता,
केन दखिन हाउया गोपन कथा
जानाय काने काने ?"

"यदि तुमने प्राणों में प्रेम नहीं भरा तो प्रभात में आकाश को इस प्रकार गीतों से क्यों भर दिया है ? क्यों तारिकाओं की माला गूंथते हो ? क्यों पुष्प-शय्या बिछाते हो और क्यों दक्षिण-पवन आकर कान में कुछ गोपनीय बातें सुना जाता है ?"

सौंदर्य की बोध-चेतना इतनी सूक्ष्म है कि वह हृदय को तीव्रता से स्पर्श करती हुई सत्य की समग्रता में अन्तरंग चेतना का उन्मेष करती है। सच्चे सौंदर्य का ध्येय भड़कीले, प्रचारित एवं काल्पनिक प्रत्यक्ष से हटकर आत्म-चिन्तनशील सौंदर्य को जगाना है, जो मनुष्य-जीवन की आनन्दमयी प्रेरणा बनकर आत्म-भाव में स्थित हो जाता है। कवींद्र रवींद्र की महती आकांक्षा एक ओर अन्तर्निष्ठ-सौंदर्य की प्रेरणा का उत्स है और दूसरी ओर विश्वात्मा की असीम व्याप्ति उनकी आंखों में आलोक के स्निग्ध कण बनकर ढुलकती रहती है। रहस्यमयी कुहेलिका में कवि को सौंदर्य की अम्लान शिखा का झलमल-झलमल आलोक दीख पड़ता है, जिससे उसका मानस भावापन्न होकर काव्यमय पुलक में फूट पड़ता है।

"प्रकाश, मेरे प्रकाश, विश्वव्यापी प्रकाश, नयनों को चूमनेवाले प्रकाश,
हृदय को अपनी मधुरिमा से ओतप्रोत कर देने वाले प्रकाश !
आह, प्रिय ! प्रकाश मेरे जीवन के केन्द्रबिन्दु पर नर्तन कर रहा है।
प्रिय ! यह प्रकाश ही मेरे प्रणय--तारों को झनझना रहा है।
आकाश ज्योतित है, हवा उन्मादिनी सी बह रही है, आह्लाद समस्त पृथ्वी पर बरस रहा है।
तितलियां प्रकाश के समुद्र पर अपने पंख फैलाए तैर रही हैं। लिल्ली और जूही की कलियां प्रकाश-तरंगों के शिखर पर अठखेलियां कर रही हैं।
मेरे प्रिय ! प्रकाश प्रत्येक घन-खण्ड से टकराकर स्वर्णिम-आभा में बिखर जाता है और असंख्य रत्नों को बहुलता से बिखेर देता है।
प्रिय ! अनंत आनन्द और उल्लास पत्ते पत्ते पर बिखर कर फैल जाता है।
आकाश-गंगा ने अपने दोनों किनारों को डुबा दिया है, जिससे आनन्द की बाढ़ सी फूट पड़ी है।" (गीताञ्जलि से)

("Light, my light, the world-filling light, the eye-kissing light, heart-sweetening light!

Ah, the light dances, my darling, at the centre of my life; the light strikes, my darling, the chords of my love; the sky opens, the wind runs wild, laughter passes over the earth.

The butterflies spread their sails on the sea of light. Lilies and jasmines surge up on the crest of the waves of light.

The light is shattered into gold on every cloud, my darling, and it scatters gems in profusion.

Mirth spreads from leaf to leaf, my darling, and gladness without measure. The heaven's river has drowned its banks; and the flood of joy is abroad.")

निःसन्देह, रवीन्द्र का अन्तस दिव्य-सौंदर्य की प्रकाश-धारा से ओतप्रोत है। स्निग्ध आलोक का मधु-पराग झर-झर कर उनके प्राण और अलसाई चेतना को भिजो रहा है। कवि को लगता है जैसे दिग्दिगन्त में सौंदर्य की रश्मियां फूटकर बिखर गयी हैं और प्रकाश-धारा आकाश की सघनता को चीरकर पृथ्वी पर उतर आई है तथा आनन्द का स्रोत उमड़-घुमड़ कर उन्मुक्त गगन और पृथ्वीतल में व्याप्त हो गया है।

कवि अज्ञात-पथ का पथिक है। अनन्त सौदर्य में सिहरती उसकी इच्छाएं इतनी शिथिल हो गयी हैं कि वह अपनी स्वप्निल, मधुमयी कल्पना के प्रसार को अब विश्राम देना चाहता है।

"एवार फिराओ मोरे, लये जाओ
संसारेर तीरे,
हे कल्पने, रंगमयि ! दुलायोना
समीरे समीरे,
तरंगे तरंगे आर ! भुलायोना
मोहिनी मायाय।"

"हे कल्पने ! मुझे वायु के प्रत्येक प्रकम्पन के साथ मत झकझोरो, एक एक तरंग के साथ आंदोलित न करो। हे रंगमयि ! मुझे अपनी मोहिनी माया में मत भुलाओ, वरन् अब मुझे लौटा कर संसार के समीप ले चलो।"

कहना न होगा—रवीन्द्र की अन्तर्दृष्टि सूक्ष्मतम सौंदर्य में पैठ सकी है। वे अपने चित्रों की जो इतनी सम्यक् रूप-रेखा खींचने में समर्थ हुए हैं—इसका कारण है

कि वे सौंदर्य के अन्तर्बाह्य दोनों रूपों से अवगत हैं। कीट्स की सौंदर्यानुभूति भी बहिरंतर मान्यताओं से पृथक् ऊर्ध्व धरातल पर टिकी हुई तत्त्वतः उसी लक्ष्य की ओर संकेत करती है, जहां मानव गहरी सौंदर्य-भावना में मग्न अपनी पृथक् सत्ता की प्रतीति का विसर्जन कर देता है। उसकी पारदर्शी दृष्टि सत्यहीन विरूपता को चीर कर सौंदर्य की आन्तरिक शुचिता को स्पर्श करती है। 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' की सूक्ष्म व्यापकता में कवि की कल्पना ने तादात्म्य कर लिया है, जिससे उसका मानसिक-चिन्तन वस्तु-जगत की मांसलता से परे घनीभूत सौंदर्य-तत्त्वों में साकार हो गया है। कीट्स के शब्दों में, **"सुन्दर वस्तु चिर-आनन्ददायिनी है, उसकी माधुरी नित्य बढ़ती जाती है, उसका कभी ह्रास नहीं होने पाता।"**

("A thing of beauty is a joy for ever. Its loveliness increases; it will never pass into nothingness.")

अपने एक पत्र में वह लिखता है, **"मैंने सभी वस्तुओं में सौन्दर्य-तत्त्व को प्यार किया है, और यदि मुझे अधिक समय मिले तो मैं अपने को अमर बना जाऊं।"**

("I have loved the principle of beauty in all things, and if I had had time I would have made myself remembered.")

जब सर्वप्रथम कीट्स ने लिखना आरम्भ किया तो अपनी बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी सौंदर्य-दर्शन की लालसा, अन्तःकरण में छिपी हुई किसी अव्यक्त आकांक्षा की प्रेरणा, सत्य के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप और जीवन-सरिता में उठने वाले रंगीन बुदबुदों की चाह के कारण वह सौंदर्य के सपने सेने लगा। सौदर्य की छवि को उसने प्राणों में उतार लिया और सौंदर्य ही उसके जीवन का इतिहास बन गया।

मध्ययुगीन इटली के अतीत वैभव और ग्रीक-कला ने कीट्स को अत्यधिक प्रभावित किया था। 'हेलेनिज्म' उन दिनों ग्रीक सभ्यता एवं संस्कृति का द्योतक और तत्कालीन कलात्मक प्रवृत्तियों का पोषक समझा जाता था। कीट्स की कला-प्रवण आत्मा ग्रीस की प्रत्येक प्रतिमा, कलाकृति और प्रस्तर-खंड में सौंदर्य की खोज करती थी। यद्यपि उसे ग्रीक-भाषा की अधिक जानकारी न थी, तो भी उसने वहां के महाकवियों और कलाकारों की रचनाओं को अंग्रेजी अनुवादों के माध्यम से हृदयंगम कर लिया था। अपने अन्तर की चेतना में उसे अनवरत सौंदर्य-दीप्ति जगमगाती जान पड़ती थी और सरल शैशव की सुखद स्मृतियां सुन्दरता की धूप-छांह एवं अनिर्वचनीय पवित्रता मे ओत-प्रोत थीं। स्पेन्सर (Spenser) और लेहंट (Leigh Hunt) की श्रृंगारिक कविता और चेपमेन (Chapman) के

'होमर' को पढ़ कर जो कवि में सांस्कृतिक-चेतना और सौंदर्य-भावना जाग्रत हो गयी थी, वह उसकी तात्कालिक मानसिक स्थिति का निदर्शन कराती हुई निम्न पंक्तियों में व्यंजित हुई है—

"तब मुझे ऐसा अनुभव होता था मानों में आकाश-लोक से झांकने वाला प्रेक्षक हूं और मेरी परिधि में कोई नया नक्षत्र तैर आया है, अथवा में सुदृढ़ कोर्टेज् की भांति अपनी विराट् दृष्टि से समुद्र में घूर रहा हूं, जिसके सभी अनुयायी डेरियन पर्वत के शिखर पर स्थित चुपचाप एक दूसरे के मुंह को उद्दण्ड आशंका से देख रहे हैं ।"

("Then felt I like some watcher of the skies
When a new planet swims into his ken;
Or like stout Cortez when with eagle eyes
He stared at the Pacific—and all his men
Looked at each other with a wild surmise—
Silent, upon a peak in Darien.")

कीट्स ने ग्रीक-निवासियों की भांति सौंदर्य को उस मूर्च्छना में उपस्थित किया है, जो कल्पनाशीलता की अतिरंजित सूक्ष्मता के प्रति जिज्ञासा जगा जाती है। उसकी क्लासिकल प्रतिभा प्रत्यक्षतः मनोवेगों को तरंगित करती हुई अन्तरात्मा की प्रतिच्छाया है और सौंदर्य की ऐन्द्रिक-परिधि में भी उस अपर सत्य की ओर उन्मुख है, जहां अन्तर्द्रष्टा कलाकार की स्रोतभूत आत्मा उद्भासित होकर ज्ञान-स्फुलिंगों में एकरूप हो गयी है। 'ओड टु ए नाइटिंगेल' (Ode to a Nightingale), 'ओडऑन ए ग्रीसियन अर्न' (Ode on a Grecian urn), 'ओड ऑन मेलेंकली' (Ode on Melancholy) और 'ओड टु ऑटम' (Ode to Autumn) आदि गीतों में जो कला का सौदर्य निखर पड़ा है, वह कीट्स की अलौकिक प्रतिभा का परिचायक है। प्रकृति की अन्तरात्मा से अनवरत उठने वाले उच्छ्वास, आनन्द-स्वप्नों की अरूप, अनबूझ दुर्भेद्यता, प्रणय का आनन्द और मधुर टीस, साथ ही उन्मुक्त प्राणों की विह्वल, भ्रमशील इच्छा-आकांक्षाओं का घुमड़ता क्लांत राग—सभी मानों कवि के अन्तःसौन्दर्य की आभा से आलोकित हो उठा है। बुलबुल की स्वर-लहरी की गूंज में कवि को युग-युगान्तर की भावनाएं सिहरती सुन पड़ती हैं।

"अमर चिड़िया! तू मरने के लिए पैदा नहीं हुई। न ही वुभुक्षित पीढ़ियां तेरी चिरन्तनता को कुचल सकेंगी। आज की ढलती हुई रात्रि में जो स्वर मुझे सुन पड़ रहा है—वह प्राचीन-काल में राजा-रंक दोनों के द्वारा सुना गया था। कदाचित् इसी संगीतात्मक ध्वनि ने रूथ के व्याकुल कलेजे को, जबकि वह घर लौटने की चाह में अश्रुपूर्ण नेत्रों से एकाकी खेत में खड़ी थी,

चीर दिया था। यह वही स्वर है, जिसका आकर्षण अतीत-काल में प्रायः निर्जन परिवेश के इर्दगिर्द फैले निस्सीम समुद्र के भयोत्पादक हहराते फेनों के ऊपर खुलने वाले जादू के झरोखों से झांकने को बाध्य कर देता था।"

("Thou wast not born for death, immortal Bird !
No hungry generations tread thee down;
The voice I hear this passing night was heard
In ancient days by emperor and clown;
Perhaps the self-same song that found a path
Through the sad heart of Ruth, when, sick for home,
She stood in tears amid the alien corn;
The same that oft-times hath
Charmed magic casements, opening on the foam
Of perilous seas, in faery lands forlorn.")

हृदय के अंधेरे गह्वर से उमड़ता निराशा का कुहरा कवि को सारी पृथ्वीतल पर व्याप्त दीख पड़ता है। अतएव वह सद्भाव से भरा मस्त, उन्मुक्त विहंगिनी को सांसारिक अनुभूत क्लेशों, यहां के निवासियों की परेशानी और विपदाओं, वृद्धावस्था की शारीरिक क्लांति और असमर्थता, अस्थायी सौंदर्य और प्रेम की दुर्दशा के नज़ारों से दूर रहने का आदेश देता है। ऐहिक-जडता और दुश्चिंताओं से वह पक्षी की आन्तरिक कुहुक और स्वर के मार्दव को नष्ट नहीं करना चाहता।

"दूर तिरोहित हो जा, भाग जा और यहां की श्रांति, ज्वर और कष्टों को, जहां कि मनुष्य बैठकर एक दूसरे की आहें सुनते हैं, जहां क्लांत, जर्जर शरीर को लकवा मार जाता है, जहां यौवन ढलकर श्रीहीन, फिर ढांचा सा और बाद में मृत्यु के रूप में परिणत हो जाता है, जहां की चिन्तन-प्रक्रिया दुःख-दर्दों से भरी है तथा निराशाएं स्वस्थ चेष्टा को म्लान कर देती हैं, जहां सौन्दर्य से चमकते नेत्र बुझ जाते हैं और नए प्रेम का ज्वार दूसरे दिन ही मंद पड़ जाता है, सर्वथा भुला दे, जिसकी कि हरे पत्तों के मध्य में रहकर तू कभी कल्पना भी नहीं करती।"

("Fade far away, dissolve, and quite forget
What thou among the leaves hast never known,
The weariness, the fever, and the fret
Here, where men sit and hear each other groan;
Where palsy shakes a few, sad, last grey hairs,
Where youth grows pale, and spectre-thin, and dies;
Where but to think is to be full of sorrow
And leaden-eyed despairs;
Where Beauty cannot keep her lustrous eyes,
Or new Love pine at them beyond to-morrow.")

'ग्रीसियन अर्न' पर लिखने की प्रेरणा कीट्स को लॉर्ड हॉलैंड के संगमरमर के कलात्मक, सुन्दर कलश को देखकर हुई थी, जो अब भी केंसिंगटन नगर में हॉलैंड-हाउस के उद्यान में सुरक्षित रखा है। इसमें एक बलिदान का सजीव दृश्य अंकित है, जो ग्रीस की मूर्त्ति-निर्माण-कला, वर्ण-योजना एवं सूक्ष्म रंगों की प्रकाश-छाया से प्रभावित हुआ है। कलश के बिल्कुल सामने एक वेदी है, जिसके समीप एक पुजारी खड़ा है। वेदी के ऊपर एक व्यक्ति वाद्य बजाने की भावभंगी में चित्रित किया गया है, दो हरे-भरे वृक्ष पास ही लहलहा रहे हैं और एक बैल बलि के लिये लाया जा रहा है।

कलश के दूसरी ओर कुछ युवक वृक्ष के नीचे गीत गा रहे हैं। उनके पास ही वाद्य-संगीतज्ञ खड़े हैं और दो प्रेमिक परस्पर चुम्बन किया ही चाहते हैं। संगमरमर के वाद्य-यंत्र का मूक संगीत, कभी न गाये जाने वाले गीत, प्रणय की शान, अर्द्ध-अनुभूत स्निग्धता, जो कभी फलप्रद नहीं हो सकती ये सब मानों उस पात्र पर वास्तविकता से भी अधिक सजीव और आकर्षक प्रतीत हो रहे हैं। कवि की दृष्टि स्थूल को छोड़ कर सूक्ष्म-सौन्दर्य में रमना चाहती है। वह कलश-पात्र को सम्बोधन करके कहता है:—

"सुने हुए गीत मधुर होते हैं, किन्तु जो कभी सुने नहीं जाते, वे उससे भी अधिक मधुर हैं; अतएव, ए मृदुल वाद्य ! नित्य बजते रहो—पार्थिव कानों के लिए नहीं, वरन् अपार्थिव, सूक्ष्म चेतना के खातिर उन गीतों को सुनाने के लिए, जो निःस्वर हैं।

सुन्दर युवक ! इन वृक्षों के नीचे अपने गीत की तुम कभी अवहेलना न करोगे, न ही ये वृक्ष कभी शुष्क, पत्रहीन होंगे।

साहसी प्रेमी ! तुम अपने लक्ष्य पर पहुंचकर भी कभी, किसी भी स्थिति में चुम्बन न कर पाओगे, तो भी इसके लिये कुछ दुःख न करना, क्योंकि वह (तुम्हारी प्रेयसी) कभी भी तुम्हारी दृष्टि से ओझल न होगी।

यद्यपि इस स्वर्गीय-सुख के आस्वाद से तुम सदैव वंचित रहोगे, तथापि तुम्हारा प्रेम स्थायी होगा और वह नित्य ही सुन्दरी बनी रहेगी।"

("Heard melodies are sweet, but those unheard
Are sweeter; therefore, ye soft pipes, play on;
Not to the sensual ear, but, more endeared,
Pipe to the spirit ditties of no tone;

Fair youth, beneath the trees thou canst not leave
Thy song, nor ever can those trees be bare,
Bold Lover, never, never canst thou kiss,
Though winning near the goal—yet do not grieve;
She cannot fade, though thou hast not thy bliss,
For ever wilt thou love, and she be fair !")

विश्व के विराट् रंगमंच पर पार्थिव वस्तुएं नित्य बनती और बिगड़ती है, केवल शाश्वत सौंदर्य और सत्यता की प्रकाश-धारा दिग्दिगन्त में व्याप्त होकर मानव-हृदयों में जाग्रत रहती है।

"ओ मूक निर्मिति ! जिस प्रकार स्थायित्व की भावना हमारी खिन्नता को अपहृत करती है, उसी प्रकार तू हममें प्रेरणा और प्रोत्साहन भर। ग्राम्य-दृश्यों के प्रदर्शक ओ निर्जीव पात्र ! इस युग की वृद्धता जब नष्ट हो जाएगी, तब भी हमसे पृथक् इतर मानवों के दु:ख-क्लेशों के मध्य तू अमर बना रहेगा। तू मनुष्य का मित्र बनकर निरन्तर यह सीख देता है, 'सौन्दर्य सत्य है, सत्य ही सौन्दर्य'—पृथ्वी पर आकर इसी सारतत्त्व को अवगत करना और इसके रहस्य को हृदयंगम कर लेना अनिवार्य है।"

("Thou, silent form ! dost tease us out of thought
As doth eternity. Cold Pastoral !
When old age shall this generation waste,
Thou shalt remain, in midest of other woe
Than ours, a friend to man, to whom thou say'st;
Beauty is truth, truth beauty—that is all
Ye know on earth, and all ye need to know.")

रवीन्द्र और कीट्स ने जिस प्रकार सत्सौन्दर्य की आभा को अपने अमर कृतित्त्व में ज्योतित किया है, उसी प्रकार पन्त के गीत भी सौंदर्य के झिलमिल प्रकाश से जगमगा उठे हैं। पन्त सौदर्य-प्रेमी है और प्रत्येक भावमयी वस्तु में सौंदर्य के अतुल वैभव को बिखरा पाते है।

"न जाने कौन अये द्युतिमान !
जान मुझको अबोध, अज्ञान
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूंक देते छिद्रों में गान।"

प्रकृति के अणु-अणु में कवि ने सौदर्य की रहस्यमयी छाया झलमलाती देखी है। उसे विश्वात्मा में मूक संकेत, नभ की निस्सीमता में दिव्य स्फुलिंग, सद्यःस्फुट सुमनों के सौरभ में अचिन्त्य सुवास, पक्षियों की मधुर कूक में मौन निमंत्रण, शशि की निर्मल ज्योत्स्ना में रजत हास, उषा की अरुणिमा में सार्वभौम सरसता, संध्या

की झलमलाहट में मार्मिक सूक्ष्मता और जगत् की अनित्य सत्ता में चिरंतन सत्य के दर्शन होते हैं। उसे सृष्टि के उन्मुक्त प्रसार में अज्ञात शक्ति व्याप्त दीख पड़ती है।

"एक ही तो असीम उल्लास,
विश्व में पाता विविधाभास,
तरल जलनिधि में हरित विलास,
शरत अम्बर में नील विकास,
वही उर उर में प्रेमोच्छ्वास,
काव्य में रस, कुसुमों में वास।"

अपने भीतरी सौन्दर्योल्लास को पन्त ने शैशव की सहज, सरल सुषमा में भर-कर देखा है।

"उसके उस सरलपने से
मैंने था हृदय सजाया,
बहु ललित कल्पनाओं का
कह कल्पलता अपनाया।"

कवि के लिये सौन्दर्य 'विश्व का अन्तरतम संगीत है।' उसमें उसकी सूक्ष्म-चेतना अन्तर्हित है। सर्वमान्य-सौन्दर्य तत्त्वों का उद्घाटन करते हुए उसने अपनी अरूप वृत्तियों को कविता में साकार किया है।

"भूतियों का दिगंत-छवि-जाल
ज्योति-चुम्बित जगती का भाल!
राशि राशि विकसित वसुधा का यह यौवन-विस्तार?
स्वर्ग की सुषमा जब साभार
धरा पर करती थी अभिसार!
प्रसूनों के शाश्वत शृंगार,
(स्वर्ण-भृगों के गंध-विहार,)
गूंज उठते थे बारंबार,
दृष्टि के प्रथमोद्गार!
अये, विश्व का स्वर्ग-स्वप्न, संसृति का प्रथम प्रभात।"

विश्व की प्रत्येक वस्तु को क्षणभंगुर मानते हुए भी पन्त जीवन में पूर्णता लान के लिये निरपेक्ष जागरूकता के कायल हैं। वे अन्तरंग सरसता में डूबकर उदात्त भावों की सृष्टि करना चाहते हैं।

"जीवन के अंतस्तल में
नित बूड़ बूड़ रे भाविक!"

शरीरज सौन्दर्य की व्यक्ति

यहां यह लिखना अप्रासंगिक न होगा कि रवीन्द्र, कीट्स और पन्त सौन्दर्य की निर्बन्ध धारा में बहते हुए भी शरीरज मादकता और ऐहिक उन्माद की तरंगित भावनाओं से अछूते न रहे। दिव्य-सौंदर्य का सूक्ष्म आवरण हटते ही वस्तुजगत् की चमक-दमक में नारी की मधुर छवि, अंग-प्रत्यंग का चपल विलास, जगमगाते रंगीन रेशमी पट से झांकती उसके कोमल तन की श्वेताभा उनके नेत्रों में सहसा कौंध जाती थी, जिससे वह कुछ क्षणों के लिये अपने तन-मन की सुधि खो देते थे। रवींद्र निरावरण नारी की शोभा में सराबोर होकर उसकी नग्न पावनता को भासमान देखना चाहते हैं।

"फेलो गो वसन फेलो—घुचाओ अंचल !
परो शुभ्र सौन्दर्येर नग्न आवरण।"

"एजी ! वस्त्र फक दो, अंचल हटाओ। पहन लो शुद्ध सौन्दर्य का नग्न आवरण।"

'देहेर-मिलन' में कवि का अग-प्रत्यंग नारी के अग-प्रत्यंग के लिये छटपटा रहा है।

"प्रति अंग कांदे तव प्रति अंग तरे,
प्राणेर मिलन मागे देहेर मिलन।
हृदये आच्छन्न देह हृदयेर भरे,
मुरछि पड़िते चाय तव देह परे।"

"अंग-प्रत्यग तेरे अग-प्रत्यंग के लिये रो रहा है। प्राण तेरे देह का मिलन मांगता है। हृदय से आच्छन्न देह हृदय के आवेग मे भरा तुम्हारे देह पर मूर्च्छित हो कर गिर पड़ना चाहता है।"

सौंदर्योपासक कवि की अनुरक्ति नारी की रमणीयता मे सिमटकर केन्द्रित हो गयी है। नारी का शरीरज आकर्षण उसकी सौंदर्य-चेतना को उद्बुद्ध करता हुआ उसके प्राणों को उच्छ्वसित करता है।

"नारीर प्राणेर प्रेम मधुर कोमल,
विकसित यौवनेर बसन्त समीरे।
कुसुमित होये ओइ फूटे छे बाहिरे,
सौरभ सुधाय करे पराण पागल।"

"नारी के प्राणों का मधुर, कोमल प्रेम यौवन के बासंती समीर को झकझोर रहा है। कुसुमित होकर बाहर फूट-फूट पड़ रहा है और सौरभ-सुधा प्राणों को उन्मत्त बना रही है।"

रवींद्र बाबू की प्रारम्भिक रचनाओं 'प्रभात-संगीत', 'निर्झरेर स्वप्न-भंग', 'कड़िओ कोमल', 'अनन्त जीवन', 'अनन्त मरण' आदि में मादक उन्माद है, हृदय को तरंगित करने वाला भावावेश है और जीवन के मधुर क्षणों की सरसता फूट पड़ी है। काल्पनिक स्मृति-चित्र सहसा कवि की भावनाओं को विलोड़ित करते हैं, अश्रु ढारना अतीत वर्त्तमान् की मीठी कुहुक से चहक पड़ता है, आह्लाद उसके प्राणों में उतरकर हृदय-वीणा के तार-तार को झंकृत कर देता है और अकूल सागर में उमड़ती आशा-निराशा की ऊर्मियां बन्धनमुक्त होकर छलक पड़ रही हैं।

"ना जानि केनरे एत दिन परे
जागिया उठिल प्राण,
ओरे, उथिल उठेछे वारि,
ओरे, प्राणेर वासना प्राणेर आवेग
रुखिया राखिते नारि।"

"न जाने क्यों आज इतने दिन बाद मेरे प्राण जाग उठे हैं। ओरे, जल उच्छ्वसित हो उठा है। प्राणों का आवेग, प्राणों की वासना आज रोके नहीं रुक रही है।"

कवि की परवर्त्ती रचनाओं 'उर्वशी' और 'विजयिनी' में उसके तरुण-हृदय का उष्ण रक्त प्रवाहित हो रहा है। प्रणय की मूर्च्छना उसे अन्तरिक्ष में व्याप्त दीख पड़ती है और प्रेयसी की मुस्कानों मे उसका समस्त अन्तर्वाह्य आलोकित हो रहा है।

"अंगे अंगे यौवनेर तरंग उच्छल
लावण्येर माया-मंत्रे स्थिर अचंचल
बन्दी होये आछे।"

"अंग-प्रत्यंग से यौवन की उच्छल तरंगें उठकर लावण्य के माया-मंत्र में स्थिर, अचंचल होकर बन्दी हो गयी हैं।"

देखिये पन्त की प्रणयिनी भी किस प्रकार इठलाती, बलखाती उसके एकाकी हृदय-कोण में मन्द-मन्द संचरण करती हुई आती है—

"अरे, वह प्रथम मिलन अज्ञात
विकम्पित उर मृदु, पुलकित गात
संशकित ज्योत्स्ना सी चुपचाप
जड़ित-पद नमित पलक दृक्-पात।"

रवींद्र की भांति पन्त भी भावातिरेक में विभोर सौंदर्य की अनूठी कल्पनाओं से अनुप्राणित हैं। प्रेयसी की मुखच्छवि में कवि की दृष्टि अटकी है, उसकी मादक चेष्टाओं के प्रत्येक इंगित पर उसके गीतों का शब्द-शब्द थिरक रहा है। प्राणों की पुलक, हृदय की आकुलता और जीवन का समस्त रस ढलकर उस एक केंद्रबिन्दु

में ही जा सिमटा है। स्वप्न-संगिनी की चाह में उसकी भावनाएं तरंगित होकर छन्द-छन्द में छहर उठी हैं।

"मृदूर्मिल सरसी में सुकुमार
अधोमुख अरुण-सरोज समान,
मुग्ध कवि के उर के छू तार,
प्रणय का सा नव-गान,
तुम्हारे शैशव में, सोभार,
पा रहा होगा यौवन-प्राण;
स्वप्न-सा, विस्मय-सा अम्लान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !"

प्रकृति का प्रत्येक तत्त्व कवि को उस अनिन्द्य सुन्दरी की सौंदर्य-आभा से दीप्त दीख पड़ता है और दृश्य-जगत् की अनेकरूपता में उसके अन्तर का माधुर्य आविर्भूत होकर छलक पड़ा है। 'पल्लव','ग्रंथि', गुंजन' और अनेक स्फुट उद्गीतियों में कवि की प्रणयानुभूति जाग्रत होकर सरस कल्पना में गुंथ गई है, किंतु इधर की रचनाओं में कवि अन्तरात्मा की ओर मुड़ा है और उसकी सौंदर्य-चेतना सूक्ष्म होकर स्थूल के बहुत ऊपर उठ गयी है। ऐन्द्रिक-उपभोग की लालसा आत्मा की विशदता और सात्विक उल्लास में परिणत होकर जीवन तत्त्वों में पैठना चाहती है।

"निभृत स्पर्श पाकर निसर्ग का,
आत्मा गोपन करती चिन्तन।"

कीट्स सिद्धान्ततः सूक्ष्म सौन्दर्य का साधक होते हुए भी पार्थिव सौंदर्य का कल्पक है। उसकी सरस कल्पना इतनी सचेतन और प्रखर है कि वह वाह्य-सौंदर्य के नूतन आलोक और धुआंधार रूप में रमकर चित्रमय हो उठी है। कवि के जीवन की सबसे बड़ी ट्रेजेडी है कि वह अपनी काव्य-साधना के आरम्भ में ही, जब कि उसकी केवल एक कृति 'एंडीमिओन' (Endymion) लिखी गयी थी, एक आकर्षक किंतु अविश्वस्त युवती फेनीब्रॉन के स्नेहजाल में फंस जाता है, जो उच्छृंखल प्रकृति की होने के कारण अपने प्रेमियों को तड़पाने में ही सुख का अनुभव करती है। फेनी के प्रेम को जीतने में, उसे सर्वथा अपनी बनाने में कवि के सभी प्रयत्न विफल होते हैं।

"आह ! यदि तुम मेरी दमित आत्मा को निर्धन, निस्सत्व और क्षणिक दर्प से अधिक महत्त्व देती हो तो प्रेम की पावन-धारा को किसी दूसरे के स्पर्श से अपावन न होने दो; अथवा अभिमंत्रित केक को निर्मम हाथों से न तोड़ो। सद्यः-स्फुट पुष्प को कोई और न छूने पाए। यदि तुम ऐसा नहीं चाहती तो मेरी आंखें सदैव के लिए मुंद जाएं और यह प्रणय-व्यथा चिर-विश्रांति में खो जाए।"

("Ah! if you prize my subdued soul above
The poor, the fading, brief pride of an hour,
Let none profane my Holy sea of love,
Or with a rude hand break
The sacramental cake—
Let none else touch the just new-budded flower.
If not, may my eyes close,
Love! on their last repose.")

'लामिया' (Lamia), 'हाइपीरियन' (Hyperion), 'इजाबेला' (Isabella) और 'दि ईव ऑफ् सेंट एगनीज़' (The Eve of St. Agnes) में अधिकतर रंगीन कल्पना और सरसा भावों की सृष्टि हुई है। 'दि ईव आफ् सेंट एगनीज़' में एक लावण्यमयी युवती की कथा है, जो सेंट एगनीज़ की मंगलमयी रात्रि को एक किले में चिर-बन्दी बना दी गयी थी। नव-प्रेमिकाएं जिस दिन अपने अपने प्रेमियों के कल्पित स्वप्न संजोती हैं, उसी दिन मैडलेन का प्रणयी पौरफिरो भी अपनी जान पर खेल कर जैसे तैसे चुपके से अपनी प्रियतमा के कमरे में छिप जाता है, क्योंकि चारों ओर भयंकर, ज़हरीले सर्प किले की परिधि में बिछे पड़े हैं। युवती जब निद्रा मे जागती है तो अपने प्रेमी को देख कर उल्लास से भर जाती है।

"शरद् ऋतु का चन्द्रमा पूर्ण ज्योतित होकर खिड़की से झांकता हुआ मैडलेन के सुन्दर वक्ष पर स्निग्ध प्रकाश बिखेर रहा था। जैसे ही स्वर्गिक आभा और आशीर्वादों से भरी वह नीचे झुकी, उसके परस्पर बद्ध करों पर गुलाबी मादकता फैल गई और उसके रजत क्रॉस-चिन्ह पर हल्का नीला प्रकाश तथा उसके केशों पर अनिर्वचनीय ऋषि-तुल्य शोभा व्याप्त हो गई। वह नूतन वस्त्रों से सुसज्जित स्वर्गलोक की सुन्दर अप्सरा सी प्रतीत होती थी, जिसके पास केवल परों का अभाव था। पौरफिरो उसे देखते ही मूर्च्छित हो गया। वह घुटनों के बल बैठ गई, पवित्रता की मूर्तिमान् प्रतीक सी, जिसे पार्थिव कलुषता स्पर्श तक न कर सकती थी।"

("Full on this casement shone the wintry-moon,
And threw warm gules on Madeline's fair breast,
As down she knelt for heaven's grace and boon;
Rose-bloom fell on her hands, together prest,
And on her silver cross amethyst,
And on her hair a glory, like a saint;
She seemed a splendid angel, newly drest,
Save wings, for heaven;—Porphyro grew faint;
She knelt, so pure a thing, so free from mortal taint.")

'लामिया', 'हाइपीरियन', इज़ाबेला' आदि अन्य रचनाओं में भी कवि की तात्कालिक मनःस्थिति का परिचय मिलता है, जिनमें फेनी के प्रेम में विभोर उसका उच्छ्वसित उल्लास प्रस्फुटित हुआ है। सौंदर्य की गम्भीर साधना को भुला कर प्रेयसी की सजल सुधि में मग्न कवि को ऐसा प्रतीत होता है मानों सृष्टि का कण कण अनुराग से रंजित है। प्रणय-कौतुक के विचित्र स्वप्न, रंगीन कल्पना का उन्मुक्त प्रसार एवं यौवन की उद्दाम लालसाएं उसकी परवर्त्ती रचनाओं में आद्योपान्त विद्यमान् हैं। उसकी भीतरी कुहुक छहर छहर कर बरस रही है, आलोक झिलमिला उठा है और आनन्द उत्सारित होकर चारों ओर फूटा हुआ सा दीख पड़ता है। अपने मित्र रेनोल्ड्स को कीट्स ने एक पत्र में लिथा था, "यदि मैं निश्चित, स्वस्थ और सुव्यवस्थित चित्त रहूं और मेरे फेफड़े इतने मजबूत हों कि मैं बड़े से बड़े धक्कों, वेदनाओं और परेशानियों को बिना विचलित हुए सह सकूं तो चाहे मुझे अस्सी वर्ष क्यों न जीना हो मैं शान्तिपूर्वक सुख से जीवन बिता सकता हूं। किंतु मैं अपने शरीर को श्रांत और शिथिल अनुभव कर रहा हूं। इतना ऊंचा उठना मेरी सामर्थ्य से परे है, मैं विवश होकर अपनी इच्छाओं का दमन कर रहा हूं।"

जीवन की मधु-बेला में भाग्य कवि को धोखा देता है। उसके दो भाइयों की मृत्यु हो जाती है और फेनी उससे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेती है, जिससे उसका प्रणय-वंचित, भावुक हृदय अत्यन्त व्यथित हो उठता है और वह बीमार पड़ जाता है।

फरवरी सन् १८२० में शीत लग जान के कारण कीट्स की शारीरिक स्थिति और भी बिगड़ जाती है और उसे खून की कै होती है। कवि को समीप आती हुई मृत्यु दीखने लगती है, "मैं इस खून के रंग को पहिचान रहा हूं, यह नसों में से बह कर आया हुआ खून है, जिसका एक एक क़तरा मेरी मृत्यु का सूचक है। मैं जल्दी ही मरने वाला हूं।"

डॉक्टरों ने शीत-ऋतु में उसे इंग्लैंड से कहीं अन्यत्र जाने की सलाह दी, किंतु फेनी की स्मृति और यदा-कदा उसके दर्शनों का लोभ संवरण करना उसके लिये असह्य था। जैसे तैसे समझाने-बुझाने पर आठ सितम्बर को अपने एक मित्र जोजेफ सेवर्न के साथ वह ग्रेवसेण्ड के लिये रवाना हो गया। उसे विदित था कि वह लौट कर फिर कभी इंग्लैंड नहीं आयेगा। अपने मरने से पूर्व कवि ने एक बहुत ही करुण पत्र लिखा, "मैं मरना गवारा कर सकता हूं, पर फेनी से बिछुड़ना मुझे सह्य नहीं।" वियुक्त प्रेयसी की स्मृति से आकुल कवि की छटपटाती आत्मा कुछ दिन बाद ही, जब कि वह केवल पच्चीस वर्ष का था, मृत्यु में चिर-विश्राम पा जाती है।

साधन और साध्य

कहने की आवश्यकता नहीं कि रवीन्द्र, पन्त और कीट्स तीनों ही पार्थिव में अपार्थिव प्रेम की व्यंजना और वाह्य रूप-रंग में सौंदर्यानुभवी अन्तरात्मा की सूक्ष्म अनुभूति करना चाहते हैं। तीनों के लिये सौंदर्य साधन है और साध्य भी। तीनों ही सौंदर्य के निर्भर संकेतों में अपनी रंगीन कल्पना की छाया भरना चाहते हैं, तीनों में शृंगारिक भावनाएं और उन्मन हृदय की मनोज्ञ अतिशयता के कारण सौंदर्य से अधिक प्रेम-विदग्धता और वासना का द्वंद्व ही अधिक मिलता है। वर्त्तमान् से असंतोष, अतीत से सहानुभूति और अन्तर्वाह्य दोनों प्रकार के सौंदर्य को स्रष्ट करने की प्रवृत्ति तीनों कवियों में समान रूप से वर्त्तमान् है।

रवीन्द्र की कृतियों में सौंदर्य का सब से विशद प्रतिपादन हुआ है। दृश्य-जगत् के करुणतम, कोमल चित्रों में उन्हें अनन्त सौंदर्य बिखरा हुआ दीख पड़ता है। अनादि विश्व-वीणा से स्वर निस्सृत होकर मानों उनके लिये सौंदर्य-रस की वृष्टि कर रहे हैं। कवि के शब्दों में, "जब मैं निश्चेष्ट हो जाऊं तब भी मेरे जीवन का यह नृत्य मेरे प्रसुप्त शरीर के आसपास होता रहेगा ! तब भी मेरे हृदय में कम्पन रहेगा, नसों में रक्त का प्रवाह बहता रहेगा और मेरे जीवन के लाखों परमाणु विश्व-गायक की वीणा की झंकार से झंकृत होते रहेंगे।"

सौंदर्य की मधु-धारा विश्वास का कुहरा बनकर इस महाकवि के जीवन पर छाया रहा, जिससे वह सौंदर्य की साधना करते करते ही जिया और मरा। पन्त और कीट्स ने भी मूलतः सौंदर्य के उन्मुक्त स्वरूप को अपनाया है। स्थूल और सूक्ष्म दोनों में ही उनकी वृत्ति रमी है। सौंदर्य की आत्मा में झांककर वे उसके वाह्य रूप-रंग पर आकृष्ट हुए हैं। सूक्ष्म सौंदर्य की शालीनता और प्रणय का उन्मद-राग उनकी धमनियों में साथ साथ प्रवाहित हुआ है। विश्व-जीवन के झिलमिल प्रतिबिम्बों में रम कर पन्त की सूक्ष्म-चेता आत्मा इतनी तन्मय और तद्रूप हो गयी है कि जीवन की कुरूपता में भी उन्हें अनन्त छवि के दर्शन होते हैं।

"सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर,
मानव ! तुम सबसे सुन्दरतम,
निर्मित सब की तिल-सुषमा से
तुम निखिल सृष्टि में चिर-निरुपम।"

हार्डी और प्रसाद का प्रकृति चित्रण और नियतिवाद

टॉमस हार्डी

जन्म—२ जून, सन् १८४०

मृत्यु—सन् १९२८

जन्मस्थान—डॉरचेस्टर (इंगलैण्ड)

यों तो हार्डी और प्रसाद की भावधारा उपन्यास—नाटक इन दो नितान्त भिन्न क्षेत्रों में विकसित हुई है, तथापि दोनों के महान् कृतित्त्व में भीतर का भीम-वेग भरा हुआ होने पर भी एक तटस्थ वृत्ति एवं निष्क्रिय निस्संगता के दर्शन होते हैं। उनके सूक्ष्म, चेतना-केन्द्रों में जो अनवरत संघर्ष चल रहा है, उनके अन्तर का कोलाहल जो बाहर की एकांत-साध बनकर व्यक्त हुआ है और जीवन के मूल में जो व्रयता और विसंवादी स्वर बज रहे हैं—उससे उनकी बौद्धिक-साधना निःस्व हो उठी है और कर्म का अंतरंग आग्रह जीवन के असामान्य क्रम में बदल गया है।

प्रकृति-चित्रण

असाधारण व्यक्तियों की आंतर-प्रेरणा मानवात्मा की शाश्वत पुकार है और उनका अमूर्त संसार भावाधिक्य में आत्म-मर्यादा से अनुप्राणित होकर बाह्य-गोचर में बिम्बित हो उठता है। हार्डी और प्रसाद दोनों ही सापेक्षवादी द्वैत चिन्तक हैं और दोनों ने अनुभूति की अखण्ड एकरूपता का अविकारी आत्मा से असीमित सम्बन्ध जोड़ कर निरपेक्षता में सापेक्ष तत्वों को आरोपित किया है। प्रकृति इन दोनों के लिए मानवी-भावों की प्रतिच्छाया है, वे उसके चित्रात्मक-रूप पर मुग्ध नहीं हैं, वरन् भौतिकवादी पार्थिव पदार्थों में अपनी अनेक सूक्ष्म परि-कल्पनाओं का व्यंजक रूप देखते हैं। दोनों की बुद्धि इतनी सजग और तत्पर है कि प्रकृति के भिन्न भिन्न दृश्यों को लेकर जीवन के वैयक्तिक पक्षों का सफल उद्घाटन

करती हुई दो विरोधी भावों जैसे सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आकर्षण-विकर्षण, दया-आक्रोश एवं मानव की सम-विषम वृत्तियों का प्राकृतिक-वस्तुओं से स्थूल के वायवीकरण द्वारा साम्य दर्शित करती है।

हार्डी की बोध-चेतना प्रसाद से भी अधिक सूक्ष्म और तीव्र है, उसकी तीखी दृष्टि सार-वस्तुओं को तुरन्त पकड़ लेती है और मंत्र-मुग्ध सी अपने आग्रह एवं अस्तित्व को लय करके आश्चर्यजनक तटस्थता से प्राकृतिक-उपादानों में चेतना के स्फुरण का अनुभव करती है। न केवल कला की विचित्रता को अपना कर हार्डी ने दृश्य-जगत् की मानसी-झांकी द्वारा उसकी अनिवार्य सौन्दर्य-साधना को पूर्ण किया है, वरन् स्वाभाविक दृश्य-चित्रों एवं ठेठ कौटुम्बिक-जीवन में एकात्मरूप होकर उसने ग्राम्य-प्रकृति का मनोरम, यथातथ्य चित्रण किया है, जिसमें निसर्ग शोभा-श्री एवं आंतरिक हर्ष-विषाद फूट पड़ा है। आर्द्र, सुगंधित बन का कोमल प्रसार, शान्ति एवं प्रचण्ड वात्यावेग का आह्वान करती हुई हवा की तदनुरूप ध्वनि, रात और दिन की सूक्ष्म गति के साथ नित्य परिवर्त्तित होता हुआ मैदान की अव्यक्त सत्ता का अगोचर रूप और सबके अन्त में पहाड़ियों, घाटियों एवं उन रम्य स्थलों से परिश्रमी किसानों का रहस्यमय सम्बन्ध, जहां कि वे रहते, खाते और श्वास लेते हैं—आदि गोचर यथार्थ के गृहीत तत्वों को सुकुमार भावना-सूत्र में ग्रथित करके उसने अपनी कल्पना का प्रसार किया है।

"गोल आवर्तों एवं गड्ढों का धूमिल विस्तार उठकर सच्ची संवेदना में सन्ध्या की सघनता से एकरूप होने की इच्छा रखता हुआ सा प्रतीत होता है। नभ से उतरता हुआ अंधकार जिस तेजी से चारों ओर फैल रहा है—उसी गति से मैदान भी जल्दी जल्दी उच्छ्वास फेंक रहा है। ......अब वह स्थान एक व्यग्र औत्सुक्य से भर गया है, क्योंकि जब अन्य वस्तुएं खोई-सी उनींदी हो जाती हैं तो मैदान शनैः शनैः सजग होकर कुछ सुनता-सा ज्ञात होता है। प्रत्येक रात्रि को उसकी दानवी आकृति कुछ गुनती सी नजर आती है, किन्तु उसे विभिन्न वस्तुओं को संशयात्मक परिस्थितियों से गुजरकर इस प्रकार अविचल रूप से प्रतीक्षा करते करते शताब्दियां बीत गई हैं। वह सिर्फ अन्तिम स्थिति अर्थात् अपने सर्वनाश की बाट जोह रहा है। ईगडन मैदान के दृश्यों में रमा हुआ सांध्य-प्रकाश समस्त वातावरण को अवसाद रहित चारुता, आडम्बरहीन प्रभाव, जागरूक चेतावनी और सरल गरिमा से भर रहा है।"
('दि रिटर्न ऑफ् दि नेटिव' से)

("The sombre stretch of rounds and hollows seemed to rise and meet the evening gloom in pure sympathy, the heath exhaling darkness as rapidly as the heavens precipitated it..............
The place became full of a watchful intentness now; for when other things sank brooding to sleep, the heath appeared slowly to awake and listen. Every night its titanic form seemed to await something; but it had waited thus unmoved during so many centuries through the crises of so many things, that it could only be imagined to await one last crisis—the final overthrow. Twilight combined with the scenery of Egdon Heath to evolve a thing majestic without severity, impressive without showiness, emphatic in its admonitions, grand in its simplicity.")

हार्डी की प्रतिभा खुले मैदानों और प्रकृति की उन्मादक छाया से हल्के-गहरे रंगों को लेकर भीतर ही भीतर एक विचित्र परिपूर्णता से प्रेरित होती रही है। आत्म-विह्वलता में स्मृतियों के असंख्य टुकड़े जुड़ जुड़ कर उसके हृदय के कोने में घनीभूत होते रहे हैं और उसकी अपनी आंतरिक सजगता के कारण जब जब वास्तविक संसार एक स्वप्नमय धुंध में परिणत हुआ है, तब तब अवचेतन मन के भीतर घुमड़ने वाली नीरव निस्तब्धता साकार होकर उसकी कल्पना में जाग्रत हो उठी है। हार्डी ने जैसे जानबूझ कर अपने अंतर्द्वन्द्वों को प्रकृति में आरोपित किया है। जब वह प्रसन्न होता है तो उसे सारा विश्व हंसता नजर आता है और जब उसका मन क्षुब्ध होता है तो उसे अपने साथ सारा संसार रोता हुआ दीखता है। कभी उसका स्वर तीव्र हो जाता है, कभी अपनी रुद्ध-भावनाओं को प्रकृति में उन्मुक्त करके वह अपने अव्यवस्थित स्वप्नों को उसमें बिखरा हुआ पाता है, कहीं कहीं प्राकृतिक माधुरी के साथ उसकी दार्शनिक जिज्ञासा का ऐसा सुन्दर समन्वय हुआ है कि मूलतः दोनों को पृथक् करने वाला भाग्यवादी द्वन्द्व मिट जाता है और एक निश्चित् नियति की अवतारणा होती है।

"चारों ओर अंधकार एवं नीरवता का साम्राज्य था। उनके ऊपर प्राचीन, जर्जरित चेज़ बन के 'यू' और 'ओक' वृक्ष खड़े थे, जिनमें बसेरा लेनेवाली चिड़ियां अपनी अन्तिम झपकी लेती हुई लटक रही थीं और उनके आसपास उछलते-कूदते खरगोश चुपके से आश्रय खोज रहे थे। किन्तु क्या कोई बता सकता है कि टैस का संरक्षक-देवता उस समय कहां था? उसके सरल विश्वास का निर्णायक प्रभु तब कहां चला गया था?"('टैस' से)

("Darkness and silence ruled everywhere around. Above them rose the primeval yews and oaks of The Chase, in which were poised gentle roosting birds in their last nap; and sabout them stole the hopping rabbits and hares. But, might some say. where was Tess's guardian angel? Where was the Providence of her simple faith?")

हार्डी की करुणा भावनायें उसकी उदात्त कल्पना के साथ समरूप होकर इस संतप्त संसार में अपनी आंतरिक सहानुभूति का प्रसार करती हैं। उसका आग्रह-शून्य मन प्रकृति के सत्य को हृदयंगम करने की चेष्टा करता है। जिस प्रकार सर वाल्टर स्कॉट ने ट्वीड (Tweed) और मॉरिस ने टेम्स (Thames) के दृश्यों का चित्रण किया है, उसी प्रकार हार्डी ने भी अपनी हृदयस्पर्शी शैली में सरल और सुरुचिपूर्ण पद्धति से वेसेक्स (Wessex) के दृश्यों का सूक्ष्मांकन किया है, जो अत्यन्त सजीव और प्रभावोत्पादक बन पड़ा है। हार्डी ने दृश्य-जगत् के प्रति होने वाली संवेदनात्मक मानसिक-प्रतिक्रियाओं को विशेषतया जीवन के घात-प्रत्याघातों से प्रकृति के सूक्ष्म पहलुओं का सम्बन्ध दिखा कर अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों और रुचियों को निहित करके उसे पृथक् व्यक्तित्व प्रदान किया है। वह जन-शून्य, एकांत बस्ती से अधिक आकर्षित होता है, उसे समुद्र से प्रेम है, किन्तु उसकी दृश्यगत विशेषताओं एवं आंतरिक विकारों से अनभिज्ञ होने के कारण वह उसके वर्णन में अधिक प्रवृत्त नहीं होता। वह व्यावहारिक वाह्य संसार से पृथक् उन वीरान जंगलों और बीहड़ स्थलों के चित्रण में अधिक दिलचस्पी लेता है, जहां की प्राकृतिक शोभा और ऋतुओं के परिवर्त्तित-रूप साधारण प्रेक्षकों की कुदृष्टि से अछूते रहते हैं। घाटियां, लहलहाते खेत, चरागाहें, अपने गांव की छोटी छोटी उदास पहाड़ियां, उजड़े हुए शून्य टीले, जिनके साथ दूर तक जुड़ी हुई ऊबड़-खाबड़ रोमन सड़कें क्षितिज से जा मिलती हैं और मैदान की विस्तृत सघनता, जो सदियों की मनहूसियत में मनुष्यों तक को निगल जाती है तथा सृष्टि की दुर्बल बेबसी में अपनी कल्पना का रंग भर कर वह जीवन-रस उंडेलता रहा है और दम घुटते वातावरण में उन्मुक्त पंछी सा अपने अंतर-तम के करुण, कोमल कण ढुलकाता रहा है—

"आकाश स्वच्छ था, आश्चर्यजनक स्वच्छ और उसमें चमकते हुए तारों की झलमलाहट शरीर की धड़कन सी ज्ञात होती थी, जिसमें सहज जीवन-गति से प्रकम्पन हो रहा था।"

"नवम्बर मास में शनिवार का मध्याह्न सान्ध्य-बेला में परिणत होता जा रहा था और उस वृहद् भू-प्रदेश का विस्तृत प्रसार, जो ईगडन मैदान कहलाता

प्रसाद स्वप्नदर्शी हैं, प्रकृति के दृश्य-अदृश्य सौन्दर्यालोक में ही उन्होंने जीवन के सत्य को अवगत किया है। प्रकृत-सौन्दर्य से आकृष्ट होकर, उसे अनेक कोणों से निरख कर वे उसके अन्तर्वाह्य पर इतने मुग्ध हो उठे हैं, उसके वैविध्य में इतने रम गये हैं कि उनकी प्रखर दृष्टि सूक्ष्मतम रहस्यों को भेद कर उसके छाया-प्रकाश को ग्रहण करती है। अनन्त असीम के प्रसार में, वातायन के सौरभश्लथ उच्छ्वासों में, क्षितिज के छटपटाते छायालोक में, हरे-भरे वृक्षों, कुसुमित कलिकाओं, बन, पर्वत, प्रभात, सन्ध्या, कलकल छलछल करती सरिताओं और अदृश्य सत्ता के दिगंतव्यापी गंभीर आह्वान में उन्होंने अपनी गूढ़तम, अव्यक्त अंतर्भावना को व्यंजित किया है। उनकी अंतरतम चेतना गूढ़ होते हुए भी विश्व के विराट् रंगमंच पर अनेक खेल खेला करती है। जब अज्ञात अन्तर्ध्वनि उन्हें सत्य के लोक में वहन करके ले जाती है तो देश और काल की सीमाओं का अतिक्रमण करके दुनिया के बिखरे हुए वैभव नये रूप में उनके नेत्रों के समक्ष बिछ जाते हैं और उनका अतृप्त मन अपनी समस्त ऐहिक इच्छाओं को दूसरी ओर फेंक कर किसी अज्ञात लोक में उड़ चलने के लिए आकुल हो उठता है। दृश्य-जगत् के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अज्ञात भावों का अर्थ न समझ सकने पर भी उनकी मोहकता मन को भाती है और अंतश्चेतना से बाहरी चेतना एकरस होकर निर्भर संकेतों में व्यक्त हो उठती है।

"अपने सुख-दुःख से पुलकित
यह मूर्त्त विश्व सचराचर ;
चिति का विराट् वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर-सुन्दर।"

आत्म-विस्मृति के कारण प्रसाद और हार्डी को सृष्टि विशृंखल सी लगती है। जीवन की लम्बी राह पर भटकते हुए उनके मन में जो जो विकल्प उठते हैं ; उनकी जीवन-दृष्टि, आशा-आकांक्षा और अन्तर्विकार तथा मानवीय-जीवन के प्रतिदिन और प्रतिपल के भीतरी और बाहरी संघर्ष, संवेदनायें, आवेग-प्रवेग अंतर्व्यथा, कसक और प्राणों की सिहर सभी मानो प्रकृति में गुंथ कर उनकी मनो-वृत्तियों का परिचय देते हैं। कहीं प्रकृति में जीवन की खण्ड-अनुभूतियों के उद्घाटन का आग्रह है, और कहीं पात्रों के मनोरागों से क्लांत वे अत्यन्त करुणार्द्र हो उठे हैं। जैसे किसी दुःखस्वप्न से जाग कर दिल अनायास ही दहल उठता है, उसी प्रकार महाविश्व के महत्वपूर्ण क्रिया-चक्रों में जीवन की अविरत अस्थिरता, चांचल्य और व्यस्तता से वे कभी कभी चौंक पड़े हैं। जीवन के झंझा-प्रवाह में अपनी उदात्त और गरिमामयी वेदना को भर कर इन दोनों ने विराट् शक्तियों की क्रीड़ा देखी है। उनकी दार्शनिक-अभिरुचि, आत्म-विसर्जन और निस्संग-भावना ने उनके अहं को

परास्त न करके और भी अधिक गरिमान्वित एवं जीवन की अटूट साधना के क्रम में परिणत कर दिया है।

नियतिवाद

प्रसाद और हार्डी दोनों ही भाग्यवादी हैं। वातावरण, संस्कार, परिस्थितियां तथा उनकी अपनी दार्शनिक-प्रवृत्ति, निराशा, विरक्ति और निष्क्रियता ने उनमें विरोध-वितृष्णा एवं मानसिक-असंतोष भर दिया है। उन्होंने सब कुछ भाग्य पर छोड़ दिया है और अज्ञात नियति की प्रेरणा से ही उनके समस्त कार्यों का संचालन होता है। प्रसाद लिखते हैं, **"नियति दुस्तर समुद्र को पार करती है। चिरकाल के अतीत को वर्तमान् से क्षण भर में जोड़ देती है, और अपरिचित मानवता-सिन्धु में उसी से परिचय करा देती है, जिससे जीवन की अग्रगामिनी धारा अपना पथ निर्दिष्ट करती है।"**

प्रसाद और हार्डी—दोनों के ही मत से मानवीय-इच्छायें अशक्त, निर्बल और अशंकापूर्ण परिस्थितियों से त्रस्त हैं। नियति की विधायक शक्ति कहां कहां और किस किस रूप में अपनी इच्छा चरितार्थ करती हुई अमृत को विष और विष को अमृत बना देती है—इसका निर्णय करना अत्यन्त कठिन है। मनुष्य के लाख प्रयत्न करने पर भी अनेक अप्रिय प्रसंग उसके मार्ग के अवरोधक हो जाते हैं और वे किसी प्रकार भी टाले नहीं टलते। किसी भी कर्म के भौतिक पार्श्व अथवा उसकी रहस्यमय . अदृश्य सत्ता से टक्कर लेना असम्भव है, नियति जैसे दोनों के बीच में मध्यस्थ का कार्य करती है। जिस सिद्धांत और निश्चित् कर्म की अवतारणा मनुष्य के हित के लिए की जाती है, उसमें प्रतिकूल घटनाओं एवं संघर्षमय जीवन की प्रतिक्रिया से विक्षेप और विघ्न हो जाता है।

हार्डी की प्रेरक-शक्ति और धारणा बड़ी गूढ़ है। कर्म के भोग और अधिकार की स्पृहा के ध्वंस पर वह मानवसृष्टि के चेतन रागों की स्थापना मानता है। उसकी फिलॉसफी गहन-चिंतन, अंतर्जिज्ञासा और ठोस ज्ञान से पुष्ट होकर प्रकट हुई है। आरम्भ से ही उसके उपन्यासों के पात्र नियति के स्वीकार्य बंधन में बंधे हैं। न जाने कब, कैसे और कहां से आकस्मिक घटनाओं के अंकुर फूट कर उन्हें अपने प्रवाह में बहा ले जाते हैं और वे उसी की विशालता में अपने अस्तित्व को लय कर देते हैं। अदृष्ट की दुर्भेद्य सघनता उनके अतीत, वर्तमान् और भविष्य को वातावरण की स्तब्ध छाया में अनायास आकर समेट लेती है और अपरिचित, अनागत घटना-चक्र उनकी स्वाभाविक इच्छाओं, लालसाओं और जीवन की समस्त कामनाओं को कुचल कर अवांच्छित, अनियन्त्रित, विवश व्यग्रता से भर देते हैं।

हार्डी की प्रत्येक कृति में जीवन-संघर्ष, आलोड़न-विलोड़न और दयनीय मानवता के मार्मिक-मंथन की झांकी है। उसके सभी पात्र-पात्री नियति के क्रीड़ा-कन्दुक हैं। जीवन-गगन के रक्ताभ पट पर उल्लसित पवन की मधुर सिहरन जब किसी आगत खुशी का आभास देती है,तभी नियति का निर्मम अट्टहास हहराता हुआ उन्हें कोलाहल पूर्ण अकूल सागर में धकेल लेजाता है। न जाने कौन अपने अदृश्य हाथों से हठात् उनकी सारी खुशियों को झकझोर देता है और जीवन की साध,आहें, दग्ध हृदय की चिनगारियां छितरा छितरा कर उनके अन्तर्वाह्य को आच्छन्न कर लेती हैं।

प्रारम्भ से ही हार्डी की दृढ़ धारणा है कि मनुष्य केवल कर्म के लिए है। कर्म उसके स्वभाव का अंग है और उसके बिना वह रह नहीं सकता। कर्म का चक्र निरंतर घूमता रहने पर भी उसका फल मनुष्य के हाथ में नहीं है। अज्ञान, भ्रम और मिथ्या दर्प के वशीभूत होकर वह समझता है कि कर्म करने वाला वह स्वयं ही है, किन्तु वस्तुतः ऐसा समझना निरी विडम्बना है। कर्म, चाहे छोटा हो अथवा बड़ा, मनुष्य के अधीन नहीं, वरन् वह ही पूर्ण रूप से उसके अधीन है। हार्डी की प्रारम्भिक कृतियों 'डेसपैरेट रेमीडीज़ (Desperate Remedies), 'दि हैंड ऑफ् एथलबेर्टा' (The Hand of Ethelberta), 'ए पेअर ऑफ् ब्लू आइज़' (A Pair of Blue Eyes) और 'दि ट्रम्पेट मेजर' (The Trumpet Major) में इस विश्वास के अंकुर उभर आये हैं, किन्तु उसकी परवर्त्ती रचनाओं 'फार फ्रॉम दि मैडिंग क्राउड' (Far from the Madding Crowd), 'दि रिटर्न ऑफ् दि नेटिव' (The Return of the Native), 'दि मेयर ऑफ् केस्टरब्रिज' (The Mayor of Casterbridge), 'दि वुडलैण्डर्स' (The Woodlanders), 'टैस' (Tess) और 'जूड दि आब्सक्योर, (Jude the Obscure) में मानव और परा-शक्ति का द्वन्द्व द्रष्टव्य है, मानों अदृष्ट-लिपि के असीम आदेशों में उनकी समस्त क्रियायें और प्राणों का प्रश्नवाचक अस्तित्व निगड़-निबद्ध है।

जीवन के अपराह्न-काल में वह नियति के क्रूर शासन को निरुपाय मानव के मूल चेतन-रागों से ग्रथित देखता है। मर्म-वेधक छलना और निष्ठुर-दंश उसके द्वारा स्रष्ट पात्रों की प्रगति में अटकाव और बाधा उपस्थित करते हैं। उसे लगता है जैसे अज्ञात, अमानवीय आशंका एक व्यंग भरी मुस्कान से निर्वाक्, अपलक उन्हें निहारती रहती है और वे करुणा, व्यथा, ग्लानि और विवशता से भरे बिना तिरोध किये उसका अनुधावन करते रहते हैं। मानवीय-कर्मों का संतुलन उपस्थित

करने के लिए हार्डी ने दुष्कर्मों का प्रतिवाद किया है। सद्-असद् कर्मों के अनुसार उसने 'भाग्य' और 'संयोग' की मीमांसा की है।

"हमारे कुकृत्य प्रतिकूल परिस्थिति को प्राप्त करने के लिये अतीत पृष्ठ-भूमि में छिपे पड़े नहीं रहते, वरन् फलप्रद पौधों की भांति पुष्ट होते और पुनः पनपते हैं, जब तक कि उन्हें समूल नष्ट करने के लिए उनके महत्त्वपूर्ण विनाशक तत्व ध्वस्त नहीं हो जाते।"

("Our evil actions do not remain isolated in the past, waiting only to be reversed; like locomotive plants they spread and re-root, till to destroy the original stem has no material effect in killing them.")

हार्डी के प्रायः सभी उपन्यासों में दुर्बल मानव दुर्दम्य शक्ति द्वारा कुचल दिये जाते हैं, कभी विषम, प्रतिरोधी प्राकृतिक साधनों द्वारा और कभी आकस्मिक घटनाओं के प्रत्याक्रमण द्वारा जो अनजाने ही उनकी प्रच्छन्न संकल्प-शक्ति और भीतरी प्रेरणाओं में अन्तर्हित होते हैं। भले ही हार्डी 'दुःखवाद' (Fatalism) अथवा 'संकल्पवाद' (Determinism) का पोषक हो, वह अदृष्ट क्रूर सत्ता की अनिवार्य विभीषिका को स्वीकार करता है, उसके बिना वह पुरुष अथवा नारी के अस्तित्त्व की कल्पना नहीं कर सकता। उसके मत से यदि विश्व में कोई निर्णायिक शक्ति न हो तो मानव के पशु-मस्तिष्क में न्याय और सचाई के महत्त्व को जागरूक नहीं किया जा सकता। शून्य, वीरान पथ पर टैस के सरल सतीत्व को जब कुचला जाता है तो हार्डी लिखता है—

"इस सुंदर नारी-शरीर पर, जो महीन तंतुओं सा सुकोमल और बर्फ की श्वेताभा सा पावन था, यह नियति का क्रूर, विघायक ताण्डव क्यों हुआ? इस प्रकार अच्छे-बुरे का साथ प्रायः क्यों हो जाता है? अनमिल स्त्री-पुरुषों के जोड़े क्यों अनायास ही एक दूसरे का अपकार करने में प्रवृत होते हैं? सहस्रों वर्षों की दार्शनिक-विवेचना और अनुचिंतन भी इस सृष्टि के व्यतिक्रम के रहस्य को नहीं समझा सकी है। उस तात्कालिक अनाचार का कारण किसी पुरातन घटना के प्रतिशोध की प्रच्छन्न संभावना में निहित समझा जा सकता है। निःसंदेह, टैस दर्बीविल के किन्हीं पूर्वजों के सुसज्जित सवार ने यहां युद्ध से घर लौटते समय इससे भी अधिक नृशंस व्यवहार किन्हीं भोली कृषक बालिकाओं से किया था। यद्यपि पूर्वजों के पापों का परिणाम उनकी संतति द्वारा भोग जाना नैतिक दृष्टि एवं धर्माचार्यों के अनुसार मान्य है, तथापि मानवीय-सिद्धान्त से यह घृणास्पद है और इससे परिस्थिति में कुछ सुधार नहीं होता।"

("Why it was that upon this beautiful feminine tissue, sensitive as gossamer, and practically blank as snow as yet, there should have been traced such a coarse pattern as it was doomed to receive; why so often the coarse appropriates the finer thus, the wrong man the woman, the wrong woman the man, many thousand years of analytical philosophy have failed to explain to our sense of order. One may, indeed, admit the possibility of a retribution lurking in the present catastrophe. Doubtless some of Tess d'Urberville's mailed ancestors rollicking home from a fray had deal the same measure even more ruthlessly towards peasant girls of their time. But though to visit the sins of the fathers upon the children may a morality good enough for divinities, it is scorned by average human nature; and it therefore does not mend the matter.")

उपन्यास का उपसंहार करते हुए हार्डी लिखता है, **"न्याय किया गया और देवाधिपति ने टैस से अपना क्रीड़ा-कौतुक समाप्त कर दिया। दर्बीविल के शूरवीर योद्धा और महिलाएं बिना कुछ जानें चपचाप अपनी समाधि में सोते रहे।"**

("Justice was done, and the President of the Immortals had ended his sport with Tess. And the d'Urberville knights and dames slept on in their tombs unknowing.")

एक और स्थल पर हार्डी ने लिखा है, **"कुछ निराशाएं हमें निचोड़ डालती हैं और कुछ ऐसा घाव बना जाती हैं, जिनका चिन्ह मृत्यु पर्यन्त नहीं मिटता। ये निराशाएं ऐसी तीखी होती हैं कि कोई भी अनुकूल भावी उपचार उनकी कचोट कम नहीं कर सकता, वरन् वे तो चिरन्तन दुःख की छाप बनकर हमारे मस्तिष्क को आच्छन्न कर लेती हैं।"**

("There are disappointments which wring us, and there are those which inflict a wound whose mark we bear to our graves. Such are so keen that no future gratification of same desire can ever obliterate them; they become registered as a permanent loss of happiness.")

काल-समुद्र की गंभीर हलचल और लालसाओं के थपेड़ों से उत्पीड़ित मानव की चारित्रिक त्रुटियों से अवगत हार्डी संतों की अपेक्षा पापियों से अधिक प्रेम करता है। उसके उपन्यासों के कथानक साधारण होते हुए भी प्रेम, द्वेष, महत्त्वाकांक्षा, ज्ञान-पिपासा और अन्तर्द्वन्द्वों से आविर्भूत हुए हैं और मनोवैज्ञानिक बारीकियों से सुधारे-संवारे गये हैं। ज्यों ज्यों उसकी कलात्मक टेकनीक विकसित हुई है, त्यों त्यों उसके उपन्यासों के विषय गंभीर, उलझे हुए और अधिक चिंतनीय होते गये हैं तथा मन के भीतरी संकल्प, सूक्ष्म अनुभूतियां और इच्छा-अनिच्छाओं का द्वन्द्व अधिका-

धिक स्पष्ट होता गया है। इन्हीं इच्छाओं को प्रवर्तित करने वाली आकस्मिक घटनायें उपन्यासों की स्वाभाविक प्रगति में बाधा उपस्थित करती हैं, कभी कभी मानव-जीवन के स्वस्थ सम्बन्धों को विच्छिन्न करने के लिये घृणित, दुःखदायी संयोग बीच बीच में आ धमकते हैं और तब ऐसा ज्ञात होता है मानों विराट् काल-चक्र को घुमाने वाली कोई अदृश्य महाशक्ति है, जो दार्शनिक-परिधान पहिने चुपचाप मानव-जीवन की बागडोर आकर सम्हाल लेती है। मनुष्य मिथ्या दम्भ एवं आत्म-वंचना के कारण इसकी अवहेलना करता है, किंतु उसके द्वारा अनजाने, असमय में ही पीस दिया जाता है। हार्डी के उपन्यासों का मनहूस, विषादमय वातावरण भाग्य की नृशंस प्रक्रियाओं का ही परिणाम है।

हार्डी की भांति प्रसाद के नाटकों में भी नियति के अदृष्ट प्रयोगों का निदर्शन है। मनुष्य के समस्त कार्य-व्यापार अदृष्ट की डोरी पर झूलते हैं। "**मनुष्य क्या है? प्रकृति का अनुचर और नियति का दास।**" अत्यन्त सावधान और जागरूक रहने पर भी आकस्मिक घटना-चक्र उन्हें आ दबोचते हैं। मनुष्य, जो कुछ चाहता है अथवा नहीं चाहता, उसका नियति पर कोई प्रभाव नहीं है। घटनाओं का क्रम बदलना उसकी सामर्थ्य से परे है।

प्रसाद की बौद्धिक-चेतना, पुरातन-संस्कार और न्याय-बुद्धि ने उन्हें घोर भाग्यवादी बना दिया है। बौद्ध-दर्शन और निराशावाद ने भी उनके चिंतन और विचारधारा को प्रभावित किया है। वे लिखते हैं, "**समस्त आलोक, अंधकार और चैतन्य-शक्ति प्रभु की दी हुई है। मृत्यु के द्वारा वही उसे लौटा लेता है। जिस वस्तु को मनुष्य दे नहीं सकता, उसे ले लेने की स्पर्द्धा से बढ़ कर दूसरा दम्भ नहीं।**"

प्रसाद के अनुसार वैयक्तिक-पूर्णता पूर्णता नहीं है। कर्म के सिद्धांत को स्वीकार करके भी अदृष्ट को कैसे बांधा जा सकता है। नियति पाश है और मनुष्य की कमजोरियों के फंदे उसे और भी दृढ़ करते हैं। एक स्थल पर प्रसाद लिखते हैं,

"**जीवन एक प्रश्न है और मरण है उसका अटल उत्तर।**

जागरण का अर्थ है कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण होना। और कर्मक्षेत्र क्या है? जीवन-संग्राम।

अधिक हर्ष, अधिक उन्नति के बाद ही अधिक दुःख और पतन की बारी आती है।"

मनुष्य दुराग्रही होते हुए भी दुर्बल है। उसके अहं के परे भी कुछ है, जो सदा लौह-शृंखलाओं को झनझनाकर अपने सूचीभेद्य अंधकार में उसकी धधकती लालसाओं को समेट लेता है। नियति की दुस्तर रेखा लांघ जाना नितांत कठिन है। अदृष्ट के समक्ष उसे नत होना ही होगा। प्रसाद ने अपने सभी नाटकों और उपन्यासों में नियति के रहस्य को व्यंजित किया है। 'तितली' में शैला नील-कोठी के प्रस्तर-खण्ड पर बैठ कर अज्ञात प्रेरणा पर आश्चर्य प्रकट करती है—

"शैला को दृढ़ विश्वास हो गया कि जिस पत्थर पर वह बैठी है, उसी पर उसकी माता जेन आकर बैठती थी। जिस दिन से उसे वार्टली और जेन का सम्बन्ध इस भूमि से विदित हुआ, उसी दिन से उसकी मानस-लहरियों में हलचल हुई। बाल्यकाल की सुनी हुई बातों ने उसे विश्वास दिलाया कि उसकी माता जेन ने अपने जीवन के सुखी दिनों को यहीं बिताया है। अब संदेह का कोई कारण नहीं रहा। अज्ञात नियति की प्रेरणा उसे किस सूत्र में यहां खींच लाई है, यही उसके हृदय का प्रश्न था।"

प्रसाद के उपन्यास और नाटकों के पात्र-पात्री जब अपनी सफलताओं पर फूल जाते हैं, तभी नियति का क्रूर हाथ उनकी गर्दन आ दबोचता है। प्रसाद लिखते हैं—

"सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की दुर्बलता के भय हैं। अभावमयी लघुता में मनुष्य अपने को महत्वपूर्ण दिखाने का अभिनय न करे तो क्या ही अच्छा हो?

विधान की स्याही का एक बिंदु गिर कर भाग्य-लिपि पर कालिमा चढ़ा देता है।"

कहना न होगा कि प्रसाद और हार्डी दोनों ही नियति के दांव पर मनुष्यता को सदैव कसते रहे हैं। अदृष्ट के प्रति उनकी अप्रतिरोध की भावना ही उन्हें धकेल कर आगे बढ़ाती रही है और वे अंधकार में टटोलते हुए की भांति अज्ञात-प्रकाश-छाया की छटपटाहट एवं भाग्यवाद की कुहेलिका में यत्र-तत्र अपने आपको लय करते रहे हैं।